भारतीय लोक-विश्वास

डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय

निदेशक, लोक संस्कृति शोध संस्थान, वाराणसी

प्रस्तावना-लेखक

पद्मभूषण, आचार्य

पं० बलदेव उपाध्याय

निदेशक (भू० पू०), सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी

जिनकी कृपा तथा आशीर्वाद ही मेरे जीवन का सर्वस्व है,
जिनकी प्रेरणा और प्रोत्साहन ही मेरे साहित्यिक जीवन
का बल और सम्बल है

उन्हीं

पितृकल्प, ज्येष्ठ भ्राता, पद्मभूषण, आचार्य, पण्डित

बलदेव उपाध्याय

के चरण-कमलों में यह विनम्र कृति सादर, सप्रेम समर्पित ।

कृष्णदेव

प्रकाशकीय

लोक-विश्वास लोकजीवन के सामान्य निकष एवं लोक-संस्कृति के आवश्यक अंग हैं। आज के वैज्ञानिक युग में भी जन-साधारण का जीवन इन विश्वासों के ऊपर आधारित है। संसार में कोई भी ऐसा देश न होगा जहाँ लोक-विश्वास, किसी-न-किसी रूप में, न पाया जाता हो। यूरोप की भौतिकवादी संस्कृति में भी लोक-विश्वास बहुलता से पाये जाते हैं। आदिम जातियों मे तो लोक-विश्वास की जड़े अधिक गहरी और जीवन्त हैं और उनका सारा का सारा जीवन ही लोक-विश्वासों के द्वारा परिचालित होता है। सच तो यह है कि लोक-विश्वास लोकजीवन की अन्तर्चेतना में इतने प्रगाढ़ रूप से अन्तर्भूत हैं कि हम जाने-अनजाने इनसे प्रेरित और परिचालित होते रहते हैं। शिक्षित समाज इन्हें अंधविश्वास मानता है और इनकी उपयोगिता से वंचित रह जाता है जबकि पिछड़े समाज में ये ही लोक-विश्वास जीवन-पद्धति के आधार-मूल बने हुए हैं। ऐसी दशा में इनका अध्ययन संस्कृति-विशेष के सम्यक् ज्ञान के लिए आवश्यक है। हमारा लोकमानस एवं अन्तर्मन जिन तत्त्वों से निर्मित होता है, उनमें ऐसे विश्वास सबसे अधिक महत्ता रखते हैं।

संस्कृत-साहित्य में लोक-विश्वास की परिपाटी अत्यन्त समृद्ध रूप में मिलती है। पुराणों को भारतीय लोक-संस्कृति और लोक-विश्वास का विश्वकोश कहा गया है। आचार्य वराहमिहिर ने कहा है कि यह तीनों लोकों में फैला हुआ है। इसका क्षेत्र-विस्तार इतना व्यापक है कि इसकी परिधि के अन्तर्गत सृष्टि के सभी चर-अचर प्रत्यय समाहित हो जाते हैं। जलचर, थलचर तथा नभचर सभी जीवधारियों के संबंध में अनेक लोक-विश्वास उपलब्ध होते हैं। मानव-जीवन की प्रतिदिन की विभिन्न क्रियाओं—भोजन, छाजन, गमन, शयन, जागरण आदि में भी लोक-विश्वास ताने-बाने की भाँति संग्रथित मिलता है। संस्कृत-साहित्य में इन्हें 'शकुन' कहा गया और मांगलिक कार्यों के सम्पादन या इतर कार्यों में इन शकुनों की भूमिका को अनदेखा नहीं किया गया। वाल्मीकीय रामायण और रामचरितमानस हमारे लोक-जीवन, लोक-संस्कृति एवं लोक-दर्शन के दो महान् प्रेरक ग्रंथ हैं जिनमें लोक-विश्वास के उदाहरण बहुशः देखे जा सकते हैं। रामचरितमानस को ही लें, तो महाराज दशरथ के मिथिला-गमन के समय लोक-विश्वासों की कई अनूठी पंक्तियाँ देखने को मिलती हैं—

बनइ न बरनत बनी बराता । होंहि सगुन सुंदर सुभदाता ।।
चारा चाषु बाम दिसि लेई । मनहुँ सकल मंगल कहि देई ।।
दाहिन काग सुखेत सुहावा । नकुल दरस सब काहूँ पावा ।।
सानुकूल बह त्रिबिध बयारी । सघट सबाल आव बर नारी ।।
लोवा फिरि फिर दरस देखावा । सुरभी सनमुख सिसुहि पिआवा ।।
मृगमाला फिरि दाहिनि आई । मंगल गन जनु दीन्हि देखाई ।।
छेमकरी कह छेम बिसेषी । स्यामा बाम सुतरु पर देखी ।।
सनमुख आयउ दधि अरु मीना । कर पुस्तक दुइ बिप्र प्रबीना ।।
मंगलमय कल्यानमय अभिमत फल दातार ।
जनु सब साचे होन हित भए सगुन इक बार ।।

इस प्रकार हम देखते हैं कि भारतीय जीवन में लोक-विश्वास की जड़ें हमारे मनोजगत् में कितनी गहराई तक पैठी हुई हैं।

हिन्दी में लोक-विश्वासों पर बहुत कम काम हुआ है। लोक-जीवन एक अथाह समुद्र है जिसमें से लोक-विश्वास के मौक्तिक चुनकर डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय ने प्रस्तुत ग्रंथ 'भारतीय लोक-विश्वास' का प्रणयन किया है। विषय के आप निश्चय ही मर्मज्ञ विद्वान् हैं। अपने जीवन के एक बड़े भाग को आपने इस ग्रंथ के निमित्त समर्पित कर दिया है। इसमें लोक-विश्वास के विविध पक्षों को समेट कर विषय को परिपूर्णता तक पहुँचाने का प्रयास स्तुत्य है। इस ग्रंथ मे हमारी संस्कृति—विशेषकर लोक-संस्कृति के उस पक्ष को उजागर किया गया है जिसके विषय में अभी तक बहुत ही कम विद्वानों का ध्यान आकृष्ट हुआ है। दक्षिण भारत के लोक-विश्वासों को प्रकाश में लाने वाली एन्थोवेन की पुस्तक 'सुपरस्टीशन्स ऑव सदर्न इण्डिया' प्रसिद्ध है, परन्तु अँग्रेजी में होने के कारण यह दुर्बोध होने के साथ ही अब अलभ्य भी है। लेखक ने इस देश में प्रचलित वर्ष के विभिन्न महीनों, दिनों तथा कालों से संबंधित लोक-विश्वासों की चर्चा करने के पश्चात् उनकी तुलना पाश्चात्य देशों—विशेषकर इंगलैण्ड मे प्रचलित विश्वासों से की है। चतुर्दश अध्यायों मे विभक्त सम्पूर्ण सामग्री की व्यापक खोज-बीन की गई है और इस विषय के सभी पक्षों की सारगर्भित एवं पूर्ण व्याख्या की गई है। हिन्दी भाषा में इस विषय की प्रथम पुस्तक होते हुए भी यह सभी दृष्टि से अद्यतन और उपयोगी बन पड़ी है।

आशा है, प्रस्तुत ग्रंथ विषय के जिज्ञासु पाठकों के अतिरिक्त सर्वसाधारण में भी पर्याप्त समादृत होगा।

जगदीश गुप्त
सचिव

प्रस्तावना

लोकविश्वास का साम्राज्य इस विशाल विश्व में सर्वत्र विराजमान है। ऐसा कोई भी देश नहीं है जहाँ के निवासियों के जीवन को लोकविश्वास प्रभावित नहीं करता। शिक्षित-अशिक्षित, सभ्य-असभ्य, बालक-वृद्ध, स्त्री-पुरुष—ऐसा कोई भी प्राणी दृष्टिगोचर नहीं होता जो अपने जीवन में इन लोकविश्वासों की उपयोगिता का अनुभव नहीं करता। साधारण विश्वास है कि भारत के ही निवासियों की दृढ़ मान्यता इन पर है, परन्तु विदेशों में—अमेरिका तथा यूरोप में, अफ्रीका तथा एशिया में भी इनकी प्रमुख व्यापकता देखकर आलोचकों को नितान्त आश्चर्य होता है। शिक्षित व्यक्ति इसे 'अन्धविश्वास' के नाम से पुकारता है, परन्तु इनकी गरिमा तथा गम्भीरता से अपरिचित वही व्यक्ति इस चक्षुर्दोष से दूषित होता है—यही तथ्य आलोचकों के सामने वस्तुतः प्रतीत होता है। 'भारतीय लोक-विश्वास' नामक प्रस्तुत ग्रन्थ के अध्ययन से इसी तथ्य की प्रामाणिकता पदे-पदे विमर्शकों के सामने आती है और वे एक स्वर से 'अन्धविश्वास' के खोखलेपन को प्रकट करने में किसी प्रकार विरत नहीं होते।

लोकसंस्कृति से सम्बद्ध इस ग्रन्थ के लेखक डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय ने अपना दीर्घ जीवन ही इसके अध्ययन में समर्पित कर दिया है और वे पचास वर्षों से (१९४० ई० से १९९० ई०) लोकसाहित्य एवं लोकसंस्कृति के शोधकार्य में अनवरत संलग्न हैं।

'भारतीय लोक-विश्वास' नामक इस ग्रन्थ की दो विशेषताएँ ऐसी हैं जो इसे एतत् सदृश अन्य ग्रन्थों से सर्वथा पृथक् करती हैं। पहली है—तथ्यों की प्रामाणिकता तथा दूसरी है—रचना की तुलनात्मक शैली। लेखक ने बड़े परिश्रम से संस्कृत साहित्य में बिखरे हुए लोकविश्वास-विषयक तथ्यों को एकत्र किया है तथा उसकी वर्तमान समय में विद्यमान जागरूकता तथा व्यापकता को प्रचुर उदाहरणों के द्वारा पुष्ट किया है।

भारत में 'लोकविश्वास' की परम्परा अति प्राचीन काल से लेकर आज

तक किसी न किसी रूप में दृष्टिगोचर होती है अथर्ववेद तो वैदिक कालीन एतद्-विषयक सिद्धान्तों का इतना व्यापक वर्णन करता है कि उसे हम वैदिक कालीन विश्वासो का विश्वकोष ही कह सकते हैं। पुराण, रामायण, महाभारत, काव्य, नाटक आदि में भी विपुल सामग्री है। वराहमिहिर ने अपने 'बृहत् संहिता' नामक बृहत्काय ग्रन्थरत्न में पक्षियो एवं पशुओं की आकृति, गति तथा शब्द के अनुसार शकुनों का अत्यन्त विस्तृत विवरण प्रस्तुत किया है। ज्योतिष के ग्रन्थों में यात्रा-सम्बन्धी शकुन-अशकुन का वर्णन करके एक के ग्रहण एवं दूसरे के परिहार का विन्यास किया गया है। इन ग्रन्थों मे प्रसंगगत वर्णन है, परन्तु संस्कृत साहित्य इस विषय का स्वतंत्र रूप मे वैज्ञानिक दृष्टि से परीक्षण करता है और इसके फलस्वरूप 'वसन्तराजीय शकुन' नामक ग्रन्थ में इस विषय का पर्याप्त ऊहापोह किया गया है। विद्वान् लेखक ने इन ग्रन्थों से प्रचुर सामग्री का संकलन कर अपने ग्रन्थ को पूर्णत प्रामाणिक बनाया है।

डॉ० कृष्णदेव जी ने तुलनात्मक शैली में इसका प्रणयन कर ग्रन्थ की व्यापकता एवं उपयोगिता में वृद्धि की है। अंग्रेजी में इस विषय के प्रामाणिक लेखक फ्रेजर, गेलसोवस्की तथा रेडफोर्ड आदि के ग्रन्थों का विधिवत् अनुशीलन कर भारतीय लोकविश्वास के तथ्यों की पर्याप्त पुष्टि की गई है। लोकसाहित्य में उपलब्ध सरल गीतों का उद्धरण देकर ग्रन्थकार ने इस रचना को रसस्निग्ध बनाया है जिससे पाठकों को ग्रन्थ के अध्ययन में रोचकता तथा रंजनता का पदे-पदे अनुभव होता है। वनस्पति-जगत् तथा जन्तु-जगत् से सम्बद्ध शकुनों का विवरण किसी हिन्दी ग्रन्थ में पहली बार यहाँ किया गया है जिससे ग्रन्थ के गौरव, व्यापकता तथा रोचकता में पर्याप्त अभिवृद्धि हुई है।

विद्वान् लेखक ने लोकविश्वासों की उत्पत्ति तथा विकास एवं उनका मानव-जीवन पर गम्भीर प्रभाव का प्रतिपादन ग्रन्थ के आरम्भ मे किया है। प्राचीन काल में 'लोकविश्वास' के लिए 'शकुन' शब्द का प्रयोग किया जाता था। इस प्रसंग में 'शकुन' शब्द के व्युत्पत्तिजन्य अर्थ तथा स्वरूप का निर्देश 'शब्द-कल्पद्रुम' के आधार पर किया गया है। शकुनों के उदाहरण के रूप में कृष्णदेव जी ने जायसी, विद्यापति पदावली, रामचरितमानस, बिहारी सतसई आदि हिन्दी के काव्य-ग्रन्थों से तथा रघुवंश, नैषधचरित, किरातार्जुनीय, शिशुपाल-वध आदि संस्कृत के काव्य-ग्रन्थों से प्रभूत दृष्टान्त

उपस्थित कर शकुनशास्त्रीय ग्रन्थ की शास्त्रीय के सम में साहित्यिक रोचकता का पर्याप्त प्रदर्शन किया है।

काक और क्रमेलक (ऊँट) राजस्थान की सुन्दरी के लिए दोनों ही अभिनन्दन के योग्य हैं। काक ने तो विदेश से आने वाले पति के आगमन की पूर्वसूचना दी है तथा ऊँट ने अपनी पीठ पर बैठाकर पति को रेगिस्तान के बीहड़ से उबार कर घर लाया है। सखियों से वह सुन्दरी पूछती है कि कहो बहन, मैं किसकी पूजा पहले करूँ—कौए की अथवा ऊँट की। 'काकः किं वा क्रमेलकः' इस समस्या की पूर्ति करने वाला यह पद्य कितना रमणीय है—

> येनाऽऽगच्छन् ममाख्यातो
> येनानीतश्च मत् प्रियः।
> प्रथमं सखि कः पूज्यः?
> काकः किं वा क्रमेलकः॥

क्रमेलक (इसी से निष्पन्न अँग्रेजी का केमुल शब्द) के स्वभाव में दुर्जनता का यह सन्निवेश बिल्हण महाकवि ने इस प्रकार दिखलाया है---

> ना सज्जनानामिह कोऽपि दोषः
> तेषां स्वभावो हि गुणा सहिष्णुः।
> निरीक्षते केलि वनं प्रविष्टः
> क्रमेलकः कण्टकजालमेव॥

दोषदर्शी सज्जनों का इसमें किसी प्रकार का दोष नहीं है। उनका स्वभाव ही होता है कि ये दूसरों के गुणों को सहन नहीं कर सकते। केलि के उपवन में जाने वाला ऊँट खाने के लिए काँटों के ही झंखाड़ को ढूँढ़ता फिरता है।

वर्षा के प्रसंग की यह प्रख्यात सूक्ति है जिसका अर्थ है कि आर्द्रा नक्षत्र के चढ़ते समय और हस्त नक्षत्र के उतरते समय यदि वर्षा नहीं हुई तो पाहुन (जमाता, दामाद) और गृहस्थ दोनों पछतायेंगे—

> "आवत आदर ना दियो जात न दीन्हो हस्त।
> तो दोनों, पछतायेंगे पाहुन और गिरहस्त॥"

यह दोहा श्लिष्ट है। गृहस्थ वाला अर्थ तो ऊपर दे दिया है। पाहुन के

व्यवहार की भी सूचना इसी दोहे मे है। आते समय पाहुन को आदर नही दिया और जाते समय उसके हस्त हाथ मे कुछ द्रव्य नही दिया, तो वह बेचारा ससुराल से पछताते ही चला जायगा।

भोजपुरी लोकगीत की एक कविता पढ़िए—

दिनवा के बैरी रे सासू ननदिया
मैं का करौं यार राति बैरी अँजोरिया
कसहूँ मैं ठोकि-ठाकि के बालका सुतवलों।
मैं का करों यार बोले लागल चुचुहिया।
मैं का करो यार..........॥

इन शकुन-विषयक साहित्यिक दृष्टान्त के कारण प्रस्तुत 'भारतीय लोक-विश्वास' ग्रन्थ बड़ा ही स्निग्ध, रसपेशल एवं हृदयावर्जक बन गया है। तुलनात्मक शैली में उपन्यस्त, दृष्टान्तों से सर्वथा परिपूर्ण ऐसा प्रामाणिक ग्रन्थ हिन्दी जगत् में दूसरा नही है। अपने विषय की यह प्रथम प्रमेयबहुल अभिराम रचना है। ऐसे ग्रन्थ के प्रणयन के लिए हिन्दी संसार डॉक्टर कृष्णदेव उपाध्याय का चिरऋणी रहेगा। भगवान् उन्हें ऐसी रचनाओं के प्रणयन के लिए दीर्घ आयु दें—यही मेरा आशीर्वाद है।

— बलदेव उपाध्याय

लेखक का वक्तव्य

लोक-विश्वास उतना ही प्राचीन है जितना मानव-जीवन। जब से मानव ने इस धरा-धाम पर पैर रखा, तभी से लोक-विश्वास का भी आविर्भाव समझना चाहिए। संसार में सबसे प्राचीन ग्रन्थ ऋक्वेद है। इस वेद के सूक्तों के अध्ययन करने से पता चलता है कि वैदिक आर्यों का पर्जन्य के गर्जन, उषा के आविर्भाव तथा सूर्य के चंक्रमण के संबंध में कितना विश्वास था। अथर्ववेद को तो जादू, टोना, टोटका आदि का कोश ही समझना चाहिए। किसी शत्रु का नाश करने के लिए उसकी प्रतिकृति बनाकर उसमें कील या कांटा चुभाने का उल्लेख इसमें पाया जाता है। इसी प्रकार से सम्मोहन, वशीकरण तथा उच्चाटन की विधियाँ भी वर्णित हैं। स्त्री के द्वारा किस प्रकार से पर-पुरुष को अपने वश में करना चाहिए, इसके उपायों का विस्तारपूर्वक विवरण दिया गया है। इस प्रकार अथर्ववेद तो सामान्य जनता के लोक-विश्वासों तथा अन्ध-परम्पराओं का अथाह सागर है जिसमें गोता लगाने पर अनेक अनमोल मोती प्राप्त हो सकते हैं।

पुराणो में लोक-विश्वासों का अनन्त भण्डार भरा हुआ है। पुराणों के प्रकाण्ड विद्वान् पार्जिटर ने अपनी सुप्रसिद्ध पुस्तक 'एन्शेण्ट इण्डियन हिस्टारिकल ट्रेडीशन' में लिखा है कि पुराण भारतीय लोक-संस्कृति तथा लोक-विश्वास के विश्वकोश हैं—

"Puranas are the Encyclopaedia of Indian folklore."

पुराणों में सामान्य जन-जीवन से संबंधित हजारों लोक-विश्वास बिखरे पड़े हैं। उदाहरण के लिए तुलसी के पौधे को लिया जा सकता है। पद्मपुराण में तुलसी की पूजा, विष्णु से इनका विवाह आदि सैकड़ों लोक-विश्वास वर्णित हैं जिनका संकलन तथा सम्पादन अत्यन्त उपयोगी सिद्ध हो सकता है।

हमारे भारतीय साहित्य में दो महान् ऐतिहासिक महाकाव्य हैं—रामायण तथा महाभारत। रामायण में महर्षि वाल्मीकि ने यात्रा, स्वप्न,

संग्राम आदि के प्रसंग में अनेक शकुनों तथा अपशकुनों का वर्णन किया है। इसी प्रकार से महाभारत में भी ऐसे अनेक प्रसंग उपलब्ध होते है जिनमें शकुनों की चर्चा की गई है। संस्कृत के काव्यों में अनेक शकुनों, अपशकुनों, विश्वासों तथा अन्ध-परम्पराओं का वर्णन यत्र-तत्र पाया जाता है। महाकवि कालिदास ने रघुवंश तथा मेघदूत काव्यों एवं शकुन्तला नाटक में अनेक ऐसे लोक-विश्वासों का वर्णन किया है जो उस समय प्रचलित थे। नैषधीय चरितम् आदि कला-प्रधान महाकाव्यों में भी इन विश्वासों का उल्लेख स्थान-स्थान पर पाया जाता है। डॉ० दीपचन्द्र शर्मा ने अपनी पुस्तक "संस्कृत काव्यों में शकुन" में इस विषय का बड़ा ही प्रामाणिक विवेचन प्रस्तुत किया है। किम्बहुना, वराहमिहिर के द्वारा प्रणीत 'बृहद् संहिता' नामक ग्रन्थ में—जिसका प्रधान उद्देश्य ज्योतिषशास्त्र के सिद्धान्तों का प्रतिपादन करना है—विभिन्न पक्षियों की आकृति, गति, ध्वनि तथा पंखों के स्फालन के द्वारा उपलब्ध शकुनों अथवा अपशकुनों का बड़ा ही विस्तार के साथ वर्णन उपलब्ध होता है।

कहने का आशय यह है कि प्राचीन भारत में लोक-विश्वासों की परम्परा प्रचलित थी और इसकी धारा आज भी अक्षुण्ण रूप से प्रवाहित हो रही है। आधुनिक वैज्ञानिक युग में भी विश्वासों की परम्परा जीवित है। अतः इस परम्परा में ह्रास भले ही परिलक्षित होता हो, परन्तु इसका नाश कदापि नहीं हो सकता।

लोक-विश्वास का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक है। ब्रह्मा की सृष्टि में यावत् पदार्थ दृष्टिगोचर होते हैं, वे सभी इस क्षेत्र के अन्तर्गत आते हैं। आकाश में विराजमान सूर्य, चन्द्र, राशियाँ, नक्षत्र, तारे तथा आकाशीय 'फेनामिना'—जैसे बादल, बिजली, इन्द्रधनुष, वर्षा आदि सभी इसकी परिधि के भीतर हैं। पृथ्वी को अपनी हरित सम्पदा से सुशोभित करने वाली प्रकृति—वृक्ष, लता, गुल्म, पुष्प, पौधे तथा घास आदि के संबंध में सैकड़ों लोक-विश्वास पाये जाते हैं। इसी प्रकार से हरित क्रान्ति के रूप में शस्य-सम्पत्ति के द्वारा देश को समृद्ध बनाने वाली कृषि के विषय में ग्रामीणों में अनेक विश्वास प्रचलित हैं। थलचर, नभचर और जलचर जितने भी जन्तु, जीव, पशु, पक्षी, सरीसृप, किम्बहुना कीड़े और मकोड़े पाये जाते हैं, वे सभी इस क्षेत्र के अध्ययन के विषय है। मानव के शरीर में जितने अंग तथा उपांग हैं

—आँख, कान, नाक, मुख, बाहु आदि, ये सभी इस विश्वास से अछूते नहीं हैं। अधिक तो क्या, संसार की अनेक निर्जीव वस्तुएँ—जैसे शीशा, आलपीन, काँटा तथा नित्य व्यवहार में आने वाली वस्तुएँ—चालनि, सूप, ओखल, मूसल, झाड़ू, चकला, बेलना और दर्वी आदि तक भी लोक-विश्वास की पहुँच है। कहने का आशय यह है कि संसार में यावत् वस्तुएँ दृष्टिगोचर होती हैं तथा जो अगोचर पदार्थ भी हैं—जैसे स्वप्न, मन की प्रसन्नता एवं उदासी तथा अन्यमनस्कता आदि—वे सभी लोक-विश्वास तथा अन्ध-परम्पराओं के ताने-बाने से बुनी हुई पायी जाती हैं।

मनुष्य के जीवन में लोक-विश्वास का महत्त्व सबसे अधिक है। सबसे प्रधान इसकी विशेषता है व्यापकता, जिसका उल्लेख अभी किया जा चुका है। संसार की जितनी भी सभ्य, अर्धसभ्य किम्वा असभ्य कही जाने वाली जातियाँ हैं, उन सभी में लोक-विश्वास के प्रति आस्था किसी न किसी रूप में विद्यमान है। गिरिजन, वनजन तथा सुदूर टापुओं में निवास करने वाले लोगों—जहाँ आधुनिक सभ्यता का प्रकाश अभी तक नहीं पहुँचा है—में भी लोक-विश्वास के प्रति विश्वास प्रचुर मात्रा में पाया जाता है। आदिम वासियों की आस्था इन विश्वासों के ऊपर इतनी अधिक है कि उनका जीवन ही इन्हीं के द्वारा परिचालित होता है। लोक-विश्वास आदिवासियों के जीवन की आधार-शिला है जिन पर उनका समाज आश्रित है। इस आदिम समाज का यदि कोई व्यक्ति बीमार हो जाता है, तो यह विश्वास किया जाता है—इसका कारण किसी देवी या देवता का अप्रसन्न होना है। अतः बीमार व्यक्ति की किसी डाक्टर से दवा कराने की अपेक्षा उस देवता को पूजा-पाठ के द्वारा प्रसन्न करके रोगी को नीरोग करने का प्रयास किया जाता है।

लोक-विश्वास का तीसरा महत्त्व इसकी अमरता है। यह कभी मृत नहीं हो सकता। विशेष परिस्थितियों के कारण इसमें थोड़ा ह्रास भले ही आ जाय, परन्तु यह समूल कदापि नष्ट नहीं हो सकता। लोक-विश्वास वह "कान्टेजियस डिजीज" है जो संक्रमणशील रोगों की भाँति फैलता जाता है। यह कुछ कम आश्चर्यजनक विषय नहीं है कि प्राचीन काल से अविरल गति से चली आ रही लोक-विश्वास की इस परम्परा का स्रोत आज तक सूखा नहीं है और 'एटम बम' के इस वैज्ञानिक युग में भी इसकी लता हरी-भरी बनी हुई है। सभ्य कहे जाने वाले अमेरिका में आज भी लोक-विश्वास कितना दृढ़-

मूल है, इसका वर्णन डॉ० आर० एम० डारसन ने अपनी पुस्तक 'अमेरिकन फोकलोर' में बड़े ही सजीव रूप में किया है।

लोक-विश्वास लोक-संस्कृति (फोकलोर) का एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण अंग है। सच तो यह है कि लोक-जीवन मे लोक-विश्वासों की जितनी प्रधानता है, उतनी अन्य किसी भी विषय की नहीं है। इसके अनुशीलन के अभाव मे लोक-संस्कृति का अध्ययन अधूरा ही है। परन्तु बड़े ही दुःख के साथ लिखना पड़ता है कि लोक-विश्वास के इस महत्त्वपूर्ण विषय की मीमांसा करने वाला कोई भी ग्रन्थ—जहाँ तक इस लेखक को ज्ञात है—अभी तक हिन्दी मे नहीं लिखा गया है। आंचलिक उपन्यासों तथा नयी कविता अथवा अकविता के इस युग में लोक-विश्वासों की उपयोगिता में विश्वास करके इस "अनर्थ" (अ+अर्थ अर्थात् अलाभकर, धन नहीं पैदा करने वाला) कर उद्योग की ओर भला कोई विद्वान् क्यों ध्यान देता? फिर विश्वासों पर से लोगो की आस्था भी नष्ट होती जा रही है। ऐसी दशा में ऐसे "अलाभकर" विषय पर ग्रन्थ-रचना करना किसी ने भी समीचीन नहीं समझा। हाँ, हिन्दी में डॉ० दीपचन्द्र शर्मा रचित "संस्कृत काव्यों में शकुन" नामक ग्रन्थ अवश्य विद्यमान है, परन्तु उसमें संस्कृत भाषा में लिखे केवल काव्य-ग्रन्थों में उपलब्ध शकुनों का ही वर्णन किया गया है। संस्कृत के धर्मशास्त्र ग्रन्थों, नाटकों, चम्पू काव्यों, आख्यायिकाओं और कथाओं आदि में विश्वासों का जो विशाल भाण्डार भरा हुआ है, उसका उद्‌घाटन अभी किसी ने नहीं किया है। इसके अतिरिक्त हिन्दी साहित्य के मध्ययुगीन, भक्तिकालीन तथा रीतिकालीन कवियों की कविताओं में भी विश्वासों का वर्णन प्रचुर रूप मे उपलब्ध होता है। परन्तु इनके संबंध में भी अभी तक कोई ग्रन्थ उपलब्ध नहीं है।

इसके ठीक विपरीत अंग्रेजी साहित्य में लोक-विश्वासों पर अनेक कोशों तथा विश्वकोशों की रचना की जा चुकी है। विदेशी लोक-विश्वासों की चर्चा तो दूर रही, भारतीय लोक-विश्वासों के सम्बन्ध में विलियम क्रुक ने एक महत्त्वपूर्ण पुस्तक—'पापुलर रिलिजन एण्ड फोकलोर आफ नार्दर्न इण्डिया' को दो भागों मे लिखा है। श्री ई० थर्स्टन ने 'ओमेन्स एण्ड सुपरस्टीशन्स आफ सदर्न इण्डिया' में इस विषय का बड़ा ही विशद विवेचन प्रस्तुत किया है। परन्तु हिन्दी में आज भी इस सम्बन्ध में पुस्तकों का अभाव बना हुआ है। इसी अभाव की पूर्ति के लिए इस ग्रन्थ का निर्माण किया गया है। पुलिन्द भट्ट के शब्दों में मैं भी यही कहना चाहता हूँ कि—

"दुःखं सतां तदसमाप्तिकृतं विलोक्य,
प्रारब्धः एष हि मया, न कवित्व दर्पात् ।।"

इस ग्रन्थ में भारतीय लोक-विश्वासों का वर्णन करते समय तुलनात्मक पद्धति का अनुसरण किया गया है, अर्थात् इस देश मे किसी मनुष्य, जीव-जन्तु अथवा निर्जीव पदार्थ के विषय में कोई लोक-विश्वास प्रचलित है और संसार के अन्य देशों में भी यदि उसी वस्तु के विषय में कोई समान अथवा असमान विश्वास पाया जाता है तो उसका उल्लेख इस ग्रन्थ में विस्तार के साथ किया गया है। उदाहरण के लिए कौआ को लिया जा सकता है जो भारतीय विरहिणियों का प्रिय सखा तथा सन्देशवाहक है। विदेशों में रेवेन (Raven—कौआ) के विषय में अनेक लोक-विश्वास प्रचलित हैं, अतः उनका भी उल्लेख यहाँ किया गया है। भारत मे बिल्ली के द्वारा रास्ता काटना तथा रात्रिकाल में इसका रोना अशुभ माना गया है। इसी प्रकार से इंगलैण्ड मे बिल्ली की चंचल स्थिति वर्षा का कारण मानी जाती है। पीपल का पत्ता सदा हिलता रहता है। इसीलिए इसे 'चल-दल' भी कहा जाता है। विदेशों मे भी "एश-ट्री" का पत्ता सदा चलायमान रहता है, क्योंकि इसी वृक्ष की लकड़ी से उस 'क्रास' का निर्माण किया गया था जिस पर ईसामसीह को फाँसी दी गई थी।

लोक-विश्वासों में समानता का क्षेत्र केवल वृक्षों तथा पशुओं तक ही सीमित नहीं है, बल्कि इस मानवी सृष्टि के अनन्तर जिनमें भी पदार्थ हैं, उन सभी में समान लोक-विश्वास पाये जाते हैं जिनका इस ग्रंथ में यथास्थान वर्णन किया गया है। तुलनात्मक पद्धति से वर्णन की इस परिपाटी को अपनाकर यह दिखलाने का विनम्र प्रयास किया गया है कि भारत में ही नहीं, बल्कि अन्य सभ्य देशों में भी यह अन्ध-परम्परा आज भी विद्यमान है। अतः इस देश मे प्रचुर मात्रा में उपलब्ध होने से लोक-विश्वासो के कारण आधुनिक शिक्षा मे दीक्षित नवयुवकों को नाक, भौं नहीं सिकोड़ना चाहिए, क्योंकि इन विश्वासों की स्थिति सार्वभौम तथा सार्वजनीन है।

इस ग्रन्थ में सुप्रसिद्ध टीकाकार मल्लिनाथ की इस प्रतिज्ञा का निर्वाह करने का पूर्ण प्रयास किया गया है कि—

"नामूलं लिख्यते किंचित्
नानपेक्षित मुच्यते ।।"

अर्थात्, इस ग्रन्थ में ऐसे किसी विषय का वर्णन नहीं किया गया है जिसका कोई स्रोत या आधार न हो। और आवश्यकता से अधिक किसी वस्तु का वर्णन भी नहीं है। इसलिए प्रस्तुत लेखक ने अपने कथन की पुष्टि में वेदों, पुराणों, संस्कृत के महाकाव्यों तथा नाटकों को उद्धृत किया है। इन उद्धरणों से कथन की प्रामाणिकता सिद्ध होती है। भारतीय विश्वासों की तत्समान विदेशी विश्वासों से तुलना करते समय अंग्रेजी साहित्य से भी प्रचुर उद्धरण दिया गया है जिससे पाठकों के मन में किसी भी कथन की निर्मूलता की प्रतीति न होने पाये। किम्बहुना, अपने कथन को प्रामाणिक सिद्ध करने के लिए "इनसाइक्लोपीडिया आफ रिलिजन एण्ड एथिक्स" जो १६ भागों में निबद्ध है—और "इनसाइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका" एवं "इनसाइक्लोपीडिया अमेरिकाना" जैसे दुर्लभ ही नहीं, अलभ्य ग्रंथों से भी उद्धरण प्रस्तुत है। इन ग्रंथों को प्राप्त करने में लेखक को अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा है, परन्तु उपर्युक्त मल्लीनाथी प्रतिज्ञा का निर्वाह करने के लिए इन कठिन प्रयासों को भी करना पड़ा है।

यह सर्वथा मौलिक ग्रंथ है। इस ग्रंथ के निर्माण में मुझे दस वर्षों तक घनघोर परिश्रम करना पड़ा है। पूर्ववर्ती किसी भी विद्वान् के द्वारा निर्मित, इस क्षेत्र में रचित किसी पुस्तक का अत्यन्ताभाव होने के कारण मुझे अपना पथ-प्रदर्शन स्वयं करना पड़ा है। 'वसन्तराज शकुन' के एक मात्र अपवाद को छोड़कर संस्कृत में भी कोई ऐसा एक ग्रंथ नहीं है जिसमें विश्वास-सम्बन्धी विपुल सामग्री एकत्र उपलब्ध हो सके। यह अनन्त सामग्री संस्कृत साहित्य के विभिन्न ग्रंथों में बिखरी पड़ी है। अतः इन ग्रंथों का अध्ययन तथा मनन ही नहीं, बल्कि मन्थन करके लोक-विश्वास के अथाह सागर से इन अनमोल मोतियों को निकालकर बाहर लाना बड़ा ही कठिन कार्य है, एक अत्यन्त दुर्लभ व्यापार है। इसे तो धैर्य का धनी तथा शोध की प्रक्रिया में निष्णात कोई विद्वान् व्यक्ति ही कर सकता है।

हिन्दी में केवल एक ग्रंथ के अतिरिक्त अन्य कोई पुस्तक मेरे देखने में नहीं आई। अतः राष्ट्रभाषा में निर्मित किसी ग्रंथ से सहायता लेने की चर्चा ही व्यर्थ है। हाँ, अंग्रेजी भाषा में निबद्ध इस विषय से सम्बन्धित ग्रंथ अवश्य विद्यमान हैं, परन्तु अपेक्षाकृत इनकी भी संख्या कुछ अधिक नहीं है। परन्तु अंग्रेजी में जो भी ग्रंथ प्रणीत हैं, उनको उपलब्ध कर उनका उपयोग करना

अत्यन्त कठिन कार्य है। इसका कारण यह है कि पचासों वर्ष पहले प्रकाशित होने के कारण ये ग्रन्थ आजकल दुष्प्राप्य ही नहीं, अप्राप्य (आउट आफ प्रिन्ट) भी हैं। इन ग्रंथों की यदि कहीं प्राप्ति हो सकती है तो यह किसी प्रसिद्ध विश्वविद्यालय के विशाल पुस्तकालय में ही सम्भव है। अतः प्रथमतः तो इन ग्रंथों को प्राप्त करना ही कठिन है और यदि मिल भी गया तो इन विशालकाय ग्रंथों का मनन तथा अनुशीलन कर लोक-विश्वास को ढूंढ़ निकालना अत्यन्त कठिन है।

उदाहरण के लिए "इनसाइक्लोपीडिया आफ रिलिजन एण्ड एथिक्स" का अध्ययन करने के लिए गांधी पोस्ट ग्रेजुएट कालेज, मालटारी, जिला आजमगढ़ में एक सप्ताह तक मुझे प्रवास करना पड़ा था। इस कालेज के विद्वान् प्रिन्सिपल डॉ० कुबेर मिश्र की कृपा से ही इन पुस्तकों की प्राप्ति हो सकी। कौबेरी कृपा के अभाव में इस पुस्तक का दर्शन भी दुर्लभ था। इस ग्रंथ के निर्माण में कितनी कठिनाइयों और बाधाओं का सामना करना पड़ा है, इसीलिए इस विषय का उल्लेख करना यहाँ आवश्यक प्रतीत हुआ।

मैं उन विद्वानों के प्रति अपनी कृतज्ञता ज्ञापित करना अपना परम कर्तव्य समझता हूँ जिनसे इस ग्रंथ के निर्माण में सहायता प्राप्त हुई है। जिन आचार्यों तथा मनीषियों ने इस सम्बन्ध में ग्रन्थों की रचना की है अथवा जिनकी कृतियों में शकुन एवं अपशकुन की चर्चा है, उनके प्रति अपनी विनम्र प्रणति अर्पित करना चाहता हूँ।

"नमो पूर्वजेभ्यः ऋषिभ्यः पथिकृद्भ्यः"

अपने अग्रज पद्मभूषण, आचार्य पं० बलदेव उपाध्याय के चरणों में अपने प्रणाम को समर्पित करते हुए उनके अजस्र आशीर्वाद की कामना करता हूँ। पूज्यपाद ने इस ग्रंथ की प्रस्तावना लिखने की जो कृपा की है, उससे प्रस्तुत पुस्तक को गौरव प्राप्त हुआ है। पितृकल्प पूज्य भ्राता की कृपा तथा अनवरत प्रेरणा एवं प्रोत्साहन ही मेरे साहित्यिक जीवन का बल और सम्बल है। अतः उनके चरणों में शतशः प्रणाम। हिन्दी साहित्य के प्रकाण्ड विद्वान् तथा सुप्रसिद्ध कला-मर्मज्ञ डॉ० जगदीश गुप्त, सचिव, हिन्दुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद के प्रति अपनी हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करता हूँ जिनकी कृपा तथा उद्योग से ही यह ग्रंथ प्रकाश की परिधि में आ सका है। वास्तव में डॉ० गुप्त को ही इस पुस्तक को प्रकाशित करने का श्रेय प्राप्त है। यदि उनका सक्रिय

सहयोग प्राप्त न होता तो इसका प्रकाशन संभव नहीं था। एकेडेमी के अध्यक्ष स्व० डॉ० रामकुमार वर्मा का आशीर्वाद हमें सदा प्राप्त होता रहा है। अतः मैं उनकी कृपा के लिए अत्यन्त आभारी हूँ। इस संस्था के सहायक सचिव डॉ० रामजी पाण्डेय तथा एकेडमी प्रेस के मालिक श्री सुरेन्द्रमणि त्रिपाठी के कारण ही यह पुस्तक इतनी शीघ्र तथा शुद्ध छप सकी है। अतः मैं इन दोनों ही सज्जनों को धन्यवाद देता हूँ। डॉ० कुबेर मिश्र, प्रिन्सिपल, गांधी स्नातकोत्तर महाविद्यालय, मालटारी (आजमगढ़) का मैं अत्यन्त ऋणी हूँ जिन्होंने अपने कालेज में पुस्तकालय से अनेक दुर्लभ ग्रन्थों को सुलभ बना कर मेरे कार्य में सहायता पहुचाई है। अपने कनिष्ठ पुत्र डॉ० रविशंकर उपाध्याय (एम० ए०, पी-एच० डी०, डी० लिट्) मेरे आशीष के भाजन है जिन्होंने इस पुस्तक के निर्माण में अनेक प्रकार की सहायता पहुँचाई है। अन्त में मैं संकट-मोचन हनुमान् तथा बाबा विश्वनाथ से यही अहर्निशि प्रार्थना करता हूँ कि वे मुझे सुन्दर स्वास्थ्य तथा सुखी जीवन प्रदान करने की कृपा करें जिससे मैं शतायु होकर लोक-साहित्य तथा लोक-संस्कृति की सेवा करने में संलग्न रहूँ।

"देहि सौभाग्यमारोग्यं; देहि मे परमं सुखम्
वयो देहि बलं देहि; यशो देहि मदं जहि।"

लोक-संस्कृति शोध-संस्थान, वाराणसी
कृष्ण जन्माष्टमी सं० २०४७ —कृष्णदेव उपाध्याय

संकेत-शब्द-सूची

संकेत शब्द	ग्रन्थ का पूरा नाम
अ० का०	अयोध्या काण्ड
अ० वे०	अथर्ववेद
अ० शा०	अभिज्ञान शाकुन्तलम्
आ० चू०	आश्चर्य चूड़ामणि
इ० फो०	इंगलिश फोकलोर
इ० रि० ए०	इन्साक्लोपीडिया आफ रिलिजन एण्ड एथिक्स
उ० प०	उत्तर पर्व
उ० रा० च०	उत्तर राम चरित
ऋ० वे०	ऋग्वेद
ए० ए० रा० or एनाल्स	एनाल्स एण्ड एन्टीक्विटीज़ आफ राजस्थान
ओ० पा० सु० क०	ओरिजिन आफ पापुलर सुपरस्टीशन्स एण्ड कस्टम्स
ओ० स्टो०	ओशन आफ स्टोरी
सं० सा०	संस्कृत साहित्य
का० ना० प्र० स०	काशी नागरी प्रचारिणी सभा
का० प्र०	काव्य प्रकाश
कु० सं०	कुमार संभव
कौ० म०	कौमुदी महोत्सव
ख० बो० लो० सा०	खड़ी बोली का लोक साहित्य
गी० गो०	गीत गोविन्द
ग्रा० गी०	ग्राम गीत
ग्रा० सा०	ग्राम साहित्य
ग्रा० सा० भा०	ग्राम साहित्य भाग
ज० ए० सो० बं०	जरनल आफ दि एशियाटिक सोसाइटी आफ बंगाल
डिक्शनरी या डिक्शनरी आफ फोकलोर,	ए स्टैंडर्ड डिक्शनरी आफ फोकलोर, माइथोलाजी एण्ड लीजेण्ड (मेरिया लीच)
डि० ए० बं०	डिस्क्रिप्टिव एथनोलाजी आफ बंगाल (डाल्टन)
नोट्स	फोकलोर नोट्स

संकेत शब्द	ग्रन्थ का पूरा नाम
पा० रि० या—	पापुलर रिलिजन
पा०रि०फो० ना०इ०	एण्ड फोकलोर आफ नार्दर्न इण्डिया
फो०	फोकलोर पत्रिका (लण्डन)
बा० का०—	बाल काण्ड
बि० स०—	बिहारी सतसई
भो० लो० गी० भा०—	भोजपुरी लोक गीत भाग
म० भा०—	महाभारत
मु० चि०—	मुहूर्त चिन्तामणि
मे० दू०—	मेघदूत
यु० का०—	युद्ध काण्ड
र० वं०—	रघुवंश
रा० च० मा०—	रामचरित मानस
रा० मं०—	रामायण मंजरी
रा० व०—	रावण वध

संकेत शब्द	ग्रन्थ का पूरा नाम
लो०जी०लो०वि०प०— या लो० वि०	लोक जीवन में लोक विश्वासों का अध्ययन
लो० गी०—	लोक गीत
लो० सा० वि०	लोक साहित्य विज्ञान
लं० का०—	लंका काण्ड
वा० रा०—	वाल्मीकीय रामायण
बृ० सं०—	बृहत् संहिता
शं० दि०—	शंकर दिग्विजय
स० प०—	सभा पर्व
सु० का०—	सुन्दर काण्ड
सु० व०—	सुभाषितावलि
सं० का० श०—	संस्कृत काव्यों में शकुन
स्टै० डि० फो० मा० ली०—	स्टैण्डर्ड डिक्शनरी आफ फोकलोर, माइथोलोजी एण्ड लीजेण्ड

विषय-सूची

प्रथम अध्याय

लोक-विश्वासों की उत्पत्ति तथा विकास

लोक-विश्वासों की उत्पत्ति उतनी ही प्राचीन है जितना कि मानव का जीवन। मनुष्य ने जब इस धरा-धाम पर जन्म लिया, तब उसे अनेक प्राकृतिक दृश्यों (Natural phenomena) को देखने का अवसर मिला। उसने आकाश में काले-काले बादलों की भयंकर गड़गड़ाहट की आवाज सुनी, अनन्त नभ में कड़क कर चमकती हुई बिजली की आँखों को चकाचौंध में डालने वाली चमक देखी, अत्यन्त प्रबल वेग से बहने वाले अंधड़ के आतंक को सहन किया और सूर्य ग्रहण के अवसर पर दिन में घनघोर अंधकार का अनुभव किया। इन प्राकृतिक तथा अद्भुत दृश्यों को देखकर उसका आदिम मन इनके कारणों को जानने में नितान्त असमर्थ रहा। इसके साथ ही इन भयंकर दृश्यों को देखकर उसका मन भय से आतंकित हो गया। भूकम्प के आने पर उसके मिट्टी के मकान तथा झोपड़ी के भूमिसात् हो जाने पर उसे अपनी आत्मरक्षा की भी चिन्ता होने लगी।

(१) परिच्छेद

लोक-विश्वास की उत्पत्ति का कारण

आदिम मानव के मन में इन दैवी, अतिमानवी तथा प्राकृतिक दृश्यों के कारणों का ज्ञान न होने के कारण भय उत्पन्न होना स्वाभाविक था। अतः वह अपनी आत्मरक्षा की चिन्ता से भी चिन्तित रहने लगा। इन कारणों से उसे ऐसी दैवी शक्ति में विश्वास होने लगा जिसकी कृपा अथवा अकृपा से ये घटनाएँ घटित होती थीं।

इस प्रकार लोक-विश्वासों की उत्पत्ति के संबंध में निम्नांकित कारणों को प्रधान माना जाता है—

(१) ज्ञान का अभाव अथवा अज्ञानता।
(२) भय की विद्यमानता।
(३) आत्मरक्षा की प्रवृत्ति।
(४) दैवी शक्ति में विश्वास।

प्राचीन काल में शिक्षा का विशेष प्रचार नहीं था। तत्कालीन मानव को इस विषय का ज्ञान नहीं था कि भूकम्प आने के क्या कारण है, आकाश में बादल क्यों गड़गड़ाते है और बिजली क्यों चमकती है। वह इस वैज्ञानिक तथ्य से भी अवगत नहीं था कि पृथ्वी की छाया पड़ने के कारण ही सूर्य तथा चन्द्र ग्रहण लगा करते हैं। अतः इसी ज्ञान के अभाव ने, प्राकृतिक दृश्यों के कारणों की अज्ञानता ने ही, लोक-विश्वासों को आदि काल में जन्म दिया होगा।

लोक-संस्कृति (फोकलोर) के प्रकाण्ड विद्वान् नोल्सन ने ठीक ही लिखा है कि "अज्ञानता के वातावरण में ही लोक-विश्वासों की उत्पत्ति होती है।"[१]

अन्ध परम्पराओं की उत्पत्ति का दूसरा कारण भय है। आदिम मानव बादलों की गड़गड़ाहट में, बिजली की तड़तड़ाहट में तथा अंधड़ की सन-सनाहट में भय का अनुभव करता था। उसे इस बात का सदा भय बना रहता था कि तड़तड़ाती बिजली कहीं गिरकर मेरा सर्वनाश न कर दे। भूकम्प की विनाश-लीला को उसने अपने सामने देखा होगा, भयंकर अंधड़ तथा वात्या-चक्र में अपने घर के छप्पर के नष्ट हो जाने का अनुभव किया होगा। इसी प्रकार से सूर्य ग्रहण के अवसर पर दिन में ही संसार को अन्धकारमय देखकर वह भयभीत हो गया होगा। इसीलिए भय को लोक-विश्वासों का दूसरा कारण या आधार कहा गया है।[२]

भारतीय अलंकार-शास्त्रियों ने भय की गणना स्थायी भावों में की

---

१. "Ignorance is the atmosphere in which alone such superstitions can live."—नोल्सन—ओ० पा० सु० का० (१९३०), पृ० २

२. "Allied with ignorance is fear which is the second element calling for notice."—नोल्सन, वही, पृ० ३

है।[1] अर्थात् भय वह स्थायी भाव है जो मनुष्यों में स्थायी रूप से निवास करता है। मानव मे भय की प्रवृत्ति जन्म से ही विद्यमान रहती है। भूकम्प, बाढ़, आँधी, विद्युत्पात, धूमकेतु, उल्कापात, सूर्य और चन्द्र ग्रहण आदि ऐसे प्राकृतिक तत्त्व हैं जिनकी भयंकरता मानव के हृदय में प्रत्यक्ष रूप से भय उत्पन्न कर देती है।

आदि काल का मानव प्रकृति के जिस कठोर तथा प्रतिकूल वातावरण मे पलता था, उसका सामना करने की क्षमता उसमे नहीं थी, क्योंकि उसके पास उचित साधनों का अभाव था। हेस्टिग्स ने ठीक ही लिखा है कि 'विवेकी पुरुष विधि की क्रूरतम प्रतिकूलता से भी भय नहीं मानता, युद्ध और अग्नि का प्रकोप उसे प्रभावित नहीं करता, जबकि अविवेकी तथा मूर्ख पुरुष अपनी छाया से भी डरता है और समझता है कि सभी दुर्घटनाओं का उद्भव उसी को लक्ष्य करके हुआ है।''[2]

लोक-विश्वास का तीसरा प्रधान तत्त्व आत्मरक्षा की प्रवृत्ति है। प्रत्येक मनुष्य आनन्द के साथ जीवित रहते हुए दीर्घकाल तक उस सुख को भोगना चाहता है। आधुनिक मनोविज्ञानशास्त्रियों ने आत्मरक्षा की प्रवृत्ति को मानव-जीवन की स्थायी भावना (Instinct) स्वीकार किया है। यह प्रवृत्ति मनुष्य के मन में जन्मजात होती है। पाल रेडिन के अनुसार "जिस प्रकार मनुष्य भय के साथ ही उत्पन्न हुआ, उसी प्रकार उसके हृदय में अपने को सुरक्षित रखने की प्रवृत्ति स्वभाव-सिद्ध होती है, वह जन्म के साथ ही पैदा होती है।''[3] इस प्रकार से आत्मरक्षा की प्रवृत्ति अनेक लोक-विश्वासों को जन्म देने का कारण बनती है।

---

१. रतिर्हासश्च शोकश्च क्रोधोत्साहो भयं तथा। जुगुप्सा विस्मयश्चेति स्थायिभावा: प्रकीर्तिता:—मम्मट, का० प्र०, उल्लास ४, कारिका ४५

२. "The wise man is not moved with the utmost violence of for tune nor with the extrenities of fire and sword where as a fool is afraid of his own shadow and surprised at all accidents, as if they were levelled at him."
—हेस्टिग्स, इ० रि० ए०, भाग १०, पृ० ३६४

३ "With fear man was born of this there can be little doubt."—पाल रेडिन, प्रिमिटिव रिलिजन, पृ० ७

दैवी शक्ति में विश्वास, अर्थात् ईश्वरीय विधान में अटूट आस्था भी लोक-विश्वासों के निर्माण का कारण बनती है। मानव में आत्म-सुरक्षा की भावना इतनी प्रबल होती है कि वह अपने मन को शान्ति तथा सान्त्वना प्रदान करने के लिए, अपनी सहायता के हेतु, किसी दैवी शक्ति को खोजना चाहता है। आज का मनुष्य जब अपने अनुभवों का विश्लेषण करने में असमर्थ हो जाता है, वह आत्मरक्षा में सर्वथा अपने को असहाय पाता है, तब वह आदि मानव की भाँति दैवी शक्ति का आश्रय ग्रहण करता है।[१] आजकल भी जब कोई व्यक्ति डाक्टरों के द्वारा अचिकित्स्य रोगी घोषित कर दिया जाता है और उसका रोग असाध्य हो जाता है, तब शिक्षित होने पर भी उसे किसी दैवी शक्ति में विश्वास करना पड़ता है। वह किसी देवी-देवता की मनौती मानता है और स्वस्थ हो जाने पर उनकी सम्यक् पूजा का विधान करता है।[२]

(२) परिच्छेद

लोक-विश्वासों का विकास

लोक-विश्वासों का विकास कैसे हुआ, इस विषय पर अनेक विद्वानों ने अपने विचारों को व्यक्त किया है। इनके निर्माण की प्रक्रिया का वर्णन करते हुए सुमनेर नामक लोक-संस्कृति (फोकलोर) के एक प्रकाण्ड पण्डित ने लिखा है कि "लोक-विश्वासों का निर्माण अकस्मात् अथवा मिथ्या ज्ञान पर आश्रित असंगत तथा विवेकहीन क्रिया के कारण हुआ है।"[३] संसार में प्रायः यह देखा जाता है कि यदि किसी मनुष्य ने कोई नया कार्य करना आरम्भ कर

---

१. "× × × His overpowering will to live is enchored the belief in super naturalism, which is absolutely universal among known peoples past and present."—राबर्ट एच० लोवी एन० इ० का० पृ० (१९५२), पृ० २९८

२. "They act under supernatural impulses."—'फा०' लाइफ, भाग ५९-६०, पृ० ८

३. "Folkways have been formed by accident, that is irrational and incongrous action based on Pseudo-knowledge."—डब्लू० जी० सुमनेर—फोकवेज, पृ० ८४

दिया है। परन्तु उसे उस कार्य में सफलता नहीं मिली, उस कार्य के सम्पादन में उसकी मृत्यु हो गई अथवा वह दुर्घटनाग्रस्त हो गया, तब अन्य लोगों की यह धारणा बन जाती है कि ऐसा काम नहीं करना चाहिए, क्योंकि वह अशुभ है। सुमनेर ने ऐसे अनेक उदाहरण अपनी पुस्तक में देकर इसका प्रतिपादन किया है।[१]

लोक-विश्वास के निर्माण का दूसरा कारण मिथ्या अनुमान की प्रवृत्ति (Induction) है। किसी मनुष्य ने किसी पशु या पक्षी को किसी विशेष व्यापार को करते हुए देखा और उसके बाद कोई दुर्घटना हो गई। उसने इन दोनों घटनाओं को एक साथ जोड़ दिया। कालान्तर में उसने ऐसा ही दृश्य देखा। अतः उसकी यह दृढ़ धारणा बन गई कि अमुक पशु और पक्षी का अमुक व्यापार अथवा क्रिया अशुभ तथा अमंगल फल को देने वाली है।[२]

लोक-विश्वास के निर्माण की प्रक्रिया में तीसरा महत्त्वपूर्ण कारण मिथ्या-स दृश्य (False analogy) है।[३] सुन्दर, स्वस्थ तथा वैभवशाली पुरुषों से शुभ शकुनों की प्राप्ति होती है। यात्रा के समय बीमार, एकाक्ष तथा कृष्ण वर्ण व्यक्ति का दर्शन अशुभ माना जाता है। किसी व्यवधान के मध्य से चन्द्रमा का दर्शन अमंगलसूचक तथा अनन्त आकाश में उदित द्वितीया के चन्द्रमा का दर्शन शुभ मानने की प्रवृत्ति के मूल में मिथ्या सादृश्य का योग पूर्णतया दिखाई पड़ता है।

लोक-विश्वासों की अमरता

लोक-विश्वास अजर तथा अमर हैं। यद्यपि युग के परिवर्तन के साथ इनमें थोड़ा परिवर्तन अवश्य होता है, परन्तु ये कदापि नष्ट नहीं हो सकते। मानव ने जब आदिम युग में इस धरा-धाम पर जन्म ग्रहण किया, तभी से लोक-विश्वासों का भी प्रादुर्भाव हुआ और तब से लेकर आज तक सहस्रों किंवा लाखों वर्षों के बीत जाने के पश्चात् भी लोक-विश्वासों की जीवन्तता मे कोई अन्तर नहीं आया है।

आज संसार में ज्ञान और विज्ञान का प्रचुर प्रभाव हो गया है। मानव ने

---

१. डब्लू० जी० सुमनेर—फोकवेज, पृ० २४-२५

२. डॉ० दीपचन्द्र शर्मा— संस्कृत काव्यों में शकुन, पृ० ३४ (१९६६)

३. वही।

विज्ञान की सहायता से अब चन्द्रमा को भी जीत लिया है और मंगल ग्रह पर अभियान करने की तैयारी कर रहा है। वायुयान तथा सैटेलाइट की सहायता से अब पृथ्वी तथा अन्तरिक्ष का कोई भी कोना अछूता नहीं बचा है। ऐसे वैज्ञानिक युग में जब मानव प्रकृति के रहस्यों का भी भेदन करने में नितान्त समर्थ हो गया है, तब भी लोक-विश्वासों में किसी भी प्रकार की कमी नहीं आई है। अन्ध परम्पराओं की अजस्र धारा आज भी अक्षुण्ण गति से प्रवाहित हो रही है।

इंग्लैण्ड, फ्रान्स, जर्मनी, जापान और अमेरिका जैसे समुन्नत तथा वैभवशाली राष्ट्रों में लोक-विश्वास की स्थिति आज भी पाई जाती है। उदाहरण के लिए, तेरह की संख्या को लिया जा सकता है। आज भी इंग्लैण्ड तथा यूरोप के विभिन्न देशो में यह संख्या अत्यन्त अशुभ तथा अमंगलकारी मानी जाती है। भोज में तेरह व्यक्तियों का होना वहाँ मृत्यु का कारण स्वीकार किया जाता है। इसी प्रकार से शीशा का टूटना, 'कप' का फूटना, भोजन के लिए प्रयुक्त काँटे तथा चम्मच का अनुचित रीति से रखना अमंगल की सूचना देता है।

अमेरिका के सुप्रसिद्ध लोक-संस्कृति-शास्त्री (फोकलोरिस्ट) प्रोफेसर एम० आर० डारसन ने अपनी पुस्तक में ऐसे अनेक लोक-विश्वासों तथा अन्ध-परम्पराओं की चर्चा की है जो आज भी शिक्षित जनता के द्वारा दृढ़ आस्था के रूप में माने जाते हैं। कहने का आशय केवल इतना ही है कि लोक-विश्वासों की आधार-भूमि मानव-हृदय है। यह मनुष्यों के हृदय में स्थायी रूप से निवास करता है। अतः जब तक मनुष्य के शरीर में हृदय होगा, तब तक लोक-विश्वासों की विद्यमानता प्राप्त होगी। इस प्रकार ये अजर तथा अमर हैं।

(३) परिच्छेद

लोक-विश्वासों का वर्गीकरण

विभिन्न विद्वानों ने लोक-विश्वासों का वर्गीकरण अपने मत के अनुसार भिन्न-भिन्न रीति से किया है।

(क) ज्योतिष के सुप्रसिद्ध विद्वान् आचार्य वराहमिहिर का श्रेणी-विभाजन

सबसे प्राचीन तथा वैज्ञानिक माना जाता है। वराहमिहिर ने विभिन्न स्थानों के आधार पर लोक-विश्वासों को तीन श्रेणियों में विभक्त किया है।[1]

(१) दिव्य (२) अन्तरिक्ष (३) भौम

सूर्य आदि नवग्रह तथा नक्षत्रों के विकारयुक्त—अर्थात् ग्रहण आदि से उत्पन्न शकुनों को 'दिव्य' कहा जाता है। उल्कापात, निर्घात, पवन, परिवेश, इन्द्रधनुष से जनित विश्वासों को 'अन्तरिक्ष' कहते हैं। परन्तु भूमि पर विद्यमान चर और अचर जीवों, जैसे—पशु, पक्षी, जलचर, थलचर, जीव तथा मानव शरीर के विभिन्न अंगों से प्राप्त होने वाले विश्वासों को 'भौम' की संज्ञा प्राप्त है।

आचार्य वराहमिहिर के वर्गीकरण से यह स्पष्ट ही प्रतीत होता है कि इनका श्रेणी-विभाजन—पृथ्वी, अन्तरिक्ष (आकाश) तथा दिव्य (स्वर्ग) में उपलब्ध शकुनों के आधार पर अवस्थित है। इसी विषय को आचार्य गर्ग ने 'समास संहिता' में स्पष्टतया प्रतिपादित किया है।[2]

संस्कृत साहित्य में प्राप्त लोक-विश्वास को निम्नांकित छह श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है—

(१) ग्रह तथा उपग्रहों से प्राप्त विश्वास। सूर्य, चन्द्रमा, धूमकेतु, उल्कापात तथा अन्य नक्षत्रों से प्राप्त विश्वासों का इसमें समावेश किया गया है।

(२) प्राकृतिक तत्वों से प्राप्त विश्वास, जैसे वायु, आँधी, बिजली, बादल, इन्द्रधनुष आदि। इस वर्ग में स्वाभाविक तथा अद्भुत दोनों प्रकार के प्राकृतिक तत्त्वों का अन्तर्भाव किया गया है।

---

१. दिव्यं ग्रहर्क्षं वैकृतमुल्का, निर्घात-पवन-परिवेषाः।
गन्धर्वं पुर-पुरन्दर-चापादि, यदान्तरिक्षं तत्॥
भौमं चिर स्थिरभवं तच्छान्तिभिराहतं शमनुपैति।
नाभ समुपैतिमृदुतां, शाम्यति नो दिव्यमित्यैके॥
—वराहमिहिर—बृहत्संहिता, अध्याय ४६, श्लोक ४-५, पृ० २५८।

२. दिव्यं ग्रहर्क्षजातं, भुविभौमं स्थिर चरोद्भवं यच्च।
दिग्दाहोल्कापतन, परिवेषाद्यं वियत्प्रभवम्॥
—बृहत्संहिता—अध्याय ४६, पृ० २५८ में उद्धृत।

(३) पशु-पक्षियों की गतिविधि से प्राप्त होने वाले विश्वासों की इसमे गणना है।

जैसे—शृगाल, कौवा, कोयल, गीध, उल्लू आदि पक्षी तथा गाय, घोड़ा, बाघ, नेवला इत्यादि पशुओं के अतिरिक्त सर्प, मछली आदि जीवों के विषय में प्रचलित विश्वासों का वर्णन इसके अन्तर्गत पाया जाता है।

(४) शारीरिक लक्षणों से प्राप्त विश्वास।

इस वर्ग मे आँखो का फड़कना, बाँहों का फड़कना, बाल, सिर, पैर और चक्र, भँवरी आदि के विषय में प्रचलित विश्वास आते हैं।

(५) स्वप्नों से प्राप्त विश्वास।

स्वप्नावस्था में किसी भी वस्तु, व्यक्ति अथवा घटना आदि के दर्शन से प्राप्त शकुनों का वर्णन आदि।

(६) विविध विश्वास उपर्युक्त पाँच वर्गों के अतिरिक्त विविध लोक-विश्वासो की श्रेणी से आने वाले शकुनों की संख्या अनन्त है। यथा—अनेक महीनो तथा दिनों के सम्बन्ध में एक से लेकर बीस तक संख्याओ के विषय में, शीशा का टूटना, आलपिन का गिरना, दैनिक कर्तव्य—शौच; दन्तधावन, स्नान आदि, स्त्रियों के द्वारा चूड़ी पहनना, माँग में सिन्दूर लगाना, कंघी करना, बालों को धोना आदि, विभिन्न दिनों में यात्रा के लिए विधिनिषेध, आदि हजारों ऐसे विषय हैं जिनका अन्तर्भाव उपर्युक्त कोटि में किया जा सकता है।

बेबीलोनिया

प्राचीन बेबीलोनिया देश में प्राप्त लोक-विश्वासो को प्रधानतया दो वर्गों मे विभाजित किया गया है :

(१) स्वभाव-सिद्ध (२) उपकरण-सिद्ध।

(१) **स्वभाव-सिद्ध** (Natural)—स्वभाव-सिद्ध विश्वासों को भी पुनः चार श्रेणियों मे विभक्त किया जा सकता है—

(i) स्वप्न-दर्शन से प्राप्त विश्वास।

(ii) बच्चों के जन्म से प्राप्त विश्वास।

(iii) प्राणियों के दर्शन एवं गतिविधियों मे उपलब्ध विश्वास।

(iv) ग्रह, उपग्रह तथा प्राकृतिक तत्वों से प्राप्त विश्वास।

(२) **उपकरण-सिद्ध** (Mechanical)—इसमें निम्नांकित लोक-विश्वास आते हैं—

(i) जल की सतह पर बिखेरे गये तेल के विभिन्न रूपों तथा शिकार में मारे गये पशुओं के यकृत (लीवर) की परीक्षा से प्राप्त विश्वास।

(ii) गुटिका-पात (Casting of lots) से प्राप्त विश्वास।

इस प्रकार प्राचीन बेबीलोन में उपर्युक्त प्रकार के विश्वास प्रचलित थे जिनका प्रचार जनता में पाया जाता था।

रोम

प्राचीन काल में रोमन साम्राज्य में विश्वासों को दैवी इच्छा का द्योतक माना जाता था। इन्हें मुख्यतया निम्नांकित सात वर्गों में विभक्त किया जा सकता है—

(१) आकाश में प्राप्त होने वाले संकेत जिनमें प्राकृतिक तत्वों तथा ग्रह एवं उपग्रहों से प्राप्त शकुनों का समावेश है।

(२) पक्षियों की बोली तथा गतिविधि एवं उड़ने की दिशा से प्राप्त विश्वास।

(३) पक्षियों को चारा देने से उपलब्ध विश्वास। पक्षियों को जब अन्न के दाने चुगने के लिए दिये जाते थे, तब उन्हें चुगते समय अन्न के कुछ कण उनके मुँह से गिरना शुभ माना जाता था।

(४) पशु एवं सर्प, मछली की बोलियों तथा गतिविधियों से प्राप्त लोक-विश्वास।

(५) सभी अद्‌भुत दृष्टिगोचर होने वाले विषयों—विशेषतः अशुभसूचक से प्राप्त विश्वास।

इन पाँच प्रकार के विश्वास के अतिरिक्त इनमें दो वर्ग और भी जोड़े जा सकते हैं।

(६) बलि पशुओं के विभिन्न अंगों की परीक्षा से प्राप्त विश्वास।

(७) स्वप्नों से मिलने वाले विश्वास।

इस प्रकार रोम तथा बेबीलोन से प्राप्त लोक-विश्वासों में कोई विशेष अन्तर नहीं दिखाई पड़ता।

सोफिया बर्न का विभाजन

लोक-संस्कृति (फोकलोर) की सुप्रसिद्ध विदुषी श्रीमती सोफिया बर्न ने ने लोक-विश्वासों को निम्नांकित सात श्रेणियों में विभक्त किया है—

(१) आकाश तथा पृथ्वी से सम्बन्धित विश्वास।
(२) वनस्पति-जगत्-सम्बन्धी विश्वास।
(३) पशु-पक्षियों से सम्बन्धित विश्वास।
(४) मानव-सम्बन्धी विश्वास।
(५) मनुष्य-निर्मित वस्तु-सम्बन्धी विश्वास।
(६) आत्मा तथा अन्य जीवन-सम्बन्धी विश्वास।
(७) आधिभौतिक जीव-सम्बन्धी विश्वास।

सोफिया बर्न के अनुसार संसार में यावत् विश्वास उपलब्ध होते हैं, उन सभी का अन्तर्भाव उपर्युक्त वर्गीकरण में हो जाता है।[1] इन्होंने बड़े ही विस्तार के साथ उन लोक-विश्वासों का वैज्ञानिक वर्णन उपस्थित किया है जो संसार के विभिन्न देशों में भिन्न-भिन्न जातियों में प्रचलित हैं।

आधिभौतिक विश्वासों से उनका तात्पर्य उन प्राकृतिक देवी और देवताओं से है जो संसार की विभिन्न जातियों के द्वारा पूजे जाते हैं। मानव-निर्मित वस्तु-सम्बन्धी विश्वास के अन्तर्गत उन विषयों का वर्णन किया गया है जिनका निर्माण मनुष्य ने स्वयं किया है। इनकी वर्णन-पद्धति तुलनात्मक होने के कारण इन्होंने प्रचुर सामग्री प्रस्तुत की है।

सामान्य श्रेणी-विभाजन

भारत तथा बेबीलोन एवं रोम में प्राप्त लोक-विश्वासों का तुलनात्मक विश्लेषण करने से यह स्पष्ट पता चलता है कि इन दोनों में बहुत ही अधिक समानता है और दोनों की आधारशिला प्रायः समान ही है। पूर्वी और पश्चिमी देशों में लोक-विश्वासों का जो सामान्य वर्गीकरण—समान श्रेणी-विभाजन—पाया जाता है, वह निम्नांकित है—

(१) ग्रह तथा उपग्रहों से प्राप्त विश्वास।
(२) प्राकृतिक तत्त्वों से प्राप्त विश्वास।
(३) पशु और पक्षियों की गतिविधियों से उपलब्ध होने वाले शकुन।

---

१. हैण्ड बुक ऑफ फोकलोर (विषय-सूची)।

(४) स्वप्नों से उपलब्ध विश्वास।

बेबीलोन तथा प्राचीन रोम में प्राप्त लोक-विश्वासों के वर्गीकरण में कहीं-कहीं दो वर्गों का एक ही वर्ग में समावेश कर दिया गया है और कहीं-कहीं एक ही वर्ग को दो या अधिक वर्गों में विभाजित कर दिया गया है। संस्कृत साहित्य में प्राप्त विश्वासों में शारीरिक लक्षणों से प्राप्त विश्वासों का प्रमुख स्थान पाया जाता है। परन्तु यूरोपीय देशों के शकुनों में शारीरिक विश्वासों का विशेष स्थान है।

इस प्रकार भारतीय तथा विदेशी लोक-विश्वासों के वर्गीकरण में समानता तथा असमानता स्पष्ट है।

द्वितीय अध्याय

भारत में लोक-विश्वासों की उत्पत्ति

भारत में सर्वप्रथम लोक-विश्वास की उत्पत्ति शकुनशास्त्र के रूप में हुई। प्राचीन काल के लोग प्रायः धर्मभीरु हुआ करते थे। शास्त्रों के लिखे आदेशों का वे प्रायः उल्लंघन नहीं किया करते थे। धर्मशास्त्र के ग्रन्थों में विभिन्न संस्कारों के अवसर पर भिन्न-भिन्न विधि-विधानों का करना आवश्यक बतलाया गया है। इसी प्रकार फलित ज्योतिष के ग्रन्थों में यात्रा-संबंधी अनेक विधि-निषेधों का वर्णन पाया जाता है। हमारे पूर्वजों ने इन शास्त्रीय आदेशों का पालन करना आवश्यक समझा, क्योंकि उनके पालन न करने से अनेक विपत्तियों के आने की संभावना थी। अतः शुभ तथा अशुभ फलों को देने वाले इन्हीं शकुनों का पहले जन्म हुआ। इन शकुनों पर अटूट आस्था ने लोक-विश्वास का रूप धारण कर लिया।

(१) परिच्छेद

शकुनशास्त्र

शकुन' शब्द का अर्थ

प्राचीन काल में लोक-विश्वास को 'शकुन' के नाम से अभिहित किया जाता था। शकुन से संबंधित विषयों को प्रतिपादित करने वाले शास्त्र का नाम 'शकुनशास्त्र' था। 'शकुन' शब्द का अर्थ पक्षी होता है। चूँकि अतीत काल में इन पक्षियों की गति, स्वर, चेष्टा आदि के द्वारा ही शुभ तथा अशुभ वस्तुओं का ज्ञान होता था, अतः इन्हें 'शकुन' कहा जाने लगा।

बल्लाल सेन ने 'अद्भुत सागर' नामक अपने ग्रन्थ में बसन्तराज का उद्धरण देते हुए स्पष्ट ही लिखा है कि मनुष्यों के शुभ तथा अशुभ का निर्णय करने के

लिए जो शकुन कहा गया है, वह पक्षियों की गति, अर्थात् चाल, स्वर अर्थात् आवाज या बोली, आलोकन (देखना), भाव तथा चेष्टाओं से जाना जाता है।[१] भाव यह है कि कोई पक्षी किसी विशेष चाल से चलता हो, रूक्ष अथवा मधुर स्वर में बोलता हो तथा उसकी चेष्टा विशिष्ट रूप की हो तो उससे शुभाशुभ शकुन का ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है।

"शब्द कल्पद्रुम" नामक कोश में शकुन के अर्थ के विषय में लिखा गया है कि जिससे किसी वस्तु के शुभ-अशुभ होने का ज्ञान होता है, उसे शकुन कहते हैं।[२]

नोल्सन ने शकुन की परिभाषा देते हुए लिखा है कि ऐसी आकस्मिक घटना को, जिसे भविष्य का द्योतक समझा जाता है, शकुन कहते है। भविष्य के संबंध में अनायास प्राप्त सन्देश का नाम शकुन है।[३] दैवी शक्ति द्वारा प्रेरित ऐसे संकेत को, जिसके संबंध में यह विश्वास पाया जाता है कि वह किसी भावी घटना का सूचक है, शकुन कहते हैं।[४]

---

१. शुभाशुभ विनिर्णयाय हेतु',
नृणां यः शकुनः स उक्तः।
गति-स्वरा-लोकन-भाव चेष्टा,
संकीर्ण नाम्ना द्विपदादिकानाम् ॥

२. शक्नोति शुभाशुभं विज्ञातुमनेनेति शकुनम्।
—शब्द कल्पद्रुम, पंचम काण्ड, पृ० २

३. "An omen is an event which is supposed to indicate destiny, the chief feature being the gratuitions nature of the happening, it is a message about the future which we donot seek for." T. Sharper Knowlson - The Origin of Popular Superstitions and Customs. p. 162.

४. "It (omen) is a sign believed to prognosticate a future event between which and the event foretold there appears no relation of cause aud effect but which is usually received as an intimation from a superior power."—ए०एच० मैकडोनाल्ड—दि इन्साइक्लोपिडिया अमेरिकाना भाग, २०, पृ० ६८२

ऐसी आकस्मिक घटना को, जिसे भावी शुभ अथवा अशुभ का सूचक समझा जाता है, शकुन कहते है।[१] एक अन्य प्रामाणिक कोश के अनुसार भावी शुभ या अशुभ फल की सूचना देने वाली किसी घटना, अथवा अद्भुत दृश्य या संयोग को शकुन कहा जाता है।[२] कुछ भावी आकस्मिक घटनाओं को—जो भावी शुभ या अशुभ की सूचिका है—को शकुन की संज्ञा दी जाती है।[३]

श्रीमती मेरिया लीच ने अपनी सुप्रसिद्ध 'फोकलोर डिक्शनरी' में शकुन की परिभाषा देते हुए लिखा है कि ऐसी घटना—जो भविष्य की सूचिका है—को शकुन कहते हैं।[४] शकुन वह संकेत या चिह्न है जो भविष्य मे होने वाली घटना की सूचना देता है, यह घटना बहुत दूर ही क्यों न हो।[५]

इन परिभाषाओं की आलोचना करने से यह स्पष्ट ही प्रतीत होता है कि शकुन की दो विशेषताएँ हैं : (१) यह एक आकस्मिक घटना है। (२) इससे भविष्य में होने वाले शुभ अथवा अशुभ फल की सूचना मिलती है। शकुनो की विपुलता के कारण यह कालान्तर मे शकुन शास्त्र के रूप में प्रसिद्ध हो गया। यही शकुन आजकल 'लोक-विश्वास तथा अन्ध परम्पराओं' के नाम से जाना जाता है। अत: आगे इस पुस्तक में शकुन के लिए सर्वत्र 'लोक-विश्वास' शब्द का ही प्रयोग किया जायेगा।

---

१. ' A casual event of occurrence supposed to portend good or evil.''—The Century Dictionary, भाग ५, पृ० ४१०५

२. "An occurence, phenomenon, or incident regarded as an indication of a favourable or unfavourable issue."—Funk & Wagnalls—New Standard Dictionary of the English language, Vol. III, p. 1722

३. "Certain accidental circumstances which were once thought to predict good or evil."—The New Popular Encyclopedia, Vol X, p. 164.

४ "A phenomenon or incident regarded as a prophetic sign."

५. "Omens or signs foretelling future events or revealing events occurring at a distance, are multitudinous."—डिक्शनरी आफ फोकलोर, माइथोलाजी एण्ड लीजेण्ड्स, भाग २, पृ० ८२१

(२) परिच्छेद

शकुन की विशेषताएँ

शकुनों की अनेक विशेषताएँ उपलब्ध होती हैं जिन्हें प्रधानतया निम्नांकित श्रेणियों में विभक्त किया जा सकता है—

(१) शकुनों में कार्य-कारण के संबंध का अभाव होना।

(२) शकुनों के किसी भी समय घटित होने की संभावना।

(३) ये पूर्व-प्रयत्न-साध्य न होकर आकस्मिक होते हैं।

(४) शकुन का कार्य भावी शुभाशुभ की सूचना देना है। यह घटना का कारण नहीं होता।

(५) ये केवल भविष्य के सूचक हैं। भविष्य को प्रभावित करना इनके क्षेत्र के बाहर है।

(६) अपशकुन को शान्त अथवा नष्ट करने के लिए प्रायश्चित्त का विधान है।

किसी भी कार्य का कोई कारण होता है अर्थात् किसी कारण के द्वारा ही कार्य की सिद्धि होती है। जैसे घर के निर्माण में मिट्टी और कुम्भकार आदि कारण होते हैं। सृष्टि का यह अटूट नियम है कि बिना कारण के कार्य उत्पन्न नहीं होता। परन्तु शकुनों के संबंध में यह नियम लागू नहीं होता। उदाहरण के लिए बिल्ली के द्वारा रास्ता काटना अपशकुन माना जाता है। किसी यात्रा के लिए प्रस्थान करने वाला व्यक्ति इसे अपशकुन समझ कर अपनी यात्रा रोक देता है। यहाँ बिल्ली के द्वारा रास्ता काटना कारण है तथा यात्रा का स्थगित कर देना कार्य है। परन्तु इन दोनों में कोई संबंध नहीं दिखाई पड़ता। किम्बहुना दूर का भी कोई कार्य-कारण संबंध दृष्टिगोचर नहीं होता।

शकुन के घटित होने का कोई समय नहीं होता। यह किसी भी समय घट सकता है। मनुष्य की कुछ क्रियाएँ आकस्मिक होती है, जैसे—छींक। यात्रा के समय अथवा किसी कार्य को प्रारम्भ करते समय छींकना शुभ नहीं माना जाता। परन्तु यह स्वाभाविक क्रिया (छींक) कब हो जायेगी इसके विषय में कुछ नहीं कहा जा सकता।

इसी प्रकार से आँखों तथा बाँहों के फड़कने के विषय में भी समझना चाहिए। ये अंग अनायास तथा बिना किसी समय के स्वतः फड़कने लगते हैं

जिससे किसी प्रिय व्यक्ति के आगमन की सूचना मिलती है। अतः शकुनो के घटित होने का कोई समय नहीं होता। ये कभी भी घटित हो सकते हैं।

शकुन पूर्व-प्रयत्न-साध्य नहीं होते, अर्थात् शकुनों के घटित होने के लिए पहिले से कोई प्रयत्न नहीं करना पड़ता। उल्लू का दर्शन और छिपकली का अंग पर गिरना—ये दोनों ही अशुभ शकुन हैं। परन्तु इनके लिए कोई प्रयास नहीं करना पड़ता। किम्बहुना शुभ अथवा अशुभ की द्योतक अपने शरीर की क्रियाओं—जैसे छींक का आना, आँखों का फड़कना तथा मन का उदासीन होना आदि के लिए भी कोई पूर्व-प्रयत्न नही होता।

शकुन का कार्य किसी भावी शुभ अथवा अशुभ घटना की सूचना देना मात्र है। यह उसका कारण नहीं होता। उदाहरण के लिए यात्रा के समय किसी मुण्डित संन्यासी अथवा शव को देखना शुभ शकुन माना जाता है। परन्तु यह शकुन इस घटना का कारणीभूत कदापि नहीं है। इसी प्रकार से शकुन भविष्य में घटित होने वाले शुभाशुभ कार्य को सूचित करता है। उसे किसी भी प्रकार से प्रभावित करने की क्षमता नहीं होती। आशय यह है कि शकुन किसी सूचना को देने का केवल साधन मात्र माना जाता है। भविष्य मे कोई अशुभ घटना न होवे, इसे वह रोकने मे सर्वथा असमर्थ होता है।

शकुन की अन्तिम विशेषता यह है कि प्रायश्चित्त कर इसे शान्त भी किया जा सकता है अथवा इसे सर्वथा नष्ट भी कर सकते हैं। यात्रा के संबंध मे अनेक अपशकुनो का वर्णन अन्यत्र किया गया है। परन्तु इन अपशकुनो के दूषित प्रभाव को नष्ट करने के लिए उनके 'मारक' उपाय भी हैं।

इसी प्रकार से किसी मनुष्य की जन्म-कुण्डली में शनि, मंगल, राहु, केतु आदि दुष्ट ग्रहों की स्थिति के कारण उनके अनिष्ट होने की जब संभावना होती है, तब पूजा-पाठ के द्वारा अथवा किसी यज्ञ के विधान के द्वारा उस भावी अनिष्ट को नष्ट किया जा सकता है। शनिश्चर ग्रह की "साढ़साती" प्रसिद्ध है जो साढ़े सात वर्षों तक मनुष्यों को अत्यन्त कष्ट प्रदान करती है। इसके लिए शनि भगवान् की पूजा की जाती है तथा काली वस्तुओं—काला वस्त्र, काला अन्न, काला फूल—का ब्राह्मणों को दान कर उन्हें प्रसन्न किया जाता है। बुरा सपना देखने पर भी उसकी शान्ति का विधान किया जाता है। इस प्रकार से पूजा पाठ, दान-पुण्य तथा यज्ञों को करके अपशकुन के दुष्प्रभाव को नष्ट किया जा सकता है।

शकुन का कारण

शकुन अथवा अपशकुन क्यों होते हैं, इसके संबंध में आचार्य वराहमिहिर का कथन है कि ये मनुष्यों के द्वारा पूर्व जन्म में किये गये भावी फल के सूचक हैं। मनुष्य अपने पूर्व जन्मों में जो पाप अथवा पुण्य का कार्य करता है, उसी के फलस्वरूप उसे शुभ अथवा अशुभ शकुनों की प्राप्ति होती है। स्पष्ट शब्दों में शकुन पूर्व-जन्म-कृत कर्मों का फल है।[1]

शकुन तथा जादू में अन्तर

शकुन तथा जादू अथवा तंत्र-मंत्र में यही प्रधान अन्तर है कि जहाँ एक ओर तंत्र-मंत्र का मुख्य उद्देश्य भविष्य में होने वाली घटनाओं को प्रभावित करना है वहाँ दूसरी ओर शकुनों का प्रधान लक्ष्य भविष्य के विषय में केवल सूचना मात्र देना है।

(३) परिच्छेद

शकुनों का वर्गीकरण

शकुनों की स्थिति वैदिक काल में भी थी। उसका प्रवाह संस्कृत काव्यों में भी अविच्छिन्न रूप से पाया जाता है। भारतीय प्राचीन साहित्य—वैदिक तथा लौकिक संस्कृत—में जिन शकुनों की उपलब्धि होती है उन्हें निम्नांकित छह वर्गों में विभक्त किया जा सकता है—

(१) ग्रह तथा उपग्रहों से प्राप्त शकुन।

(२) प्राकृतिक पदार्थों या तत्त्वों (Elements of nature) से प्राप्त शकुन।

(३) पशु-पक्षियों से प्राप्त शकुन।

(४) वनस्पति पदार्थों से प्राप्त शकुन।

---

१ जन्म जन्मान्तर कृतं; कर्म पुंसां शुभाशुभम्।
यत् तस्य शकुनः पाकं; निवेदयति गच्छताम्॥

—बृहत् संहिता, अध्याय ८६।५ पृ० ५००

अपचारेण नराणां, उपसर्गः पाप संचयात् भवति।
संसूचयन्ति दिव्यान्तरिक्षभौमास्त उत्पाताः॥

—वही, अध्याय ४६।२, पृ० २५७

(५) शरीर के विभिन्न अवयवों के शकुन ।

(६) स्वप्नों से प्राप्त शकुन ।

यहाँ ग्रह और उपग्रह से तात्पर्य सूर्य, चन्द्रमा, धूमकेतु और उल्का आदि से तात्पर्य है । प्राकृतिक तत्वों में वायु, आँधी, बिजली, वर्षा आदि हैं । पशु-पक्षियों में विभिन्न पशु और पक्षियों की गणना है । शारीरिक लक्षणों से तात्पर्य शरीर के विभिन्न अंगों, जैसे—आँख, बाहु, बाल आदि से है । वनस्पति पदार्थों के सम्बन्ध में भी अनेक लोक-विश्वास प्रचलित हैं । अत्यन्त प्राचीन काल से स्वप्न शकुन का माध्यम रहा है । विभिन्न स्वप्नों से भिन्न-भिन्न शकुनों की प्राप्ति होती है जिसका फल शुभ तथा अशुभ होता है ।

एक अन्य स्थान पर वैदिक शकुनों का वर्गीकरण निम्नलिखित छह प्रकार से किया गया है[१]—

(१) प्राणियों—विशेषकर पक्षियों की गति, चेष्टा विरुत सम्बन्धी शकुन ।

(२) अप्राकृतिक तत्त्वों का अद्भुत दर्शन ।

(३) शारीरिक चिह्न सम्बन्धी शकुन ।

(४) नक्षत्रों से प्राप्त शकुन ।

(५) यज्ञीय शकुन ।

(६) स्वप्न सम्बन्धी शकुन ।

इस श्रेणी-विभाजन के प्रायः पाँच वर्ग पूर्व के ही समान हैं । इनमें यज्ञ-सम्बन्धी शकुन ही नया है । इस वर्गीकरण की सबसे बड़ी कमी यह है कि इसके अनुसार शकुनों का एक बहुत वर्ग अछूता ही रह जाता है । यज्ञ-सम्बन्धी शकुन विशेष उपयोगी न होने के कारण उन्हें एक वर्ग में विभाजित करना अनुपयोगी है ।

बृहत् संहिता के रचयिता आचार्य वराहमिहिर ने स्थान के आधार पर शकुनों को तीन भागों में विभक्त किया है ।[२]

१. Encyclopaedia of Religion & Ethics, Vol. 4, p. 827.

२. वराहमिहिर—बृहत् संहिता, ४६/४-५

दिव्यं ग्रहर्क्षं वैकृतमुल्कानिर्घात पवनपरिवेषाः ।
गन्धर्वपुर पुरन्दर चापादि यदान्तरिक्षं तत् ।।४।
भौमं चर स्थिर भवं तच्छान्तिभिराहतं शममुपैति ।
नाभसमुपैति मृदुतां, शाम्यति दिव्यमित्येके ।।५।।

इस प्रकार वराहमिहिर के अनुसार दिव्य, अन्तरिक्ष तथा भौम तीन प्रकार के शकुन होते हैं। यहाँ दिव्य से अर्थ ग्रह तथा नक्षत्रों से प्राप्त शकुनों से समझना चाहिए। अन्तरिक्ष का तात्पर्य आकाश से है। अतः उल्का, निर्घात, पवन, इन्द्रचाप, मेघ, बिजली आदि से सम्बन्धित शकुन इस कोटि मे आते हैं। भौम का अर्थ भूमि-सम्बन्धी शकुन है। भूमि पर विद्यमान मनुष्य पशु, पक्षी तथा वनस्पति आदि समस्त वस्तुएँ इस कोटि में आती है। कहने का तात्पर्य यह है कि चर और अचर समस्त पदार्थ इस क्षेत्र के अन्तर्गत आते हैं।

यह वर्गीकरण केवल प्राकृतिक उत्पातों को ध्यान में रखकर किया गया है। इस प्रकार यह केवल विशेष प्रकार के ही अपशकुनों से सम्बद्ध है। शकुनों तथा अपशकुनो का अत्यन्त अधिक वर्ग इस कोटि या वर्गीकरण से अछूता ही रह जाता है। अतः आचार्य वराहमिहिर का यह श्रेणी-विभाजन सर्वाङ्गीण न होकर अत्यन्त एकाङ्गी है।

प्राचीन पाश्चात्य देशों में भी शकुनों के अनेक वर्गीकरण उपलब्ध होते हैं। बेबीलोन देश में शकुनों को दो वर्गों में विभाजित किया गया है—

(१) **स्वभाव-सिद्ध** (Natural)—इसको चार वर्गों में विभक्त किया गया है—

(क) स्वप्न-दर्शन से उपलब्ध शकुन।

(ख) (बच्चों के) जन्म से प्राप्त शकुन।

(ग) विभिन्न प्राणियों के दर्शन, उनकी चेष्टाओं तथा गतिविधियों से प्राप्त शकुन।

(घ) ग्रह तथा उपग्रह एवं प्राकृतिक तत्त्वों (मेघ-आँधी, उपल, बिजली आदि) से उपलब्ध शकुन।

(२) **उपकरण-सिद्ध** (Mechanical)—उपकरण का अर्थ कृत्रिम तथा यान्त्रिकी शकुन से समझना चाहिए। इसे दो भागों में विभक्त किया जा सकता है—

(क) जल के ऊपर प्रक्षिप्त तेल के विविध रूपों एवं यकृत की परीक्षा से प्राप्त शकुन।

(ख) गुटिका निपात (Casting of lots) से उपलब्ध शकुन।

यह वर्गीकरण वैज्ञानिक नहीं है, क्योंकि शकुनों की अधिकांश संख्या इस सीमा के बाहर ही दिखाई पड़ती है।

प्राचीन ग्रीस तथा रोम में शकुन एक अत्यन्त व्यापक तथा सुव्यवस्थित शास्त्र के रूप में प्रचलित था। "प्राचीन रोम में पुरोहितों की एक समिति होती थी जिसका सदस्य शकुन परीक्षक (Augur) के नाम से पुकारा जाता था। वहाँ की विधान सभा में एक समिति विशिष्ट अवसरों पर पक्षियों की बोली तथा उड़ान के निरीक्षण द्वारा शकुन प्राप्त किया करती थी। अशुभ शकुनों के प्राप्ति की दशा में विधान सभा के अध्यक्ष को अधिवेशन स्थगित कर देना पड़ता था।"[1]

प्राचीन रोम में शकुनों का विभाजन निम्न सात वर्गों में किया गया था[1]—

(क) आकाश से प्राप्त शकुन।
(ख) पक्षियों की बोली तथा गतिविधियों से उपलब्ध शकुन।
(ग) पक्षियों को अन्न देने से प्राप्त शकुन।
(घ) चौपायों और सर्पों की बोली तथा गतिविधि से उपलब्ध शकुन।
(ङ) अद्भुत तथा अलौकिक वस्तु से प्राप्त शकुन।
(च) बलि पशु के अंगों की परीक्षा-सम्बन्धी शकुन।
(छ) स्वप्न-सम्बन्धी शकुन।

उपर्युक्त वर्गीकरण इतना व्यापक तथा विस्तृत है कि इसमें प्रायः समस्त शकुनों का अन्तर्भाव हो जाता है।

भारतीय तथा पाश्चात्य वर्गीकरणों में समानता—भारत, बेबीलोन तथा रोम देशों में प्राप्त शकुनों के वर्गीकरणों को देखने से यह स्पष्ट पता चलता है कि दोनों में निम्नलिखित वर्गीकरण समान रूप से उपलब्ध होते हैं[3]—

(१) ग्रहों से उपलब्ध शकुन।

---

१. Harmsworth's Universal Encyclopaedia, Vol. IX, p. 5844.

२. दीपचन्द्र शर्मा—सं० का० श०, पृ० ५१

३. शकुनों के वर्गीकरण-सम्बन्धी प्रकरण को लिखने में मुझे डॉ० दीपचन्द्र शर्मा लिखित "संस्कृत काव्य में शकुन" नामक पुस्तक से प्रचुर सहायता मिलती है। अतः मैं उनका अत्यन्त कृतज्ञ हूँ।

(२) प्राकृतिक तत्त्व-सम्बन्धी शकुन ।

(३) पशु तथा पक्षी-सम्बन्धी शकुन ।

(४) स्वप्न-सम्बन्धी शकुन ।

भारतीय वर्गीकरण की आलोचना करने से पता चलता है कि यह श्रेणी-विभाग अत्यन्त वैज्ञानिक है। पाश्चात्य देशों में जो विभाजन प्रचलित है, वह इसमें अन्तर्भुक्त हो जाता है।[1]

(४) परिच्छेद

शकुनों के अतिरिक्त भावी सूचना के अन्य स्रोत

शकुनों के अतिरिक्त भविष्य में होने वाली घटनाओं को जानने के लिए तीन अन्य स्रोत भी उपलब्ध होते हैं जो निम्नांकित हैं—

(१) फलित ज्योतिष, (२) सामुद्रिक शास्त्र, (३) आकाशवाणी ।

(१) **फलित ज्योतिष**—भविष्य की घटनाओं को जानने के लिए सबसे अधिक लोकप्रिय तथा प्रसिद्ध साधन फलित ज्योतिष है जिसे अंग्रेजी में 'एस्ट्रोलाजी' कहा जाता है। परन्तु इसका क्षेत्र शकुन की अपेक्षा सीमित है।

आकाश मे स्थित ग्रह तथा उपग्रहों के द्वारा मनुष्य के भाग्य पर अत्यधिक प्रभाव पड़ता है, यह मान्यता प्राचीन काल में प्रचलित थी। परन्तु अब आधुनिक वैज्ञानिक भी इस तथ्य को स्वीकार करने लगे हैं। "प्राचीन काल में आकाश में स्थित ग्रहों तथा पिण्डों के द्वारा मनुष्य के भाग्य की सूचना मिलती थी।"[2]

संस्कृत साहित्य के प्रसिद्ध इतिहासकार वरदाचार्य ने लिखा है कि "बहुत प्राचीन काल से ग्रहों और नक्षत्रों की गतिविधि तथा मनुष्यों के ऊपर उनका प्रभाव स्वीकार किया गया है। फलित ज्योतिष का संबंध गणित ज्योतिष से है जिसमें ग्रहों की गति का विशेष विवेचन उपलब्ध होता है।"

---

१. इस विषय के विशेष अध्ययन के लिए देखिए—डॉ० दीपचन्द्र शर्मा —संस्कृत काव्य में शकुन, पृ० ३६-५४

२. "The ancient art or science of divining the fate and future of human beings from indications given by the positions of stars and other heavenly bodies."
— इन्साइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका, १४वाँ संस्करण, भाग २, पृ० ५७५.

ग्रहों तथा नक्षत्रों की अपूर्व स्थिति को जब भावी शुभ तथा अशुभ की सूचक आकस्मिक घटना के रूप में स्वीकार किया जाता है, तब इस प्रकार की घटना शकुन का विषय बन जाती है। किसी मनुष्य की जन्मकुण्डली मे ग्रहों की उपस्थिति को देखकर ज्योतिषी लोग उसके भाग्य के शुभाशुभ फल को बतलाने में समर्थ होते है। यदि कोई ग्रह अपने घर में स्थित हो—जैसे वृहस्पति यदि चतुर्थ स्थान में हो—तो वह व्यक्ति अत्यन्त विद्वान् होता है। इसी प्रकार शनि तथा मंगल आदि ग्रहों से अशुभ की आशंका की जाती है। किम्बहुना फलित ज्योतिष विवाह आदि कार्यो में एक निर्णायक तत्त्व माना जाता है। कहने का आशय केवल इतना ही है कि फलित ज्योतिष भविष्य की घटनाओं को जानने का एक अचूक साधन है।

(२) **सामुद्रिक शास्त्र**—मनुष्य के शरीर मे प्राप्त हस्त रेखाओं, पादरेखाओं और ललाट रेखाओं से किसी व्यक्ति के भाग्य को जान लेने की विद्या को 'सामुद्रिक शास्त्र' कहा जाता है। इस शास्त्र के विद्वान् मानव शरीर के विभिन्न स्थानों में उपलब्ध रेखाओं, केश, भृकुटी, तिल और चक्षुओं की आकृति तथा रंग से किसी व्यक्ति के भविष्य के शुभाशुभ फलों को बतलाने में समर्थ होते है। परन्तु उनके भविष्य-कथन का प्रधान साधन हस्तरेखाएँ ही होती है। इन हस्तरेखाओं को देखकर इस शास्त्र का वेत्ता मनुष्यों की आयु, विद्या, धन, विवाह, कीर्ति और मृत्यु के संबध में भविष्यवाणी करने में समर्थ होता है।

यह विद्या इस देश में चिरकाल से चली आ रही है और आज भी इस विद्या के ज्ञाताओं और अनुयायियों की संख्या कुछ कम नहीं है। इस शास्त्र का प्रचार अब पश्चिमी देशों में भी होने लगा है। यूरोप में इस विद्या का ज्ञाता चेरो (Chero) नामक विद्वान् प्रसिद्ध था जिसने इस शास्त्र के संबध में अनेक ग्रन्थों की रचना की है। इस प्रकार "सामुद्रिक शास्त्र" भविष्य को जानने का एक अनन्य साधन है।

(३) **आकाशवाणी**—प्राचीन काल में आकाशवाणी के द्वारा मनुष्य के भविष्य की सूचना मिला करती थी। जब कोई मनुष्य दुःख से पीडित होता था, किंकर्तव्यविमूढ़ होकर असहाय अवस्था में पाया जाता था, तब आकाशवाणी के द्वारा उसके भविष्य के शुभाशुभ फल की सूचना मिलती थी। महाकवि कालिदास ने लिखा है कि जब भगवान् शंकर के तृतीय नेत्र की आग से कामदेव जलाकर भस्म कर दिया गया, तब उसकी पतिपरायणा पत्नी

रति सती होने के लिए उद्यत हो गई। उसी समय आकाशवाणी हुई कि तुम जलकर मरो नहीं। अनङ्ग—शरीररहित—के रूप में कामदेव तुम्हें पुनः प्राप्त होगा। इस प्रकार प्राचीन भारत में आकाशवाणी होने के अनेक उदाहरण उपलब्ध होते हैं जिनके द्वारा मनुष्यों को भविष्य की घटनाओं की सूचना मिलती थी।

यह परम्परा यूरोप में भी प्रचलित थी जिसे वहाँ 'ओरेकिल' (Oracle) कहते थे। वहाँ डेल्फी के मन्दिर में कुमारी लड़कियाँ जिन्हें 'वर्जिन' कहते थे—होती थी जो आजन्म ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करती हुई मनुष्यों के भविष्य-कथन में समर्थ होती थीं। यूरोप में डेल्फी का ओरेकिल (भविष्य-वाणी) प्रसिद्ध है।

शकुनशास्त्र की व्यापकता तथा उत्कृष्टता

मनुष्यों के भविष्य के शुभाशुभ फलों को जानने के लिए शकुन के अतिरिक्त जिन तीन साधनों का अभी वर्णन किया गया है, उनमें शकुनशास्त्र अधिक व्यापक तथा उत्कृष्ट है। फलित ज्योतिष के द्वारा मनुष्यों की कुण्डली अथवा जन्म-पत्री में स्थित ग्रहों की विशेष स्थानों में उपस्थिति से उनके भविष्य का कथन किया जाता है। कौन-सा ग्रह किस स्थान (घर) में अवस्थित होने पर किस शुभाशुभ फल की सूचना देता है, इसका पता जन्म-कुण्डली से लगता है। इसी प्रकार सामुद्रिक शास्त्र के वेत्ता हस्तरेखाओं तथा पादरेखाओं के अध्ययन करने के अतिरिक्त, केश, नेत्र की आकृति, ललाट का निम्न या उन्नत होना तथा भुजाओं के आकार-प्रकार से किसी व्यक्ति के भविष्य-कथन में समर्थ होते हैं। आकाशवाणी केवल विशेष अवसरों पर ही भावी घटनाओं की सूचना देती है। परन्तु शकुनशास्त्र इन सभी स्रोतों से अधिक व्यापक है। वह मनुष्य के शारीरिक चिह्नों तथा जन्म-कुण्डली के अतिरिक्त पशुओं, पक्षियों, जलचरों, आकाशपिण्डों, प्राकृतिक एवं अलौकिक घटनाओं तथा अन्य वस्तुओं के द्वारा भी भविष्य की सूचना देता है। अतः यह अन्य उपर्युक्त तीन स्रोतों से अधिक व्यापक तथा उत्कृष्ट है।

(५) परिच्छेद

संस्कृत साहित्य में लोक-विश्वास

संस्कृत साहित्य में लोक-विश्वास का अनन्त भण्डार भरा पड़ा है। वेदों

से लेकर, ब्राह्मण, उपनिषद्, रामायण, महाभारत, पुराणों में लोक-विश्वास की अनन्त सामग्री उपलब्ध होती है। किम्बहुना लौकिक संस्कृत साहित्य में रचे गये कर्तव्यों तथा नाटकों में यह विषय प्रचुर परिमाण में मिलता है। 'वसन्तराज शकुन" तथा बल्लाल सेन द्वारा रचित "अद्भुत सागर" में लोक-विश्वासों का विशद प्रतिपादन किया गया है।

कहने का आशय यह है कि वैदिक काल से लेकर आधुनिक काल तक लोक-विश्वासों की यह परम्परा अक्षुण्ण गति से प्रवाहित हो रही है। भारतीयों का जीवन धर्म के तन्तुओं से अनुस्यूत है। ऐसी दशा में उनके जीवन में लोक-विश्वासों की प्रचुरता का होना कुछ असंभव नहीं है। संस्कृत साहित्य में उपलब्ध होने वाले इन्हीं लोक-विश्वासों का संक्षिप्त वर्णन अगले पृष्ठों में किया जायेगा।

वेद

वैदिक साहित्य में लोक-विश्वासों का वर्णन प्रचुर परिमाण में उपलब्ध होता है। ऋग्वेद में पक्षियों से दक्षिण दिशा में शब्द करके शुभ संदेश देने की प्रार्थना की गई है।[1] इसी वेद में कपोत (कबूतर) का घर में आना अशुभ होने के अतिरिक्त उसे यमराज का दूत कहा गया है। उलूक (उल्लू) के सम्बन्ध में भी यही विश्वास पाया जाता है तथा उसकी आवाज को अमंगल-सूचक माना गया है। इसलिए इस अशुभ के निराकरण के लिए बारम्बार प्रार्थना की गयी है।[2] इस वेद में अशुभसूचक स्वप्नों में विश्वास का भी संकेत मिलता है। उषा देवी से दुःस्वप्नों के बुरे फल को नष्ट करने के लिए प्रार्थना पायी जाती है।[3]

अथर्ववेद जो लोक-विश्वास, यन्त्र, मंत्र, टोना-टोटका और यातु विद्या का अक्षय भाण्डार ही माना जाता है, इस वेद में भी कपोत तथा

---

१. मा त्वा श्येन उद्वधीन्मा सुपर्णो,
मा त्वा विददिषुमान् वीरो अस्ता।
पित्र्यामनु प्रदिशं कनि क्रदत्,
सुमंगलो भद्रवादी वदेह॥—ऋ० वे० २।४२।२

२. ऋ० वे० १०।१६५।१-५

३. ऋ० वे० ८।४७।१४

उलूक को यमराज के दूत के रूप में स्वीकार किया गया है और यह प्रार्थना की गयी है कि ये घर से सदा दूर ही रहें।[१] यात्रा के लिए प्रस्थान करते समय पीछे से किसी व्यक्ति के द्वारा पुकारना, सामने की ओर से किसी व्यक्ति का छींकना तथा जल से रहित रिक्त कलश का दर्शन अशुभ माना गया है।[२] अन्य अनेक स्थानों में अशुभकारी छींक के उल्लेख के साथ ही शृगाल, नपुंसक मनुष्यों के दर्शन तथा अहाबात (अंधड) से उत्पन्न अशुभ प्रभाव को दूर करने की प्रार्थना की गई है।[३] भूकम्प, उल्का, धूमकेतु, सूर्यग्रहण एवं लाल दूध देने वाली गाय को अशुभ मान कर उनसे उत्पन्न होने वाले दुष्परिणामों से बचाने के लिए स्तुति की गई है।[४]

ब्राह्मण

षड्विंश ब्राह्मण में अशुभसूचक शकुनों के निराकरण के लिए विभिन्न देवताओं से प्रार्थना की गई है। मणिकुम्भ का भेदन, यान, छत्र, शय्या, आसन, ध्वजा-पताका आदि का भग्न होना और हाथियों तथा घोड़ों के द्वारा अधिक धूमोत्सर्ग करना अशुभ माना गया है। पृथ्वी का स्फोटन, कूजन, कम्पन, ज्वलन, आदि, अकालिक वर्षा, पाषाण का तैरना, अकाल में पुष्पोद्गम, हथिनी का अकारण जलमग्न होना, महल का नष्ट होना, आदि घटनाएँ राजा की मृत्यु का सूचक मानी गई हैं।

---

१. अ० वे० काण्ड ६, सूक्त २६, मन्त्र २

२. अनुहवं परिहवं, परिवादं परिक्षवम्।
सर्वे मे रिक्त कुम्भान्, परा तान्सवितः सुवः॥
—अ० वे० १९।८।४

३. अपपापं परिक्षवं, पुण्यं भक्षी महिक्षवम्।
शिवा ते पाप नासिकां, पुण्यगश्चाभि मेहताम्॥
—अ० वे० १९।८।५

४. शं नो भूमिर्वेप्य माना, शमुल्का निर्हतं च यत्।
शं गावो लोहित क्षीरा, शं भूमिरव तीर्यती
शं नो ग्रहाश्चान्द्रमसाः, शमादित्यश्च राहुणा
शं नो मृत्युर्धूमकेतुः, शं रुद्रास्तिग्मतेजसः॥
—अ० वे० १९।९।८ तथा १९।९।१०

इसी प्रकार से प्रचण्ड वायु का चलना, खर (गदहा), उष्ट्र (ऊँट), कपोत, उलूक, काक, गृद्ध, गीदड, बाज आदि पशु-पक्षियों का घर में प्रवेश, धूलि, मांस, रुधिर और अस्थि की वर्षा; काक-मिथुन का दर्शन; रात्रि में इन्द्रधनुष दिखाई पड़ना; वृक्षों से रुधिर का चूना या गिरना आदि अमंगल तथा अशुभ की सूचना देते हैं। इस प्रकार से इस ब्राह्मण-ग्रंथ से अन्य अनेक लोक-विश्वासों का वर्णन उपलब्ध होता है।[२]

ऐतरेय आरण्यक

ऐतरेय आरण्यक में भी अनेक लोक-विश्वास उपलब्ध होते हैं। सूर्य की किरणों का शीतल होना, आकाश का लाल होना, दर्पण या जल में सिर से रहित अपने शरीर का दिखाई पड़ना, नेत्र के बन्द कर देने पर सूक्ष्म वर्तुलों का दिखाई न पड़ना, मेघरहित आकाश में बिजली का दर्शन, सघन मेघों के रहते हुए सूर्य का दिखाई पड़ना और तृण-काष्ठादि-रहित पृथ्वी का प्रज्वलित दृष्टिगोचर होना, मनुष्य के अल्पआयु होने के सूचक माने जाते हैं। इसी प्रकार से बन्दर का सिर पर चढ़ जाना, लाल कमल का सिर पर धारण करना, गदहा तथा वाराह (सुअर) को रथ में जोत कर चलना, आदि घटनाएँ भी मनुष्य के शीघ्र मृत्यु की सूचना देती हैं।[३]

गृह्यसूत्र

आपस्तम्ब गृह्यसूत्र से पता चलता है कि किसी व्यक्ति के सिर तथा अन्य भाग पर वृक्ष से फल का गिरना, पक्षियों द्वारा पंखों का फड़फड़ाना, मेघहीन आकाश से वर्षा का होना, शुष्क वृक्षों में अंकुरों का उत्पन्न होना, अंगारों में मधुमक्खियों का बैठना, पाकशाला में कबूतरों का प्रवेश अशुभ माना जाता है। इस अशुभ फल के निराकरण का भी यहाँ उल्लेख किया गया है। मघा नक्षत्र में गायों का खरीदना, पूर्वा तथा उत्तरा फाल्गुनी नक्षत्रों में सेना द्वारा

---

१. षड्विंशब्राह्मण-प्रपाठक ५, खण्ड २-१०।

२. इस विषय के विशेष विवरण के लिए देखिए—डॉ० दीपचन्द्र शर्मा —संस्कृत काव्यों में शकुन, पृ० ४१-४३

३. ऐतरेय आरण्यक—आरण्यक ३, अध्याय २, खण्ड ४ (१०)

व्यूह-रचना करना तथा स्वाति नक्षत्र में कन्या का विवाह करना मंगलकारक स्वीकार किया गया है।[1]

कौषीतकि गृह्यसूत्र में स्त्री के समस्त अंगों का शरीर के अनुकूल होना, केश के अगले भागों का बराबर होना तथा सीधी ओर गर्दन पर रोमावर्तों (भँवरी) का होना वीर पुत्रों को पैदा करने का सूचक माना गया है।[2]

बृहत्संहिता

वेद, पुराण, इतिहास तथा संस्कृत के काव्य-ग्रंथों के अतिरिक्त ज्योतिष की पुस्तकों में भी लोक-विश्वास के सम्बन्ध में प्रचुर सामग्री उपलब्ध होती है। बृहत्संहिता— जिसकी रचना आचार्य वराहमिहिर ने की है—में भी लोक-विश्वास-सम्बन्धी विषय का अत्यन्त विस्तार के साथ वर्णन पाया जाता है। विभिन्न पक्षियों की गतिविधि तथा चेष्टाओं से जो शकुन प्राप्त होते हैं, उनका विस्तृत वर्णन करने के अतिरिक्त वृक्षों, लताओं एवं पुष्पों से प्राप्त शकुनों का भी विवरण उपलब्ध होता है। भिन्न-भिन्न पशुओं तथा प्राकृतिक पदार्थों, जैसे ग्रहण, उल्कापात, अकालिक वर्षा, इन्द्रधनुष, वात्याचक्र (अंधड़), मनुष्य के शारीरिक लक्षणों से प्राप्त शकुनों का भी इसमें बड़े ही विस्तार से वर्णन किया गया है। कहने का आशय यह है कि ज्योतिषशास्त्र का ग्रंथ होते हुए भी इसमें शकुन तथा लोक-विश्वास-सम्बन्धी अनन्त सामग्री भरी पड़ी है।[3]

वसन्तराज शकुन—संस्कृत साहित्य में शकुनों से संबंधित यह अनुपम, अलौकिक तथा अद्भुत ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ में शकुनों का अत्यन्त विस्तार के साथ वर्णन किया गया है। दुःख है कि यह ग्रन्थ छाप-बाहर (out of print) होने के कारण अलभ्य है। इसी कारण इसका जितना प्रचार होना चाहिए था, उतना नहीं हो सका।

इस ग्रन्थ की प्रामाणिकता का अनुमान केवल इसी बात से किया जा

---

१. (क) आपस्तम्ब गृह्यसूत्र —पटल ८ खण्ड २३, सूत्र ८-९
   (ख) वही—पटल १ खण्ड ३, सूत्र १-२

२. कौषीतकि गृह्यसूत्र —अध्याय १, खण्ड १, सूत्र ८-१०

३. लोक-विश्वास के विस्तृत वर्णन के लिए देखिए—बृहत्संहिता अध्याय २७ से ३४, ४५, ४७, ५५, ६१-७०, ८५-९६।

सकता है कि मल्लिनाथ जैसे विद्वान् तथा आलोचक टीकाकार ने कालिदास के ग्रन्थों में आये हुए शकुन-संबंधी तथ्यों की पुष्टि "यथा वसन्तराज" लिख कर की है। 'वसन्तराज' के नाम से भी कहीं-कहीं इसको उद्धृत किया गया है। संभवतः संस्कृत साहित्य में इससे बड़ा, प्रामाणिक तथा वैज्ञानिक शकुन-अपशकुन-संबंधी दूसरा ग्रन्थ नहीं है। इस ग्रन्थ से यह भी पता चलता है कि हमारे आचार्यों ने शकुन को एक शास्त्र के रूप में स्थान देकर इसे [illegible] प्रतिष्ठापित किया है। इस बात का प्रमाण यह 'वसन्तराज शकुन' नामक प्रामाणिक ग्रन्थ है।

पुराण—महापुराणों की संख्या तथा उपपुराणों को भी इनके साथ जोड़ दिया जाय, तो निश्चित ही यह संख्या दूनी हो जायेगी। पुराणों के विशिष्ट विद्वान् डॉ० पार्जिटर ने लिखा है कि पुराण भारतीय लोक-साहित्य तथा लोक-संस्कृति के विश्वकोष हैं। लोक-संस्कृति के अन्तर्गत लोक-विश्वासों का भी समावेश माना जाता है। इस प्रकार पुराणों के विशाल साहित्य में लोक-विश्वासों का अक्षय भाण्डार उपलब्ध होता है।

पुराणों का विषय लोकप्रिय (पापुलर) धार्मिक विधानों का वर्णन करना है जिसके अन्तर्गत अनेक व्रत, त्यौहारों का करना तथा पवित्र वृक्षों, पशुओं तथा पक्षियों की पूजा करना है। इस पूजा का विधान करते समय पुराणों में इन वस्तुओं के संबंध में अनेक लोक-विश्वासों का भी वर्णन पाया जाता है। उदाहरण के लिए, तुलसी की पूजा को लिया जा सकता है। कार्तिक मास में तुलसी की पूजा का महत्त्व, पूजन-विधि, विष्णु से विवाह, पूजन का फल आदि विषयों की चर्चा अनेक पुराणों में उपलब्ध होती है। पद्म-पुराण में लोक-विश्वास की प्रभूत सामग्री उपलब्ध होती है। इन उल्लेखों से पता चलता है कि पार्जिटर की उपर्युक्त उक्ति पुराणों के विषय में अक्षरशः चरितार्थ होती है।

रामायण तथा महाभारत—संस्कृत साहित्य में इन ग्रन्थों को 'इतिहास' की संज्ञा दी गई है। इन ग्रन्थों में भी लोक विश्वासों की कुछ कमी नहीं है। वाल्मीकि ने रामायण में राम आदि के विवाह के पश्चात् अयोध्या लौटते समय मार्ग में दशरथ का विषादयुक्त होना अशुभ माना है। मायामृग को मार कर लौटते समय राम का अप्रसन्न तथा उदासीन होना सीता की अप्राप्ति का सूचक होने के कारण अशुभ है। राम के द्वारा लंका पर चढ़ाई करने के लिए सुग्रीव को आदेश देते समय वानरी सेना का प्रसन्न होना मंगलसूचक

माना गया है। युद्ध के मैदान में स्थित रावण के साथी राक्षसों की भुजाओ का प्रहार करने म रुक जाना अथवा न उठना अशुभ की सूचना देता है।

इसी प्रकार व्यास की "शत साहस्री संहिता" में भी सैकड़ो किम्बा हजारो प्रसंगों का वर्णन प्राप्त होता है जो लोक-विश्वास के ताने-बाने से बुने गये हैं। फिर भी रामायण में महाभारत की अपेक्षा लोक-विश्वासों की अधिकता उपलब्ध होती है।[1]

काव्यों तथा नाटकों में लोक-विश्वास

संस्कृत के महाकाव्यों, खण्ड-काव्यों, नाटकों, रूपकों तथा उपरूपकों में लोक-साहित्य की प्रचुर सामग्री उपलब्ध होती है। कालिदास के महाकाव्य-रघुवंश तथा कुमारसंभव तथा खण्ड-काव्य मेघदूत में लोक-विश्वासों का वर्णन पाया जाता है। बृहत्त्रयी के महाकाव्यों का अनुशीलन करने पर अनेक बहुमूल्य सामग्री उपलब्ध होती है।

इसी प्रकार संस्कृत के नाटकों—विशेष कर 'मृच्छकटिक' में लोक-जीवन क अनेक तत्त्व प्राप्त होते हैं। जन-जीवन का चित्रण करने वाला संस्कृत में सभवत: इससे बढ़कर कोई दूसरा नाटक नहीं है।

डॉ० दीपचन्द्र शर्मा ने संस्कृत के प्राय: समस्त काव्यों का अध्ययन तथा मथन कर "संस्कृत काव्य मे शकुन" नामक विद्वत्तापूर्ण पुस्तक लिखी है जिसमें काव्यों में उपलब्ध शकुनों का बड़े ही विस्तार के साथ प्रामाणिक वर्णन किया गया है। अत: इस विषय के विस्तृत विवरण के लिए इसी ग्रन्थ का अध्ययन करना चाहिए। पिष्टपेषण के भय से इस विषय का यहीं समापन किया जाता है।

(६) परिच्छेद

लोक-विश्वास का व्यापक क्षेत्र

लोक-विश्वास का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक है। संसार में सम्भवत: कोई भी वस्तु ऐसी नहीं है जिसके द्वारा कोई शुभ अथवा अशुभ शकुन प्राप्त न हो, जिसके सम्बन्ध में कोई लोक-विश्वास प्रचलित न हो। सच तो यह है कि

१. विशेष के लिए देखिए—डॉ० दीपचन्द्र शर्मा—संस्कृत काव्यों में शकुन, पृ० २०७-२११

आकाश से पाताल तक जितने भी थलचर, नभचर तथा जलचर जीव पाये जाते हैं, जितनी भी चर और अचर सृष्टि उपलब्ध होती है, ब्रह्मा की सृष्टि का जहाँ तक विस्तार है, वे सभी वस्तुएँ लोक-विश्वास के व्यापक क्षेत्र के अन्तर्गत आती हैं।

लोक-विश्वास के विस्तृत क्षेत्र का वर्णन करते हुए श्रीमती सोफिया बर्न ने लिखा है कि—"किसी भी अप्रत्याशित तथा अलौकिक घटना को शकुन के विषय के लिए छोटा नहीं समझना चाहिए। रहस्यपूर्ण ध्वनि, दरवाजा का खटखटाना, घंटा, हथियार, कार्य करने के साधन, चित्र, व्यक्तिगत व शारीरिक अनुभव, जैसे—शरीर में कम्पन, हाथों का फड़फड़ाना, लुढ़कना, पक्षियों तथा पशुओं की आवाज, उनकी गति, चेष्टा, जंगली या घरेलू पशु-पक्षियों की क्रियाएँ, स्वप्न-दर्शन, आकाश में दिव्य आकृतियों का दर्शन, कारणरहित घटनाओं का घटित होना जैसे असमय अथवा अकालिक वृक्षों तथा पुष्पों का कुसुमित होना खेत में अन्न बोते समय बीच में थोड़ा-सा स्थान छोड़ देना, नव वर्ष के समय किसी व्यक्ति अथवा पशु से भेंट होना, यात्रा के समय किसी वस्तु का देखना - ये सभी वस्तुएँ तथा घटनाएँ शकुन के क्षेत्र में अन्तर्भुक्त होती हैं।[१]

लोक-विश्वास के विकास की अवस्थाएँ

इस देश में लोक-विश्वास के विकास की प्रधानतया दो अवस्थाए

१. "No unexpected or unusual occurrence is too trivial to be the subject of an omen. Mysterious sounds, knocks, bells, accidents to inanimate objects as implements, tools, pictures, personal accidents or sevsatoins, shivering, tuighing, stumbling, the movements, cries or actions of birds and beasts wild or domestic, dreams, unusual appearances in the fire or the heaven unaccountable events such as flowers or fruits trees blossing out of season; any thing person or animal seen at the new year, or on beginning a Journey or any other enterprise, all there are every where liable to be taken as omens."—सोफिया बर्न—दि हैण्ड बुक आफ फोकलोर (१९१४)-पृ० १२४

उपलब्ध होती हैं। प्रारम्भिक अवस्था में अशुभ शकुनों को जानने की प्रवृत्ति प्रबल होती है। मनुष्य को जब मालूम हो जाता है कि अमुक अशुभ शकुन का परिणाम बुरा होगा, तब वह उसके निराकरण करने के उपायों को खोज निकालने का प्रयास करता है। जैसे यात्रा के समय किसी एकाक्ष (काना) मनुष्य को देखकर अशुभ शकुन हो गया तब उस यात्रा को थोड़ी देर तक स्थगित कर उसका निराकरण किया जाता है।

लोक-विश्वास के विकास की दूसरी अवस्था में शुभ तथा अशुभ दोनों प्रकार के शकुनों को जानने की प्रबल जिज्ञासा दिखाई देती है। परन्तु अपशकुनों की निवृत्ति के उपायों का उल्लेख बहुत कम मिलता है। संस्कृत के काव्यों में जो शकुन उपलब्ध होते हैं, वे लोक-विश्वास के विकास की दूसरी अवस्था को प्रतिबिम्बित करते हैं।[1]

लोक-विश्वास में परिवर्तन

लोक-विश्वास-सम्बन्धी प्रवृत्तियों में परिवर्तन बहुत ही कम पाया जाता है। शकुनों का स्वरूप, उनके आधारभूत प्रधान सिद्धान्त तथा उनके निर्माण में योग देने वाले तत्त्व प्राय: परिवर्तन के प्रभाव से अत्यन्त दूर रहते हैं। उनमें परिवर्तन का अभाव पाया जाता है, इसीलिए इस देश में लोक-विश्वास की भावना अत्यन्त दृढ़ता के साथ विद्यमान है।

परन्तु अन्य देशों, कालों तथा सम्प्रदायों में लोक-विश्वासों में किंचित् परिवर्तन भी दिखाई पड़ता है। वैदिक काल में भूकम्प को अशुभ माना जाता था। परन्तु बौद्ध धर्म के अनुयायी कवियों ने इसे सर्वत्र शुभ ही माना है। यह भगवान् बुद्ध के अवतार-ग्रहण की सूचना देता है। वैदिक काल में अकालिक घटनाओं—वर्षा, बिजली चमकना आदि को सदा अशुभ माना है, परन्तु बौद्ध कवियों ने इन्हें सदा शुभ की कोटि में रखा है।

वैदिक युग में कपोत (कबूतर) को यम का दूत कहा गया है और इससे केवल अशुभ शकुनों की ही प्राप्ति में विश्वास का वर्णन है। रामायण-काल में भी कपोत के विषय में यही धारणा पाई जाती है। परन्तु रामायण के बाद रचित संस्कृत के काव्यों में कबूतर के सम्बन्ध में शकुनों का उल्लेख प्राय:

१ डॉ० दीपचन्द्र शर्मा—संस्कृत काव्य में शकुन (साहित्य भण्डार, मेरठ), पृ० ७

नहीं पाया जाता। आधुनिक काल में कपोत के सम्बन्ध में फिर परिवर्तन हुआ है। आजकल यह शान्ति का दूत माना जाता है तथा राष्ट्रीय उत्सवों के अवसर पर इसे असीम आकाश में उड़ाकर शान्ति का आवाहन किया जाता है।

देश-विशेष के कारण भी शकुनों में परिवर्तन पाया जाता है। जो वस्तु एक देश में शुभ शकुन के रूप में मानी जाती है, वही दूसरे देश में अशुभ का द्योतक है। भारत में सूर्य का दर्शन शुभ तथा मंगल की सूचना देता है, परन्तु आस्ट्रेलिया में सूर्य की गणना अशुभ नक्षत्रों में की जाती है।[1] बेबीलोन में सूर्यग्रहण को अशुभसूचक मानते हैं। हमारे देश में चन्द्रमा का दर्शन अत्यन्त शुभ है तथा द्वितीया के चन्द्रमा को सभी लोग बड़ी श्रद्धा से प्रणाम करते हैं। परन्तु ब्रिटेन में खिड़की के मध्य से चन्द्रमा का प्रथम दर्शन अशुभ माना जाता है।[2]

इन कतिपय उदाहरणों से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि देश, काल और अवस्था के अनुसार लोक-विश्वासों में परिवर्तन होता रहता है।

—०—

---

१. रतजेल—हिस्ट्री ऑफ मैनकाइण्ड (१८९७), भाग १, पृ० ३८४

२. रेडफोर्ड—इनसाइक्लोपीडिया ऑफ सुपरस्टीशन्स (१९४७), पृ० १७६

तृतीय अध्याय

आकाशीय पिण्ड सम्बन्धी लोक-विश्वास

आकाश में स्थित अनेक ग्रहों, उपग्रहों, ताराओं और नक्षत्रों के द्वारा भी अनन्त शकुनों तथा अपशकुनों की प्राप्ति होती है। आकाश में सूर्य और चन्द्र आदि नवग्रह, उपग्रह, अश्वनी तथा भरणी आदि सत्ताइस नक्षत्र स्थित हैं। इनके अतिरिक्त उल्कापात, वज्रपात समय-समय पर होता रहता है। इन सभी आकाशीय पिण्डों के संबंध में जनता में अनेक लोक-विश्वास प्रचलित हैं जिनका संक्षिप्त वर्णन यहाँ प्रस्तुत किया जाता है।

वर्णन की सुविधा के लिए इन आकाशीय पिण्डों का निम्नांकित श्रेणियों मे विभक्त किया जा सकता है।

(१) **ग्रह**—इनकी संख्या नौ है।

(२) **उपग्रह**—इनकी संख्या अनेक है।

(३) **नक्षत्र**—इनकी संख्या सत्ताइस है।

(४) **अन्य आकाशीय फेनामेना**—इनकी संख्या प्रधानतया सात है।

(१) परिछेद

ग्रह

ज्योतिष शास्त्र मे ग्रहों की संख्या नौ है—यथा—(१) सूर्य (२) चन्द्रमा (३) मंगल (४) बुध (५) बृहस्पति (६) शुक्र (७) शनि (८) राहु तथा (९) केतु।

(१) **सूर्य**—सूर्य आकाश का सबसे अधिक प्रकाशमान, ज्योतिष्मान तेजोपुञ्ज है जो संसार के प्राणियों को जीवन प्रदान करता है। सूर्य के अभाव में संसार के समस्त प्राणियों का जीवित रहना असम्भव है। इतना ही नहीं, जगत् में खेती का होना भी संभव नहीं है। इस प्रकार सूर्य की स्थिति मानव तथा कृषि कार्य के लिए

आवश्यक ही नहीं, अनिवार्य है। इसीलिए वेदों में सूर्य को चर और अचर प्राणियों की प्रतिमा कहा गया है।[१] सूर्य को 'सविता' भी कहा जाता है क्योंकि वह प्राणियों को कार्य में प्रवृत्त करता है।[२] सूर्य के उदय होने के साथ ही सभी मनुष्य अपने-अपने कार्यों में निरत हो जाते हैं। ऋग्वेद में सूर्य को विष्णु कहा गया है और उनकी स्तुति में अनेक ऋचाओं का निर्माण किया गया है।[३] इस प्रकार सूर्य वैदिक साहित्य में एक विशिष्ट देवता के रूप मे प्रतिष्ठित पाया जाता है।

प्राचीन काल में भारतीय लोगों का विश्वास था कि सूर्य चलता है और पृथ्वी स्थिर है। परन्तु आधुनिक खगोलशास्त्रियों ने यह निश्चित रूप से सिद्ध कर दिया है कि सूर्य एक स्थिर ग्रह है और पृथ्वी उसके चारों ओर द्रुत गति से चक्कर लगाती है। सूर्य सौर परिवार अर्थात् 'सोलर सिस्टम' का सबसे प्रधान तथा मुख्य ग्रह माना जाता है तथा अन्य ग्रह-विशेषतः पृथ्वी उसकी परिक्रमा किया करती है।

संस्कृत साहित्य में सूर्य के संबंध में अनेक शकुन तथा अपशकुन उपलब्ध होते हैं। सूर्य की परिवर्तित स्थिति, परिवेश तथा ग्रहण आदि से अनेक अपशकुनों का अनुमान किया जाता है। राम के द्वारा रावण से युद्ध के लिए की गई यात्रा के समय मध्य आकाश में सूर्य का स्थित होना विजय का सूचक माना गया है।[४] इसी प्रसंग मे लक्ष्मण द्वारा दिशाओं की प्रसन्नता तथा सूर्य की विमलता को शुभ सूचक माना गया है।[५] सौन्दर नन्द महाकाव्य में तथागत के जन्म के अवसर पर सूर्य का अधिक प्रज्वलित होना शुभ सूचक है।[६]

परन्तु इसके विपरीत सूर्य का मलिन होना अथवा कान्तिहीन होकर लोहे के समान लाल हो जाना अशुभ स्वीकार किया गया है। हर्ष चरित में हर्षवर्धन के द्वारा सूर्य का कान्तिहीन तथा धूमिल होना पिता की मृत्यु का सूचक

१. "सूर्यः आत्मा जगतः तस्थुषश्च।"
२. "उदेति सविता ताम्रः, ताम्र एवमेवास्ति च।"
३. ऋग्वेद, विष्णु सूक्त।
४. वा० रा० — (यु० का०), सर्ग ४/३
५. वही, सर्ग ४/४८
६. अश्वघोष—सौन्दर, नन्द, सर्ग २/५४

माना गया है।[1] इसी प्रकार से कुम्भकर्ण तथा रावण के रण-क्षेत्र के लिए प्रस्थान करते समय सूर्य का तेजहीन होना अत्यन्त अशुभ सूचक है।[2]

परिवेष

कभी-कभी सूर्य मण्डल के चारों ओर एक गोल-सा वृत्त दिखाई पड़ता है उसे परिवेष कहा जाता है। इस परिवेष का होना अमंगल की सूचना देता है। खर के साथ राम के युद्ध के अवसर पर इस परिवेष को अशुभ का सूचक माना गया है।[3] महाकवि श्री हर्ष ने अपने महाकाव्य 'नैषधीय चरितम्' मे सूर्य के चारों ओर परिवेष को अमंगल होने का संकेत किया है।[4] कालिदास ने सूर्य के चारों ओर परिधि मण्डल (परिवेष) का होना उत्पात का सूचक माना है।[5]

इसी प्रकार से सूर्य मण्डल का विदीर्ण होना मृत्यु की सूचना देता है। सूर्य में रन्ध्र अथवा छिद्र का दिखाई देना दैत्यों के विनाश का सूचक माना गया है। असमय में राहु के द्वारा सूर्य का ग्रहण अमंगलकारी माना गया है। इस प्रकार से सूर्य में छिद्र होना, उसका मलिन होना, सूर्य मण्डल के चारों ओर परिवेष का होना—ये सभी लक्षण मृत्यु होने के कारण अमंगलकारी तथा अशुभ हैं।

सूर्यषष्ठी व्रत

ग्रामीण जनता में सूर्य के विषय में अनेक लोक-विश्वास प्रचलित है। लोगों का ऐसा विश्वास है कि सूर्य की उपासना करने से पुत्र-रत्न की प्राप्ति होती है। अतः ग्रामीण स्त्रियाँ—जिन्होंने सन्तान का मुँह अभी नहीं देखा है—वे

---

१. बाण—हर्ष चरित, उच्छ्वास ५

२. वा० रा०—(यु० का०), सर्ग ६५/५१

३ श्यामं रुधिरं पर्यन्तं बभूव परिवेषणम्।
—वा० रा०—(अ० का०); सर्ग २३/३

४. तनोति भानोः परिवेश कैतवात,
तदा विधिः कुण्डलनां विधोरपि ॥—नैषध, सर्ग १

५ लक्ष्यते स्म तदनन्तरं रविः,
बद्ध भीम परिवेष मण्डलः।
वैनतेय शमितस्य भोगिनः,
भोग वष्टित इव च्युतो मणि— रघुवंश ११ ५६

कार्तिक मास की शुक्ल पक्ष की षष्ठी के दिन पुत्र-प्राप्ति की अभिलाषा से एक व्रत किया करती हैं जिसे "छठी माता का व्रत" कहा जाता है। परन्तु वास्तव में यह सूर्य-षष्ठी व्रत है। इस व्रत में षष्ठी के दिन उपवास रहकर सप्तमी को प्रातःकाल किसी जलाशय के किनारे पानी में खड़ी होकर स्त्रियाँ सूर्य के उदय की प्रतीक्षा करती है और उनके उदय होने पर उन्हें मिष्ठान्न, पक्वान्न के साथ दूध से अर्घ्य प्रदान करती हैं। ये उनसे प्रार्थना करती हैं कि उन्हें वे सन्तान प्रदान करें।

परन्तु इस व्रत को सन्तानवती स्त्रियाँ भी करती हैं। इस व्रत को करने का उनका एक मात्र उद्देश्य अपनी सन्तान का पालन-पोषण तथा चिर आयुष्य होता है। बिहार राज्य में यह त्यौहार राष्ट्रीय पर्व के रूप में सम्भवतः वर्ष भर में दो बार मनाया जाता है। इस प्रकार यह सूर्य षष्ठी व्रत सन्तान प्राप्ति तथा सन्तति की कल्याण की कामना से प्रायः प्रत्येक स्त्री के द्वारा प्रति वर्ष सम्पादित किया जाता है।

रोग-निवारण

सूर्य भगवान् अनेक रोगों का निवारण करने वाले देवता माने जाते हैं। संस्कृत के एक कवि—मयूर भट्ट, कुष्ठ रोग से अत्यन्त पीड़ित थे। अतः उन्होंने सूर्य की स्तुति में "सूर्य-शतक" नामक ग्रन्थ की रचना की जिसमें सूर्य से कुष्ठ निवारण के लिए प्रार्थना की गई है। ऐसा कहा जाता है वे इस रोग से शीघ्र ही मुक्त हो गये।

ग्रामीण स्त्रियों का यह अटूट विश्वास है कि सूर्य की उपासना करने, उनके व्रत को रखने तथा प्रातःकाल प्रतिदिन उनको अर्घ्य देने से श्वेत कुष्ट अर्थात् नरक रोग नष्ट हो जाता है। इस रोग से पीड़ित अनेक स्त्रियों ने सूर्य की पूजा करके इस रोग से मुक्ति पाई है। सूर्य की पूजा सुन्दर स्वास्थ्य के लिए भी उपयोगी मानी जाती है।

सूर्य को प्रातः अर्घ्य प्रदान करने का श्लोक निम्नांकित है—

"हे सूर्य ! सहस्रांशो; तेजो राशे जगत्पते।
अनुकम्पय मां भक्त्या, गृहाणार्घ दिवाकर ।।"

परन्तु जो स्त्रियाँ अशिक्षित तथा अनपढ़ हैं वे इस श्लोक को इस प्रकार कहती हैं

"हे सुरुज सहस्सर नाम,
तेज राशि जगतपत्यांग।"

परन्तु श्लोक अशुद्ध होने पर भी उनकी सूर्य-भक्ति शुद्ध तथा अविचल होती है। अतः भगवान् उनकी इच्छानुसार उन्हें मनचाहा फल प्रदान करते हैं।

सूर्य ग्रहण

समय-समय पर पृथ्वी की छाया सूर्य मण्डल पर पड़ती है जिससे वह कभी आंशिक रूप से और कभी पूर्ण रूप से आच्छादित हो जाता है। इस वैज्ञानिक तथ्य को ग्रामीण जनता राहु के द्वारा सूर्य का ग्रहण समझती है। यह सूर्य-ग्रहण सदा अमावस्या के दिन ही लगा करता है। इस दिन दिल्ली के पास स्थित कुरुक्षेत्र के तालाब में स्नान करना परम पुण्यदायक माना जाता है। जो लोग कुरुक्षेत्र नहीं जा सकते वे काशी में अस्सी मुहल्ले में स्थित कुरुक्षेत्र तालाब में ही स्नान कर पुण्य अर्जित करते हैं।

जिस व्यक्ति की राशि पर सूर्य-ग्रहण लगता है वह एकान्त स्थान में बैठकर पूजा-पाठ करता रहता है। परन्तु अन्य लोग किसी नदी या तालाब में स्नान कर अनन्त पुण्य का अर्जन करते हैं। इस अवसर पर डोम नामक हरिजन जाति को 'ऊँ' नामक अन्न का दान करना पुण्यदायक माना जाता है। यह समय तन्त्र-मन्त्र सीखने के लिए भी उपयोगी समझा जाता है। बहुत से लोग साँप तथा बिच्छू का मन्त्र इस अवसर पर सीखते हैं। इस प्रकार सूर्य प्रकाश तथा शक्ति का पुंज ही नहीं है बल्कि वह जीवन-दाता, रोग-निवारक तथा सन्तति प्रदान करने वाला भी माना जाता है।

(२) चन्द्रमा

सूर्य की ही भाँति चन्द्रमा के सम्बन्ध मे भी अनेक लोक-विश्वास प्रचलित हैं। इसे वेदों मे 'सोम' के नाम से अभिहित किया गया है, जहाँ इनकी स्तुति में अनेक 'सूक्त' पाये जाते हैं। चन्द्रमा को द्विज भी कहा जाता है। इसीलिए यह ब्राह्मणों का राजा माना गया है।[१] संस्कृत साहित्य तो चन्द्रमा की स्तुति तथा निन्दा से भरा पड़ा है। जिसका अत्यन्त संक्षिप्त रूप में यहाँ वर्णन प्रस्तुत किया जाता है।

---

१ सामोऽस्माकं ब्राह्मणानां राजा

शुक्ल पक्ष में जिस समय चन्द्रमा वृद्धि को प्राप्त कर रहा हो, किसी संस्कार का आयोजन शुभ माना जाता है। विवाह और गवना आदि के अवसर पर चन्द्रमा का सन्मुख होना मंगल की सूचना देता है। परन्तु चन्द्र-मण्डल के चारों ओर परिवेष का होना, चन्द्र ग्रहण तथा चन्द्रमा का तप्त होना अशुभ लक्षण है। हर्ष चरित में चन्द्र मण्डल के घेरे का चारों ओर से जलना किसी महापुरुष की मृत्यु का द्योतक माना गया है।[1] हर विजय महाकाव्य[2] में चन्द्र बिम्ब से निकलता हुआ धूमदण्ड असुरों के विनाश का सूचक माना गया है। चण्ड कौशिक नाटक में बिना किसी पर्व के राहु के द्वारा चन्द्रमा का ग्रहण अशुभ सूचक के रूप में उल्लिखित है।[3] इसी प्रकार से चन्द्रमा से आग की वर्षा का होना कौरवों के भावी विनाश की सूचना देता है।[4] कुन्ती के समक्ष कर्ण द्वारा चन्द्रमा का तप्त होने का उल्लेख कौरवों के विनाश की सूचना देने के रूप में किया गया है।[5]

सूर्य के ही समान चन्द्रमा के मण्डल के चारों ओर परिवेष का होना अमंगल की सूचना देता है। नैषध चरित में इस घटना का उल्लेख महाकवि श्री हर्ष ने संकेत के रूप में किया है।

संस्कृत के काव्यों में "चन्द्रोपालम्भ" के रूप में चन्द्रमा की बड़ी निन्दा की गई है। चन्द्रमा अनेक कारणों से विरहिणी स्त्रियों को कष्टदायक है। अतः इन स्त्रियों ने चन्द्रमा का खारे समुद्र से जन्म लेना, प्रतिपक्ष में इसका घटना-बढ़ना लेकर अनेक खरी-खोटी बातें कही हैं। श्री हर्ष का नैषध में वर्णित चन्द्रोपालम्भ अपनी सुन्दरता के लिए प्रसिद्ध है।

ढेलहवा चौथ

जहाँ शुक्ल पक्ष के द्वितीया के चन्द्रमा का दर्शन शुभ माना है तथा प्रत्येक व्यक्ति इस दिन इसको आदर के साथ प्रणाम करता है वहाँ भाद्रपद मास के शुक्ल पक्ष की चतुर्थी तिथि के दिन चन्द्रमा का दर्शन अत्यन्त अशुभ है। सर्व साधारण जनता का विश्वास है कि इस दिन चन्द्रमा को देख लेने

१. बाण—हर्षचरित, उच्छ्वास ५
२. राजानक रत्नाकर—हर-विजय, सर्ग ३४/६४
३. क्षेमीश्वर - चण्ड कौशिक, अंक १/२३
४. अमर चन्द्र सूरि—बाल भारत (उ० प०), सर्ग २/५८
५. वही—सर्ग ५/२४

मात्र से कोई न कोई कलंक लग जाता है। सम्भवतः भगवान् कृष्ण ने त्रेता युग में इस दिन चन्द्रमा का दर्शन किया था। अतः स्यमन्तक मणि चुराने का उन्हें कलंक लगा। अतः उसी समय से यह भावना दृढ़मूल हो गई कि इस दिन चन्द्रदर्शन अत्यन्त अशुभ है।

परन्तु अचानक चन्द्रमा इस दिन अनजान में दिखाई पड़ जाय तो दूसरे आदमियों के घर पर ढेला अथवा पत्थर फेंकने से इस पाप का प्रायश्चित्त हो जाता है। अतः इस दिन लोग दूसरों के घर पर प्रायः ढेला फेंका करते है। इसीलिए भादों शुक्ल चतुर्थी का नाम ही 'ढेलहवा चौथ' पड़ गया है। यह विश्वास लोक में तो प्रचलित है ही संस्कृत के ग्रन्थों से भी इसकी पुष्टि होती है। यद्यपि अंग्रेजी शिक्षा के प्रचार से इस प्रथा का अब ह्रास हो रहा है फिर भी ग्रामीण क्षेत्रों में ढेला फेंकने की यह प्रथा आज भी वर्तमान तथा जीवित है।

चन्द्रमा में कलंक

अनपढ़ तथा ग्रामीण जनता का यह विश्वास है कि चन्द्रमा पहिले पृथ्वी पर स्थित था। परन्तु किसी बुढ़िया ने किसी कारणवश मूसल से इसे मार दिया। अतः चन्द्रमा अप्रसन्न होकर आकाश में चला गया। चन्द्रमा मे जो कालिमा दिखाई पड़ती है वह इसी बुढ़िया के मूसल से मारने का चिह्न है।

परन्तु संस्कृत साहित्य में ऐसा वर्णन पाया जाता है कि चन्द्रमा ने अपनी गोद में मृग को छिपा रखा है। अतः यह कालिमा उसी मृग का अंक या चिह्न है। इसीलिए चन्द्रमा को "मृगाङ्क" या "मृगलक्ष्म" भी कहा जाता है।[१] सस्कृत के एक अन्य कवि ने भी चन्द्रमा के कलंक को हिरण (मृग) बतलाया है। वह किसी कलंक से रहित नायिका के सुन्दर मुख की उपमा हिरण से रहित चन्द्रमा से देता है।[२] कुछ विद्वानों के विचार से चन्द्रमा में मृग नहीं बल्कि शश (खरगोश) निवास करता है। इसीलिए उसे "शशाङ्क" भी कहा जाता है। इस प्रकार चन्द्रमा के कलंक के सम्बन्ध में अनेक विश्वास उपलब्ध होते हैं।

---

१. कालिदास—रघुवंश

२. रथ प्राकाराग्रे प्रहिणु नयने तर्कय मनाक्।
नराकाशे कोऽयं

चन्द्रमा की वृद्धि तथा ह्रास

शुक्ल पक्ष में चन्द्रमा की कला की क्रमशः वृद्धि होती है और पूर्णिमा के दिन वह पूर्ण चन्द्र के रूप में दिखाई पड़ता है। शुक्ल पक्ष के द्वितीया के चन्द्रमा का सभी लोग बड़े आदर के साथ अभिवादन करते हैं। संस्कृत के किसी कवि ने इस तथ्य का समर्थन किया है।[1] परन्तु कृष्ण पक्ष में वह प्रतिदिन क्षीण होने लगता है और अमावस्या की रात्रि को आकाश में उसकी सत्ता का अभाव दिखाई पड़ता है। लोगों का यह विश्वास है कि चन्द्रमा में अमृत भरा हुआ है। कृष्ण पक्ष में देवता लोग उसके अमृत का पान करने लगते हैं अतः वह प्रतिदिन क्षीण दिखाई पड़ने लगता है। 'कई' कवि ने इस तथ्य की ओर अपनी कविता में संकेत किया है।[2]

सूर्य और चन्द्रमा के एक राशि पर आ जाने से संसार में अत्यधिक अंधकार हो जाता है जो अशुभ का लक्षण है। महाकवि बिहारी ने इस तथ्य का उल्लेख किया है।[3] चन्द्र ग्रहण लगने पर काशी की गंगा में स्नान करने का धार्मिक महत्व है। इस दिन लोग डोमों का जौ तथा अन्न का दान करना पुण्य का कारण मानते हैं।

स्त्रियाँ चन्द्रमा की पूजा के निमित्त चौथ का व्रत करती हैं। वे दिन भर उपवास रखकर रात्रि में चन्द्रमा के उदय होने पर उन्हें अर्घ्य प्रदान करके ही भोजन ग्रहण करती हैं। जिस प्रकार सूर्य भगवान् की पूजा सन्तति तथा आरोग्य की प्राप्ति के लिए की जाती है उसी प्रकार चन्द्रमा की उपासना भी अनेक कामनाओं की सिद्धि के लिए सम्पादित की जाती है। सोमवती अमावस्या के दिन स्त्रियाँ गंगा में स्नान करना पुण्य-प्राप्ति का कारण मानती हैं।

कुछ लोगों—प्रायः प्राचीन परम्परा के उपासक व्यक्तियों—का यह दृढ़ विश्वास है कि चन्द्रमा की किरणों में अमृत का निवास है। अतः वे

---

१. "प्रतिपत् चन्द्र इव प्रजाः नृपम्।"

२. पर्यायपीतस्य सुरैः हिमांशोः।
कलाक्षयः श्लाघ्यतरो हि वृद्धेः ॥—कालिदास—रघुवंश

३. अधिक अंधेरो जग करै
मिलि पावस रवि-चन्द्र।—बिहारी सतसई

आश्विन मास की पूर्णिमा—जिसे शरत् पूर्णिमा भी कहते हैं—को दूध में खीर पका कर घर के छज्जे पर रात भर उसे खुला छोड़ देते हैं। उनका विश्वास है कि चन्द्रमा की किरणों के पड़ने से उस खीर में अमृत का संचार हो जाता है जिसे वे लोग बड़े ही प्रेम से प्रसाद के रूप में खाते हैं।

चन्द्रमा सौम्य तथा सुन्दर ग्रह है। शनि और मंगल की भाँति यह किसी व्यक्ति का अमंगल नहीं करता है। फिर भी जिस व्यक्ति की कुण्डली में चन्द्रमा अनुकूल नहीं होता वह उसकी पूजा में सफेद पुष्प तथा श्वेत वस्त्र आदि का प्रयोग करता है। इस प्रकार से वह इसकी पूजा कर इसे अनुकूल बनाता है।

विदेशों में चन्द्रमा सम्बन्धी लोक-विश्वास

यूरोप के विभिन्न देशों में चन्द्रमा के संबंध में अनेक लोक-विश्वास प्रचलित हैं। इंग्लैण्ड के डेवोनशायर जिले में शुक्ल पक्ष की द्वितीया के चन्द्रमा का दर्शन सौभाग्य-सूचक माना जाता है। आयरलैण्ड के निवासी नवीन चन्द्रमा को देखकर अपना घुटना टेक कर उसकी प्रार्थना करते हैं। सोमवार को नवीन चन्द्रमा का दर्शन सौभाग्यकारी है। शनिवार के दिन नवीन चन्द्र तथा रविवार को पूर्ण चन्द्र का दर्शन अशुभ है।[1] इटली के उत्तर में तथा फ्रान्स देश के दक्षिणी जनपद में चन्द्रमा में परिवर्तन का होना भयानक तथा अमंगल का सूचक है।

लिंकनशायर में नाविक लोगों के द्वारा यह विश्वास किया जाता है यदि चन्द्रमा के पास आकाश में कोई बड़ा तारा या नक्षत्र दिखाई पड़े तो शीघ्र ही भयानक तथा उपद्रवकारी मौसम का आगमन होता है। कुहासा तथा चन्द्रमा की कला से पुरवैया हवा के चलने का अनुमान किया जाता है।[2]

चन्द्रमा के चारों ओर परिवेष दिखाई पड़ने पर अनर्थ की सूचना मिलती है इसका उल्लेख पहले किया जा चुका है। परन्तु यह भारतीय विश्वास स्काटलैण्ड में भी प्रचलित दिखाई पड़ता है। वहाँ प्रचलित एक कृषि संबंधी

---

१. Saturday new and Sunday full,
Never was good, and never Wull,— इंगलिश फोकलोर, पृ० ३८

२. A fog and a small moon
bring an easterly wind soon वही पृ० ४१

लोकोक्ति के अनुसार यदि चन्द्रमा चाँदी के समान सफेद दिखाई पड़े तो प्रचुर अन्न की उत्पत्ति होती है। परन्तु उसके चारों ओर यदि परिवेष दृष्टिगोचर हो तो यह निश्चय प्रलयकारी है।[१]

वर्कशायर में युवती लड़कियाँ दूज के चन्द्रमा को देखकर अत्यन्त प्रसन्न होती हैं और खेतों में जाकर अपने भावी पति को प्राप्त कराने के लिए उससे प्रार्थना करती हैं।[२]

भारतीय लोग चन्द्रमा में मृग या शशक के निवास का विश्वास करते हैं। परन्तु इंग्लैण्ड के लोग उसमें मानव के निवास की कल्पना करते हैं जो शराब पीता है।[३]

(३) मंगल

मंगल ग्रह बड़ा दुष्ट माना जाता है। शनि और मंगल ये ऐसे अमंगलकारी तथा दुष्ट ग्रह हैं जो मनुष्यों को बड़ा ही नुकसान पहुँचाते है। जिस व्यक्ति की कुण्डली में यह ग्रह खराब होता है उसे अपने जीवन में अनेक कष्टों का सामना करना पड़ता है। यह मनुष्यों को शारीरिक कष्ट भी पहुँचाता है। अत: इससे बचने के लिए अनेक उपाय किये जाते है।

मंगल का स्वरूप लाल माना जाता है। अत: इसकी पूजा में सभी लाल वस्तुओं का ही प्रयोग किया जाता है। अडहुल अथवा लाल गुलाब के फूल से इसकी आराधना की जाती है। इस देवता को लाल वस्त्र-एकरंगा चढाया जाता है तथा लाल पक्वान्न तथा लाल मिष्ठान्न—जैसे बेसन का लड्डू—इसे समर्पित किया जाता है। इस प्रकार इस लाल आकार के देवता की पूजा में सभी लाल वस्तुएँ ही चढ़ाई जाती हैं।

---

१. "If the moon shows like a silver shield,
you need not be afraid to reap your [field.
But if she rises holoed round.
Soon we will tread on deluged ground."
—इंगलिश फोकलोर, पृ० ४२

२. New moon, new moon, I hail thee,
By all the virtue in the body.
Grant this night that I may see,
He who my true love is to be.—वही, पृ० ४४

३. The man in the moon drinks [Claret.
But he is dull rack-a dandy
—इंगलिश फोकलोर, पृ० ५२

जो व्यक्ति मंगल ग्रह से पीड़ित रहते हैं वे उनकी प्रसन्नता के लिए लाल हीरा को अपनी अँगूठी में धारण करते है। गाँवों में अनेक व्यक्ति मंगल के दिन व्रत रखते हैं। वे दिन भर अन्न ग्रहण नहीं करते परन्तु रात्रि में लाल पक्वान्न—पूआ और ठेकुआ आदि को खाते हैं। परन्तु यह भोजन अलोना (नमक रहित) ही होना चाहिए।

जिस लड़की की कुण्डली में मंगल ग्रह प्रधान होता है वह लडकी 'मंगली' कहलाती है। यह उसके लिए बड़ा अशुभ तथा अमंगलकारी माना जाता है। यदि उस 'मंगली' लड़की का विवाह किसी 'अमंगली' वर से कर दिया जाता है तो लोगों का ऐसा विश्वास है कि दोनों में से किसी एक—प्रायः वर—की मृत्यु निश्चित है। इसलिये मंगली लड़की का पिता उसके विवाह के लिए बड़ा ही चिन्तित रहता है और किसी ऐसे ही लडके से उसका विवाह करता है जो स्वयं भी 'मंगली' हो। तब कहीं इस अमंगल का निराकरण समझा जाता है अन्यथा नहीं। इस प्रकार इस दुष्ट ग्रह का नाम तो मंगल अवश्य है परन्तु यह सदा अमंगल ही करता रहता है।

मंगल ग्रह की पूजा तो अवश्य की जाती है परन्तु इसका कोई मंदिर स्थापित नहीं पाया जाता है। काशी में भी—जहाँ प्रायः सभी देवी और देवताओं के मंदिर स्थित है—इस देवता के मंदिर का प्रायः अभाव ही है। हाँ, यहाँ मंगला गौरी का मंदिर तो अवश्य ही पंचगंगा घाट पर अवस्थित है परन्तु उसका मंगल ग्रह से कोई संबंध नहीं है।

(४) बुध

यह एक अत्यन्त शान्त, हानि नहीं करने वाला तथा अप्रसिद्ध ग्रह है जिसका लोक-विश्वास के संसार कोई विशेष महत्त्व नहीं है।

(५) बृहस्पति

यह ग्रह विद्या का अधिष्ठाता माना जाता है। जिस व्यक्ति की कुण्डली में अपने 'ग्रह' अर्थात् चतुर्थ स्थान में बृहस्पति होता है वह व्यक्ति बहुत बड़ा विद्वान् होता है। इसीलिए विद्या प्राप्ति के लिए इस देवता की आराधना की जाती है।

जिस व्यक्ति की कुण्डली में बृहस्पति ग्रह खराब होता है वह उनकी शान्ति के लिए अनेक प्रकार की पूजा करता है

(६) शुक्र

इस ग्रह के संबंध में भी जनता में अनेक लोक-विश्वास प्रचलित हैं। यह बड़ा प्रकाशमान ग्रह है। अन्य तारों तथा नक्षत्रों की अपेक्षा इसमें अधिक प्रकाश दिखाई पड़ता है। यह प्रायः पूर्व दिशा में उदय होता है। अतः रात्रि में प्रायः ग्रामीण स्त्रियाँ भी इसके अधिक प्रकाश तथा चमक को देखकर इस नक्षत्र से [illegible] होती हैं। अतएव स्त्रियाँ इसे 'सुकवा' नाम से अभिहित करती हैं। कुछ अन्य [illegible] तथा [illegible] यह 'सुकवा' के नाम से [illegible] है [illegible] से पता चलता है।

"पूरब के ओर मुरुखवा।
सुकवा का कहे भुकवा॥"

रात्रि की अवधि को नापने के लिए शुक्र का तारा एक वृहद् माप दण्ड अथवा [illegible] का काम करता है। गाँवों में जहाँ समय निर्धारण करने लिए घड़ी आदि यंत्रों का अत्यन्त अभाव होता है, वहाँ शुक्र का यह तारा ही ग्रामीणों के लिए समय-मापन का अचूक साधन है। शुक्रतारा का एक निश्चित दिशा में आगमन रात्रि के अवसान की सूचना देता है। इस प्रकार यह ग्रामीण लोगों का अत्यधिक सहायक है।

विवाह तथा गवना आदि मांगलिक अवसरों पर शुक्र की अनुकूल स्थिति बड़ी आवश्यक मानी जाती है। 'शुक्रोदय' के बिना विवाह आदि संस्कारों का सम्पादित करना निषिद्ध है। शुक्र कभी "डूब" जाता है। अतः आकाश में जब इसका उदय होता है तभी कोई विवाहादि काम करना शुभ माना जाता है। गवना के अवसर पर जिस दिशा में जाना है उसमें शुक्र का सम्मुख होना आवश्यक है। अन्यथा द्विरागमन का कार्य नहीं किया जा सकता।

(७) शनि

यह बड़ा ही दुष्ट ग्रह है जो मनुष्यों को बहुत पीड़ित करता है। जिसकी कुण्डली में शनि भगवान् खराब हैं उसका ईश्वर ही रक्षक है। दुष्ट ग्रहों की कोटि में मंगल के साथ इसे कोष्ठ में रखा जा सकता है। बल्कि यह मंगल की अपेक्षा प्रथम स्थान का अधिकारी है। महाकवि बिहारी ने लिखा है कि बड़े, सीधे तथा अहानिकारक ग्रहों को तो कोई भी नहीं पूछता परन्तु छोटे तथा

दुष्ट ग्रहो की सब लोग पूजा किया करते हैं ।[1] बिहारी का यह कथन शनि के संबंध मे पूर्णतया चरितार्थ होता है ।

शनि भगवान् का रूप काला होता है । अतः शनि ग्रह से पीड़ित मनुष्य इनकी शान्ति के लिए सभी काली वस्तुओं को इन्हें समर्पित करते हैं जिसमें काला वस्त्र तथा काला पुष्प प्रधान होता है । सूर्य और चन्द्रमा के अतिरिक्त अन्य किसी ग्रह के मंदिर में प्रतिष्ठा नहीं सुनी जाती । परन्तु काशी में बाबा विश्वनाथ के मंदिर के पास शनि भगवान् का एक छोटा-सा मंदिर स्थित है जहाँ इनको प्रसन्न करने के लिए जनता के द्वारा इनकी पूजा की जाती है । इस मंदिर में शनि भगवान् काला वस्त्र पहिने हुए विराजमान हैं । इनके मंदिर में सरसों के तेल का दीपक जलाया जाता है । भक्तगण इन्हें काला वस्त्र तथा काला फूल—जैसे काला गुलाब से इनकी पूजा करते है । कुछ भिक्षुक गण शनिवार के दिन "शनि का तेल दे" "शनि का तेल दे" चिल्लाते हुए काशी की गलियों में घूमते-फिरते दिखाई पड़ते हैं । परन्तु शनि भगवान् का सरसों के तेल से क्या संबंध है यह कहना कठिन है । संभवतः यह रंग में इषत् काला होता है इसीलिए यह उन्हें प्रिय है ।

किसी व्यक्ति की जन्म कुण्डली मे शनि की महादशा बीसियों वर्षों तक चलती रहती है । ये वर्ष उस व्यक्ति के लिए कष्टदायक होते है । परन्तु इस महादशा के अन्तर्गत साढ़े सात वर्ष अत्यन्त ही कष्टदायक तथा दुःख देने वाले होते हैं । इस कालावधि को "शनि की साढ़ेसाती" कहा जाता है जो अनेक दृष्टियों से अत्यन्त ही पीड़ा जनक तथा घातक होता है । गोस्वामी तुलसीदास ने दुष्ट मन्थरा नामक दासी को "अवध की साढ़साती" कहा है ।[2] कहने का तात्पर्य केवल इतना ही है कि मनुष्य के जीवन में शनि की यह "साढ़साती" घोर कष्टदायी तथा अमंगलकारिणी मानी जाती है ।

(८) राहु

राहु की भी शनि और मंगल की ही भाँति दुष्ट ग्रहों में गणना की जाती है । राहु की उत्पत्ति के संबंध में यह किम्वदन्ती प्रसिद्ध है कि समुद्र मन्थन

---

१. बसे बुराई जासु तन, ताको सब सन्मान ।
भलो भलो कहि छोडिए, खोटे ग्रह जप-दान ॥—बिहारी सतसई ।

२ अवध साढसाती तब बोली   रा० च० मा०

प्रतीकात्मक रूप से विराजमान रहता है। यह ग्रह शान्त है। अतः इसकी पूजा-आराधना का कोई विशेष विधान नहीं पाया जाता। इसकी सज्जनता ही इसकी अप्रसिद्धि का कारण है।

(२) परिच्छेद

नक्षत्र

आकाशीय पिण्डों में नक्षत्रों की भी गणना की जाती है। इनकी समस्त संख्या २७ (सत्ताइस) है। जैसे अश्विनी, भरणी, कृत्तिका, और रोहिणी आदि। इन नक्षत्रों में से जो प्रसिद्ध हैं तथा जिनके संबंध में कोई लोक-विश्वास पाया जाता है उनकी ही चर्चा यहाँ प्रस्तुत की जाती है।

सुप्रसिद्ध ऋतु विज्ञान शास्त्री भड्डरी ने वर्षा-होने अथवा न होने के संबंध में विभिन्न नक्षत्रों का उल्लेख अपनी सूक्तियों में किया है। उसी के आधार पर यह वर्णन किया जा रहा है।

(१) **भरणी**—भड्डरी का यह कथन है कि यदि भरणी नक्षत्र मे पानी बरसे तो अपनी परिणीता पत्नी को छोड़ना पड़ेगा। अर्थात् असमय वर्षा से फसल नष्ट हो जायेगी और धन कमाने के लिए पति को परदेश जाना पड़ेगा।[१]

(२) **रोहिणी**—इस नक्षत्र में वर्षा का होना अशुभ माना जाता है क्योंकि इससे अच्छी फसल भी आधी हो जायेगी।[२] रोहिणी मे यदि आँधी चले, और मृगशिरा मे कड़ाके की धूप हो तो राजा लड़ेंगे और प्रजा का नाश होगा।[३]

रोहिणी के विषय में यह भी विश्वास है कि यदि इस नक्षत्र मे वर्षा खूब हो, मृगशिरा मे गर्मी पड़े, और कुछ-कुछ आर्द्रा मे भी पानी बरसे तो धान की इतनी अधिक पैदावार होगी कि कुत्ते भी भात नहीं खायेंगे।[४]

---

१. बरसे भरणी, छोड़े घरणी।

२. रोहन रेली, रूप्या री अधली।

३. रोहन बाजै, मृगसिरा तपै।
   राजा जूझे, परजा खपै॥—ग्रा० सा०, पृ० ५२

४. रोहिनि बरसै मृग तपै; कुछ कुछ अद्रा जाय।
   कहै घाघ घाघिन सों स्वान भात नहिं खाय

(३) मृगसिरा— भड्डरी का कहना है मृगशिरा नक्षत्र के तपने पर अर्थात् गर्मी पड़ने पर कपास, बालक, भैंस और ऊख ये चार छटपटा कर रह जाते हैं अर्थात् गाय और दूध कम हो जाने पर बालक कष्ट पाते है।[१] परन्तु एक दूसरी सूक्ति से पता चलता है कि मृगशिरा में अत्यधिक गर्मी पड़ने पर वर्षा अच्छी होती है।[२]

(४) आर्द्रा - आर्द्रा का अर्थ गीला करना होता है। अर्थात् इतनी अधिक वर्षा होती है कि पृथ्वी गीली-गीली हो जाती है। इस नक्षत्र में वर्षा होने पर अत्यधिक धान की फसल होती है।[३]

(५) कृत्तिका—यदि कृत्तिका नक्षत्र बिना बरसे चला जाय आर्द्रा मे भी बूंद न पड़े तो यह निश्चय जानना चाहिए कि अकाल पड़ेगा।[४]

(६) उत्तरा फाल्गुनी (७) हस्त और (८) चित्रा – इन तीनों नक्षत्रों के संबंध में भी वर्षा संबंधी सूक्तियाँ पाई जाती हैं। यदि उत्तरा फाल्गुनी नक्षत्र में पानी न बरसे, हस्त नक्षत्र मुँह मोड़ कर चला जाय; परन्तु विचारी चित्रा ने उजड़ती हुई प्रजा को फिर से बसा लिया अर्थात् उत्तरा और हस्त मे वृष्टि न हो और चित्रा में हो जाय तो भी फसल अच्छी होती है।[५] भड्डरी कहते है कि चित्रा नक्षत्र चढ़ते हुए और हस्त नक्षत्र के उतरते हुए पानी बरसे तो इतनी अधिक फसल होगी कि राजा कितना भी कर अर्थात् टैक्स ले परन्तु

---

१ तपै मृगसिरा, बिलखै चार।
बन बालक औ भैंस, उखार॥

२क. तपै मृगसिरा जोय।
तो वर्षा पूरन होय॥

ख. मृगसिर, वायु न बादला।
रोहिणी तपै न जेठ।
आर्द्रा जो बरसै नहीं;
कौन सहै अलसेठ॥

३. रोहिणी बरसै, मृग तपै, कुछ-कुछ अद्रा जाय.

४. कृत्तिका तो कोरी गई, अद्रा मेह न बूंद।
तो यों जानो भड्डरी; काल मचावै दूंद॥

५. उतरा उत्तर दे गई, हस्त गयो मुख मोरि।
भली विचारी चित्तरा; परजा लेह बहोरि॥

किसान कभी नहीं हारेगा।[1] परन्तु इस नक्षत्र (हस्त) में पानी का बरसना कभी-कभी नुकसान भी करता है।[2] इसी प्रकार से चित्रा में वर्षा होने से मोथी, उड़द और ईख आदि फसलों की हानि होती है।[3]

हस्त नक्षत्र में यदि पानी बरसे और चित्रा मड़रा रही हो तो किसान घर में बैठे ही खुशी के गीत गायेगा।[4] हस्त नक्षत्र को गाँवों में 'हथिया' कहा जाता है। इस नक्षत्र में पानी अधिक बरसता है जिसे 'हथिया का झपसा' कहा जाता है। आज से ५०-६० वर्ष पहिले इस नक्षत्र में इतनी प्रचुर वर्षा होती थी कि लगातार आठ-दस दिनों तक वर्षा बन्द होने का नाम ही नहीं लेती थी। अतः गरीब किसान अपने घर में एक सप्ताह के लिए भोजन की सामग्री जुटा कर रखता था। अनवरत वर्षा के कारण इन दिनों में इन्धन का अभाव होने के कारण, लोग सत्तू खाकर अपना जीवनयापन करते थे। इस प्रकार से हस्त नक्षत्र (हथिया) में वर्षा का प्रचुर योग होता था। परन्तु काल के परिवर्तन के साथ अब ऋतु में भी परिवर्तन आ गया है।

आर्द्रा और हस्त (हथिया) नक्षत्र के संबंध में यह सूक्ति प्रसिद्ध है कि आर्द्रा नक्षत्र के चढ़ते समय और हस्त के उतरते समय यदि वर्षा न हो तो गृहस्थ पछतायेगा अर्थात् फसल अच्छी नहीं होगी।[5]

(९) स्वाति

स्वाति नक्षत्र में पानी के बरसने से न तो कपास पैदा होता है न घर में

---

१. चढ़त जो बरसे चित्तरा;
उतरत बरसै हस्त।
कितनो राजा डाँड़ लै;
हारे नाहिं गिरहस्त॥—त्रिपाठी—ग्रा० सा०, पृ० ४८

२. हस्त बरसै तीन होय; साली, सक्कर, मास।
हस्त बरसै तीन जाय, तिल, कोदौ, कपास॥

३. चीत के बरसे तीन जायँ।
मोथी, मास, उखार॥

४. हथिया बरसे, चित्रा मँडराय।
घर बैठें, किसान रिरियाय॥

५. आवत आदर ना दियो; जात न दीन्हों हस्त।
तो दोनों पछतायेंगे पाहुन और गिरहस्त॥

चरखा चलता है और न धुनियाँ की तांत ही बोलती है।[1] इस नक्षत्र के विषय में लोक तथा साहित्य में प्रसिद्धि यह है कि पपीहा केवल इसी नक्षत्र मे बरसे हुए जल को ही पीता है, अन्य किसी जल को नहीं। तुलसीदास जी ने इस तथ्य की ओर संकेत किया है।[2] यह भी प्रसिद्धि है कि इस नक्षत्र मे बरसा हुआ पानी यदि सीपी में पड़ जाय तो उसमें मोती उत्पन्न होता है। महाकवि जायसी ने इस तथ्य की पुष्टि की है।[3] पपीहा स्वाति के जल के लिए तरसता रहता है।

(१०) मघा

मघा नक्षत्र में वर्षा के होने से अन्न बहुत पैदा होता है। फिर भूखे मनुष्य को भगवान् से कुछ मांगना नहीं पड़ता।[4] मघा वर्षा का प्रधान नक्षत्र है। अतः इसमें प्रचुर वर्षा होती है। जायसी ने लिखा है मघा नक्षत्र में बड़े जोरों से वर्षा हो रही है और विरहिणी नागमती की आँखों से आँसुओं की झड़ी लगी हुई है मानो आरी से पानी चू रहा हो।[5]

(११) अश्विनी तथा (१२) पूर्वाषाढ़

अश्विनी नक्षत्र में यदि वर्षा हुई तथा भरणी, ज्येष्ठा तथा मूल मे भी हुई तब पूर्वाषाढ़ नक्षत्र मे कितनी धूल शेष रहेगी? निश्चय ही इस साल प्रचुर अन्न पैदा होगा।[6]

---

१. जो बरसे पुनरबस स्वाती।
चरखा चलै, न बोलै तांती॥

२. बधो व्याध गिरो पुण्य जल।
उलटि उठाई चोंच।
तुलसी चातक प्रेम में
मरतो लगी न खोंच॥

३. शुक्ल : जायसी ग्रन्थावली

४. मघा के बरसे, माता के परसे।
भूखा न मांगे, फिर कुछ हरसे॥

५. बरसै मघा झंकोरि झकोरी।
मोर दुइ नयन चुवै जस आरी॥
—जायसी ग्रन्थावली-नागमती वियोग खण्ड

६. "असुना गलि, भरनी गली;
गलियो ज्येष्ठा मूर।
पुरवाषाढ़ा धूल कित;
उपजै सातो तूर॥"

(१३) मूल—इस नक्षत्र में पुत्र का पैदा होना बड़ा घातक माना जाता है। इस कुलच्छन पुत्र के पैदा होने से या तो पिता की मृत्यु होती है अथवा माता की। अतः कर्मकाण्डी पण्डित से मूल नक्षत्र की शान्ति के लिए प्रचुर पूजा-पाठ कराना अत्यन्त आवश्यक माना जाता है।

राशि

जिस प्रकार ग्रह नौ प्रकार के होते हैं उसी प्रकार से राशियाँ भी बारह मानी हैं जिनके नाम निम्नांकित है—

(१) मेष (२) वृष (३) मिथुन (४) कर्क (५) सिंह (६) कन्या (७) तुला (८) वृश्चिक (९) धनु (१०) मकर (११) कुम्भ (१२) मीन।

इन राशियों के संबंध में भी अनेक लोक-विश्वास प्रचलित हैं जिनका विवरण यहाँ दिया जा रहा है।

मनुष्य की जन्म-कुण्डली में बारह राशियाँ होती हैं। इन राशियों के विभिन्न स्थानों में नव (नौ) ग्रहों की स्थिति होती है जिसके कारण मानवों के जीवन पर बड़ा प्रभाव पड़ता है। यदि शनि ग्रह इन विभिन्न राशियों मे स्थित हो तो भड्डरी के विचार से उसका फल निम्नलिखित होता है—

मेष राशि में शनि के होने से गुजरात प्रान्त के निवासियों को कष्ट होगा। यदि वृष राशि में होगा तब आबू और गिरनार प्रान्त दुःख पायेंगे। मिथुन पर होगा तब पिंडाल और मुलतान जनपद और कर्क राशि में कश्मीर और खुरासान पर संकट आयेगा। सिंह राशि में होने पर दिल्ली का राज्य भग होगा, कन्या राशि में पूर्व दिशा में हानि पहुँचेगी। वृश्चिक राशि में होने पर मारवाड़ में अकाल पड़ेगा। मकर और कुम्भ राशियों में होगा तो ऐसा संकट पड़ेगा कि कोई दिया हुआ अन्न भी नहीं खा सकेगा। परन्तु यदि धनु और मीन राशियों में शनि की स्थिति होगी तब तेज हवा चलेगी और अकाल पड़ेगा।[१]

---

१. सनि चक्कर की सुनिये बात।
मेष राशि भुगतै गुजरात॥
वृष में करै निरोधा चार।
भूखै आबू औ गिरनार॥
मिथुनै पिंगल औ मुलतान।
कर्कै कासमीर खुरसान॥
जो सनि सिंहा कर सी रंग।
तो गढ़ दिल्ली होसी भंग।

(शेष फुटनोट पृष्ठ ५२ पर)

यह बड़े ही आश्चर्य की बात है कि उस अतीत काल में भड्डरी
आधार पर इतने तथ्यों की भविष्यवाणी कर दी जिनमें से अधिकांश
निक शोधों के आधार पर आज भी सत्य प्रमाणित होती है। जब
काल में ऋतु-विज्ञान (मेटिरियोलाजी) के विज्ञान की इतनी उन्नति
थी तब इस ग्रामीण ऋतु-विशेषज्ञ की ये सूक्तियाँ सचमुच मनुष्यों को
में डाल देती हैं।

भारतीय ज्योतिषशास्त्र के अनुसार जन्म-कुण्डली में इन रा
विभिन्न ग्रहों की निम्नांकित स्थिति शुभ तथा कल्याणकारी मानी ज

अथ जन्म-कुण्डली
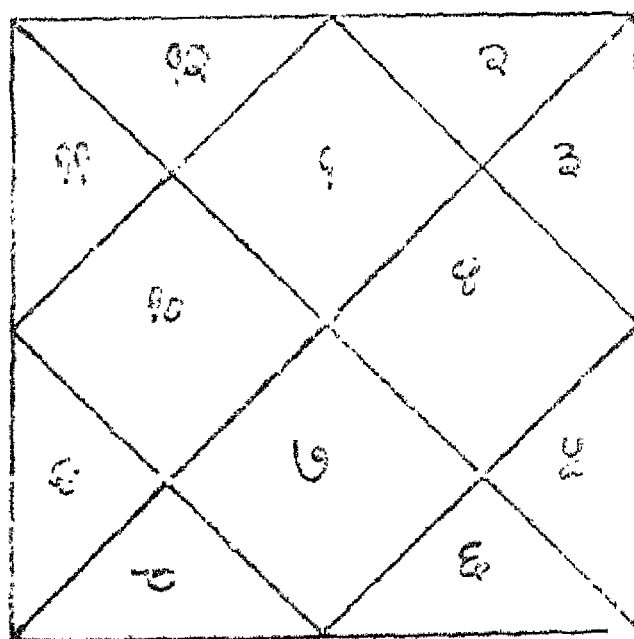
(पृष्ठ ५१ का शेष फुटनोट)

जो सनि कन्या करै निवास।
तो पूरब कछु माल निवास॥
तुला, वृश्चिक के जो सनि होय।
मारवाड़ ने काट विलोय॥
मकरा, कुम्भा जो सनि आवै।
दोन्हों अन्न न कोई खावै॥
जो धन, मीन सनीचर जाय।
पवन चलै पानी जु नसाय॥—त्रिपाठी—ग्राम साहित्य,

इस कुण्डली में १२ राशियाँ अवस्थित हैं जिनका उल्लेख ऊपर किया गया है। इनमें प्रत्येक स्थान के स्वामी पृथक्-पृथक् हैं।

(३) परिच्छेद

प्राकृतिक पदार्थ (Elements of Nature) संबंधी शकुन

प्रकृति के विभिन्न तत्त्वों से भी अनेक शकुनों की प्राप्ति होती है। इन प्राकृतिक तत्त्वों को निम्नांकित सात वर्गों में विभाजित किया जा सकता है।

(१) वायु
(२) आँधी
(३) बिजली
(४) वर्षा
(५) भूकम्प
(६) विभिन्न दिशाएँ (Directions)
(७) आकालिक घटना।

इनमें से प्रत्येक का वर्णन संक्षिप्त रूप से यहाँ प्रस्तुत किया जाता है।

(१) **वायु**—वायु की अनुकूलता तथा प्रतिकूलता के कारण से अनेक शकुनों की प्राप्ति होती है। वायु का गुण शीतल, मन्द और सुगन्ध माना जाता है अर्थात् वायु शीतल होनी चाहिए, वह मन्द-मन्द गति से बहे तथा इस के साथ ही उसमें सुगन्ध भी होनी चाहिए। इसीलिए संस्कृत के कवियों ने मलयानिल अर्थात् मलय पर्वत से आने वाली वायु की प्रशंसा की है जो सुगन्धित होती है। कावेरी नदी के जल को स्पर्श करके आने वाली वायु की शीतलता, मन्दता तथा पवित्रता की प्रशंसा करता हुआ कोई कवि कहता है कि—

"अयमेति मन्द मन्दं,
कावेरी वारि पावनः पवनः"।

वायु में एक चौथा गुण यह भी होना चाहिए कि उसमें धूल न हो क्योंकि धूल से युक्त वायु सुखकर नहीं होती। यात्रा के समय सामने की दिशा से जो वायु चलती है उसे 'अनुकूल' कहते हैं। परन्तु विपरीत दिशा से आने वाली वायु प्रतिकूल कहलाती है।

वाल्मीकि रामायण में विश्वामित्र के साथ राम के प्रस्थान करते समय

धूल से रहित (रजोहीन) सुखकर वायु का चलना शुभ सूचक माना गया है।[१] कालिदास ने सन्तान की कामना से वशिष्ठ के आश्रम में जाते समय मार्ग मे अनुकूल वायु का चलना दिलीप तथा सुदक्षिणा के मनोरथ सिद्धि का सूचक माना है।[२] इसी प्रकार से यक्ष का सन्देश लेकर मेघ के अलकापुरी जाते समय मन्द-मन्द तथा अनुकूल वायु का चलना कार्य सिद्धि का सूचक माना गया है।[३]

रामचरित महाकाव्य (९वीं शताब्दी) में सीताहरण के पश्चात् शीतल तथा सुगन्धित वायु का चलना राम के लिए अविलम्ब कार्य सिद्धि की सूचना देता है।[४] यशस्तिलक चम्पू (१०वीं शताब्दी) में रानी चन्द्रमती के पुत्र यशोधर के जन्म के अवसर पर शीतल, मन्द और सुगन्धित वायु का चलना शुभ है।[५] धूलि से रहित वायु का बहना शुभसूचक होता है।[६] इसी प्रकार से पाण्डवों के जन्म के अवसर पर वायु का मन्द-मन्द बहना कार्य सिद्धि की सूचना देता है।[७] राजा ईश्वर सिंह के जन्म यथा दिग्विजय के लिए प्रस्थान करते समय अनुकूल वायु का बहना शुभ माना गया है।[८]

जिस प्रकार से शीतल-मन्द-सुगन्ध तथा अनुकूल वायु का बहना कार्य-सिद्धि का सूचक होता है उसी प्रकार से प्रतिकूल वायु का चलना अशुभ तथा अमंगल सूचक है। नीलकण्ठ विजय चम्पू (१७वीं शताब्दी) में दैत्यों के साथ युद्ध करते इन्द्र के लिए प्रतिकूल वायु का चलना अशुभ सूचक के रूप में

---

१. ततो वायुः सुखस्पर्शो नीरजस्को ववौ तदा।
विश्वामित्रगतं दृष्ट्वा, रामं राजीव लोचनम्॥
—वा० रा०—(बा० का०), सर्ग २२/४

२. पवनास्यानुकूलत्वात्, प्रार्थनासिद्धि शंसिनः।
रजोभिः तुरगोत्कीर्णैः अस्पृष्टालक वेष्टनौ॥

३. मन्दं मन्दं नुदति पवनश्चानुकूलो यथा त्वां।
वामश्चाय नदति मधुरं चातकस्ते सगन्धः॥—मे० दू०, १०

४. अयं वहन्याह्न पुष्प सौरभो,
वनानिलः प्राण समांग शीतलः।—अभिनन्द रामचरित, पृ० ३६

५. सोमदेव सूरिः यशस्तिलक चम्पू, २/६९

६. जयानक—पृथ्वीराज विजय, सर्ग ८/४

७. अनन्त कविः—चम्पूभारत, स्तवक, १/५०

८. देवर्षि श्री कृष्ण भट्ट—ईश्वर विलास, सर्ग ११/२

उल्लिखित है ।[1] बाल भारत महाकाव्य में सुयोधन की सेना के रण भूमि के लिए प्रस्थान करते समय प्रतिकूल वायु का चलना वीरों की भावी मृत्यु का सूचक है ।[2] लोक में भी प्रतिकूल वायु का चलना शुभ नहीं माना जाता । विशेष कर यात्रा के लिए प्रस्थान करते समय 'उल्टी हवा' का चलना बुरा माना जाता है । यद्यपि लोक-साहित्य में ऐसा कोई उल्लेख नहीं मिलता परन्तु समाज में यह अशुभ की दृष्टि से देखा जाता है ।

(२) आँधी

आँधी के कारण भी अनेक शकुनों की प्राप्ति होती है ।

वायु और आँधी में अन्तर— यह वायु सदा मन्दगति से चलती है और वह शीतल तथा सुगन्धित होती है । परन्तु आँधी बड़े ही प्रचण्ड वेग से बहती है और शीतलता एवं सुगन्धि का इसमें अत्यन्त अभाव पाया जाता है ।

आँधी के भेद—वायु की भीषणता तथा उसके प्रकोप के कारण आँधी को तीन वर्गों में विभाजित किया जा सकता है—

(१) झंझावात (२) अंधड़ (३) बड़ेरा ।

प्रचण्ड वेग से अत्यन्त जोरों से चलने वाली आँधी को झंझावात कहते हैं । गाँवों में इसे "बुढ़िया आँधी" कहा जाता है । यह इतने प्रचण्ड वेग से चलती है कि बड़े-बडे वृक्षों को भी जड़-मूल से उखाड़ कर धराशायी कर देती है । संस्कृत में ऐसी आँधी को 'प्रभंजन' कहा जाता है ।

अंधड झंझावात का ही एक रूप है जो अपने वेग में सामान्यतया मृदु तथा धूल से युक्त होता है । गर्मी के दिनों में प्रायः अंधड़ चला करता है । बड़ेरा आँधी के उस रूप को कहते हैं जो आकार में गोला होता है । वह धूल और पत्तियों को अपने भीतर समेट कर एक स्थान से दूसरे स्थान को चलता दिखाई पड़ता है । बड़ेरा शब्द बवण्डर का अपभ्रंश रूप ज्ञात होता है जिसका अर्थ झंझट और परेशानी होता है ।

वाल्मीकि रामायण में राम के साथ युद्ध करने के लिए खर नामक राक्षस के प्रस्थान करते समय आँधी का जोरो से चलना अशुभ माना गया है । इसी प्रकार समुद्र को पार करने पर झंझावात का चलना राक्षसो के भावी भयकर

---

१ नीलकण्ठ दीक्षितः —नीलकण्ठ विजयः, आश्वास १

२. अमरचन्द्र सूरि —बालभारत उद्योग पर्व, सर्ग ५/७८

नाश का सूचक है।[१] कालिदास ने महाराजा दशरथ के अयोध्या-समय प्रतिकूलगामी प्रभंजन को उत्पात की सूचना देने वाला महाकवि भट्ट ने रावण को समझाने समय भीषण अंधड़ के आने सूचक के रूप में वर्णन किया है।[३] महाकवि बाण ने भी धूलि के टुकड़ों से भरे हुए तथा साँय-साँय कर ध्वनि करते वाले राज्यवर्धन की मृत्यु का सूचक होने के कारण अशुभ माना है।[४]

में भी प्रभंजन अर्थात् भयंकर तथा जोरों से झंझावात का चलना भ माना जाता है क्योंकि इसके चलने से ग्रामीण लोगों के सामने लय का दृश्य उपस्थित हो जाता है। उनके बाग और बगीचों के जड़ से उखड कर पृथ्वी पर गिर जाते हैं। उनके घर का छप्पर के कारण उड़ कर आकाश में चला जाता है। उनके खपरैले घर हस हो जाते हैं। इस प्रकार गाँवों में सर्वत्र तबाही और बरबादी ी है।

यंकर अंधड़ से छोटे-छोटे बच्चे इतने भयभीत रहते हैं कि वे अपने से पूछते हैं कि ए नानी ! यह बतलाओ कि "बुढ़िया आन्धी" आयेगी तो हम लोग भाग कर कहाँ जायेंगे।

"ए बुढ़िया नानी, कहऽना कहानी।
जब बुढ़िया आन्ही आई, कहवाँ हम परानी।
कहवाँ हम लुकानी॥

ः कलुषाः वान्ति, कम्पते च वसुन्धरा।
प्राणि च वेपन्ते, पतन्ति च महीरुहाः॥
—वा० रा०—(यु० का०), सर्ग २३।४

आतु मरुतः प्रतीपगाः,
ध्वज-तरु-प्रमाथिनः।
णुः भृशतया वरूथिनी,
ः इव नदीरयाः स्थलीम्॥—रघुवंश ११।५८

सुन्यैः स्थगिता रजोभिः
मरुद्भिः विकृतैः विलोलैः।—रावण वध—सर्ग १२, श्लोक ६६
रत, उच्छ्वास ६

बड़ेरा अर्थात् बवण्डर के सम्बन्ध में ग्रामीण जनता को यह विश्वास है कि इस प्रकार का बड़ेरा भूतों के द्वारा रचा जाता है। अतः जब बड़ेरा उठता है और वह आगे बढ़ता चला जाता है तब सामान्यतया बालकगण उसकी परिधि से दूर हट जाने का प्रयास करते हैं क्योंकि वे डरते हैं कि कहीं उन्हें भूत न पकड़ ले।

विद्युत्

विद्युत् के चमकने, उसके विभिन्न रंगों के परिवर्तन से भी अनेक शकुनों तथा अपशकुनों की कल्पना की जाती है। आकाश में चमकने वाली बिजुली के विभिन्न रंगों को देखकर उसके शुभ अथवा अशुभ होने की सूचना मिलती है। इस सम्बन्ध में संस्कृत का यह श्लोक बड़ा ही प्रसिद्ध तथा लोकप्रिय है।

> "वाताय कपिला विद्युत्,
> आतपायाति लोहिनी।
> श्यामा भवति सस्याय,
> दुर्भिक्षाय सिता भवेत्॥

अर्थात् यदि आकाश में कपिल (भूरी या मटमैली) रंग की बिजली चमके तब उससे प्रचण्ड आँधी आने की आशंका होती है। यदि लाल बिजली चमके तब गर्मी अत्यधिक पड़ेगी। यदि काली बिजली दिखाई पड़े तब अधिक अन्न के उपजने की सम्भावना की जा सकती है। परन्तु यदि बिल्कुल सफेद बिजली नभ में दृष्टिगोचर हो तब देश में बहुत बड़ा अकाल पड़ेगा। इसकी सहज में ही आशंका की जा सकती हैं। इस प्रकार बिजली के विभिन्न रंगों के कारण शकुन अथवा अपशकुन की प्राप्ति की जाती है। भास ने अपने नाटक में कृष्ण जन्म के अवसर पर आकाश में बिजली का चमकना शुभ माना है।[1] कभी-कभी बिजली किसी गाँव, मन्दिर, घर अथवा किसी मनुष्य के शरीर पर गिर जाती है जिससे घर का सर्वनाश तथा उस मनुष्य की मृत्यु हो जाती है। बिजली के इस पतन या गिरने को वज्रपात कहा जाता है। यह वज्रपात बड़ा ही अनिष्ट तथा अमंगलकारी माना जाता है। गाँवों में जब स्त्रियाँ किसी को गाली देती हैं तब क्रोधित होकर कहती हैं कि "तोहरा ऊपर बज्जर पड़ो"

---

१ भास बाल चरित, अङ्क १

अर्थात् तुम्हारे ऊपर वज्रपात हो जाय। इस प्रकार बिजली का गिरना अपशकुन ही नहीं अनिष्ट की पराकाष्ठा माना जाता है।

वाल्मीकि ने रावण के युद्धभूमि में उपस्थित होने पर वज्रपात को उसकी भावी मृत्यु का सूचक माना है।[1] गोस्वामी तुलसीदास जी ने आकाश में इधर-उधर चमकने वाली बिजली की उपमा दुष्ट मनुष्यों के प्रेम से दी है।[2] काले बादलों के बीच बिजली का चमकना, कड़कना, जोरों से गर्जन करना सभी अशुभ माना जाता है।

वर्षा

वर्षा के सम्बन्ध में भी अनेक शकुन तथा अपशकुन पाये जाते हैं। संस्कृत में छः इतियों (अनिष्टकारी)—का वर्णन पाया जाता है।

अतिवृष्टि:, अनावृष्टि:,
मूषिका:, शलभा:, शुका:।
प्रत्यासन्नाश्च राजान:,
षडेता: इतय: स्मृता:॥

इस सूची में अतिवृष्टि—अर्थात् अत्यन्त अधिक वर्षा का होना और अनावृष्टि अर्थात् वर्षा का बिलकुल ही नहीं होना—को प्रथम स्थान दिया गया है। अधिक वर्षा होने से खेत में लगी हुई खेती नष्ट हो जाती है और बिलकुल वर्षा न होने से—अनावृष्टि के कारण खेतों में बीज नहीं जमते। अत: दोनों ही—अनावृष्टि तथा अतिवृष्टि—अनिष्टकारी तथा अमंगल करने वाली है। ये जनता के लिए अकाल के कारण होते हैं। अत: अशुभ हैं।

आकाश से जल-वृष्टि के अतिरिक्त पुष्प-वृष्टि, धूलि-वृष्टि तथा रुधिर-वृष्टि का भी उल्लेख पाया जाता है। जिनमें प्रथम दो शुभ तथा अन्य दोनों अशुभ मानी जाती हैं। वाल्मीकि ने ऋषि विश्वामित्र के साथ राक्षसों के विनाश के लिए राम को प्रस्थान करते समय पुष्प-वृष्टि का होना शुभकारक

---

१. वा० रा०—(यु० का०) सर्ग ६५।४८

२. दामिनि दमकि रही घन माँही।
खल की प्रीति जथा थिर नाहीं॥—रामचरितमानस

माना है।[1] इसी प्रकार से महाकवि कालिदास ने भी इसी अवसर पर राम की यात्रा के समय पुष्प के साथ जल-वर्षा का होना शुभ बतलाया है।[2] सौन्दरनन्द महाकाव्य में तथागत (बुद्ध) के जन्म के समय आकाश से पुष्पवर्षा शुभ मानी गई है।[3] कृष्णानन्द कवि ने नल के जन्म के अवसर पर आकाश से पुष्प गिरना उनके चक्रवर्ती होने का सूचक बतलाया है।[4] कृष्ण विलास में कृष्ण जन्म के अवसर पर देवताओं के द्वारा पुष्प-वृष्टि शुभ सूचना के रूप में उल्लिखित की गई है।[5]

परन्तु आकाश में रुधिर-वर्षा, धूलि-वर्षा आदि का होना अत्यन्त अशुभ माना गया है। वाल्मीकीय रामायण में राम द्वारा राक्षस खर की सेना का नाश करते समय रुधिर-वर्षा का होना अपशकुन सूचक माना गया है।[6] जनकपुर से अयोध्या को लौटते समय दशरथ के मार्ग में धूलि की वर्षा (रजोवृष्टि) का होना अमंगल की सूचना देती है।[7] "चन्द्रप्रभ चरित महाकाव्य" में पृथ्वीपाल के रणभूमि के लिए प्रस्थान करते समय आकाश से रुधिर-वर्षा का होना अशुभ के रूप में उल्लिखित है।[8]

रक्त-वर्षा की भाँति धूलि-वर्षा को भी अशुभ सूचक माना जाता है, जिसका उल्लेख ऊपर किया जा चुका है। कहीं-कहीं अस्थि-वर्षा तथा अस्त्र-वर्षा का भी उल्लेख पाया जाता है। कहने की आवश्यकता नहीं कि ये दोनों ही अत्यन्त अमंगलकारी स्वीकार किये गये हैं।

---

१. वा० रा०—(बा० का०), सर्ग २२।५

२. रघुवंश—सर्ग ११।३

३. अश्वघोष—सौन्दरनन्द, सर्ग २।५३

४. कृष्णानन्द—सहृदयानन्द, सर्ग १७

५. सुकुमार कवि—कृष्ण विलास काव्य, सर्ग २।५१

६. वा० रा०—(अ० का०), सर्ग २४।१, ४

७. श्येन पक्ष परिधूसरालकाः,
सान्ध्य मेघ रुधिराद्रवाससः।
अंगना इव रजस्वला दिशोः,
नो बभूवुरवलोकन क्षमाः ॥—कालिदास—रघुवंश, सर्ग ११।६०

८. वीर नन्दी —चन्द्रप्रभचरित, सर्ग १५।३२

घाघ और भड्डरी नामक लोक-कवियों ने वर्षा के सम्बन्ध में अनेक सूक्तियों की रचना की है जो लोक में प्रचलित तथा प्रसिद्ध हैं। इन सूक्तियों के परीक्षण करने से पता चलता है कि ये दोनों ही कितने बड़े ऋतु-विशेषज्ञ थे। इन्होंने अपने अनुभव के बल पर वर्षा, बादल और खेती आदि के सम्बन्ध में जो भविष्यवाणी की थी वह आज भी खरी तथा सत्य दिखाई पड़ती है। इन सूक्तियों के आधार पर वर्षा आदि के सम्बन्ध में लोगों में जो विश्वास व्याप्त है उनका संक्षेप रूप में यहाँ वर्णन प्रस्तुत किया जाता है।

भड्डरी का कथन है कि यदि पूर्व दिशा की ओर से बादल पश्चिम की ओर चले जायँ तो वर्षा अवश्य होगी।[१] यदि तीतर के पंख के रंग वाले बादल आकाश में छा जायँ तो वे वर्षा अवश्य करेंगे।[२] यदि घड़े में रखा हुआ पानी गरम जान पड़े, चिड़ियाँ धूल मे नहा रही हों और चींटी अण्डा लेकर चले तो वर्षा का योग अच्छा होता है।

मोर के पंख के समान रंगीन तथा लहरदार बादल आकाश में दिखाई पड़े तो वर्षा का होना अवश्यंभावी है।[३] बादलों का सम्बन्ध हवा के रुख से भी होता है। घाघ कहता है कि जब पूर्व दिशा से चलने वाली वायु में पश्चिम के बादल चढ़ने लगें तब वर्षा अवश्य ही होगी।[४] वर्षा होने के पश्चात् यदि गर्मी बढ़ जाय तब वर्षा अवश्य ही होगी।[५]

---

१. पूरब का घन पच्छिम चलै,
रौंड़ बतकही हँसि-हँसि करै।
ऊ बरसै. ऊ करै भतार,
भड्डर के मन यही विचार॥—ग्रा० सा० भा० ३

२. तीतर बरनी बादरी, विधवा पान चबाय।
ऊ पानी लै आवै, ई पानी लै जाय॥
—त्रिपाठी—ग्राम साहित्य भाग ३, पृ० ३२

३. मोर पंख बादर उठे, राँड़ी काजर रेख।
वह बरसे, वह घर करे, या में मीन न मेख॥
—त्रिपाठी—ग्रा० सा० भाग ३, पृ० ६३

४. उलटा बादर जो चढ़े, विधवा खड़ी नहाय।
घाघ कहै सुनु भड्डरी, वह बरसे, वह जाय॥—त्रिपाठी—वही, पृ० ७१

५. जो बदरी बादर माँ खमसे,
कहै भड्डरी पानी बरसे॥—वही पृ० ७२

अनावृष्टि के लक्षण

प्रकृति मे कुछ ऐसे परिवर्तन दिखाई पड़ते हैं जिनको देखकर यह कहा जा सकता है कि वर्षा नहीं होगी। यदि रात में आकाश स्वच्छ रहे और दिन में बादल छाये रहें तब वर्षा का अभाव समझना चाहिए।[1] यदि प्रातःकाल मे मेघ आकाश में दिखाई पड़े और दोपहर को कड़ी धूप हो। इसके साथ रात को निर्मल आकाश में तारे दिखाई पड़ें तब वर्षा के अत्यन्त अभाव के कारण देश में अकाल पड़ सकता है।[2] यदि दिन में गर्मी पड़ती हो और रात्रि में ओस पड़े तब वर्षा का अभाव समझना चाहिए।[3] यदि लोमड़ी बोलने लगे और कास फूलने लगे तब वर्षा की आशा बिल्कुल छोड़ देनी चाहिए।[4] घाघ का यह दृढ़ मत है कि यदि दिन में बादल हों, परन्तु रात में बादलों का अभाव हो, पुरुआ हवा रुक-रुक कर बहती हो, तब वर्षा बिल्कुल भी नहीं होगी।[5]

भूकम्प

भूकम्प को गाँवों में भूडोल कहा जाता है जिसका अर्थ होता है पृथ्वी का डोलना या हिलना। भूकम्प की घटना से भी अनेक शकुनों तथा अपशकुनों का अनुमान किया जाता है।

वाल्मीकि रामायण में राक्षस खर के राम के साथ युद्ध करने के लिए

---

१. रात निर्मली दिन कै छाहीं।
कहै भड्डरी वर्षा नाहीं ॥—त्रिपाठी—ग्रा० सा० भा० ३, पृ० ७४

२. परभाते मेह डंबरा, दोपहरा तपन्त।
रातू तारा निरमला, चेला करो गछन्त ॥
—त्रिपाठी—ग्रा० सा० भा० ३, पृ० ७४

३. दिन में गरमी, रात में ओस।
कहै घाघ वर्षा सौ कोस ॥—वही, पृ० ७५

४. बोली लोखरि, फूली कास।
अब नाहीं वर्षा के आस ॥—वही, पृ० ७५

५. "दिन का बद्दर, रात निबद्दर।
बहै पुरवैया झब्बर, भब्बर ॥"
कहै घाघ कुछ होनी होई।
कुवाँ के पानी धोबी धोई ॥—वही, पृ० ७६

प्रस्थान करते समय, पृथ्वी का कम्पित होना अशुभ माना गया है। इसी प्रकार कुम्भकर्ण और रावण का युद्ध के लिए चलते समय भूकम्प का होना उनकी मृत्यु की सूचना देता है।[1] बाल चरित नाटक में कंस के लिए पृथ्वी का कम्पन उसकी मृत्यु का सूचक है।[2] परन्तु कहीं-कहीं भूकम्प से शुभ शकुन की सूचना मिलती है। महात्मा बुद्ध के जन्म के अवसर पर भूकम्प का शुभ सूचक के रूप में उल्लेख किया गया है।[3] इसी प्रकार से सौन्दरनन्द महाकाव्य में तथागत के जन्म के अवसर पर भूकम्प होना संसार के लिए मंगलकारी है।[4] परन्तु भूडोल अधिकांश में अशुभकारी ही होता है।

दिशायें

विभिन्न दिशाओं की मलिनता अथवा प्रसन्नता के द्वारा भी अशुभ तथा शुभ शकुन का अनुमान किया जाता है। महाकवि वाल्मीकि ने राम के साथ युद्ध करने के लिए राक्षस खर के प्रस्थान करते समय दिशाओं की मलिनता को अशुभ सूचक के रूप में उल्लेख किया है।[5] इसी प्रकार से युद्ध के मैदान में रावण के स्थित होने पर दिशाओं का मलिन होना अशुभ माना गया है।[6] अभिनन्द कवि ने भी दिग्दाह और दिशाओं की मलिनता को अत्यन्त अशुभ माना है।[7] महाराजा दशरथ के अयोध्या को लौटते समय दिग्दाह का दर्शन परशुराम द्वारा उत्पन्न उत्पात का सूचक माना गया है।[8] चण्ड कौशिक नाटक

---

१. रावणश्च यतस्तत्र संचचाल वसुन्धरा।
रक्षसां च प्रहरतां गृहीताः इव वायवः॥
—वा० रा०—(यु० का०), सर्ग १०८।२५

२. भास—बाल चरित, अंक २।१

३. बुद्ध घोष—पद्य चूड़ामणि, सर्ग ३।१५

४ अश्वघोष—सौन्दरनन्द, सर्ग ३।६

५. वा० रा० — (अ० का०), सर्ग २३।८

६ दिशश्च प्रदिशः सर्वाः, बभूवुस्तिमिरावृत्ताः।
पांसुवर्षेण महता दुर्दर्शं च नभोऽभवत्॥
एवं प्रकाराः बहवः समुत्पाताः भयावहाः।
रावणस्य विनाशाय दारुणाः संप्रजज्ञिरे॥
—वा० रा० (यु० का०), सर्ग १०८।३०

७. अभिनन्द—रामचरित, सर्ग ३३।२६

८ क्षेमेन्द्र मञ्जरी अ० का० ५ ७७

मे तापस द्वारा दिग्दाह का अशुभ सूचक के रूप में वर्णन मिलता है। इसी प्रकार से संस्कृत के काव्यों तथा नाटकों में दिशाओं की मलिनता तथा दिग्दाह अमंगल, अभाग्य और अशुभ का सूचक माना गया है।

परन्तु दिशाओं की स्वच्छता, निर्मलता तथा प्रसन्नता शुभ मानी गई है तथा इससे मंगलकारी घटनाओं की सूचना मिलती है। आदि कवि ने ऐसी घटनाओं का अपने महाकाव्य में उल्लेख किया है जिससे इस विषय की पुष्टि होती है। सुग्रीव को लंका पर चढ़ाई करने की आज्ञा प्रदान करते समय लक्ष्मण ने दिशाओं की निर्मलता का विजय सूचक के रूप मे उल्लेख किया है।[1] महाकवि कालिदास ने राम के जन्म के अवसर दिशाओं के निर्मल तथा प्रसन्न होने का उल्लेख शुभ तथा कल्याण की सूचना के रूप में किया है।[2] भरतचरित महाकाव्य में दुष्यन्त के पुत्र भरत के जन्म के अवसर पर दिशाओं का निर्मल होना शुभ समझा गया है।[3] राजा विक्रमसिंह के पुत्र जयन्त के समय दिशाओं की निर्मलता का शुभ सूचक के रूप में उल्लेख किया गया है।[4]

आकालिक घटनाएँ

प्रकृति में ऐसी अनेक आकालिक घटनाएँ सम्पन्न होती हैं जिनके द्वारा शकुन तथा अपशकुन का अनुमान सहज में ही किया जाता है—जैसे दिशाओं मे अचानक अन्धकार का फैल जाना, असमय में ही आकाश का बादलों से घिर जाना, अकाल में ही लताओं तथा वृक्षों में पुष्प तथा फल का उद्‌गम होना, बिना पर्व के ही सूर्य और चन्द्रमा का राहु के द्वारा ग्रहण तथा नक्षत्रों का स्फुरण आदि।

---

१. प्रसन्नाश्च दिशः सर्वाः विमलश्च दिवाकरः।

—वा० रा० (यु० का०), सर्ग ४/४८

२. दिशः प्रसेदः मरुतो वबुः सुखाः।
प्रदक्षिणार्चिः हविरग्नि माददे॥
बभूव सर्वं शुभशंसि तत्क्षणं;
भवो हि लोकाभ्युदयाय तादृशाम्॥—कालिदास—रघुवंश, सर्ग ३/१४

३. श्रीकृष्ण कवि—भरतचरित, सर्ग ८/४७

४. अभय देव—जयन्त विजय, ६/८०

(१) अन्धकार

वाल्मीकि ने राम के साथ युद्ध करने के लिए राक्षस खर के प्रस्थान करते समय-असमय (बिना रात्रि के ही) में ही अन्धकार होना मृत्यु का सूचक माना है।[१] इसी प्रकार से राम के विवाह के पश्चात् जनकपुरी से अयोध्या लौटते समय दशरथ के मार्ग में सघन अन्धकार का दिखाई पड़ना अपशकुन की सूचना देता है।[२] हनुमन्नाटक मे असमय में दिशाओं का अंधकार से घिरना घोर अमंगलकारी है।[३]

(२) वृक्षों का पुष्पित होना

उचित ऋतु के अभाव में वृक्षों में पुष्प का उदय और फल का लगना अशुभ माना गया है। उदाहरण के लिए आम वसन्त तथा ग्रीष्म ऋतु मे पुष्पित होता तथा फलता है। परन्तु इसमें यदि शीत ऋतु में फल लग जाय तो यह अमंगल सूचक है। यशस्तिलक चम्पू में राजा यशोर्ध के पुत्र के जन्म के अवसर पर शत्रुओं के घर में अकाल में ही वृक्षों का पुष्पित होना विनाश की सूचना देता है।[४] मंखक ने अकाल में पुष्पों का उदय दैत्यों के विनाश का द्योतक माना है।[५] राजतरंगिणी में वृक्षों द्वारा असमय में पुष्प धारण करना अशुभ सूचक माना गया है।[६] बाल भारत में माता कुन्ती के समक्ष कर्ण द्वारा कौरवों के विनाश सूचक अमंगलों का वर्णन करते समय अकाल में कुसुमोद्भव का भी उल्लेख किया गया है।[७] परन्तु कहीं-कहीं इसके विपरीत भी देखा जाता है। महाकवि श्री हर्ष ने राजा नल के राज्य में वृक्षों के अकाल में ही कोरकित होने को सौभाग्य तथा मंगल का लक्षण माना है।[८]

---

१ वा० रा०—(अ० का०), सर्ग २३/८

२ कुमारदास—जानकीहरण, सर्ग ६/२४

३. हनुमन्नाटक—अंक ३/२

४. सोमदेव सूरि—यशस्तिलक चम्पू, आश्वास २/७३

५ मंखक—श्रीकण्ठचरित, सर्ग १६/६०

६ कल्हण—राजतरंगिणी, तरंग ७

७. अमरचन्द्र सूरि—बाल भारत, (उ० प०), सर्ग ५/२३

८ महीरुहाः दोहदसेक शक्तेः
आकालिकं कोरकमुद्गिरन्ति ।।—नैषधचरित

(२) सन्ध्या का रक्तवर्ण होना

सन्ध्या का अकारण ही लाल वर्ण का हो जाना अमंगलकारी माना जाता है। राक्षस खर के साथ राम के युद्ध के अवसर पर सन्ध्या का रक्त वर्ण का हो जाना अत्यन्त अशुभ के रूप में स्वीकार किया गया है।[१] इसी प्रकार दिन में बारम्बार समुद्र-कम्पन दैत्यों के विनाश का सूचक होने के कारण अशुभ माना गया है।[२] सौन्दरनन्द महाकाव्य में बुद्ध (तथागत) की कामदेव के विजय के अवसर पर बादलों के बिना भी आकाश से वृष्टि का होना शुभ है। परन्तु इसे नियम का अपवाद ही समझना चाहिए। साधारणतया असमय में आकाश से वृष्टि का होना भावी अमंगल की सूचना देता है।

इस प्रकार से जहाँ असमय में किसी वस्तु का घटित होना, जिसका उल्लेख ऊपर किया जा चुका है, अमंगल तथा अशिव का कारण माना जाता है, सामान्य जनता में ऐसा ही लोक-विश्वास पाया जाता है।

प्रकृति के विभिन्न तत्वों (elements) से प्राप्त शकुनों का गत पृष्ठों में वर्णन किया गया है। परन्तु ऐसा कदापि नहीं समझना चाहिए कि ऐसा लोक-विश्वास तथा अन्ध परम्परा केवल भारतवर्ष में ही प्रचलित है। मानव-हृदय सर्वत्र समान होता है। अतः भय, विश्वास और श्रद्धा आदि की भावना संसार के सभी व्यक्तियों में समान रूप से पायी जाती है।

गहन अनुशीलन से पता चलता है कि संसार के सभ्य देशों में भी पूर्वोक्त विश्वास अक्षुण्ण रूप से लोगों में विद्यमान है। ग्रीस, रोम में भूकम्प, रक्त-वर्षा, पाषाण-वर्षा तथा दुग्ध-वर्षा को अत्यन्त अशुभ माना गया है। जापान में भूकम्प, बाढ़ तथा आँधी को युद्ध का सूचक स्वीकार किया जाता है। रोम में बिजली का वाम से दक्षिण को चमकना शुभ तथा दक्षिण से वाम की ओर चमकना अशुभ है। बेबीलोन में वर्ष के प्रथम मास में उत्तरी वायु का चलना, नगरों के ऊपर धूलि का गिरना, उत्तरी वायु के साथ वर्षा का होना तथा भूकम्प अत्यन्त अधिक अशुभकारी हैं।

ईरान में इन्द्रधनुष, वायु, मेघ-गर्जन, बिजली की चमक तथा धूलि-धूसरित मेघों से अनेक शुभ तथा अशुभ शकुन प्राप्त किये जाते हैं।

---

१. वा० रा० — (अ० का०), सर्ग २३/६

२. मंखक—श्रीकण्ठ चरित, सर्ग १६/४८

यहूदी लोगों में भूकम्प तथा बिजली के गिरने को विनाश सूचक मानते हैं। इंग्लैण्ड के वेल्स प्रान्त में नवम्बर तथा जनवरी के मध्य जोरों की कड़क के साथ बिजली का चमकना ग्राम के प्रमुख व्यक्ति की मृत्यु का सूचक समझा जाता है। दक्षिण-पूर्वी अफ्रीका में वज्रपात (बिजली का गिरना) तथा करका वृष्टि अर्थात् ओलों का गिरना अत्यन्त अमंगलकारी है।[१]

इसी प्रकार से अन्य सभ्य देशों में भी ये वस्तुएँ अमंगल तथा अनिष्टकारी समझी जाती हैं जिनका उल्लेख स्थान-स्थान पर किया गया है।

—०—

१. इस अध्याय को लिखने में (पं० श्री०) डॉ० दीपचन्द्र शर्मा की पुस्तक 'संस्कृत काव्य में शकुन' से विशेष सहायता ली गयी है। अतः लेखक शर्मा जी का अत्यन्त आभारी है।

चतुर्थ अध्याय

जीवधारियों से संबंधित लोक-विश्वास

संसार में जीवधारियों के संबंध में अनेक लोक-विश्वास प्राप्त होते हैं। वर्णन की सुविधा के लिए इन्हें निम्नांकित प्रधान तीन भागों में विभक्त किया जा सकता है—

(१) थलचर

(२) नभचर

(३) जलचर

थलचर वे जीव हैं जो पृथ्वी पर निवास करते हैं—जैसे गाय, बैल, घोड़ा, हाथी आदि। नभचर वे जीव हैं जो नभ अर्थात् आकाश में उड़ते हैं— जैसे कौआ, कबूतर, नीलकण्ठ, बाज आदि। जलचर उन जीवों को कहा जाता है जिनका निवास जल में होता है। जैसे मछली, घड़ियाल, कछुआ आदि। इनके अतिरिक्त पृथ्वी पर रहने वाले कीड़े तथा सरीसृप (रेंगने वाले जीव) भी पाये जाते हैं जो लोक-विश्वास से संबंधित हैं।

(१) परिच्छेद-थलचर

(१) गाय

महिमा—गाय भारतीय संस्कृति की आधारशिला है। इस कथन में तनिक भी अत्युक्ति नहीं होगी कि भारतीय संस्कृति 'गौः' पर आश्रित है। वैदिक संस्कृति की आधारभूमि यज्ञ है। परन्तु यज्ञों का विधान गौ के माध्यम— गोघृत, गोदुग्ध, गोमूत्र तथा गोबर के बिना संभव नहीं था। इस प्रकार वैदिक संस्कृति का मूल स्रोत यही गाय थी

नहीं था। गोवंश—गाय की सन्तान बैल—जिसे गोवर्द कहते थे—को कृषि कर्म में प्रयुक्त किया जाता था। यह कृषि का अनन्यतम साधन था। आज भी आधुनिक यंत्रों के आविष्कार हो जाने पर भी बैल का महत्व कुछ कम नहीं हुआ है। इस प्रकार धार्मिक तथा आर्थिक दृष्टि से गाय का महत्त्व अद्वितीय है।

वेदों में विशेषकर ऋग्वेद में—गायों की भूरिभूरि प्रशंसा की गई है। एक वैदिक ऋषि अनेक सींगों वाली शीघ्रगामिनी गायों के निवासभूत लोक की प्राप्ति को अपने जीवन की अन्तिम कामना मानता है।[1] ऋग्वेद में तो भारद्वाज ऋषि ने गायों को देवाधिदेव का साक्षात् प्रतिनिधि माना है।[2] स्वयं भगवान् ने गाय की महिमा का प्रतिपादन करते हुए अपने को गायों के मध्य में निवास करने वाला बतलाया है :

"गावो मे पृष्ठतः सन्तु, गावो मे सन्तु अग्रतः।
गावो में सर्वतः सन्तु, गवां मध्ये वसाम्यहम् ॥"

अष्टादश पुराण तथा संस्कृत के महाकाव्य गाय की महिमा तथा गोसेवा के महत्त्व से ओत-प्रोत हैं। महाकवि कालिदास ने लिखा है कि महाराज दिलीप को वृद्धावस्था में गो-सेवा के फलस्वरूप रघु के रूप में पुत्र-रत्न की प्राप्ति हुई थी।[3] भगवान् श्री कृष्ण स्वयं गोकुल में गोपों के साथ गोचारण किया करते थे। प्राचीन काल में गोवं तथा ब्राह्मण की रक्षा में अपने शरीर का उत्सर्ग करने वाले व्यक्ति को स्वर्ग की प्राप्ति हुआ करती थी :—

"गवार्थे ब्राह्मणार्थे च प्राणत्यागं करोति यः।
सूर्यस्य मण्डलं भित्वा, ब्रह्मलोकं स गच्छति ॥"

इस प्रकार भारतीय संस्कृति में गाय की रक्षा में प्राणों का समर्पण करना प्रत्येक हिन्दू का धर्म समझा जाता था।[4]

---

१. तदस्य प्रियमभि पाथो अश्यां;
यत्र गावो भूरि शृङ्गाः अयासः ॥—ऋ० वे०, १/१५४/६

२. गावो भगो गाव इन्द्रो मे अच्छन्;
गावः सोमस्य प्रथमस्य भक्षः।
इमा या गावः स जनास इन्द्रः;
इच्छामीद धृदा मनसा चिदिन्द्रम् ॥—ऋ० वे०, ६/२८/५

३. कालिदास—रघुवंश, द्वितीय सर्ग

४. बलदेव उपाध्याय—धर्म और दर्शन, पृ० ४२१-२७

आज भी भारतीय समाज में पशुओं में गाय सर्वाधिक आदर, श्रद्धा तथा भक्ति का पात्र समझी जाती है। इसीलिए इसे गो माता कहते हैं। गो-भक्त गाय को माता के समान ही सम्मान प्रदान करते हैं। लोगों में ऐसा विश्वास प्रचलित है कि गाय की सेवा करने से पुत्र की प्राप्ति होती है। अतः पुत्रहीन व्यक्ति तन, मन, धन से गो-सेवा में संलग्न रहते हैं।

पण्डित लोग भोजन करने के पहिले गाय के भोजन के लिए कुछ पका अन्न निकाल कर रख देते हैं जिसे 'गोग्रास' कहा जाता है। शास्त्रों ने बलि-वैश्वदेव में जिन पाँच व्यक्तियों को बलि देने का विधान किया है उसमें कौआ, कुत्ता तथा अग्नि के साथ गाय की भी गणना की गई है। भोजपुरी स्त्रियाँ सोलह सोमवार का जो व्रत करती हैं उस समय जो फल चढ़ाया जाता है तृतीयांश को गाय को खिलाने का विधान है।

कार्तिक शुक्ल अष्टमी 'गोपाष्टमी' के नाम से प्रसिद्ध है। इस दिन गाय तथा गोवंश की विशेष रूप से पूजा की जाती है। इस दिन गाय को नहलाया-धुलाया जाता है। इसके पश्चात् उसकी सींगों को घी से मला जाता है। फूल-मालाओं से उसकी पूजा की जाती है। उसे ओढ़ने के लिए नवीन वस्त्र दिया जाता है। कुछ लोग इस दिन गायों को मिष्ठान्न भी खिलाते हैं। आजकल भी सरकार गोपाष्टमी को "गोसंवर्धन सप्ताह" के रूप में मनाकर गोवंश की रक्षा का प्रयास कर रही है।

गाय के विभिन्न अंगों में भिन्न-भिन्न देवताओं का निवास माना जाता है। अतः गाय का प्रत्येक अंग पवित्र है। फिर भी मुख की अपेक्षा उसकी पूँछ को अधिक पावन तथा पवित्र स्वीकार किया जाता है। सर्वसाधारण लोगों की यह दृढ़ धारणा है कि मृत्यु के पश्चात् प्रेतात्मा को अपने मार्ग में 'वैतरणी' नामक नदी पार करनी पड़ती है जो बड़ा ही कष्टसाध्य व्यापार है। अतः मरने वाले व्यक्ति के हाथों में गाय का पूँछ पकड़वा कर 'गोदान' कराया जाता है। लोगों का ऐसा विश्वास है कि गोदान करने से प्रेतात्मा गाय की पूँछ पकड़कर वैतरणी को बड़ी सरलता से पार कर जाता है। इसीलिए गाय को वैतरणी पार कराने वाली माना जाता है।

जब गाय बछड़े या बछिया को जन्म देती है तब उसकी 'खेढ़ी' को उसे खाने नहीं दिया जाता। लोगों का यह विश्वास है कि ऐसा करने से गाय का दूध सूख जाता है। जो गायें दूध कम देती हैं उन्हें क्षीरी वृक्षों की छाया में

बाँध दिया जाता है। इससे इनके दूध में वृद्धि हो जाती है।[१] जिस गाय के दूध का रंग लाल हो वह अशुभकारक होता है।[२]

किसी यात्रा पर जाते हुए शिशु को दूध पिलाती हुई गाय का दर्शन शुभ माना जाता है[३]। काली गाय का दूध अतिशय स्वास्थ्य वर्धक है।[४] यदि गाय की आँखें काली हों; सींग सोलह इंच लम्बी हो, खुर बत्तीस इंच लम्बा हो; थन नौ इंच लम्बा; तथा कान तेरह इंच लम्बा हो तो अच्छा है। ऐसी ही लक्षण वाली गाय को खरीदना चाहिए।[५] छोटे थन वाली गाय दूध कम देती है। इसके विपरीत बड़े तथा मोटे थन वाली गायें अधिक दूध देती हैं। माघ महीने में ब्याई गाय किसी भावी अनिष्ट की सूचक है। अत: ऐसी गाय को बेंच देना चाहिए। यदि गाय खरीदते समय वह मूत्र त्याग करने लगे तो यह शुभ है।[६] लोक गीतों में स्वप्न में गाय और बछड़े का दर्शन शुभ माना जाता है।[७] स्वप्न में देखी गई गाय को लक्ष्मी का स्वरूप स्वीकार किया गया है।[८]

गायों में काले रंग की गाय शुभ मानी जाती है। ऐसा विश्वास है कि यह अधिक दूध देती है तथा ऐसी गाय का दूध अधिक गुणकारी होता है। संस्कृत की एक लोकोक्ति से इस कथन की पुष्टि होती है—

---

१. Thurston—Omens and superstitions of Southern India, p. 8।

२. अ० वे०, १६/६/८

३. सुरभि सन्मुख सिसुहि पियावा।
—तुलसीदास—रा० च० मा० (बा० का०)

४. स्याम सुरभि पय बिसद अति।
गुनद करहिं सब पान।—वही, (बा० का०) दोहा १०

५. अच्छी गाय बेसाहिए, जिसकी कज्जल बान।
सोलह सींग, बत्तीस खु गे, नव थन, तेरह कान॥—घाघ—भड्डरी

६. डॉ० प्रियम्बदा गुप्त—लो० जी० लो० वि० अ० अ०, पृ० १३८
(अ० प्र०)

७. डॉ० उपाध्याय—भो० लो० गी० भा० १, पृ० ११६

८. गइया त हवे लछिमिनिया- त बाभन् नारायन हो।—लो० गी० ११६

"कृष्णेषु गो क्षीरा" अर्थात् काली गाय अत्यधिक दूध देने वाली होती है। गाय का दूध चर्बी के अभाव के कारण स्वास्थ्य के लिए उत्तम होता है। इसीलिए बीमार व्यक्ति को गाय का ही दूध पिलाया जाता है, भैंस का नहीं। आधुनिक डाक्टरों ने भी गाय के दूध को ही समधिक स्वास्थ्य वर्धक बतलाया है।

दूध के अतिरिक्त गोबर तथा गोमूत्र भी उपयोगी होता है। मिट्टी के घरों को गोबर से लीप कर पवित्र किया जाता है। सत्यनारायण की कथा तथा अन्य अवसरों पर भी गणेश की सच्ची प्रतिमा के अभाव में गोबर से ही उनकी प्रतिमा बनाई जाती है। इसीलिए 'गोबर गणेश' भी कहते हैं। कालान्तर में यह शब्द उस व्यक्ति के लिए भी प्रयुक्त किया जाने लगा जो इस गणेश की भाँति निष्क्रिय हो। गोमूत्र भी पवित्र माना जाता है। श्रावणी का पर्व मनाते समय गोमूत्र का आचमन तथा गोबर को शरीर में मलने का विधान बतलाया गया है। अनेक प्रकार की बीमारियों में गोमूत्र का सेवन औषधि के रूप में किया जाता है।

किसी भी कथा-वार्ता के अवसर पर 'पंचामृत' बनाते समय गोघृत, दही, दूध का प्रयोग किया जाता है। परन्तु 'पंचगव्य' बनाते समय गाय के ही शरीर से निःसृत पाँच वस्तुओं का होना अत्यन्त आवश्यक माना जाता है। इन वस्तुओं में गाय का दूध, दही, घी, गोबर तथा गो मूत्र सम्मिलित हैं। अनेक मांगलिक कार्यों में पंचगव्य का प्रयोग किया जाता है जो अत्यन्त पवित्र है।

आधुनिक यन्त्रीकरण के युग में गोबर का महत्त्व बहुत अधिक बढ़ गया है। आज गोबर से उर्वरक तैयार किया जाता है जो अत्यन्त उपयोगी सिद्ध हुआ है। सरकार गोबर से यंत्रों द्वारा गैस तैयार करने लगी है जिससे ग्रामीण क्षेत्रों में प्रकाश (बिजली) तथा ईंधन (जलावन) की आपूर्ति की जा रही है। ये यंत्र "गोबर-गैस-संयंत्र" के नाम से प्रसिद्ध हैं।

गाय की महिमा तथा लोक-विश्वास में इसका स्थान अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है। सच तो यह है कि भारतीय संस्कृति इसी गो-महिमा की धुरी पर आश्रित है। अथर्ववेद में 'वशा गौः' के विषय में जो स्तुति की गई है वह अत्यन्त सुन्दर तथा महिमामयी है। यहाँ केवल एक ऋचा ही पर्याप्त है।

"वशा द्यौर्वशा पृथिवी; वशा विष्णुः प्रजापतिः।
वशाया: दुग्धमपिबन्त्साध्या वसवश्च ये ॥"

—अ० वे०, २३।५।१०।३०

(२) बैल

बैल को संस्कृत में 'वृषभ' या बलीवर्द कहते हैं। यह भगवान् शिव का वाहन माना जाता है और 'नन्दी' के नाम से प्रसिद्ध है। भगवान् शिव के मंदिर के आगे नन्दी की प्रतिमा प्रतिष्ठापित की जाती है। काशी में विश्वनाथ जी के मन्दिर के पास ज्ञानवापी में नन्दी की विशाल पाषाण निर्मित प्रतिमा देखी जा सकती है। दक्षिण भारत के अनेक शिव मंदिरों के प्रधान द्वार के सामने नन्दी की अत्यंत विशाल प्रतिमायें स्थापित की गई हैं जो प्रायः एक ही पाषाण से निर्मित (मोनोलिथ) हैं। शिव जी ने इसी नन्दी को अपना वाहन स्वीकार किया है। कालिदास ने शिव के साथ बूढ़े बैल पर सवारी करती हुई पार्वती की श्रेष्ठ लोगों के द्वारा खिल्ली उड़ाने की बात लिखी है।[1]

बैल के रूप, रंग, आकार-प्रकार के विषय में अनेक लोक-विश्वास प्रचलित हैं। इस संबंध में घाघ और भड्डरी की अनेक सूक्तियाँ सुप्रसिद्ध हैं। घाघ की उक्ति है कि जिस बैल का मुँह छोटा और माथा पीला हो वह एक कूँड़ (थोड़ी सी भी) भूमि जोतने में असमर्थ होता है।[2] जिस बैल के कान लम्बे हों तथा नीचे का चमड़ा लटक आया हो ऐसे बैल को नहीं खरीदना चाहिये। काले रंग वाला तथा सात दाँत वाला बैल कदापि नहीं खरीदना चाहिए।[3] जिस बैल के छः दाँत होते हैं वह मारा मारा घूमता

---

१. इयं च तेऽन्या पुरतो विडम्बना,
यदूढया वारण राज हार्यया।
विलोक्य वृद्धोक्षमधिष्ठितं त्वया।
महाजनो स्मेरमुखो भविष्यति ॥—कु० सं०, ५।७०

२. मुँह का छोटा माथ का महुआ,
उन्हें देखि जिन भूलेहु रहुआ।
रत्ती नहीं हराई जोतें;
बैठि मेड़ पर पागुर करे ॥—घाघ और भड्डरी, पृ० १४

३. सात दाँत उदन्त को; बैल जु काला होय।
इनको कबहु न लीजिए, मुफ्त देय चाहे कोय ॥—वही, पृ० १४

है। सात दाँत वाला मालिक का नाश करता है। नौ दाँत वाला बैल मालिक, उसके परिवार तथा मित्रों का भी नाश कर देता है।[1] खेत जोतते समय चमकने वाला बैल अच्छा नहीं होता है। सीग से रहित बैल बेकार समझा जाता है। खैरे रंग का बैल नहीं खरीदना चाहिए क्योंकि जहाँ कहीं उसका पैर पड़ता है वहीं नाश हो जाता है। उसकी लार भी बुरी होती है।[2]

घाघ ने कुछ ऐसे बैलों की चर्चा की है जो खेती के काम के लिए उत्तम होते हैं। जिस बैल के सींग छोटे हों, माथा उन्नत हो, मुँह गोल हो, रोएं नरम और कान चंचल हों, ऐसा बैल तेज चाल चलने वाला होता है।[3] छोटी सींग और छोटी पूछ वाला बैल अच्छा होता है।[4] छोटा मुँह और उठे हुए कानों वाले बैल को अवश्य ही खरीदना चाहिए। घाघ ने लिखा है कि अच्छे बैल की पहिचान यह है कि उसका मुँह छोटा और दोनों कान उठे हुए होने चाहिए।[5]

कार्तिक शुक्ल अष्टमी, जिसे गोपाष्टमी कहते है, के दिन बैल की पूजा की जाती है। इनके सींग तथा खुर में तेल लगाया जाता है। माथे पर सिन्दूर का टीका लगाकर माला पहिनाई जाती है। दो बैलो का एक साथ दर्शन शुभ माना जाता है।[6]

वराहमिहिर ने बृहत्संहिता के गोलक्षणाध्याय में बैल के विषय में अनेक विशिष्ट सूचनायें दी है। इनके अनुसार सफेद रंग वाला, ताम्रवर्ण के

---

१. घाघ और भड्डरी, पृ० १४

२. जहाँ परे पैर की खुरी; तौ करि डारे बापर पुरी।
   जहाँ परे खैरा की लार, लेइ सोहिनी बुहारी सार॥
   —वही, पृ० १५

३. सींग मुड़े, माथा उठा, मुँह का होवे गोल।
   रोम नरम, चंचल करन, तेज बैल अनमोल॥
   —घाघ और भड्डरी, पृ० १७

४. छोटे सींग और छोटी पूँछ।
   ऐसा बर्दा लो ये पूछ॥—वही, पृ० १७

५. छोटा मुँह और ऐंठा कान।
   यही बैल की है पहिचान॥—वही, पृ० १७

६. हेम विजयगणि—विजय प्रशस्ति, ६।१५

सींग और आँख वाला और बड़े मुख वाला बैल हंस-संज्ञक होता है। ऐसा बैल शुभफल देने के साथ अपने यूथ (समुदाय) को बढ़ाने वाला होता है।[1] यदि किसी बैल के चारों पाँव सफेद हों तो वह शुभ-सूचक है।[2] इस ग्रंथ मे बैल के अनेक शुभ लक्षणों की गणना की गई है।[3] वराहमिहिर ने बैलों के आकार-प्रकार के आधार पर उनका अनेक प्रकार से वर्गीकरण किया है जिसमें हंस-संज्ञक तथा पद्मक-संज्ञक बैल शुभ तथा उत्तम होते है।[4] जिस बैल के नाक के समीप बलि हो, बिल्ली के समान मुख तथा अच्छी पूंछ हो, दाहिनी भाग सफेद और भेड़ के समान पेट हो, ऐसा बैल भार उठाने में समर्थ तथा चलने में भी समर्थ होता है।[5] परन्तु जिस बैल के देह में काले रंग के फल के समान चिह्न बने हो, सफेद और लाल मिश्रित रंग हो तथा बिल्ली के समान नेत्र हो ऐसा बैल अशुभकारी माना जाता है।[6]

(३) भैंस

भैंस को संस्कृत में 'महिषी' कहते हैं। यह रंग में काली और शरीर से स्थूल होती है। संभवतः काले रंग की होने के कारण इसका दर्शन शुभ नहीं माना जाता।

जहाँ गाय का दूध पतला, स्वादिष्ट तथा बुद्धिवर्धक होता है, वहाँ भैंस का दूध मोटा, चर्बी से युक्त तथा बुद्धि के स्थान पर शरीर को मोटा बनाने वाला होता है। इसीलिए भैंस का दूध रोगियों को देना वर्जित है। यद्यपि धार्मिक दृष्टि से हिन्दू समाज में भैंस को विशेष सम्मान प्राप्त नहीं है परन्तु आर्थिक दृष्टि से इसका स्थान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। प्रचुर मात्रा में घी के उत्पादन का श्रेय इसी भैंस को प्राप्त होता है। इसके अभाव मे बड़ी-बड़ी गोशालाओं (Dairy) की सत्ता ही नष्ट समझनी चाहिए। जहाँ गाय अपने सात्विक दुग्ध के द्वारा

---

१. सितवर्णः पिङ्गाक्षः, ताम्रविषाणेक्षणो महावक्त्रः।
हंसो नाम शुभफलो; यूथस्य विवर्धनः प्रोक्तः॥
—बृ० सं०, ६१/१७

२. वही, ६१/१८

३. वही, ६१/१०-१२

४. वही, ६१/१७, १८

५. वही, ६१/१५-१६

६ वही, ६१।८

राष्ट्र के बुद्धि-बल का पोषण करती है वहाँ भैंस अपने स्वादिष्ट दूध के द्वारा मानवों के शरीर की पुष्टि करती है। जहाँ गाय बुद्धि-बल का संवर्धन करती है वहाँ भैंस अपने दूध से राष्ट्र की शारीरिक शक्ति को बढ़ाती है।

(४) भैंसा

भैंसा को महिष् कहा जाता है। यह यमराज का वाहन है। यमराज काले भैंसे की सवारी करते है। इसलिए इनका रूप और भी भयंकर हो जाता है। कोई राक्षस महिष् का स्वरूप धारण कर भगवती दुर्गा से स्पर्धा करने लगा था। अतः देवी ने उस राक्षस का नाश कर दिया। इसीलिए दुर्गा को 'महिषासुरमर्दिनी' कहा जाता है।

भैंसा बड़ा ही गन्दा तथा बुद्धिहीन जानवर है। इसका उपयोग आजकल केवल भैंसा गाड़ी खींचने में ही किया जाता है। कुछ काल पूर्व उत्तर प्रदेश के पर्वतीय दुर्गा के मन्दिरों में भैंसा को बलि रूप देने की प्रथा थी। परन्तु आजकल यह बन्द हो गई है।

(५) घोड़ा

जानवरों में घोड़ा बड़ा ही शक्तिशाली तथा उपयोगी जीव है। प्राचीन काल में जो चतुरंगिणी सेना होती थी उसमें गजसेना के पश्चात् अश्वसेना की ही प्रधानता थी। अतः घोड़ा शक्ति का प्रतीक था और आज भी इसके संबंध मे यही मान्यता है।

प्राचीन युग में जो समुद्र-मन्थन हुआ था उससे निकले हुए चौदह रत्नों मे से घोड़ा अनन्य था जिसका नाम "उच्चैःश्रवा" था। ऐरावत की ही भाँति इन्द्र ने इसे अपने पास रखा। घोड़ों में 'श्यामकर्ण' (जिसके कान काले हों) नामक घोड़ा सर्वश्रेष्ठ माना जाता है। पुराकाल में अश्वमेध यज्ञ के लिए यज्ञ करने की प्रथा विद्यमान थी। इस यज्ञ के लिए यह घोड़ा बड़ा उपयोगी होता था। ऐसी मान्यता थी कि जो व्यक्ति एक सौ अश्वमेध यज्ञ सम्पादित कर लेगा वह इन्द्र के पद को प्राप्त कर सकता है। अतः इन्द्र इस भय के कारण किसी का यह यज्ञ पूरा नहीं होने देते थे।

श्यामकर्ण घोड़े बड़े उत्तम होने के कारण बड़े ही दुर्लभ थे। ऐसी प्रसिद्धि है कि ऋषि विश्वामित्र ने अपने शिष्य गालव के द्वारा गुरुदक्षिणा माँगने के लिए अतिशय हठ करने पर उनसे एक हजार श्यामकर्ण घोड़ा देने के लिए

कहा था । वैदिक आर्यों के लिए युद्ध में अत्यन्त उपयोगी होने के कारण घोड़ा जो 'दधिक्र' के नाम से प्रसिद्ध था—देवता की भाँति पूजनीय था । ऋग्वेद में उसकी स्तुति पाई जाती है ।[1]

महाभारत में 'उच्चैःश्रवा' घोड़ा—जिसका अर्थ ऊँचे कान वाला है—का उल्लेख मिलता है जिसकी पूँछ काली और शरीर सफेद होता था । वह गति में तेज और सूर्य के पथ का अनुसरण करता था । लोक-कथाओं में नगिन्दर के घोड़े का वर्णन है जो चन्द्रमा के समान श्वेत वर्ण का था और जिसकी मधुर आवाज राग के समान कर्ण-सुखद थी ।

पुराणों में कल्कि नामक भगवान् के दशम अवतार का वर्णन पाया जाता है जो श्वेत अश्व के रूप में है । हयग्रीव—जिसकी ग्रीवा घोड़े के समान हो—के रूप में विष्णु के शरीर धारण की कथा प्रसिद्ध है जिसे उन्होंने असुरों से वेद की रक्षा करने के लिए ग्रहण किया था । पुराणों में केशी नामक दैत्य की कथा मिलती है जिसने अश्व के स्वरूप को धारण कर कृष्ण की हत्या का निष्फल प्रयास किया था । इसी प्रकार से पुराणों में अश्वों की महिमा तथा महत्त्व की अनेक कथाएँ भरी पड़ी है

राजपूत काल में भी घोड़ों ने अपनी स्वामिभक्ति तथा वीरता के कारण सम्मान का स्थान प्राप्त किया था । सुप्रसिद्ध वीर महाराणा प्रताप के विख्यात घोड़ा 'चेतक' का नाम आज भी स्मरणीय है जिसने महाराणा का अन्त तक साथ दिया था । आज इस घोड़े की पूजा की जाती है और इसके नाम से उदयपुर में 'चेतक चौक' प्रसिद्ध है । आगरा के किला के प्रधान द्वार पर अमर सिंह राठौर के घोड़े की प्रतिमा आदर के साथ प्रतिष्ठापित है जिसने किले की तीसरी मंजिल से कूद कर अपने स्वामी को बचा लिया था ।

घोड़ा शुभ तथा पवित्र जानवर माना जाता है । जब कोई रसोई का पात्र अपवित्र हो जाता है तब वह घोड़े के बन्धन सूँघने से पवित्र माना जाता है । दक्षिण में ऐसा विश्वास है कि घोड़े के मुँह की भाप के कारण दुष्ट आत्माएँ वहाँ प्रवेश नहीं कर सकतीं । क्रुक ने लिखा है उत्तरी भारत में 'रोवनी' के समय में किसी घुड़सवार व्यक्ति का ईख के खेत में प्रवेश करना शुभ कार्य है ।[2] लोगों का ऐसा विश्वास है कि घोड़े के दर्शन से बन्ध्यत्व दूर हो जाता

१. ऋ० वे०, ४/३२

२. क्रुक—पा० रि० फो० ना० इ०, भाग २, पृ० २०७

है।[1] रामायण में कौशल्या के द्वारा पुत्र प्राप्ति के लिए अश्व के स्पर्श का उल्लेख है। इसी उद्देश्य से अश्वमेध यज्ञ के अवसर पर रानी मृतयज्ञीय अश्व के समीप रात्रि में सोया करती थी।[2]

घोड़े के मांस को खाना निषिद्ध है। इसके खाने से सारे शरीर में ऐंठन पैदा हो जाती है। यदि कोई सिपाही चाँदमारी के समय अपने लक्ष्य में सफल नहीं होता था तो उसके मित्र घोड़े के मांस का भक्षी कहकर उसकी खिल्ली उड़ाया करते थे।[3] कुछ लोग घोड़े की नाल को अपने घर के प्रधान द्वार के फाटक पर कीलों से ठोंक देते हैं। लोगों की ऐसी धारणा है कि इससे दुष्ट आत्माओं का प्रवेश घर में नहीं हो सकता। आगरा के पास, फतेहपुरसीकरी के बुलन्द दरवाजा' के किवाड़ों मे हजारों की संख्या में घोड़े के नाल जड़े हुए दिखाई पड़ते हैं। संभवतः नगर की रक्षा के लिए ऐसा किया गया था।

पश्चिमी भारत में घोड़े की पूजा प्रचलित है। राजपूत भील लोग "घोड़ा देव' नामक देवता की पूजा करते हैं जो पाषाण अश्व के रूप मे स्थापित किये रहते हैं। भोटिया लोग दशहरा के अवसर पर मिट्टी के घोड़े की पूजा करते हैं। गुजरात में पीरों की कब्र पर घोड़ों को 'चढ़ाने' की प्रथा है। कुनबी जाति के लोग दशहरा पर घोड़ों को स्नान कराते हैं। उन्हें फूल-मालाओं से सुसज्जित कर भेड़ की बलि देते हैं तथा उसके खून को उन पर छिड़कते हैं।[4] गोण्ड लोगों में 'कोड़पेन, (Kodapen) नामक एक ग्राम-देवता अश्व रूप में पाये जाते हैं। ये लोग वर्षा ऋतु के आगमन पर गाँव के बाहर उनके सम्मान में एक पाषाण की पूजा करते हैं। इस प्रकार से घोड़ों के विषय में अनेक विश्वास जन समाज में प्रचलित हैं।[5]

विदेशों मे भी इस विषय मे अनेक विश्वास प्राप्त होते हैं। इंग्लैण्ड में घोड़ों में भूतों तथा प्रेतों को देखने की शक्ति मानी जाती है। ये "हूपिंग कफ" (कुकुर खाँसी) को भी दूर कर सकते हैं। जर्मनी में भी घोड़ों से शकुन

---

१. क्रुक—पा० रि० फो० ना० इ०, भाग २, पृ० २०७

२ वही, पृ० २०७

३. पंजाब नोट्स एण्ड क्वेरीज, भाग १, पृ० ११३

४. कैम्पबेल—नोट्स पृ० २८२

५ घोड़ों के संबंध में लोक-विश्वास के विस्तृत विवरण के लिए देखिए—
— क्रुक—फो० लो० पा० रि० ना० इ०, भाग २, पृ० २०४-२०८

कहा था। वैदिक आर्यों के लिए युद्ध में अत्यन्त उपयोगी होने के कारण घोड़ा जो "दधिक्र" के नाम से प्रसिद्ध था—देवता की भाँति पूजनीय था। ऋग्वेद में इसकी स्तुति पाई जाती है।[1]

महाभारत में 'उच्चै:श्रवा' घोड़ा—जिसका अर्थ ऊँचे कान वाला है—का उल्लेख मिलता है जिसकी पूँछ काली और शरीर सफेद होता था। वह गति में तेज और सूर्य के पथ का अनुसरण करता था। लोक-कथाओं में मणिदत्त के घोड़े का वर्णन है जो चन्द्रमा के समान श्वेत वर्ण का था और जिसकी मधुर आवाज शंख के समान कर्ण-सुखद थी।

पुराणों में कल्कि नामक भगवान् के दशम् अवतार का वर्णन पाया जाता है जो श्वेत अश्व के रूप में है। हयग्रीव—जिसकी ग्रीवा घोड़े के समान हो—के रूप में विष्णु के शरीर धारण की कथा प्रसिद्ध है जिसे उन्होंने असुरों से वेद की रक्षा करने के लिए ग्रहण किया था। पुराणों में केशी नामक दैत्य की कथा मिलती है जिसने अश्व के स्वरूप को धारण कर कृष्ण की हत्या का निष्फल प्रयास किया था। इसी प्रकार से पुराणों में अश्वों की महिमा तथा महत्त्व की अनेक कथाएँ भरी पड़ी हैं।

राजपूत काल में भी घोड़ों ने अपनी स्वामिभक्ति तथा वीरता के कारण सम्मान का स्थान प्राप्त किया था। सुप्रसिद्ध वीर महाराणा प्रताप के विख्यात घोड़ा 'चेतक' का नाम आज भी स्मरणीय है जिसने महाराणा का अन्त तक साथ दिया था। आज इस घोड़े की पूजा की जाती है और इसके नाम से उदयपुर में 'चेतक चौक' प्रसिद्ध है। आगरा के किला के प्रधान द्वार पर अमर सिंह राठौर के घोड़े की प्रतिमा आदर के साथ प्रतिष्ठापित है जिसने किले की तीसरी मंजिल से कूद कर अपने स्वामी को बचा लिया था।

घोड़ा शुभ तथा पवित्र जानवर माना जाता है। जब कोई रसोई का पात्र अपवित्र हो जाता है तब यह घोड़े के केवल सूँघने से पवित्र माना जाता है। दक्षिण में ऐसा विश्वास है कि घोड़े के मुँह की गाज के कारण दुष्ट आत्माएँ वहाँ प्रवेश नहीं कर सकतीं। क्रुक ने लिखा है उत्तरी भारत में 'रोवनी' के समय में किसी घुड़सवार व्यक्ति का ईख के खेत में प्रवेश करना शुभ कार्य है।[2] लोगों का ऐसा विश्वास है कि घोड़े के दर्शन से बन्ध्यत्व दूर हो जाता

१. ऋ० वे०, ४/३३

२. क्रुक—पा० रि० फो० ना० इ०, भाग २, पृ० २०७

है।[१] रामायण में कौशल्या के द्वारा पुत्र प्राप्ति के लिए अश्व के स्पर्श का उल्लेख है। इसी उद्देश्य से अश्वमेध यज्ञ के अवसर पर रानी मृतयज्ञीय अश्व के समीप रात्रि में सोया करती थी।[२]

घोड़े के मांस को खाना निषिद्ध है। इसके खाने से सारे शरीर में ऐंठन पैदा हो जाती है। यदि कोई सिपाही चाँदमारी के समय अपने लक्ष्य में सफल नहीं होता था तो उसके मित्र घोड़े के मांस का भक्षी कहकर उसकी खिल्ली उड़ाया करते थे।[३] कुछ लोग घोड़े की नाल को अपने घर के प्रधान द्वार के फाटक पर कीलों से ठोंक देते हैं। लोगों की ऐसी धारणा है कि इससे दुष्ट आत्माओं का प्रवेश घर में नहीं हो सकता। आगरा के पास, फतेहपुरसीकरी के 'बुलन्द दरवाजा' के किवाड़ों में हजारों की संख्या में घोड़े के नाल जड़े हुए दिखाई पड़ते हैं। संभवतः नगर की रक्षा के लिए ऐसा किया गया था।

पश्चिमी भारत में घोड़े की पूजा प्रचलित है। राजपूत भील लोग 'घोड़ा देव' नामक देवता की पूजा करते हैं जो पाषाण अश्व के रूप में स्थापित किये रहते हैं। भोटिया लोग दशहरा के अवसर पर मिट्टी के घोड़े की पूजा करते हैं। गुजरात में पीरों की कब्र पर घोड़ों को 'चढ़ाने' की प्रथा है। कुनबी जाति के लोग दशहरा पर घोड़ों को स्नान कराते हैं। उन्हें फूल-मालाओं से सुसज्जित कर भेड़ की बलि देते हैं तथा उसके खून को उन पर छिड़कते हैं।[४] गोण्ड लोगों में 'कोड़पेन, (Kodapen) नामक एक ग्राम-देवता अश्व रूप में पाये जाते हैं। ये लोग वर्षा ऋतु के आगमन पर गाँव के बाहर उनके सम्मान में एक पाषाण की पूजा करते हैं। इस प्रकार से घोड़ों के विषय में अनेक विश्वास जन समाज में प्रचलित हैं।[५]

विदेशों में भी इस विषय में अनेक विश्वास प्राप्त होते हैं। इंग्लैण्ड में घोड़ों में भूतों तथा प्रेतों को देखने की शक्ति मानी जाती है। ये "हूपिंग कफ" (कुकुर खाँसी) को भी दूर कर सकते है। जर्मनी में भी घोड़ों से शकुन

---

१. क्रुक—पा० रि० फो० ना० इ०, भाग २, पृ० २०७

२ वही, पृ० २०७

३. पंजाब नोट्स एण्ड क्वेरीज, भाग १, पृ० ११३

४. कैम्पबेल—नोट्स पृ० २९२

५ घोड़ों के संबंध में लोक-विश्वास के विस्तृत विवरण के लिए देखिए—
—क्रुक—फो० लो० पा० रि० ना० इ०, भाग २, पृ० २०४-२०८

की प्राप्ति होती है। भारत की भाँति यूरोप में घोड़े की नाल की प्राप्ति शुभ मानी जाती है और वहाँ भी इस नाल को द्वार के फाटक पर कीलों से गाड़-कर रखते हैं। इससे आपत्तियों से तथा डाइनों के प्रकोप से रक्षा होती है। सुप्रसिद्ध नौ सेना का वीर नेल्सन लोक-विश्वास में बड़ी आस्था रखता था। उसने अपनी विख्यात नौ-पोत 'विक्ट्री' के मस्तूल में घोड़े की नाल को ठोंक कर लगा रखा था।

जिस घोड़े की अगली टाँगें सफेद हों वह अत्यन्त भाग्यशाली माना जाता है। परन्तु अगली तथा पिछली एक टाँग सफेद हो तो यह अशुभ है। सफेद पैर वाले घोड़े को रखने तथा खरीदने के विषय में इंग्लैण्ड में अनेक सूक्तियाँ प्रसिद्ध है।[१]

संस्कृत साहित्य में भी घोड़ों के संबंध में अनेक शकुन पाये जाते हैं। समर भूमि में घोड़ों का स्खलित होना, उनकी आँखों से आंसू का बहना अशुभ माना जाता था।[२] रण भूमि में अश्वों का मंद गति से चलना, रुधिर मूत्रोत्सर्ग करना भावी मृत्यु का सूचक है।[३] परन्तु मृगया के लिए प्रस्थान करते समय रथ में जुते घोड़ों का हिनहिनाना शुभकारक है।[४] पारिजात हरण महाकाव्य में श्रीकृष्ण का इन्द्र के साथ प्रस्थान करते समय घोड़ों का हिनहिनाना मंगलकारी है। यह विजय का सूचक है। रणभूमि के लिए प्रस्थान करते समय घोड़ों का हिनहिनाना, दक्षिण पैरों से भूमि का लिखना

---

१. If you have horse, with four white legs, keep him not a day.
If you have a horse with three white legs send him far away.
If you have a horse with two white legs send him to a friend.
If you have a horse with one white leg keep him to the end: —डायर इ० फो० पृ० ११३
विस्तार के लिए देखिये—वही पृ० १११-१४

२. वा० रा०, (यु० का०), ७८/१८

३. भट्टि राo बo, १५/६८

४. कृष्ण कवि—भारत चरित, ४/१०

या खोदना तथा पूँछ का हिलाना विजय-श्री की प्राप्ति का द्योतक है।[1] सीता हरण के लिए जाते समय रावण के मार्ग में अश्वों का अकारण शरीर कम्पन अश्रुवर्षा, अनवस्थित चित्त और स्खलन का होना अशुभ सूचक माना गया है।[2] इस प्रकार घोड़ों के विषय में लोक-साहित्य तथा संस्कृत साहित्य में अनेक विश्वास पाये जाते है। विदेशों में भी इन विश्वासों की स्थिति है।

(६) हाथी

जानवरों में हाथी सबसे बड़ा, विशाल शरीर वाला, शक्तिशाली तथा बलवान होता है। ऐसी प्रसिद्धि है कि प्राचीन काल में सुरों तथा असुरों ने जब समुद्र मन्थन किया था तब उस समय जो चौदह रत्न समुद्र से निकले थे उनमें ऐरावत नामक हाथी अन्यतम था। शक्तिशाली होने के नाते इन्द्र ने इसे अपना लिया। ऐसी धारणा है कि आठों दिशाओं में स्थित आठ हाथियों ने पृथ्वी को धारण कर रखा है। इसलिए इन्हें दिग्पाल कहा जाता है। गणेश जी के समान इसकी मुख की आकृति होने के कारण इसे गणेश का प्रतिनिधि मानकर इसकी पूजा की जाती है। हाथी के मस्तक में मोती होता है जो 'गजमुक्ता' के नाम से प्रसिद्ध है। जो हाथी गजमुक्ता से मुक्त होता है वह अत्यन्त शुभ तथा बहुमूल्य होता है।

हाथी रंग में प्रायः काला तथा स्याम होता है। बर्मा में सफेद हाथी पाये जाते हैं। सफेद हाथी शुभ तथा मंगलकारी होता है। बौद्ध साहित्य से पता चलता है राजा शुद्धोधन की रानी माया ने यह स्वप्न देखा था कि उनके गर्भ में श्वेत हस्ती प्रवेश कर रहा है। इसे ज्योतिषियों ने शुभ लक्षण बतलाया था। इसके फलस्वरूप भगवान् बुद्ध का जन्म हुआ। सफेद हाथी प्रायः बेकार होता है। अतः खर्चीले तथा निष्क्रिय व्यक्ति की उपमा सफेद हाथी से दी जाती है।

हाथियों के दिग्पाल होने के कारण ऐसा विश्वास किया जाता है ये प्रासादों, विशाल भवनों तथा दुर्गों की भी रक्षा करते हैं। इसीलिए मध्य-कालीन प्रासादों एवं दुर्गों के प्रधान द्वार पर हाथियों की विशाल पाषाण प्रतिमाओं की स्थापना की जाती थी। भारतीय कला में 'गजलक्ष्मी' की

---

१. धनंजय विजय—श्लोक २२

२. विशेष के लिए देखिए—दीपचन्द शर्मा, सं० का० श०, पृ० १२७-१३२

प्रतिमा प्रायः उपलब्ध होती है जो अपने उठाये हुए सूँड़ में कमल के पुष्प को लेकर प्रधान द्वार पर स्थापित दिखलाई गयी है। प्राचीन भारत में चतुरंगिणी सेना का उल्लेख पाया जाता है जिसमें हाथी की गणना सर्व प्रथम होती थी।

हाथी के संबंध में अनेक विश्वास प्रचलित हैं। हाथी के शरीर का स्पर्श करना स्त्रियों के लिए उनके सतीत्व की कसौटी माना जाता है। हाथी के पूँछ का बाल तावीज के रूप में प्रयुक्त होता है जिससे अनेक रोग दूर हो जाते हैं। छोटे बच्चे हाथी के पद-चिह्नों की धूलि को हाथों से थपथपाते हुए कहते हैं कि—

"हाथी-हाथी बार दे।
सोने की तलवार दे॥"

भोजपुरी प्रदेश के बालक निम्न गीत गाते हैं—

"हथिया हथंग, तोरे बुलबुल के तितंग।"

इस गीत का कोई अर्थ नहीं है। बल्कि यह हाथी के दर्शन से उनके हृदय में उत्पन्न प्रसन्नता का उद्गार है।

अशोक के स्तम्भों पर हाथी की प्रतिमा उत्कीर्ण है जो उसके शुभ होने का प्रतीक है। भारतीय कला में भी हाथी मंगल के रूप में चित्रित किया गया है।

वराहमिहिर ने 'हस्तिचेष्टिताध्यायं' नामक संख्या दो अध्याय में हाथियों की चेष्टाओं से संबंधित अनेक लोक-विश्वासों का उल्लेख किया है। उनका कथन है कि यदि हाथी के दाँत में बिल्व वृक्ष; छत्र, ध्वज या चामर के चिह्न दिखाई पड़ें तो यह आरोग्य तथा धन की वृद्धि करने वाला होता है।[1] हाथी के दाँत के मूल, मध्य और अग्रभाग में क्रम से देवता, दैत्य और मनुष्य निवास करते हैं।[2] यदि चलता हुआ हाथी, अचानक रुक जाय; उसका कान हिलना बन्द हो जाय; धीरे-धीरे लम्बी साँस ले, बहुत देर तक सोवे; उलटा चलने लगे और अभक्ष्य वस्तु खाने लगे तब वह भय करने वाला होता है।[3] परन्तु यदि हाथी हर्षित दृष्टि से, ऊँचा मुँह करके शीघ्र गति से चले; तथा हौदा कसने के समय जल बिन्दु उड़ावे; गर्जन करे तथा अपने सूँड़ से दाहिने दाँत को पकड़े, तब यह शुभ कारक तथा विजय देता है। इसी प्रकार से यदि

१. वराहमिहिर—बृ० सं०, ६४/२
२. वही ,, ,, ६४/८
३. वही ,, ,, ६४/१२

हाथी ग्राह को पकड कर जल से बाहर निकल आता है तब अपने स्वामी की वृद्धि करता है परन्तु इसके विपरीत उसके नाश का कारण बनता है।[1] बृहत्-संहिताकार ने हाथियों को चार श्रेणियों में विभक्त किया है और आकार-प्रकार के अनुसार शुभाशुभ का फल बतलाया है।[2]

संस्कृत के काव्यों में भी हाथियों के संबंध में अनेक लोक-विश्वास पायें जाते हैं। हाथियों का मद से हीन होना अशुभ-सूचक है। रावण को समझाते हुए उसके नाना माल्यवान् हाथी के नेत्रों से आँसुओं के गिरने को अशुभ की मान्यता दी है।[3] इसी प्रकार से हाथियो के द्वारा रुधिर का मूत्रोत्सर्ग करना अमंगलकारी है।[4] हाथियो के कपोलों पर भौंरों के द्वारा मद पान न करना शुभ के भावी विनाश का सूचक है। हाथी का रोना भी अशुभ है।

परन्तु महाकवि श्री हर्ष ने हंस पंक्षी की यात्रा के प्रारम्भ में करिशावक (हाथी का बच्चा) का दर्शन शुभ माना है।[5] कौरव सेना का रणभूमि के लिए प्रस्थान करते समय हथिनियो के कपोलों पर बारम्बार मदजल का आविर्भाव भावी विनाश का सूचक है। हाथियों के कपोलों से सहसा मदस्राव विजय का सूचक है। 'विजय प्रशस्ति' महाकाव्य में जय विकल मुनि के नगर

१. प्रवेशनं वारिणि वारणस्य,
 ग्राहेण नाशाय भवेन्नृपस्य।
 ग्राहं गृहीत्वोत्तरणं नृपस्य:
 तोयात् स्थलं वृद्धिकरं नृभर्तुः ॥—वराहमिहिर बृ०सं०, ६४/१६

२. वही, ६७-१/१०

३. बा० रा० (युद्ध काण्ड) सर्ग, ३५१/२५,२७

४ भट्टिटी—-रावण वध, १४/५००

५. नभसः कलभैरयासितं,
 जलदैर्भूरितर क्षुपन्नगम्।
 स ददर्श पतंग पुंगवो
 विटपच्छन्नतरक्षुपन्नगम्॥
 —श्री हर्ष—नैषधीय चरित, २|६७

धोने के लिए ले जाता है। यह बड़ा ही धैर्यशाली जानवर है क्योंकि उसका स्वामी उस पर चाहे जितना भी बोझ लाद लेता है वह बिना प्रतिकार के उसे बड़े धैर्य के साथ ले जाता है। इसीलिए शास्त्रकारों ने धैर्य तथा आज्ञा-पालन आदि गुणों का निवास गदहा में स्वीकार किया है।[1] यह बड़ा ही मन्द बुद्धि होता है। अतएव मूर्ख मनुष्य की उपमा इसी जीव से दी जाती है।

इसकी आवाज बड़ी ही बेसुरी होती है। अतः जब यह "हेंको-हेंको" करके चिल्लाने लगता है तब वह बड़ा ही कर्ण-कटु ज्ञात होता है। इसीलिए गदहे का बोलना, जिसे रेंकना भी कहते हैं, अमगलकारी है।

गदहा शीतला देवी का वाहन माना जाता है। अतः शीतला के मंदिरों में वाहन के रूप मे इसकी भी प्रतिमा किसी कोने में प्रतिष्ठापित की जाती है। विष्णुपुराण से पता चलता है कि धेनुक नामक एक राक्षस था जिसने गदहे का रूप धारण कर कृष्ण और बलराम का निरादर किया था। खर नामक राक्षस, जिसका वध राम ने किया था, भी गदहे का रूप धारण कर लोगों को कष्ट दिया करता था।[2]

परन्तु हेम विजयगणि ने विजय सेन सूरि के लाभपुर के लिए प्रस्थान करते समय बाईं ओर गर्दभ के बोलने को सपरिवार कुशलता का द्योतक माना है।[3] इसी प्रकार मैथुनरत गर्दभ का मिलना धन की प्राप्ति का परिचायक है।[4] इंग्लैण्ड में यह विश्वास प्रचलित है कि गदहे की गर्दन पर जो चिह्न प्राप्त होते हैं वह ईसामसीह के इस जीव पर चढ़ने के स्मारक हैं।[5]

भारतीय लोक-कथाओं में गदहा के संबंध में अनेक कहानियाँ प्राप्त होती है। कथा-सरित्-सागर में एक गर्दभ की कथा मिलती है जिसने व्याघ्र-चर्म को ओढ कर जनता में आतंक मचा रखा था।[6] बौद्ध जातकों में रासभ जातक में भी ऐसी ही कथा का उल्लेख मिलता है।[7] क्रुक ने अग्रवाल जाति की एक

---

१. त्रीणि शिक्षेत् गर्दभात्।
२ क्रुक—पा० रि० फो० ना० इ० भा० २, पृ० २०८-२०९
३ हेम विजयगणि—विजयप्रशस्ति सर्ग, १२, श्लो० १०
४. वही, १२/१५
५. डायर—इं० फो०, पृ० ११९
६. व्याघ्रचर्म प्रतिच्छन्नो···रासभो यथा
७. पालिजातकावलि—गद्दभ जातक

प्रथा का उल्लेख करते हुए लिखा है कि विवाह के पहिले ये लोग एकान्त में वर को गदहे पर बैठाया करते हैं जिसका अभिप्राय शीतला देवी से उसकी रक्षा करना है।[१] परन्तु यह प्रथा कहाँ तक सत्य है यह कहना कठिन है। संभवतः यह प्रथा आजकल प्रचलित नहीं पाई जाती।

(९) सिंह

सिंह को मृगराज अथवा मृगपति कहा जाता है जिसका अर्थ है जानवरों का राजा। यद्यपि शरीर की आकृति की विशालता में हाथी सबसे बड़ा जीव है परन्तु पराक्रम, वीरता और शौर्य में सिंह ही 'मृगराज' की उपाधि से विभूषित किया जाता है। यह इतना पराक्रमी पशु है जिसने अपने बल और विक्रम से स्वतः 'मृगेन्द्र' की पदवी को धारण कर लिया है।[२] ऐसी प्रसिद्धि है सिंह अपने प्रतिद्वन्दी की स्थिति को कदापि सहन नहीं कर सकता। इसीलिए लोक-जीवन मे यह कहावत प्रसिद्ध है कि "सारे जगल में एक ही सिंह रहता है।"

सिंह भगवती महिषासुरमर्दिनी दुर्गा का वाहन है। यह देवी इस वाहन पर सवार होकर शत्रुओं का नाश करती है। लोक-कथाओं में पिंगलक नामक एक सिंह का उल्लेख मिलता है जो प्रतिदिन जंगल के जीवों का भक्षण किया करता था परन्तु किसी चालाक खरगोश (शशक) ने एक दिन अपनी धूर्तता से उसे कुएँ में गिरा दिया।[३]

(१०) शेर या बाघ

सिंह के बाद हिंसक जीवों में बाघ का ही स्थान आता है। बाघ को संस्कृत मे व्याघ्र कहते हैं। क्रुक ने लिखा है कि बघेल राजपूत अपनी उत्पत्ति इसी जानवर से मानते हैं। मध्य भारत में रहने वाले इस जाति के लोग बाघ की हत्या करना निषिद्ध मानते हैं। राजस्थान के भील और बजरावत राजपूत भी अपनी उत्पत्ति इसी से समझते हैं।[४]

---

१. क्रुक—पा० रि० फो० ना० ई० भाग २, पृ० २१८-९.

२. "नाभिषेको न संस्कारो, सिंहस्य क्रियते मृगैः।
   विक्रमार्जित राजस्य; स्वयमेव मृगेन्द्रता॥"

३. हितोपदेश—पिंगलक की कथा।

४. टाड—ए० ए० रा० भाग २, पृ० ६६०

संभवत: बाघ के प्रति इसी पूज्य बुद्धि के कारण जगल के निवासी इस जानवर को देखकर इसके नाम के उच्चारण करने के स्थान पर इसे 'जानवर' कहते है ! ये लोग स्वयं बाघ की हत्या करना उचित नहीं समझते परन्तु इसकी मृत्यु पर आनन्द का अनुभव करते हैं। मध्य प्रदेश के अकोला नामक नगर के माली शिकारियों को बाघ के छिपने के स्थान को बतलाने में संकोच करते हैं क्योंकि उनका यह विश्वास है कि यदि इस जानवर का यहाँ शिकार किया जाता है तो खेती की पैदावार कम हो जाती है।[1]

बाघ की पूजा जंगली जातियों में अत्यधिक प्रचलित है। मिर्जापुर जिले की जंगली निवासी बाघेश्वर नामक देवता की पूजा करते है। सन्थाल लोग इसे पूज्य बुद्धि से देखते है। ये लोग बाघ को मारना निषिद्ध मानते है और यह समझते हैं कि इसके प्रत्युपकार के रूप मे यह उनकी रक्षा करेगा। 'हो' तथा 'सन्थाल' जाति के लोग व्याघ्र-चर्म को प्रत्यक्ष रखकर किसी वस्तु की शपथ 'खाते' या करते है। यदि बाघ किसी व्यक्ति की हत्या कर देता है तो बाघ की भूत रूप में (बाघभूत) पूजा की जाती है।[2]

मध्य प्रदेश के होशंगाबाद जिले के कुर्क जाति के निवासी 'बाघदेव' के नाम से देवता के रूप में इसका सम्मान करते है। इस जिले में बाघदेव का पुजारी 'भोमका' के नाम से प्रसिद्ध है। इसमें अद्भुत जादू की शक्ति होती है। वह अपने जादू के द्वारा जंगल से बाघ को बुला सकता है और उनके कान पकड कर उससे नगर में न आने के लिए कहता है। इसी उद्देश्य से वे मार्ग मे चारपाई बिछा देते हैं। लोगों का यह विश्वास है कि ऐसा करने से बाघ नगर मे आकर लोगों की हिंसा करने का दुःसाहस नहीं कर सकता।[3]

बाघ के विभिन्न अंगों में जादू की शक्ति पाई जाती है। बाघ की हड्डी, रजा और गलमोछा में जादुई शक्ति होने के कारण भूत-दूतों के दूषित प्रभाव को नष्ट करने के साथ ही इनमें कुदृष्टि, बीमारी तथा मृत्यु को भी बाधित करने की ताकत होती है। शेरनी का दूध अनेक दवाओं के लिए उपयोगी माना जाता है। बाघ की चर्बी गठिया के लिए अचूक औषधि है।

---

१ क्रुक—पा० रि० फो० ना० इ० भाग २, पृ० २१२
२. डाल्टन—डि० ए० बं० पृ० १३२, १३३
३. क्रुक—पा० रि० फो० लो० ना० इ० भाग २, पृ० २१४

असम राज्य के मेरी जाति के लोग बाघ के मांस को भोजन के लिए प्राप्त करना सौभाग्य समझते हैं। इससे उनको शक्ति और साहस प्राप्त होता है। इसका मांस दवा और भूत-प्रेतों को भगाने के उपयोग में भी आता है। इसीलिये जानवरों में बीमारी फैलने पर इसका मांस जन्तुशाला या गोशाला में जलाया जाता है। अनाज (अन्न) के पौधों के रोगों को दूर करने के लिए भी यह प्रयुक्त होता है।[१]

भारतीय लोक-कथाओं में ऐसा वर्णन मिलता है, जहाँ मनुष्य बाघ के रूप में परिवर्तित हो जाता है। नेपाल में बाघ यात्रा' नामक एक उत्सव मनाया जाता है जिसमें मनुष्य बाघ का रूप धारण कर नृत्य करते हैं।

(११) भालू

भालू को 'रीछ' भी कहा जाता है। यह जंगली तथा हिंसक पशु है। परन्तु मदारी लोग इसके जबड़े को लोहे की पट्टी से बाँधकर इसे पालतू बना देते हैं। ये लोग गाँवों में घूम-घूम कर इसका नाच दिखाकर बालकों का मनोरंजन किया करते हैं। लोगों की ऐसी मान्यता है कि भालू की पीठ पर रोगी बालकों को बैठाकर घुमाने से उनके समस्त रोग उसमें संक्रमित हो जाते हैं। इसका बाल तावीज बनाकर बालकों के गले में पहना दिया जाता है। जिससे उनकी रोगों से रक्षा होती है।[२]

पुराणों में भालुओं के राजा जाम्बवान् का उल्लेख मिलता है जिन्होंने स्यमन्तक मणि को चुरा लिया था। कृष्ण के द्वारा पीछा किये जाने पर इन्होंने स्यमन्तक मणि को लौटा दिया और अपनी पुत्री जाम्बवती का विवाह उनसे कर दिया। बाद में इन्होंने वानर और भालुओं की सेना लेकर लंका पर चढ़ाई कर राम की सहायता की जिसका उल्लेख कालिदास ने अपने महा-काव्य में किया है।[३]

---

१. बाघ के लोक-विश्वास के विस्तृत विवरण के लिए देखिए—
   क्रुक—पा० रि० फो० लो० ना० इ० भाग २, पृ० २१०-२१८

२. क्रुक—पा० रि० फो० लो० ना० इ० भाग २, पृ० २४२

३. दुर्जातबन्धुरयमृक्षहरीश्वरो मे,
   पौलस्त्य एष समरेषु पुर प्रहर्ता। —रघुवंश १३/७२

(१२) भेड़िया

भेड़िया की गणना हिंसक पशुओं में की जाती है। यह खरगोश की कोटि का जानवर है परन्तु स्वभाव में हिंसक है। यह गाँवों में निवास करने वाले किसानों के बच्चों को लेकर रात में भाग जाता है अथवा कभी-कभी उनका वध भी कर देता है। लोक-कथाओं में 'भेड़िया आया, भेड़िया आया' की कहानी प्रसिद्ध है जिसने गाँवों में जाकर ग्रामीणों की जन और धन की हानि की थी।

भेड़िया बड़ा ही काँइया जानवर है जो अपने हिंसक स्वभाव को छिपाये रहता है परन्तु अचानक आक्रमण कर देता है। भेड़िया को संस्कृत में 'वृक' कहते हैं। सम्भवतः इसका पेट बडा होता है अतः वह अधिक भोजन करता है। अतएव भोजन-भट्ट व्यक्ति की विशेषता की सूचना 'वृकोदर' (भेड़िया के समान बड़ा पेट) कह कर दी जाती है।

(१३) सूअर

संस्कृत में इसे 'शूकर' कहा जाता है। पशुओं मे यह बड़ा ही निकृष्ट, गन्दा, मूर्खयात नीच पशु माना जाता है। जिस प्रकार बुद्धिहीन व्यक्ति की उपमा गर्दभ से दी जाती है उसी प्रकार नीच तथा गन्दे व्यक्ति को 'सूअर' की उपाधि दी जाती है। सूअर एक छोटे से गन्दे घर में रहता है जिसे 'कोभारि' कहते हैं। अतः स्वच्छता से रहित, गन्दा तथा जीर्ण-शीर्ण घर की उपमा इसी शब्द से दी जाती है।

सूअर अत्यन्त अपवित्र जानवर है। अतः इसे छूना निषिद्ध है। यदि किसी प्रकार से मनुष्य इससे छू गया तब स्नान करने पर ही उसकी शुद्धि हो सकती है। लोक-जीवन में यह अमंगलकारी पशु है। परन्तु संस्कृत साहित्य मे यात्रा के समय कीचड़ से लिप्त अंग वाले सूअर का बाईं ओर मिलना शुभ माना गया है।[१]

भगवान् विष्णु ने सूअर के रूप में अवतार ग्रहण किया था जिसे 'शूकरावतार' कहते हैं। इस अवतार में इन्होने समुद्र में डूबी पृथ्वी का

---

१. पोत्री पंकप्रलिप्ताङ्गः सम्प्राप्तो वामतो व्रजन्।
लाभस्य भूयसो भूतेः, सद्भूतः प्रतिभूरिव॥
हेम विजयगणि विजय प्रशस्ति १२/१७

उद्धार किया था। भारतीय कला में इसका चित्रण अनेक स्थानों में पाया जाता है।[१]

(१४) साही या साहिल

यह एक जंगली छोटा-सा जानवर है जिसकी पीठ पर बड़े-बड़े काँटे होते हैं। जब यह किसी जीव पर आक्रमण की मुद्रा में उत्तेजित हो जाता है तब पीठ के ये काँटे खड़े हो जाते हैं और इसकी आकृति बड़ी भयानक दिखाई पड़ने लगती है।

लोगों का यह विश्वास है कि यदि साहिल का काँटा किसी व्यक्ति के घर में फेंक दिया जाय तो घर के सदस्यों में आपस में झगड़ा लग जाता है। यज्ञोपवीत-संस्कार के अवसर पर जब ब्रह्मचारी का मुण्डन करना होता है तब उसकी चुटिया को तीन भागों में विभक्त कर प्रत्येक भाग में साही या साहिल का काँटा बांध दिया जाता है। इसके बाद चुटिया सहित सिर के समस्त बालों को उस्तरे से काट दिया जाता है। विवाह-संस्कार के अवसर पर इन काँटों का कोई उपयोग होता है या नहीं, यह कहना कठिन है।

(१५) बकरी

बकरी एक नितान्त निरीह जानवर है। संस्कृत में इसे 'अजा' कहते है। इसका दूध स्वास्थ्य के लिए बड़ा लाभकारी होता है। माता के दूध के समान ही इसका दूध लाभकारी माना जाता है। अतएव जिन लड़कों को अपनी माँ का दूध पीने का सौभाग्य प्राप्त नहीं होता उन्हें बकरी का दूध पिलाकर पाला जाता है। भारत के राष्ट्रपिता महात्मा गांधी बकरी के ही दूध का प्रयोग किया करते थे।

बकरी के गले में दो स्तन लटकते रहते हैं जो निरर्थक होते हैं क्योंकि इनसे दूध की प्राप्ति नहीं होती है। अतः जो व्यक्ति बेकार तथा निरर्थक होता है उसके जन्म की उपमा इसी से दी जाती है।[२] बकरी का मल-मूत्र उर्वरक के काम लाया जाता है।

(१६) बकरा

इसे संस्कृत में 'अज' की संज्ञा प्राप्त है। इसे 'अजापुत्र' भी कहते है।

---

१. रामेश्वर ओझा—द्विवेदी अभिनन्दन ग्रन्थ—"शूकरावतार"
२. "अजागल स्तनस्यैव, तस्य जन्म निरर्थकम्।"

बकरा भगवान् अग्नि देव का वाहन है। बृहत्संहिता में छागल' के नाम से इसका उल्लेख किया गया है। संहिताकार ने इसे चार निम्नांकित भागों में विभक्त किया है। यथा —

(१) कुट्टक (२) कुटिल (३) जटिल (४) वामन और इन चारों के पृथक्-पृथक् लक्षण भी बतलाया है। ये चारों प्रकार के छागल लक्ष्मी के पुत्र माने जाते है। अतएव लक्ष्मी से रहित प्रदेश में इनका निवास नहीं होता।[१] उत्तम वर्ण वाले, मणियों से युक्त गले वाले, सींग से रहित तथा लाल आँख वाले छागल सुख, यश और लक्ष्मी को बढ़ाने वाले होते हैं।[२] परन्तु गदहे के समान कान वाले, टेढ़ी पूँछ वाले, खराब नख तथा वर्ण वाले, फटे कान और हाथी के समान मस्तक वाले छागल अशुभ होते हैं।[३] सींग से रहित, कृष्ण या श्वेत शरीर वाले, आधे काले, श्वेत, पीले और काले रंग वाले छागल शुभ माने जाते हैं।[४] इस प्रकार इस ग्रन्थ में बकरों के शुभ तथा अशुभ के प्रसंग में बड़ा विवेचन किया गया है।

अनेक लोग अपनी मनो-कामना की पूर्ति के लिए देवी के मन्दिर में बकरे की बलि चढ़ाने की मनौती मानते हैं और अपनी कामना की पूर्ति हो जाने पर अजा-पुत्र का बलिदान करते है। नवरात्रों में— विशेष कर शारदीय नवरात्र में, काशी में दुर्गा जी के मन्दिर में तथा मिर्जापुर के पास विन्ध्यवासिनी देवी के मन्दिर में बलि की वेदी पर चढ़ाये जाते हुए बकरों की पंक्ति आज भी देखी जा सकती है। परन्तु धीरे-धीरे इस प्रथा का ह्रास होता जा रहा है। जो लोग निरपराध बकरे की बलि चढाना उचित नहीं समझते वे केवल उसके कान को काट कर उसे मुक्त कर देते हैं। बलिदान की यह परम्परा कुछ प्राचीन जान पड़ती है। संस्कृत की एक सूक्ति में कहा गया है कि भगवान् गरीब बकरी के बच्चों का ही नाश करता है।

---

१. कुट्टकः कुटिलश्चैव; जटिलो वामनस्तथा।
ते चत्वारः श्रियः पुत्राः; ना लक्ष्मीके वसन्ति ते ॥—बृ० सं०, ६५ ६

२. वही, ६५/१०

३. वही, ६५/११

४ मुण्डाः सर्वे शुभदाः; सर्वसिताः सर्वकृष्णदेहाश्च।
अर्धासिताः सितार्धाः; धन्याः कपिलार्ध कृष्णाश्च ॥- बृ० सं०, ६५/४

"अजापुत्रं बलिं दद्यात्; दैवो दुर्बल घातकः ।"

बकरे को बलिदान में चढ़ाने की परम्परा इतनी दृढ़ मूल हो गई है कि किसी दु:खिया, निरपराध, पीड़ित व्यक्ति की उपमा 'बलि के बकरा' से दी जाती है।

यदि किसी स्थान में बीमारी, विशेष कर संक्रामक बीमारी, फैलती है तो बकरे को नये वस्त्रों से सुज्जतित करके तथा उसे टीका लगा कर माला से सुशोभित करके गाँव की सीमा के बाहर छोड़ दिया जाता है। ऐसा विश्वास है कि ऐसा करने से बकरे के साथ ही बीमारी चली जाती है।

(१७) भेड़

यह बहुत ही सीधा-सादा जानवर है। इसमें बुद्धि का अभाव होने के कारण यह गतानुगतिक है। यदि एक भेड़ किसी खतरे के स्थान में चली जायेगी तब अन्य सभी भेड़े उस स्थान की दुर्गमता का बिना विचार किये हुए वहीं चली जाती हैं। इसीलिए बिना विचारे किसी काम के लिए भीड़ की उपमा 'भेड़िया धसान' से दी जाती है।

भेड़ों में अन्धानुकृति का दोष अथवा गुण पाया जाता है। संभवत इसीलिए ईसाई धर्म में समस्त मानवों को भेड और उनके उद्धारकर्ता ईसा-मसीह को भेडिहार (शेफर्ड) माना गया है। उनके उपदेशों का ग्रहण लोग बिना किसी तर्क बुद्धि के किया करते है।

भेड़ों का मल-मूत्र उर्वरक का काम करता है। अतः किसान रात्रि के समय भेड़ों को अपने खेतों में रखते हैं जिसे 'हिराना' कहा जाता है। भेड़ा को 'मेष' कहते हैं। यह बडा ही 'लड़ाकू' जानवर है। भेड़ों की लड़ाई तो प्रसिद्ध ही है जिसे देखने के लिए हजारों की भीड़ एकत्रित होती है। जातक कथाओ मे भेड़ों के संबंध में एक कथा उपलब्ध होती है जिसमे भेड़ा ने किसी ब्राह्मण को अपनी सींगों से मारा था।[1]

(१८) वानर

वानर को साधारणतया बन्दर भी कहा जाता है। वृक्षों की एक शाखा से दूसरी शाखा पर सदा कूदते रहने के कारण इनको 'शाखामृग' भी कहते हैं। इनकी अपर संज्ञा कपि भी है।

---

१ पं० बटुक नाथ शर्मा—पालि जातकावली।

बन्दर रामभक्त हनुमान् के वंशज माने जाते हैं। अतः समाज में इन्हें सम्मान की दृष्टि से देखा जाता है। हनुमान् राम के परम प्रिय तथा कृपा पात्र थे। इन्होंने सेवा, तथा भक्ति के द्वारा अपने स्वामी के हृदय को जीत लिया था। अतः हनुमान् वानर जाति में उत्पन्न होने पर भी पूजा के पात्र समझे जाते है। चूँकि बन्दर हनुमान् के वंशज माने जाते हैं अतः इन्हें भी समाज में आदर प्राप्त है।

हनुमान् के मन्दिरों में बानरों की सेना पाई जाती है। काशी में संकट मोचन के मन्दिर में अत्यधिक संख्या में बन्दर उपलब्ध होते हैं जिन्हें भक्तगण बड़े आदर से चना और गुड़ खिलाते हुए दिखाई पड़ते हैं। वाराणसी के दुर्गा जी के मंदिर में वानरों की संख्या इतनी अधिक है कि उसका नाम ही "मंकी टेम्पुल" (बन्दरों का मंदिर) पड़ गया है। अयोध्या में हनुमानगढ़ी नामक हनुमान जी के मंदिर में इन बन्दरों का उत्पात देखा जा सकता है।

बन्दरों के संबंध में अनेक लोक-विश्वास प्रचलित है। गोस्वामी तुलसीदास जी ने लिखा है प्रातः काल बन्दर का जो नाम लेता है उस दिन उसे भोजन प्राप्त नहीं होता।[१] शुभकार्य के लिए प्रस्थान करते समय यदि बानर दाईं ओर तथा लौटते समय बाईं ओर दिखाई पड़े तो इसका फल शुभ होता है।[२] मध्ययुग में लोगों का ऐसा विश्वास था कि घोड़ों का रोग बन्दरों के के सिर पर संक्रमित हो जाता है। इस तथ्य का उल्लेख जायसी ने किया है।[३] इसीलिए उन दिनों में अश्वशाला में बन्दरों को भी पाला जाता था। हनुमान से संबंधित होने के कारण बानरों का वध करना पाप माना जाता है। यही कारण है कि काशी में बन्दरों का उपद्रव पराकाष्ठा पर पहुँच जाने पर भी स्थानीय नगर महापालिका ने बानरों को पकड़कर इस नगर से निर्वासित करने का कई बार प्रबन्ध किया परन्तु धार्मिक जनता के प्रबल विरोध के कारण यह कार्यक्रम पूरा नहीं हो सका। यदि परिवार में निरंतर कई प्राणियों की मृत्यु हो जाय तो यह माना जाता है कि किसी शत्रु ने घर में बन्दर की हड्डी फेंक दी है।

---

१. "प्रात लेइ जो नाम हमारा।
तेहि दिन ताहि न मिलै अहारा॥"—रा० च० मा० (सु० का०), ६/४

२. R. E. Enthoven—Folklore—Notes 1914, Vol. I, p. 127.

३. "तुरग रोग हरिमाथे जाये।"—पद्मावत

(१६) गीदड़

गीदड़ को भोजपुरी भाषा में सियार कहा जाता है जो संस्कृत के शृगाल का अपभ्रंश रूप है। यह कहावत प्रसिद्ध है कि :[1]—

"मनइन में नौआ, औ चिरियन में कौआ"

अर्थात् मनुष्यों में नाऊ जिस प्रकार चालाक होता है उसी प्रकार पक्षियों मे कौआ काँइयाँ पाया जाता है। इसी प्रकार यह नि.संकोच कहा जा सकता है कि जानवरो में गीदड़ भी बड़ा ही चालाक जीव है। भारतीय लोक-कथाओं मे गमक (खरहा), जो शृगाल की ही कोटि का जानवर है, संबंधी अनेक कथायें प्रचलित हैं जिसमें उसकी बुद्धि चातुरी का प्रदर्शन किया गया है। भोजपुरी पिंडिया की कथा में उस सियारिन—गीदडी की चालाकी प्रसिद्ध है जिसने व्रत के दिन भी चुपके से हड्डी तथा मांस खा लिया था। भोजपुरी प्रदेश में अनेक ग्रामीण कथाओं में सियार को उसकी चालाकी के कारण 'सियारिन पाडे" की महनीय उपाधि से विभूषित किया गया है। गीदड चालाक होने पर भी डरपोक जानवर है। यह किसी आदमी को देखकर डर के मारे खेत अथवा जंगल की ओर भाग जाता है। इसीलिए भीरु तथा डरपोक व्यक्ति को 'गीदड़' की उपाधि दी जाती है।

गीदड़ गाँव के पास वाले खेतों में निवास करते हैं। सन्ध्या हो जाने पर खेतों में "हुँआ", "हुँआ" की आवाज करते हैं और गाँवों में चले आते हैं। लोगों का यह विश्वास है कि गीदड़ का रोना तथा गाँवों में इनका प्रवेश अशुभ है। यदि प्रस्थान करते समय गीदड़ रास्ता को 'काट' कर चला जाय तो यह अत्यन्त अमंगलकारी है। जब दिन में वर्षा होती है और इसके साथ ही सूर्य को किरणें भी पृथ्वी को प्रकाशित करती रहती हों तब यह गाँवों में इस दृश्य को देखकर कहा जाता है कि "सियार का विवाह" हो रहा है। रात्रि के पूर्व भाग में जब सियार 'हुँआ-हुँआ' करने लगते हैं तब गाँव के बालक उन्हे चिढाने के लिए चिल्ला कर कहा करते हैं :—

"हुँआ हुँआ, पकड़िया में धुँआ।"

संस्कृत साहित्य में शृगाल के संबंध में सैकड़ों लोक-विश्वास प्रचलित हैं। रामायण में शृगाल द्वारा शब्द करना अशुभ माना गया है। गीदड़ों का रुदन

---

१. डॉ० मुक्तेश्वर तिवारी—भोजपुरी कहावतें तथा पहेलियाँ

राम के मन में भावी अशुभ के आगमन की शंका उत्पन्न करता है।[1] सुवर्ण मृग को मार कर लौटते समय राम के लिए शृगालों का रोना सीता की प्राप्ति के लिए अशुभ माना गया है।[2] वाल्मीकि ने समुद्र को पार करके शृगालों के शब्द करने का उल्लेख वानरों तथा राक्षसों के भयंकर युद्ध तथा विनाश के रूप में किया है।[3] जनकपुरी से अयोध्या को लौटते समय दशरथ के मार्ग में शृगालों का शब्द भावी उत्पात का सूचक माना गया है।[4] मृगरूपी मारीच को मारकर लौटते हुए राम के लिए शृगालों का भयंकर शब्द करना सीता पर आने वाली भावी विपत्ति का सूचक बन गया।[5] इस प्रकार गीदड़ का आवाज करना रोना अथवा मार्ग में दिखाई पड़ना सर्वत्र अशुभ तथा अमंगलकारी है।

सियारिन को संस्कृत में 'शिवा' कहा जाता है। सियार का बोलना तथा रोना अशुभ तो है ही परन्तु सियारिन अर्थात् शिवा का रुदन अत्यन्त अधिक अशुभ तथा भयंकर माना जाता है। भारवि ने युधिष्ठिर के समक्ष द्रौपदी के द्वारा शृगालियों के द्वारा अशुभ शब्द करने का उल्लेख किया है।[6] पिता की मृत्यु का समाचार न जानने वाले भरत का अयोध्या लौटते समय शृगालों

---

१. भट्टि—रावण वध, १४/३१

२. स दुःख पिशुनं श्रुत्वा,
स्वरं गोमायु पक्षिणाम्।
अज्ञात्वापि वधू वृत्तं,
हा सीतेति वदन्मुहुः॥
—क्षेमेन्द्र—रामायण मंजरी, (अ० का०), पृ० ६४६

३. काकाः श्येनास्तथा गृध्राः नीचैः परिपतन्ति च।
शिवाश्चाप्य शिवान्नादान्नदन्ति सुमहाभयान्॥
—रामायण, (यु० का०), २३/११

४. रघुवंश, ११/६१

५. भट्टि—रावण वध, ६/५-६.

६. पुराधिरूढः शयनं महाधनं,
विबोध्यसे यः स्तुति गीतिमङ्गलैः।
अदभ्रदर्भामधिशय्य संस्थलीं,
जहासि निद्रामशिवैः शिवारुतैः।'—किरातार्जुनीयम् १/३८

का प्रतिकूल चलना तथा भयंकर शब्द करना अशुभ माना गया है।[१] हर्षचरित में शृगालियों का ऊपर की ओर मुँह करके जोरों से चिल्लाना हर्षवर्धन के द्वारा पिता की भावी मृत्यु का सूचक समझा गया।[२] चम्पू रामायण में राम के साथ राक्षस वीरों के युद्ध के लिए प्रस्थान के समय दिशाओं में गीदड़ी के द्वारा शब्द करना अशुभ का सूचक है।[३] परन्तु कहीं-कहीं बाईं ओर शिवा का शब्द शुभ वस्तु की सूचना देता है।[४]

बृहत्संहिता के 'शिवारुताध्याय' में शृगाली की चेष्टा, गतिविधि तथा उसके रुदन एवं शब्द आदि के संबंध में अनेक पते की बातें कही गई हैं। वराहमिहिर ने लिखा है कि पूर्व और उत्तर दिशा में स्थित शृगाली शुभ फल देने वाली होती है।[५] परन्तु शृगाली का शब्द तथा चेष्टा आदि प्रायः अशुभकारी ही सर्वथा होती है। सभी दिशाओं में गीदड़ी का उच्च स्वर से बोलना अशुभ है। परन्तु दिन में विशेष करके अशुभ माना जाता है।[६] गीदड़ी कितनी भयंकर एवं अशुभ होती है कि इसका अनुमान इसी घटना से किया जा सकता है कि जिस शृगाली के कर्कश स्वर से मनुष्यों को रोमाञ्च हो जाय, घोड़ा लीद करने लगे और मानवों में भय की सृष्टि हो जाय, वह अत्यन्त अशुभ मानी जाती है।[७] यदि शृगाली 'याहि' शब्द करे तो अग्नि भय, 'टाटा' शब्द करे तो मृत्यु, 'धिक्-धिक्' शब्द करने पर अत्यन्त कष्ट तथा यदि अग्नि की ज्वाला उसके मुँह से निकले तो देश का ही नाश हो जाता है। अतः शृगाली की आवाज तथा चेष्टा सब अशुभ है।

(२०) कुत्ता

कुत्ता को संस्कृत में श्वान अथवा सारमेय कहा जाता है। भोजपुरी में

१. भट्टि—रावणवध, ३/२६
२. बाण—हर्षचरित उच्छ्वास ५, पृ० १६२
३ भोजराज सार्वभौम—चम्पू रामायण (युद्ध काण्ड), पृ० ४२६
४. 'विसस्वान शिवा तस्य वामतः शिवशंसिनी।''
—वीरनन्दी—चन्द्रप्रभ चरित, १५/२७
५ वराहमिहिर—वृ० सं०, ९०/३
६. वही, ९०/५
७. या रोमाञ्च मनुष्याणां; शकृन्मूत्र च वाजिनाम्।
रावाद् त्रासं च जनयेत्सा; सा शिवा न शिवप्रदा।''—वही, ९०/११

इसे कुकुर कहते है जो संस्कृत के 'कुक्कुर' का अपभ्रंश रूप है। यह जानवरों मे सबसे अधिक स्वामिभक्त जीव माना जाता है। इसीलिए इसे संस्कृत में 'कृतज्ञ' की संज्ञा प्राप्त है जिसका अर्थ उपकार का मानने वाला तथा विश्वास-पात्र है। महाभारत के उल्लेख से पता चलता है कि युधिष्ठिर का एक अत्यन्त स्वामिभक्त कुत्ता था जो स्वर्गारोहण के समय उनके साथ-साथ गया। युधिष्ठिर ने इस कुत्ते के बिना स्वर्ग में भी जाना अस्वीकार कर दिया था।

कुत्ता यमराज का भी वाहन माना जाता है। संभवत: उनके भयंकर स्वरूप के कारण ही कुत्ते पर वे सवारी करते हैं।

कुत्ता लोक-देवता 'भैरव'' का वाहन माना जाता है। भैरव बाबा सदा इसी पर सवारी करते हैं। इसीलिए सनातनी लोग इसे आदर की दृष्टि से देखते है। काशी में काल-भैरव के मंदिर मे उनका वाहन सदा विराजमान रहता है। कुछ अन्ध भक्त तो उस कुत्ते को जलेबी खिलाते तथा दूध भी पिलाते हैं। गाँवो मे जिस व्यक्ति को कुत्ता काट लेता है उस व्यक्ति को सात कूपों मे अपने प्रतिबिम्ब को झाँकना आवश्यक है। ऐसा करने से कुत्ते के काटने का विष शान्त हो जाता है; ऐसा लोक-विश्वास है। ऐसा समझा जाता है कि कुत्ते की जीभ मे किसी घाव को चाट कर सुखा देने या ठीक कर देने की शक्ति विराजमान होती है। अत: 'ऍकवत' आदि रोग हो जाने पर लोग उसे कुत्ते से चटवाते हैं जिससे उनका रोग नष्ट हो जाता है। कुत्ता अपने किसी भी घाव को अपनी जीभ से चाटकर अच्छा या ठीक कर देता है।

क्रुक ने लिखा है कि बम्बई में हिन्दू लोग काल भैरव देवता के वाहन कुत्ते की पूजा करते हैं। खण्डाबा या खण्डोजी शिव के अवतार माने जाते हैं। ये प्राय: घोड़े पर चढ़े हुए चित्रित किये जाते हैं जिनके साथ कुत्ता भी लगा रहता है।[1] पंजाब में लोहारू नामक स्थान में युद्ध में वीर गति को प्राप्त योद्धाओं की समाधि के साथ कुत्तो की भी समाधियाँ बनी है जो लोगों के द्वारा आदर से देखी जाती है।[2]

महाराष्ट्र के पुणे नगर में दत्तात्रेय की मूर्ति के चारों ओर चार कुत्ते रक्षा के लिए खड़े चित्रित हैं जो संभवत: चारों वेद का प्रतिनिधित्व करते

१. क्रुक—पा० रि० फो० ना० इ०, भाग २, पृ० २१९

२. वही, पृ० २२०

हैं ।[1] पारसी लोग भी कुत्तों का आदर करते हैं । क्रुक का कथन है कि मरते हुए पारसी के मुँह के पास कुत्ता लाया जाता है जिससे वह उसकी अन्तिम स्वास को ग्रहण कर सकें । कुत्तों के द्वारा मनुष्य के शव को खाया जाना[2] घृणा की दृष्टि से नहीं देखा जाता है । नेपाल में 'किछा-पूजा' नामक त्यौहारी प्रचलित है जिसमें कुत्ते की पूजा की जाती है और कुत्तों के गले में माला पहिनाई जाती है ।[3] तिब्बतीय लोगों में कुत्तों के द्वारा शव का भक्षण आदर के साथ देखा जाता था ।[4]

बंगाल की बौरी (Bauris) जाति के लोगों में कुत्तों के प्रति अत्यन्त आदर की भावना पायी जाती है । ये लोग किसी भी दशा में कुत्तो की हत्या करना पाप समझते हैं । उसके शरीर को भी नहीं छूते और उस तालाब मे स्नान नहीं करते जिसमें कोई कुत्ता डूब कर मर गया हो ।

पंजाब में कुत्तों के संबंध में अनेक लोक-विश्वास प्रचलित है । शिकार करने के लिए साथ ले जाते समय यदि कोई कुत्ता घास पर लोटता है तो यह शुभ है । ऐसी आशा की जाती है कि प्रचुर शिकार की प्राप्ति होगी ।

लोगों का विश्वास है कि कुत्ते की जीभ में रोगों को नष्ट करने की शक्ति विद्यमान है जिसका उल्लेख पहिले किया जा चुका है । आयरलैण्ड में ऐसी ही मान्यता है कि लोमड़ी की सूखी जीभ में भी ऐसी ही शक्ति होती है । ऐसी धारणा है कि कुत्तों में प्रेतात्माओं के देखने की शक्ति होती है । जब वे किसी ऐसी आत्मा को देखते हैं तो वे चिल्लाते हैं । अंग्रेजी के महाकवि शेक्सपियर ने अपने "किंगहेनरी" नामक नाटक में इसका उल्लेख किया है ।[5]

डायर ने अपनी सुप्रसिद्ध पुस्तक "इंगलिश फोकलोर" में कुत्तों के संबंध में अनेक लोक-विश्वासों का उल्लेख किया है । इंग्लैण्ड के लंकाशायर जिले में लोगों का विश्वास है कि कुत्तों की आयु उनके स्वामी की आयु से संबंधित होती है । यदि इनमें से एक की मृत्यु हो जाय तो दूसरा जीवित नहीं रह

---

१. क्रुक—पा० रि० फो० ना० इ०, भाग २, पृ० २२०

२. वही, पृ० २१९

३. वही, पृ० २२१

४. ज० ए० सो० बं० भाग Lix पृ० २१२

५. कुत्तों के संबंध में लोक-विश्वास के विस्तृत वर्णन के लिए देखिए—
क्रुक—पा० रि० फो० ना० इ०, भाग २, पृ० २१८-२२३

सकता। आयरलैण्ड में प्रातःकाल भौंकते हुए कुत्ते से मिलना अशुभ माना जाता है।[१]

कुत्तों के संबंध में अनेक ऋतु-संबंधी शकुन भी विद्यमान हैं। यदि कोई कुत्ता घास खाने लगे तो इसे वर्षा का चिह्न समझना चाहिए। यदि वह अपने शरीर को खुजलावे अथवा जमीन पर लोट-पोट करने लगे तब यह ऋतु में परिवर्तन की सूचना देता है।[२] मिस्र देश के निवासी कुत्तों को आदर की दृष्टि से देखा करते थे।[३] हल (Hull) प्रदेश में यह प्रथा प्रचलित थी कि प्रत्येक वर्ष की १०वीं अक्टूबर को सड़कों पर घूमने वाले कुत्तों को कोड़े से मारा करते थे। यार्क स्थान में 'सन्त ल्यूक दिवस' (St. Luke's day) को 'ह्विप-डाग-डे', 'कुत्ता मारो' दिन के रूप में मनाया जाता था।

(२१) बिल्ली

बिल्ली घरेलू जानवर है जिसे अनेक व्यक्ति बड़े प्रेम से अपने घर में पालते हैं। संस्कृत में इसे मार्जार कहा जाता है जो मराठी भाषा में माजर के रूप में प्राप्त है। नर बिल्ली को बिड़ाल कहते है जो आकार-प्रकार में बड़ा तथा भयंकर होता है। भोजपुरी मे इसे 'बिलार' की संज्ञा प्राप्त है।

बिल्ली के मुँह पर शेर की भाँति बड़ी-बड़ी मूछें होने के कारण यह शेर या बाघ की मौसी कही जाती है। विशेष कर रात्रि में बिल्ली का रोना बड़ा ही अशुभ माना जाता है। यदि कोई व्यक्ति मार्ग में जा रहा हो और बिल्ली उसका रास्ता 'काट' दे तो यह अमंगल का सूचक है। बिल्ली की घ्राण शक्ति बड़ी तेज होती है। अतः भविष्य में होने वाली विपत्ति तथा बीमारी का उसे पूर्व में ही आभास हो जाता है। इसीलिए बिल्ली का रोना बीमारी फैलने अथवा विपत्ति आने का सूचक माना जाता है।

बिल्ली की हत्या नहीं करनी चाहिए। 'चितकाबर' (चित्रकर्बुरित) बिल्ली की हत्या तो अत्यन्त निषिद्ध है। इसके लिए अभियुक्त को प्रायश्चित्त के रूप में सोने की बनी बिल्ली को दान में देना चाहिए तभी उसका पाप नष्ट हो सकता है।

---

१. T. F. Thiselton Dyer.—English Folklore 102

२. वही०, पृ० १०३

३. विदेशी लोक-विश्वास के लिए देखिये—डायर—वही, पृ० १०१-१०४.

डायर ने बिल्लियों के विषय में अनेक विदेशी लोक-विश्वासों का उल्लेख किया है। उसने लिखा है कि मिस्र देश के लोग बिल्ली का बड़ा ही आदर करते थे और इसके सम्मान में भव्य मन्दिरों का निर्माण करते थे। ब्रैण्ड का कथन है कि यदि किसी बिल्ली की मृत्यु हो जाती थी तब परिवार के सभी लोग अपनी भौहों को छुरे से मुड़वा देते थे।[१] मध्य युग में धार्मिक उत्सवों के अवसरों पर बिल्ली को अत्यधिक महत्त्व प्रदान किया जाता था। प्राविन्स (Provence) प्रदेश में 'कार्पस क्रिष्टी' के उत्सव पर बिल्ली को सुन्दर वस्त्रों से सुसज्जित कर जनता के सामने प्रदर्शित करते थे। परन्तु प्रति वर्ष २४ जून को होने वाले सेण्ट जान (St. John) के उत्सव पर बिल्लियों के वध करने की प्रथा विद्यमान थी। पादरियों के द्वारा प्रज्वलित अग्नि में अनेक बिल्लियों को टोकरी में रखकर इसी धधकती आग में फेंक दिया जाता था। इस बलि के सम्मान मे स्तोत्र तथा गीतों का गान किया जाता था।[२] इंग्लैण्ड में बिल्ली को आदर दिया जाता था।

बिल्ली की गति-विधि के सम्बन्ध में अनेक लोक-विश्वास प्रचलित है। यदि वे छींकती हैं तो इससे वर्षा के आगमन की सूचना मिलती है। लोगो की ऐसी धारणा है यदि बिल्ली किसी टेबुल की टांग को नोंचती है तब यह ऋतु के परिवर्तन का सूचक है। बिल्ली का बोलना या चिल्लाना वर्षा होने की सूचना देता है। इसीलिए जब अत्यधिक वर्षा होती है तब इसका सम्बन्ध कुत्ता और बिल्लियो से माना जाता है।[३]

ऐसा विश्वास है, बिल्लियाँ बच्चों के श्वासों को चूस लेती हैं। अतएव उनकी मृत्यु हो जाती है।[४] इंग्लैण्ड में सफोक (Suffolk) के लोग यह मानते हैं कि ज्वार-भाटा के उतार और चढ़ाव के साथ बिल्ली की आँखो का संकोच तथा विस्तार हुआ करता है। कुछ स्थानों में काली बिल्ली शुभ मानी जाती है। एक लोकोक्ति में कहा गया है कि काली बिल्ली का चुम्बन

---

१. Brand Popular Antiquities 1849 Vol. II F. 38

२. T. F. Thiselton Dyer—English Folklore, p. 106

३. अंग्रेजी मे एक कहावत प्रसिद्ध है—
"It is raining cats and dogs."

४. डायर—इंगलिश फोकलोर, पृ० १०७

करने से मनुष्य मोटा होता है।[1] आयरलैण्ड में यह धारणा विद्यमान है कि यात्रा पर जाते समय बिल्ली को साथ ले जाना अमङ्गलकारी है। लंका शायर में घर में किसी बिल्ली का मरण अशुभ है। अतः बीमार होने पर उन्हें डुबा दिया जाता है।[2]

बालभारत काव्य में कुरु सेनाओं के अभियान के समय बिल्लियों का उग्र नाद के साथ युद्ध करना कौरवों की पराजय का सूचक होने के कारण अशुभ माना गया है।[3]

बिल्ली के सम्बन्ध में लोक-विश्वास

बिल्ली घरेलू तथा पालतू जानवर है जिसे कुछ लोग बड़े शौक से घर में प्यार से पालते है। संसार के विभिन्न देशो में इसके संबंध मे अनेक लोक-विश्वास प्रचलित है जिनका सक्षिप्त वर्णन प्रस्तुत किया जाता है।

यूरोप में यह लोक-विश्वास वर्तमान है कि बिल्ली को पैर से नहीं मारना चाहिये अन्यथा गठिया रोग होता है। इसे पानी में भी नही डुबोना चाहिये नहीं तो भूत से ग्रस्त होने का भय होता है। बिल्ली की नौ जिन्दगी होती है परन्तु इसमें से एक को भी नष्ट कर देने पर वह भूत बन कर परेशान करती है। यह उपर्युक्त विश्वास दक्षिणी नीग्रो में प्रचलित है।

यूरोपीय लोग भी बिल्ली की हत्या करना अथवा उसे पीड़ित करना बुरे भाग्य का लक्षण मानते हैं। प्राचीन धर्म में बिल्ली को पवित्र माना जाता था। यही इस विश्वास का मूल कारण है। जर्मनी में किसी काली बिल्ली का दर्शन अपशकुन माना जाता है। ग्रेट ब्रिटेन तथा अमेरिका में भी यही विश्वास प्रचलित है। बिल्ली के द्वारा रास्ता काटना अपशकुन है। यह विश्वास भारत में भी विद्यमान है। परन्तु बिल्ली को पालना शुभ शकुन

---

१. Kiss the black cat,
An' it will make you fat.
Kiss the white Ane
It will make you lean."—वही, पृष्ठ १०८

२. बिल्ली सम्बन्धी लोक-विश्वास के विस्तार के लिए देखिए—
—डायर—इंग्लिश फोकलोर, पृ० १०४-१११

३. "आसन्न मार्जार रणोग्रनाद-
भियस्तदा दीपधरस्य हस्तात्।"
—अमर चन्द्र सूरि—बाल भारत—उद्योग पर्व, ५/७२

है। अमेरिका के दक्षिणी भाग के निवासी नीग्रो लोग मानते हैं कि काली बिल्ली अत्यन्त शक्तिशाली होती है। यह दुर्भाग्य, विपत्ति, रोग तथा मृत्यु का भी कारण होती है। काली बिल्ली डाइन के समान है, यह शैतान है। यह मृतक व्यक्ति का भूत रूप है।

बिल्ली की आँखों में अद्भुत शक्ति होती है। यह भूत पिशाच (ghosts) को देख सकती है। इनकी आँखों का प्रयोग नीग्रो लोग तन्त्र मन्त्र (charms) के रूप में करते हैं। इसका बाल-प्रधानतया इसका (whiskar) भी इसी काम में लाया जाता है।

बिल्ली जब अपने मुँह को धोती अथवा साफ करती है तब यह वर्षा का द्योतक है या सुन्दर मौसम या मिलन का लक्षण है। लोगों का यह अनुभव है कि बिल्ली अपना शरीर वायु आने या चलने की दिशा में धोती है। मेन (Maine) के निवासी लोगों का कथन है कि यदि बिल्ली खिड़की की ओर देखे तो यह वर्षा का लक्षण है। न्यू इङ्गलैण्ड में लोगों की मान्यता है कि बिल्ली के आँखों की पुतली (pupils) को देखकर दिन का समय बतलाया जा सकता है। नाविक लोग मानते हैं कि ज्वार के कम होने पर बिल्ली की आँखें प्रायः बन्द हो जाती हैं परन्तु ज्वार का चढाव होने पर खुली रहती हैं।

वेल्श के नाविकों का कथन है कि बिल्ली म्याँउ-म्याँउ (Mews) करे तो सामुद्रिक यात्रा कठिन हो जाती है। परन्तु यदि वह प्रसन्न है तो आँधी (gale of wind) आने की सम्भावना होती है। जहाज की बिल्ली को यदि किसी वस्त्र से ढक दिया जाय तो अन्धड़ तथा तूफान आ सकता है।

कुछ लोगों का यह विश्वास है कि बिल्ली को अपने साथ में लेकर सोना सौभाग्य सूचक है। अन्य लोग कहते हैं यह साथ सोने वाले के स्तन का पान करती है। यूरोप के कुछ भागों में यह धारणा विद्यमान है कि बिल्ली मृतकों के शव का शिकार (Prey on) करती है। यदि कोई बिल्ली किसी शव के ऊपर कूदती है तो वह राक्षस (Vampire) के रूप में परिणत हो जाता है। अतः उसका दाह संस्कार तब तक नहीं होता जब तक यह बिल्ली पकड़ कर जान से न मार दी जाय। फ्रांस में बिल्ली को भूत (Devil) माना जाता है। अतः इन्हें Shrove Tuesday तथा Easter के अवसर पर आग में जला दिया जाता है।

ट्रान्सेलवेनिया के कृषकों में यह विश्वास प्रचलित है कि बिल्ली प्रचुर उपज का कारण होती है। किसी के विवाह के एक मास के पश्चात् बिल्ली घर में लाई जाती है और नव-विवाहिता दम्पति के सामने पालने में बैठाकर झुलाई जाती है। बोहेमिया देश में बिल्ली अन्न के खेत मे जमान मे गाड़ दी जाती है। इस विधि से प्रचुर अन्न की उपज की सम्भावना मानी जाती है।

इण्डोनेशिया तथा मलयेशिया मे लोगों का विश्वास है कि बिल्ली को नहलाने से वर्षा होती है। इसीलिए जब मूसलाधार पानी बरसने लगता है तब अंग्रेजी में कहा जाता है कि :—

"It is raining cats and dogs."

भारत में बिल्ली के सम्बन्ध में जो लोक-विश्वास प्रचलित हैं—जैव बिल्ली के द्वारा रास्ता काट देना अशुभ है तथा बिल्ली की हत्या करने पर स्वर्णदान कर प्रायश्चित्त करना चाहिये—ऐसी भावना संसार के अन्य देशों में भी पायी जाती है। अत: बिल्ली—जो घर का पालतू छोटा जानवर है—लोक विश्वास के क्षेत्र मे बड़ा ही समृद्ध तथा महत्त्वपूर्ण प्राणी है।

(२३) मृग

यह जानवरों में सबसे सुन्दर, मनोरम, नेत्राकर्षक, अभिराम तथा निरीह पशु है। संस्कृत में मृग का अर्थ सामान्यतया पशु है। इसीलिये सिंह को 'मृगराज' अर्थात् जानवरों का राजा कहा जाता है। परन्तु भाषा-शास्त्र के नियम—अर्थ संकोच—के अनुसार आज मृग का अर्थ जीव-विशेष है।

मृग अत्यन्त पवित्र पशु माना जाता है। इसका चमड़ा—जिसे मृगचर्म कहते हैं—पूजा-पाठ के समय आसन के रूप में प्रयोग किया जाता है। शिव जी सदा मृग चर्म पर बैठते हैं। धार्मिक व्यक्ति पूजा के अवसर पर मृगचर्म पर बैठकर पूजा करते हैं। उपनयन संस्कार के अवसर पर ब्रह्मचारी को मृगचर्म की मेखला पहिनाई जाती है तथा वह कुछ समय के लिए मृग-चर्म का ही यज्ञोपवीत धारण करता है।

साधु-संन्यासी सदा अपने साथ मृगचर्म लिये फिरते हैं। पीठाधीश्वर, चारों शंकराचार्य मृग चर्म के ही ऊपर अपने कनक-जटित सिंहासन पर विराजमान होते हैं।

रामायण में कनक-मृग के द्वारा राम को छलना प्रसिद्ध है। अन्त में राम

ने उसका वध कर यम-लोक पहुँचा दिया। मृगों का बायीं ओर से गुजरना राम और लक्ष्मण के लिए अशुभ माना गया है।[1] शत्रुओं के घरों में इधर-उधर काले चंचल हरिणों का विचरण करना विनाश-सूचक स्वीकार किया गया है।[2] यशस्तिलक चम्पू में प्रयाण के समय मृग का बायीं ओर चलना शुभ है।[3] शंकराचार्य के जन्म के अवसर पर हाथी, व्याघ्र, सिंह और मृग आदि का सहज वैर छोड़कर प्रसन्न होना मंगलकारी माना गया है।[4] विषम संख्या में मृगों द्वारा बायीं ओर से सीधी ओर को रास्ता काटना सभी कठिनाइयों के सरल बन जाने का प्रतीक है।[5] इसी प्रकार से मृगों का सीधी ओर गमन भावी सौभाग्य का सूचक होने के कारण शुभ है।[6]

महाकवि कालिदास ने लिखा है राजा दुष्यन्त ने जब कण्व के आश्रम में प्रवेश किया तब उसे हरिण दिखाई पड़े जो उसके लिए अन्त में मंगलकारी सिद्ध हुए। "आश्रममृगोऽयं न हन्तव्यो न हन्तव्यः" इस आज्ञा का पालन कर दुष्यन्त ने भावी कल्याण की सिद्धि की।

(२४) खरगोश

खरगोश जानवरों में बड़ा ही चालाक माना जाता है। लोक-कथाओं में इसकी चालाकी के सम्बन्ध में अनेक कथाएँ प्रचलित हैं। इसे भोजपुरी में खरहा और संस्कृत में 'शशक' कहते हैं। पंचतंत्र में एक काँइयाँ खरगोश की कहानी प्रसिद्ध है जिसने अपनी चालाकी से किसी सिंह को कुएँ में गिरा दिया था।[7]

खरगोश को 'शश' भी कहा गया है। लोगों का ऐसा विश्वास है कि चन्द्रमा में जो कालिमा दिखाई पड़ती है वह खरगोश का ही चिह्न है। इसी-लिए चन्द्रमा को 'शशाङ्क' कहते हैं। राजतरंगिणी के अनुसार उच्चल के लिए

---

१. भट्टि—रावण वध, १४/२०

२ बाण—हर्षचरित, उच्छ्वास ६

३. सोमदेव सूरि – यशस्तिलक चम्पू, आश्वास २

४. शंकर दिग्विजय महाकाव्य, २/७३

५. हेम विजय गणि—विजय प्रशस्ति १२/२४

६. देव विमल गणि—हीर सौभाग्य ११/१०१

७. "वृद्ध व्याघ्रस्तदाकूपे शशकेन निपातितः।"

मार्ग में मृत खरगोश का दर्शन राज्य प्राप्ति का सूचक माना गया है।[१] शुभ कार्य के लिए जाते समय यदि खरगोश रास्ता को 'काट' दे तो यह अशुभ माना जाता है।

(२५) नेवला

इसे भोजपुरी में 'नेउर' और संस्कृत में 'नकुल' कहा जाता है। सर्प और नेवले में शाश्वतिक विरोध पाया जाता है। अतः आपस में नैसर्गिक शत्रुता रखने वाले जीवों की उपमा 'अहि-नकुलम्' से दी जाती है। नेवला जहाँ भी रहता है वहाँ सर्पों का नाश कर देता है। इसीलिए कुछ लोग अपने घरों में नेवला को पालते हैं।

विहुला विषधरी की लोकगाथा में वाला लखंधर को सर्प दंश से बचाने के लिए विहुला के द्वारा उसकी चारपाई के पास नेवलों के पाल कर रखने का उल्लेख पाया जाता है। हिन्दी के किसी कवि ने सर्प और नेवले के इसी शाश्वतिक शत्रुता की ओर साहित्यिक शब्दों में बड़ा ही सुन्दर संकेत किया है।[२] जय विमल मुनि के प्रस्थान करते समय मार्ग में नेवले का बायीं ओर से सीधी ओर जाना अत्यन्त शुभ माना गया है।[३]

(२) परिच्छेद—नभचर

(१) कौआ

लोक-जीवन में जितना कौआ के संबंध में लोक-विश्वास प्रचलित है उतना संभवतः किसी भी पक्षी के विषय में प्राप्त नहीं होता। कौआ रूप में

---

१. "निहतं शशमादाय तस्याग्रे कश्चिदाययौ।
स तेन सुनिमित्तेन, प्राप्तां मेने रिपुश्रियम्॥"
—कल्हण—राजतरंगिणी, ७/१३०

२. "गली-गली या नगर में, है भुजंग पैसार।
अली कहा करिबो भली, नकुल पालिबो सार॥"—त्रि० स०

३. "सव्येतरः सुकृतिनोऽस्य, विनेयवृन्द-
चन्द्रस्य पेशलकुलो नकुलो जगाम॥"
—हेम विजय गणि—विजय प्रशस्ति, ६/६

काला और वाणी में कर्कश होता है। यह मांस का भी भक्षण करता है। अतः यह पक्षी आदर की दृष्टि से नहीं देखा जाता।

कौआ अपनी चालाकी के कारण बड़ा ही काँइयाँ पक्षी माना जाता है। यह कहावत प्रसिद्ध ही है कि—"मनइन में नौआ; चिरिइन में कौआ।" अर्थात् मनुष्यों में जितना नाई (हजाम) चालाक होता है उतना ही काँइयाँ पक्षियों में कौआ है। इसीलिए कौवे का मारना बड़ा ही कठिन कार्य है। वह एक स्थान पर बैठा हुआ भी चारों ओर दृष्टिपात करता रहता है कि किसी दिशा से कोई इस पर आक्रमण करने के लिए आ तो नहीं रहा है। इसकी चेष्टायें बड़ी चंचल होती हैं। इसीलिए चंचल चित-वृत्ति वाले मनुष्यों की उपमा कौवे की चेष्टा से दी जाती है।[1]

कौआ के विषय में यह लोक-विश्वास प्रसिद्ध है कि इसकी जीभ की मास को खाने वाला मनुष्य अमर हो जाता है। इसीलिए किसी दीर्घजीवी मनुष्य के विषय में यह कहा जाता है कि वह कौवे की अमरौती (अमरत्व) खाकर आया है। कौवे की केवल एक ही आँख होती है। उसकी आँख की एक ही पुतली बारी-बारी से दोनों गालों (आँखों) में आती-जाती रहती है। इस संबध मे यह कथा प्रसिद्ध है कि एक बार दण्डक वन में राम और सीता जी विराजमान थे तब किसी दुष्ट कौवे ने सीता के पैर में चोंच से प्रहार कर दिया। राम ने क्रोध में आकर अपना शर उसके पीछे छोड़ दिया। अपनी दुष्टता के लिए क्षमा-याचना करने पर उसे प्राण दान तो मिल गया परन्तु एक आँख नष्ट हो गई। क्योंकि राम का बाण निष्फल नहीं हो सकता था।

कौवे के संबंध में अनेक लोक-विश्वास प्रचलित हैं। ऐसा माना जाता है कि कौआ यदि किसी व्यक्ति के सिर पर बैठ जाय तो उसकी मृत्यु हो जाती है। परन्तु इसका परिहार तभी हो सकता है जब किसी आत्मीय को उस व्यक्ति की मृत्यु का दुःखद समाचार सुनाया जावे और वह उसकी 'तथाकथित मृत्यु के कारण रुदन करने लगे। गाँवों में ऐसी घटनायें प्रायः हुआ करती हैं।

यदि कौआ किसी व्यक्ति के सिर में चोंच से मार देता है तो उस व्यक्ति की मृत्यु शीघ्र ही हो जाती है ऐसा लोगों का विश्वास है। इस दुःखद समाचार को किसी संबंधी के यहाँ भिजवा देने तथा उसके रोने से इसका परिहार हो जाता है। यह विश्वास आज भी लोगों में प्रचलित है। वाराणसी के

१. "काक चेष्टा- वको ध्यानं श्वान निद्रा तथैव च।"

दैनिक समाचार-पत्र "आज" में १६-१०-८७ को एक ऐसी ही घटना प्रकाशित हुई है जो अविकल रूप में यहाँ दी जाती है। मृत्यु की झूठी खबर को पाकर परन्तु इसे सच्ची समझ कर कोई व्यक्ति अपने समधी के घर उसके लिए 'कफन' लेकर पहुँचा परन्तु उसे जीता-जागता पाया। यह विश्वास आज भी गाँवों में प्रचलित है।

जिन्दा समधी के लिए कफन

मुफ्तीगंज (जौनपुर)। अक्सर देखा व सुना जाता है कि यदि कौआ किसी व्यक्ति के सिर पर मार देता है तो लोग रिश्तेदारियों में मरने की खबर किसी व्यक्ति विशेष द्वारा भिजवा देते हैं, जब मरने की खबर सुन कर लोग रोने लगते हैं तो खबर देने वाला तुरन्त यह कहता है कि भाई मरे नहीं हैं। कौवे ने सिर पर चोट की थी। एक दिलचस्प घटना केराकत थानान्तर्गत ग्राम भोगीपट्टी में देखने को मिली है।

पता चला है कि केराकत थानान्तर्गत ग्राम भोगीपट्टी निवासी हंसा प्रजापति के यहाँ उनके समधियाने से एक व्यक्ति आया। उसने यह सूचना दी कि तुम्हारे समधी की मृत्यु हो गयी है, उन्होंने तुरन्त मुफ्तीगंज बाजार के एक कपड़े की दूकान से मृतक समधी के लिए कफन खरीदा और उसे ले समधियाने जा पहुँचा। वहाँ देखा कि समधी जी किसी आदमी से बात कर रहे हैं। मृत समधी को जिन्दा देख कर वह हैरत में पड़ गये। उनसे जानकारी चाही हँस कर समधी ने बताया कि भाई मैं मरा नहीं था मुझे तो कौवे ने मारा था जिसके नाते मैंने अपने मरने की खबर भिजवायी थी। यह सुन कर समधी जी हक्का-बक्का हो गए और कफन लेकर वापस घर चले आये।[1]

कौवे के द्वारा कमर तथा स्कन्ध का स्पर्श करना भी अशुभ माना जाता है। सधवा स्त्री के सिर पर कौवे के बैठने से पति और पुत्र का नाश होता है। इस दोष के निवारण के लिए किसी वृक्ष के नीचे दही अथवा दूध रख दिया जाता है। यदि कौवा उसे खा लेता है तो यह दोष दूर हो जाता है।[2] यदि कोई व्यक्ति काक-मैथुन को देख ले तो केवल महीनों के भीतर उसकी मृत्यु हो जाती है।[3]

---

१. "आज" १६-१०-८७, कौआ-विश्वास

२. डॉ० प्रियम्वदा गुप्त—लो० जी० लो-वि० का अध्ययन (अ० प्र०), पृ० १६१

३. "षड्मासाभ्यन्तरे मृत्यु : काक-मैथुन दर्शने।"

काले कौवे का कर्कश बोली मे बोलना और आँगन में उसका बैठना अप-शकुन माना जाता है। राजा दशरथ की मृत्यु का समाचार सुनकर जब भरत अपनी ननिहाल से अयोध्या आ रहे थे तब मार्ग मे कौवों की कटु-रटन से उन्हें अनिष्ट की आशंका होने लगती है।[१]

परन्तु विरहिणी नायिकाओं का कौआ प्रिय पक्षी है। अपने प्रियतम के सन्देश को प्राप्त करने अथवा उसके आगमन की सूचना देने का यह अनन्य साधन है। घर के मुंडेरे पर बैठे हुए कौवे को देख कर स्त्रियाँ कहती हैं कि ए कौआ! यदि मेरे प्रिय का आगमन हो तो उड़ जाव। यदि कौवा उड़ जाता है तो प्रिय का आगमन निश्चित होता है अथवा उसकी शुभ सूचना तो आती ही है।[२] प्रियतम के आगमन की सूचना देने वाले कौवे को स्त्रियाँ कटोरा में दूध-भात देने का प्रलोभन देती हैं।[३] कौवे के बोलने से यदि प्रियतम नहीं आता है तो उसकी 'पाती' तो अवश्य ही आती है।[४]

प्रियतम के आगमन की सूचना देने वाले कौवे को दूध-भात खिलाने की परम्परा प्राचीन काल में ज्ञात होती है। मैथिल कोकिल महाकवि विद्यापति की विरहिणी तो कौवे को कटोरा में दूध-भात खिलाने के अतिरिक्त उसकी

---

१. "असगुन होहिं नगर बैठारा।
रटहिं कुभांति कुखेत करारा॥"
—रा० च० मा० (अ० का०), १५८/२

२. "तेरे आयँगे आजु सखी हरि
खेलन को फागु री।
सगुन संदेसौ हौं सुन्यौ,
तेरे आँगन बोले काग री॥"

३. "कटोरवा में देबई हो।
कागा दूध-भात तोरे भोजना,"

४. "सुगना तउ बोले बिजरवा,
कागा अटरिया बोले हो।
कागा बोले पिया-पिया कि मोर आवै,
बिरनवा की सइयाँ की पाती हो।"
डॉ० उपाध्याय लो० गी० भाग १

चोंच को सोने से 'मढ़ा' देने का आश्वासन देती है।[1] सूरदास की विरह-विदग्धा गोपियाँ काग को उड़ा कर अपने प्रियतम के आगमन के शकुन की सूचना पाती है।[2]

कौआ प्रेतात्मा तक भोजन पानादि पहुँचाने का अनन्यतम माध्यम माना जाता है। इसीलिए धार्मिक व्यक्ति प्रतिदिन बलिवैश्वदेव की पूजा करते समय कुत्ते के साथ कौवे को भी अन्न की बलि देते हैं। आश्विन कृष्ण पक्ष, जिसे श्राद्ध पक्ष भी कहा जाता है, में कौवों का विशेष आदर होने लगता है क्योंकि इस पक्ष में पितरों को दिया हुआ 'पिण्ड' कौवों को खिलाया जाता है। महाकवि बिहारी लाल ने इस लक्ष्य की ओर संकेत किया है।[3]

रात्रि में कौवे का बोलना अत्यन्त अशुभ माना जाता है।[4] यात्रा के समय भी कौवे का दर्शन अमंगलकारी है। एक जातक से पता चलता है कि किसी शिकारी ने यात्रा के समय किसी कौवे को देखकर अपनी मनोकामना की सिद्धि में असफलता की आशंका कर अपनी यात्रा स्थगित कर दी। जातक में उसे 'कालकर्णि शकुन' कहा गया है।[5] एक कहावत में वार्तालाप में संलग्न दम्पति को अपनी बोली से कष्ट देने वाले कौवो को मारने का भी उल्लेख किया गया है।[6]

संस्कृत साहित्य में काक की चर्चा प्रायः अशुभ पक्षी के रूप में ही की गई है। समुद्र को पार करके राम ने पास में उड़ते हुए काक को भावी

---

१. "मोरे रे अँगनवा चनन केरी गँछिया।
तािह चढ़ि कुरु रे काग रे।
सोने के चोंच मढ़ाइबो तोहि कागा,
जो पिआ आवहि आजु रे॥" —विद्यापति-पदावली

२. "जहँ-तहँ काग उड़ावन लागी
हरि आवत उड़ि जाँहि नहीं॥" —सूर-सागर

३. "दिन दस आदर पाइके, करि लै आपु बखान।
जौ लगि काग सराध पख, तौ लगि तौ सनमान॥" —बिहारी-सतसई

४. "रोवे वृषभ, तुरग अरु नागा।
स्यार दिवस निसि बोले कागा॥"

५. पं० बटुकनाथ शर्मा – पालि-जातकावलि

६. "हैली में कागा गूदर, भैली में कौवा।
दुनो बेकति बात बतिअवतनि मरव्वन ले पडवा॥"

विनाश का कारण माना है।[1] शुष्क वृक्ष पर स्थित काकों द्वारा कर्कश वाणी में बोलना अमंगल का सूचक है।[2] सीताहरण के पश्चात् राम के बायीं ओर शूकर के गण्डस्थल पर स्थित काक का बोलना अशुभ है।[3] आर्या सप्तशती में काकों के द्वारा स्नान करना वृद्धि के अभाव का सूचक है।[4] मंखक ने दैत्य सेना में काकों का बोलना नाश का कारण माना है।[5] बाल भारत में कौरवों के सिरों पर क्रूर शब्द करते हुए काकों का उड़ना उनके विनाश की सूचना देने वाला है।[6]

इस प्रकार लोक-साहित्य में जहाँ कौवों का बोलना प्रिय के आगमन का सूचक होने के कारण शुभ माना गया है वहाँ संस्कृत तथा पालि साहित्य में इसका दर्शन, कर्कश स्वर में बोलना और सिर पर मँडराना अशुभ तथा विनाश का कारण माना गया है।

विदेशों में भी कौआ अशुभ पक्षी माना गया है। इंग्लैण्ड के लंकाशायर तथा यार्कशायर जिलों में लड़के कौवों को बड़ी घृणा की दृष्टि से देखते हैं। वे इसे देखना भी नहीं चाहते।[7] यदि कौवा कर्कश आवाज करता है तो यह अमंगलकारी है। यदि इसकी वाणी में कर्कशता के साथ विस्वरता हो तो यह बुरे मौसम की सूचना देता है।[8] यह पक्षी अन्य देशों में भी अशुभ है।[9]

---

१. वा० रा० (यु० का०), २३/११
२. भास—पंचरात्र, अंक २
३. हनुमन्नाटक, अंक ५/३१
४. क्षेमेन्द्र—रामायण मञ्जरी (सु० का०), पृ० २६७
५. मंखक—श्रीकण्ठ चरित, २२/३६
६. अमरचन्द्र सूरि—बाल भारत (उ० प०), ५/२६
७. "Crow, Crow, get out of my sight;
or else I 'll eat thy liver and lights."
—डायर—इं० फो०, पृ. ८१
८. वही, पृ. ८१
९. "Is it not Om'nous in all countries,
When crows and ravens croak upon trees."
—वही पृ ८१

(२) उल्लू

उल्लू को संस्कृत में उलूक कहते हैं। यह पक्षियों में सबसे अधिक बुद्धि-हीन माना जाता है। अतः समाज में जो व्यक्ति बुद्धि से रहित होता है उसे 'उल्लू' की पदवी से विभूषित किया जाता है। ऐसी प्रसिद्धि है कि उल्लू को दिन में दिखाई नहीं पड़ता, अतः केवल रात्रि में ही वह अपने शिकार की खोज में निकलता है। इसीलिए जिन व्यक्तियों की दृष्टि रात में ही अधिक तेज होती है उनको 'उलूक' की संज्ञा प्रदान की जाती है। भोजपुरी में उल्लू को 'घोंघा' भी कहा जाता है जो सम्भवतः घुघ्घू का अपभ्रंश रूप है। अतः पण्डित लोग अपने मूर्ख छात्रों को 'घोंघावसन्त' की उपाधि देते हैं।

घर की छज्जा के ऊपर अथवा उसके आस-पास उल्लू का बोलना अत्यन्त अशुभ है। विश्वास है कि जहाँ उल्लू बोलता है वह स्थान उजाड़ हो जाता है तथा वहाँ के निवासियों की मृत्यु निश्चित है। इसीलिए उजाड़ घरों तथा खण्डहरों के लिए कहा जाता है कि वहाँ उल्लू बोल रहे हैं। उल्लू का निवास प्रायः ऐसे ही निर्जन स्थानों में होता है। ये दिन में किसी पेड़ की डाल को अपने चंगुलों से पकड़कर नीचे मुँह करके लटकते देखे जाते है।

उल्लू लक्ष्मी देवी का वाहन माना जाता है।[1] इसका लाक्षणिक अर्थ यह है कि धनी व्यक्ति बुद्धिहीन होते हैं। ऐसा विश्वास है कि उल्लू को धन का खजाना मालूम रहता है। अतः दीपावली के दिन इसे मदिरा पिलाकर इससे खजाने का पता पूछा जाता है। ऐसी धारणा है कि यह उस दिन मनुष्य की बोली मे बातें करता है।[2]

रावण रामचन्द्र जी से युद्ध करने के लिए जब प्रस्थान करता है तब उल्लू के बोलने से उसे अशुभ की सूचना मिलती है।[3] महाभारत मे शिशुपाल वध

१. डॉ० सत्या गुप्त—खड़ी बोली का लोक-साहित्य, पृ. ३८६

२. डॉ० प्रियम्बदा गुप्त—लो० वि०, पृ. १७४

३ "गोमायु, गीध, कराल खर-रव;
स्थान बोलहिं अति घने।
जनु कालदूत उलूक बोलहिं,
वचन परम भयावने।।"

रा० च० मा० (लं० का०) छन्द ७९

के अवसर पर उल्लुओं के बोलने तथा दिन में तारों के उदय का उल्लेख उपलब्ध होता है।[1]

उल्लू का मांस खाने से मनुष्य मूर्ख बन जाता है। इसकी आँखों की पुतली के खाने से रात्रि में देखने की शक्ति प्राप्त होती है। उल्लू के पंखों को किसी व्यक्ति के ऊपर रख देने से उसे निद्रा आ जाती है। इसके मांस का शोरबा कुकुर खाँसी की दवा है तथा इस पक्षी के दर्शन से गर्भवती स्त्रियों को बच्चा सुगमता से पैदा हो जाता है।[2]

आर्या सप्तशती तथा श्रीकण्ठ चरित महाकाव्य में उलूक के द्वारा प्राप्त अनेक शकुनों का उल्लेख किया गया है। शिव के साथ संग्राम में जाते समय दैत्यों के मार्ग में आकाश में उलूकों का व्याप्त होना तथा दैत्य सेना मे उल्लुओं का बोलना अशुभ माना गया है।[3] पृथ्वीराज विजय में म्लेच्छों के प्रदेश में उल्लुओं का प्रवेश अमङ्गलकारी है।[4] पाण्डवों की ओर से श्रीकृष्ण द्वारा प्रस्तुत संधि-प्रस्ताव को ठुकरा देने पर उल्लुओं के द्वारा कटु शब्दो का उच्चारण विनाश का सूचक है। उत्तर रामचरित चम्पू मे राक्षसों का युद्ध के लिए प्रस्थान करते समय ध्वजाओं पर उल्लुओं का बैठना अशुभ माना गया है।[5]

पाश्चात्य देशों में भी प्राचीन काल से ही उल्लू अशुभ पक्षी माना जाता है। इसकी भद्दी आवाज केवल आपत्ति ही नहीं बल्कि मृत्यु की भी सूचक है। उल्लू यदि किसी मकान के ऊपर अथवा चिमनी के सिरे पर बैठता है तो मृत्यु की आशंका होती है।[6] प्रचीन रोमन साम्राज्य में भी यह पक्षी घृणा

---

१. "भा दिग्दाह उलूक पुकारे;
महि डगमगत उदित भे तारे॥"
—सबल सिंह चौहान कृत—भ० भा०, (स० प०)

२. मेरिया लीच—डिक्शनरी—भाग २, पृ. ८३८

३. मंखक—श्री कण्ठ चरित, २२/३३

४. जयानक—पृथ्वीराज विजय, ६/१०

५. वेंकटाध्वरि—उ० रा० च० च०, श्लो० ६६

६. "When screech owls croak,
upon the Chimney tops.
It is Certain that you,
of a corpse shall hear."—डायर—इं० फो०, पृ० ८५

की दृष्टि से देखा जाता था तथा रोम के पतन का कारण यह था कि इस पक्षी ने राजधानी में प्रवेश कर लिया था।[1]

परन्तु भारत में उल्लू जहाँ मूर्खता और जड़ता का प्रतीक है वहाँ पश्चिमी आधुनिक साहित्य में यह बुद्धि और ज्ञान का प्रतिनिधि माना जाता है। पश्चिमी प्राचीन लोक-कथाओं के अनुसार उल्लू का सम्बन्ध आभिजात्य वंश से था। इसीलिए यह बुद्धिमान माना जाता है। पश्चिमी देशों में प्रकाशित दर्शनशास्त्र की आकृति बड़े आदर के साथ अंकित की जाती है क्योंकि उनके अनुसार यह ज्ञान का प्रतीक है। डायर ने अपनी पुस्तक में ऐसी अनेक लोक-कथाओं तथा परम्पराओं का उल्लेख किया है।[2]

(३) चील

चील मांसाहारी पक्षी है जो आकाश में बहुत ऊँचाई तक उड़ सकता है। यह झपट्टा मार कर किसी भोज्य पदार्थ को अपने चंगुलों में पकड़कर ले भागती है। अतः मातायें अपने बालकों को इसके भावी आक्रमण से बचने के लिए आग्रह कर देती हैं। गीध की तरह चील की दृष्टि बड़ी तेज होती है। कहीं-कहीं लोकगीतों में इसे सन्देशवाहक के रूप में चित्रित किया गया है।[3] मांसाहारी पक्षी होने के कारण इसके घोंसला में मांस का बचना बड़ा ही कठिन है।[4]

भूतपूर्व जोधपुर रियासत के राजाओं का राजचिह्न चील थी। उन राजाओं का यह विश्वास था कि उनके राजप्रासाद के ऊपर जब तक चील मँडराती रहेगी तब तक उनकी सुरक्षा बनी रहेगी। घर के मुँड़ेरे पर चील का बैठना अशुभ माना जाता है।

---

१. "The Roman Senate when within,
The city walls on owl was seen.
The round fac'd prodigy avert,
From doing town and country hurt."
—डायर—ई० फो०, पृ० ८७

२ वही, पृ० ८८-८९

३. "सरगा उड़ई एक चिल्हिया सरबगुन आगरि।
चिल्हिया जँह पठवों तँह जातिउ; सनेसवा लेइ अवतेऊ॥"

४. "चील घोंसला मांस।
बचे न बड़ी सबील हूँ."—वि० स०

(४) गीध

यह पक्षियों मे सबसे बड़ा गन्दा और भयानक होता है। यह दूर तक की वस्तुओं को देख सकता है इसीलिए यह कहा गया है कि :—

"गीधहिं दृष्टि अपार"

संभवतः यह दूर स्थित वस्तुओं को सूँघने की भी क्षमता रखता है। अतः जहाँ कहीं भी शव पड़ा रहता है गीध वहाँ शीघ्र ही पहुँच जाता है। शवों के भक्षण करने के कारण यह बड़ा ही गन्दा और वीभत्स पक्षी माना जाता है। इसका आकार-प्रकार और आकृति भी इसकी वीभत्सता में समधिक वृद्धि कर देती है।

गीध, जो संस्कृत में गृद्ध के नाम से प्रसिद्ध है, अत्यन्त अशुभ पक्षी माना जाता है। लोगों का यह विश्वास है कि यह जिस घर के मुँडेरे पर बैठ जाता है उस घर के किसी सदस्य की मृत्यु हो जाती है अथवा उसका नाश निश्चित है। गोस्वामी जी ने लिखा है कि रावण जब युद्ध के लिए प्रस्थान कर रहा था, गीध उसके सिर पर बैठकर उड़ जाते हैं जो विनाश सूचक है।[1]

रामायण में जटायु नामक गृद्धराज का उल्लेख पाया जाता है जिसने सीता का हरण करने वाले रावण को चुनौती दी थी और इसी प्रयास में अपने प्राणों की आहुति भी दे दी थी। जब राक्षस खर राम के साथ युद्ध करने के लिए प्रस्थान कर रहा था तब गृद्ध का ध्वजा पर बैठना तथा सामने की ओर उसका बोलना भावी मृत्यु का द्योतक होने के कारण अत्यन्त अशुभ माना गया।[2] समुद्र को पार करते समय गृद्धों का पास में उड़ना भयंकर युद्ध तथा

---

१. "चलत होहिं अति असुभ भयंकर;
बैठहिं गीध उड़ाइ सीस पर।
भयउ काल बस काहु न माना;
कहेसि बजावउ युद्ध निसाना॥"

—रा० च० मा० (यु० का०), १/८६

२. "खरंचाभिमुखं नेदुस्तदा घोरा मृगाः खगाः।
कंकगोमायुगृध्राश्च, चुक्रुशुर्भयशंसिनः॥"

—वा० रा० (अ० का०) २३/९-१०

विनाश का सूचक समझा गया ।[1] माल्यवान् जब रावण को समझा रहा था तब गृद्धों के भयंकर शब्द तथा लंका में उनके प्रवेश को विनाश का कारण माना गया ।[2] इसी प्रकार वाल्मीकि रामायण में राम-रावण युद्ध के अवसर पर गृद्धों का उड़ना, बोलना, अनायास गिरना, ध्वजा पर बैठना अत्यन्त अशुभ तथा अमंगल का सूचक है ।

चम्पू रामायण में राम के साथ राक्षसों के युद्ध के अवसर पर गृद्धों का रथों के ऊपर मँडराना अशुभ वर्णित है ।[3] रणभूमि के लिए प्रस्थान करते समय धूम्राक्ष के ऊपर गृद्धों का उड़ना भी अशुभकारी है । इस प्रकार गृध लोक तथा वेद सर्वत्र अत्यन्त अशुभ तथा अमंगलकारी पक्षी के रूप में चित्रित किया गया है ।

(५) मोर

पक्षियों में सबसे सुन्दर रमणीय, मधुर भाषी तथा मनोरम पक्षी मोर माना जाता है । यह अपने रंग-बिरंगे पंखों तथा मधुर वाणी के कारण जनता का सदा से प्रिय पक्षी रहा है । आज भी इस पक्षी का कुछ कम महत्त्व नहीं है । भारत की सरकार ने मोर को इस देश का राष्ट्रीय पक्षी घोषित किया है । इसी से इसके महत्त्व का कुछ अनुमान किया जा सकता है ।

मोर की मधुर वाणी को 'केका' कहते हैं ।[4] इसीलिए इसका दूसरा नाम 'केकी' है । इस पक्षी का नृत्य बड़ा मनोहर होता है । सावन के मन भावन महीने में किसी एकान्त, निर्जन स्थान में मदमस्त मयूर के मनोरम नृत्य को देखकर मन-मयूर नाच उठता है ।

मोर इतनी मस्ती में आकर नाचने लगता है कि नाचते-नाचते इसका वीर्य स्खलन भी हो जाता है । ऐसी प्रसिद्धि है कि इस वीर्य को चाटने मात्र से मयूरी को गर्भाधान हो जाता है । आकाश में उमड़े हुए बादलों को देखकर मोर नाचने लगता है । इसका उल्लेख कविवर बिहारी लाल ने किया है ।[5]

१. वा० रा० (यु० का०), २३।११
२. वा० रा० (यु० का०), ३५।२५
३. भोजराज सार्वभौम—चम्पू रामायण (यु० का०)
४. केका वाणी मयूरस्य ।
५. "नाचि अचानक ही उठे,
   बिन पावस बन मोर ।"—बि० स०

प्राचीन काल में मोर के मांस को खाने की प्रथा थी। अशोक के शिला-लेख से पता चलता है कि उसके महानस (रसोई घर) में प्रतिदिन दो मोरो का मांस खाया जाता था। परन्तु अशोक ने जब बौद्ध धर्म स्वीकार कर लिया तब से यह बन्द कर दिया गया।[१] मयूर जातक से ज्ञात होता है किसी मोर ने अपने विवाह के अवसर पर स्वयं नृत्य करना आरम्भ कर दिया। उसकी इस अशिष्टता से क्रुद्ध होकर उसके भावी ससुर ने अपनी कन्या से उसका विवाह करना स्वीकार नहीं किया।[२]

मोर शिव के पुत्र कार्तिकेय का वाहन है।[३] सम्भवत: इसकी सुन्दरता से प्रेरित होकर ही उन्होंने इसे अपना वाहन बनाया हो। मोर के पंख, जिसे मयूरपिच्छ कहा जाता है, के बने हुए मुकुट को कृष्ण जी बड़े आदर से सिर पर धारण करते थे।[४] इसके पंख को जलाकर शहद में मिलाकर चाटने से वमन तथा अन्य रोग दूर हो जाते है। इसका मांस भी अनेक असाध्य रोगो के लिए अचूक औषधि माना गया है। मोर का पंख शुभ माना जाता है। अत: तीक्ष्ण बुद्धि बालक अपनी पुस्तक के मध्य में इसके पंख को बड़े यत्न से सुरक्षित रखते हैं।

महाकवि कालिदास ने मोरों को दो श्रेणियों में विभक्त किया है—(१) मन्दिर मयूर तथा (२) वनबर्ही। घर में पाले जाने वाले मोर को मदिर मयूर की संज्ञा दी गई है और जंगल में विचरण करने वाले को वनबर्ही कहा गया है।[५] बाण के अनुसार घर के पालतू मोरों का बालिकाओं के द्वारा ताल देने पर भी न नाचना अपशकुन का कारण माना जाता था।[६] श्रीमत् देवसूरि ने मयूर के शब्द को शुभ माना है। "हीर सौभाग्य" महाकाव्य में हरि विजय के सेना सहित प्रस्थान के समय दायीं ओर मोरो का दर्शन भावी विजय और सौभाग्य का सूचक है।[७]

---

१. डॉ० वासुदेव उपाध्याय—प्राचीन भारतीय अभिलेख

२. पालिजातकावली—पं० बटुकनाथ शर्मा

३. "मयूर पिच्छा श्रमिणा गुहेन।"— कालिदास

४. "मोर मुकुट की चन्द्रकनियों राजत नंदनन्द।"—बि० स०

५. डॉ० भगवत् शरण उपाध्याय— कालिदास का भारत

६. बाण—हर्षचरित, उच्छ्वास ६

७ देव विमल गणि—हरि सौभाग्य ११/१०२

सौराष्ट्र के कच्छ प्रदेश में मोरों का पकड़ना अथवा चिढ़ाना अनुचित है। जाट तथा खोण्ड लोग मोर को पवित्र मानते हैं। पंजाब में मोर पंख को जलाकर गाँजा की तरह पीना सर्प दंश को दूर करता है। मोर पंख के झलने से रोगों का नाश होता है। वात्स्यायन ने काम सूत्र में लिखा है कि मोर की हड्डी को सोने से आवृत करके किसी के दाहिने हाथ में बाँध दी जाय तब उस मनुष्य का सौन्दर्य बढ़ जाता है।[1] यूरोप में मोर पंख अशुभ और उसकी आवाज अमंगलकारी मानी जाती है।[2]

पाश्चात्य देशों में मोर के पंख को पास में रखना अभाग्य का सूचक है।[3] डर्बी शायर तथा आस-पास के काउण्टी में यह विश्वास है कि मयूर-पिच्छ का घर में लाना भय का कारण होता है। इसके कारण अनेक बीमारियाँ तथा गृह के सदस्यों की मृत्यु भी हो सकती है।[4] मोर यदि जोर से आवाज करे तो यह भावी वर्षा की सूचना देता है। ग्रीस देश में मोर हेर (*Hera*) देवता के लिए बड़ा पवित्र था तथा उनके मन्दिर में पाला जाता था।[5] यूरोप में प्राचीन काल में मोर के मांस को भोजन में देना अत्यन्त स्वादिष्ट (*delicacy*) माना जाता था। वहाँ गृहणियों का विश्वास था कि जो वस्तु सुन्दर दिखाई पड़ती है वह स्वादिष्ट भी होती है।

(६) हंस

पक्षियों में हंस पवित्र, श्रेष्ठ तथा शुभ माना जाता है। विद्या की अधिष्ठातृ देवी सरस्वती का यह सुन्दर वाहन है। भगवती शारदा की स्तुति में उनको "हंसस्थिता" कहा गया है। यह पक्षी सरस्वती के वाहन होने के अतिरिक्त ब्रह्मा का भी वाहन कहा गया है। महाकवि श्रीहर्ष ने लिखा है कि हंस ने ब्रह्मा की सवारी में भी अपना कन्धा लगाया था।[6]

हंस के विषय में यह प्रसिद्धि है कि यह नीर-क्षीर-विवेक की क्षमता

---

१. मेरियालीच—डिक्शनरी, भाग २, पृष्ठ ८४६

२. वही, पृष्ठ ८४६

३. डायर—इं० फो०, पृ० ९०

४ वही, पृ० ९१

५. मेरियालीच—डिक्शनरी, भाग २, पृ० ८४६

६ श्री हर्ष नैषधीय चरित

रखता है।[1] अर्थात् यह दूध से पानी को अलग कर सकता है। संस्कृत के अनेक श्लोकों में हंस के इस गुण की ओर संकेत किया गया है। नीर-क्षीर का यह विवेक समुचित न्याय की आधार तुला बन गया है। हिन्दी का यह मुहावरा 'दूध का दूध और पानी का पानी' हंस के इसी गुण के ऊपर आश्रित है। अतः हंस न्याय के सम्यक् विधान की निकष ग्रावा का प्रतीक है।

हंस की आकृति बड़ी सुन्दर होती है। इसका समस्त शरीर अत्यन्त शुभ्र होता है जो स्वच्छता का उपमान माना जाता है। हंस की इसी सुन्दर आकृति को देखकर यह सूक्ति प्रसिद्ध हो गई है कि जहाँ सुन्दर आकृति होती है वहाँ सुन्दर गुणों का निवास भी होता है।[2]

इस पक्षी के विषय में ऐसा कहा जाता है कि यह हिमालय मे मानसरोवर के तट पर निवास करता है और मोती चुन कर खाता है। वर्षा ऋतु में यह मैदानी भागों में न रहकर मानसरोवर के निर्मल जल में विहार करने के लिए वहाँ चला जाता है। परन्तु मान-सर की यात्रा करने वाले पर्यटकों ने इस लोक-विश्वास का खण्डन किया है।[3]

लोक-जीवन मे यह पक्षी शुभ माना गया है। विवाह के अवसर पर कोहबर में हंस और हंसिनी के चित्रों के निर्माण का उल्लेख लोकगीतों मे उपलब्ध होता है।[4] गाँवों मे हंस का दर्शन दुर्लभ होता है। अतः उसकी रूप और आकृति से मिलने-जुलने वाले पक्षी बत्तक को ही लोग आदर की दृष्टि से देखते तथा शुभ मानते हैं।

इंग्लैण्ड मे ऐसा विश्वास है कि हस ऋतु के संबंध में भविष्यवाणी करने मे समर्थ होता है।[5] परन्तु वेल्श प्रदेश में यदि इसका वृहस्पति की रात्रि मे दर्शन हो जाय तो अशुभ है। प्राचीन ग्रीक लोगों का विश्वास था कि हस

---

१. "नीर-क्षीर विवेके हंस !,
आलस्यं त्वमेव तनुषे चेत्।
विश्वेऽस्मिनधुनाऽन्यः;
कुलव्रतं पालयिष्यति क ॥"—सु० व०

२. "यत्राकृतिस्तत्र गुणाः वसन्ति।"

३. कैलाश—मानसरोवर नामक ग्रन्थ (का० ना० प्र० स०, वाराणसी)

४. रामनरेश त्रिपाठी—ग्राम गीत, भाग ५, पृ० ३७८

५ **Brand—"observations" p 699**

भावी घटनाओं की सूचना दे सकता है। जर्मनी के निवासियों की भी यह मान्यता थी। रोम में हंसों को आदर की दृष्टि से देखा जाता था।[१] हैम्पशायर के लोगों की यह दृढ़ धारणा थी कि अन्धड़ के आने तथा बिजली गर्जने के समय हंस अंडा दिया करता है। प्लिनी ने एक ऐसे लोक-विश्वास का उल्लेख किया है जिसके अनुसार हंस अपनी मृत्यु के पूर्व सुन्दर गीत गाया करता है।[२] संभवतः इसीलिए अंग्रेजी में सुन्दर गीत को स्वान साँग (Swan song) की उपमा दी जाती है। कवि कोलरिज ने इस तथ्य की ओर संकेत किया है।[३] स्काटलैण्ड मे हंसों को भावी मौसम की सूचना देने वाला माना जाता था।

प्राचीन काल में हंस सन्देश वाहक का भी काम किया करते थे। नल और दमयन्ती को प्रणय-सूत्र में बाँधने का प्रधान माध्यम हंस ही था जो दोनों प्रेमियों के सन्देश को एक-दूसरे तक पहुँचाने के कार्य में दक्ष था। श्री हर्ष ने नैषधीय चरित महाकाव्य में इस कथा का बड़े विस्तार के साथ वर्णन किया है

इस महाकाव्य में यात्रा के अवसर पर हंस का दर्शन शुभ माना गया है[४] तथा इसके पंखों का फड़फड़ाना कार्य सिद्धि का सूचक है।[५] लिंगपुराण में ब्रह्मा को ही हंस कहा गया है। निर्गुण सन्त कवियों ने प्राण अथवा आत्मा को हंस का पर्याय माना जाता है। कबीर ने लिखा है कि "हंसा जाइ अकेला" जिसका अर्थ है प्राणों की एकाकी परलोक यात्रा। क्रुक ने लिखा है कि अवध

१. क्रुक—पा० रि० फो० ना० इ० भाग २, पृ० २४७-४८

२. डायर—इं० फो०, पृ० ६७

३. "Swans sing before they die;
It were no bad thing."—डायर—वही, पृ० ६७

४. "शस्ता न हंसाभिमुखी तवेयं,
यात्रेति ताभिश्छलहास्यमाना।
साऽऽहस्म नैवाशकुनो भवेन्मे;
भाविप्रियावेदक एष हंसः॥"—श्री हर्ष—नैषधीय चरित, ३/६

५. "अस्तित्वं कार्यसिद्धेः स्फुटमथ,
कथयन् पक्षयोः कम्पभेदैः।" वही ३/१३२

के कलहंस राजपूतों का नामकरण कालहंस (काला हंस) के आधार पर हुआ है। ये राजपूत 'टोटेम' के रूप में इसे स्वीकार करते हैं और इस पक्षी का मांस खाना निषिद्ध मानते हैं।[1]

(७) बगुला

बगुला को संस्कृत में 'वक' और भोजपुरी में वकुला कहते हैं। यह भी सारस की भाँति जल के किनारे रहने वाला पक्षी है। यह जल में घण्टों खड़े रहकर ध्यान लगाकर मछलियों को पानी में से पकड़ने में सिद्धहस्त होता है। अतः पूजा-पाठ करते हुए, निकृष्ट कर्म करने वाले व्यक्ति को 'बगुला भगत' की उपाधि से विभूषित किया जाता है। मछली को पकड़ने के लिए ध्यान में स्थित किसी बगुले को देखकर भगवान् राम ने लक्ष्मण से उसकी बड़ी प्रशंसा की।[2] परन्तु किसी मछली ने राम के कथन का उत्तर बड़ा ही सटीक दिया और उसकी धार्मिकता की पूरी पोल ही खोल दी।[3] इस प्रकार झूठी धार्मिकता का ढोंग दिखाने वाले व्यक्तियों का प्रतीक बगुला पक्षी है।

कालिदास ने बगुलों का बादलों के साथ आकाश में जाना कार्यसिद्धि का सूचक माना है। यक्ष का संदेश लेकर मेघ के प्रस्थान के समय बकपंक्ति का नभ में दर्शन शुभ है। महाकवि ने बगुलों के गर्भाधान की ओर भी संकेत किया है।[4]

(८) सारस

सारस जलपक्षी माना जाता है। यह किसी तालाब के किनारे सदा निवास करता है। इसकी टाँगे बहुत लम्बी और चोंच बहुत बड़ी होती है जिससे यह आसानी से मछलियों को पकड़ने में समर्थ होता है। लोक-कथाओं

१. क्रुक—पा० रि० फो० ना० इ० भाग २, पृ० २४७

२. "पश्य लक्ष्मण ! पम्पायां वकं परमधार्मिकम् ।
शनैः शनैः पदं धत्ते, प्राणिनां भयशंकया ॥"

३. "बकं किं वर्ण्यते राम ! येनाऽहं निष्कुलीकृतः ।
सहवासी विजानीयात्, चरित्रं सहवासिनाम् ॥"

४. "गर्भाधानात् क्षणपरिचयान्नूनमाबद्धमालाः ।
सेविष्यन्ते नयन सुभगं खे भवन्तं बलाकाः ॥"
—मेघदूत—पूर्व मेघ—श्लोक १०

में लोमड़ी और सारस की कथा प्रसिद्ध है जिसमें लोमड़ी ने सारस को भोजन के लिए आमन्त्रित किया परन्तु किसी थाली में भोज्य पदार्थ को रखकर स्वयं शीघ्र ही उसे खा गई और सारस बेचारा भूखा ही रह गया।

सारस पक्षी शुभ माना गया है। यशस्तिलक चम्पू में राजा के प्रयाण के समय सारस का सीधी ओर बोलना मंगलकारी है।[१]

(६) कबूतर

यह पालतू पक्षी है। अनेक लोग इसे अपने घर के ऊपरी छज्जों पर इसके बैठने का स्थान बनाकर इसे पालते हैं। यह बड़ा निरपराध (Innocent) पक्षी है। यह घर में रहते हुए भी किसी प्रकार का नुकसान नहीं करता। परन्तु जहाँ यह रहता है वहाँ 'बीट' करके बड़ी गन्दगी उत्पन्न कर देता है। महाकवि कालिदास ने यक्षपत्नी के भवन-वलभी में कबूतरों के सोने का उल्लेख किया है।[२]

यह बड़ा ही कामी पक्षी माना जाता है। विहारी ने एक दोहे में इस तथ्य की ओर संकेत किया है[३] कबूतर की बीट का उपयोग बच्चों को सर्दी लगने पर किया जाता है तथा इसके पंखो की हवा बच्चो के लिए शुभ मानी जाती है।[४]

बाल्मीकि रामायण में माल्यवान् के द्वारा रावण को समझाते समय कबूतरों का विचरण करना अत्यन्त अशुभ माना गया है।[५]

आधुनिक युग में कबूतर शान्ति का प्रतीक माना जाता है। राष्ट्रीय पर्वों के अवसर पर देश में शान्ति की कामना के लिए हजारों कबूतर आकाश में

---

१. सोमदेव सूरि—यशस्तिलक चम्पू, आश्वास २

२. "तां कस्यांचित्भवनवलभौ सुप्त पारावतायाम्।"—मेघदूत—(पूर्व)

३. "पट पाँखै, भख काँकरै; सदा परेई संग।
सुखी परेवा जगत में, तूहीं एक विहंग॥" —वि० स०

४. डॉ० सत्या गुप्त—ख० बो० लो० सा०—पृ० ३८६

५. "राक्षसानां विनाशाय, कपोताः विचरन्ति च।"
—वा० रा० (यु० का०), ३५/२५-३७

हिन्दी साहित्य में तोता विरहिणी नायिका के सतत सहचर के रूप में चित्रित किया गया है वे अपने विरह के दिनों को अपने प्यारे सुग्गा (तोता) को राम नाम पढ़ा कर अपना दिन काटा करती थीं।

लोक-गीतों में परदेश को जाते हुए पति के द्वारा अपनी स्त्री को समय काटने के लिए सुग्गा देने का उल्लेख पाया जाता है।[१] ये दुष्ट तोते कभी-कभी अशिष्ट आचरण भी करने लगते थे। परन्तु पति के द्वारा प्रदत्त होने के कारण स्त्री इस क्षुद्र पक्षी के अपराध को क्षमा कर देती थी। छठी माता की पूजा के लिए तैयार पकवान को इस पक्षी के द्वारा जूठा कर देने का उल्लेख पाया जाता है।[२]

(११) मैना

यह भी पालतू पक्षी है। शौकीन गृहस्थ इसे घर में पिंजड़े में पाल कर रखते है। संस्कृत में इसे सारिका कहा जाता है। महाकवि कालिदास ने लिखा है कि यक्ष-पत्नी अपने पालतू मैना से पूछ रही है कि क्या तुम अपने भर्ता (स्वामी, यक्ष) का कुछ स्मरण करती हो। क्या कभी वह तुम्हें याद आता है।[३] सारिका शब्दानुकरण में बड़ा ही दक्ष पक्षी है। उसे जिस किसी वस्तु या पाठ की शिक्षा दी जाय उसे सरलता से ग्रहण कर लेता है। सुप्रसिद्ध मीमांसक मण्डन मिश्र ने ऐसी विदुषी सारिकाओं को पाल रखा था जो संसार की नित्यता तथा अनित्यता पर शास्त्रार्थ किया करती थीं।[४] मैना बड़ा सरल निरभिमानी पक्षी है। वह सदा 'मैं' ना, 'मैं' ना कहा करता है। उसकी

---

१. "एक सुगना खेलवना कि देई हो गइले ना।"

—डॉ० उपाध्याय—भो० लो० गी०, भा० १

२. "सुग्गा ने दिया जुठार, छठी माता अरघ कइसे चढ़ाई।"

३. "पृछन्तीं वा मधुर वचनां सारिकां पंजरस्थाम्‌।
कच्चित् भर्तुः स्मरसि रसिके; त्वं हि तस्य प्रियेति।।"—मेघदूत—उत्तर

४. "जगद् ध्रुवं स्यात्; जगदध्रुवं स्यात्।
कीराङ्गना यत्र विचारयन्ती।।
द्वारस्थ नीड़ोपरि सन्निविष्टं,
अवेहि तन्मण्डन मिश्र धाम।।"—शं० दि०

इस निरभिमानिता का उल्लेख किसी हिन्दी कवि ने बड़ी सुन्दर रीति से किया है।[१]

राक्षस खर जब राम से युद्ध करने के लिए प्रस्थान कर रहा था तब सारिकाओं द्वारा चीं चीं शब्द करना मृत्यु सूचक के रूप में अशुभ माना गया है।[२] रामायण में जब माल्यवान् रावण को युद्ध न करने के लिए समझा रहा था उस समय मैनाओं के द्वारा शब्द करना अशुभ कारक समझा गया।[३]

(१२) कोकिल

यद्यपि कोकिल का रंग काला होता है परन्तु इसकी वाणी अत्यन्त मधुर होती है। इसीलिए मधुर भाषिणी स्त्रियों को 'कोकिल बैनी' कहा जाता है। हिन्दी में इसे कोयल, भोजपुरी में कोइलरि और संस्कृत में 'पिक' कहते हैं। कोयल तथा कौआ दोनों का रंग नितान्त काला होता है परन्तु मधुर वाणी के कारण ही कोकिल का व्यक्तित्व कौवे से पृथक दिखाई पड़ता है।[४] जब वसन्त के आगमन पर (आम की) अमराई में बैठकर कोयल अपने मधुर स्वर से 'पी पी' की आवाज करने लगती है तब उद्यान में एक समा बँध जाती है। कच्चे आम के ऊपर जहाँ काला निशान दिखाई पड़ता है वहाँ गाँव के छोकड़े उस कच्चे आम को "कोइलरि के पादल" कहते हैं। उनका ऐसा विश्वास है कि ऐसा आम कच्चा होने पर भी मीठा लगता है। अपनी मीठी वाणी के कारण कोयल बड़ा ही लोक प्रिय पक्षी है। यह सबका मन हर लेती है।[५] वसन्त में कोयल की बोली का अनुकरण करते हुए बालक इसे अधिक देर तक बोलने को प्रेरित करते हैं।

---

१. "मैं ना मैं ना करत ही, दाम भयो दस बीस।
बकरी में में करत ही, तुरत कटायो शीश॥"

२. वा० रा० (अ० का०), २३/१५

३. वा० रा० (यु० का०), ३५/२५-३४

४. "काकः कृष्ण, पिकः कृष्णः; को भेदः पिककाकयोः।
प्राप्ते वसन्त समये, काकः काकः, पिकः पिकः॥"

५. "कोयल काको देत है, कौवा कासो लेत।
मीठे बचन सुनाइ के, सब का मन हर लेत॥"

कोयल का उल्लेख अनेक लोकगीतों में उपलब्ध होता है। कोई स्त्री कहती है कि ऐ कोयल ! मेरे आँगन में आवो। आज मेरे घर में पहिला विवाह है। अतः सब जगह निमन्त्रण दे आओ।[1] वर विवाह करने के लिए प्रस्थान कर रहा है। वह कोयल से आशीर्वाद देने का आग्रह करता है और कहता है कि यदि मैं विवाह करके सकुशल लौट आऊँगा तब तुम्हें वस्त्र पहिनाऊँगा और तुम्हारे दोनों चोंच (ठोर) को सोने से मढवा दूँगा।[2] एक गीत में लिखा है कि बगीचे में अनेक प्रकार के वृक्षों के होते हुए भी कोयल के बिना उसकी मधुर वाणी के अभाव में उपवन की शोभा नहीं होती।[3] इसी प्रकार से कोयल का वर्णन अनेक गीतों में मिलता है।

लोक-जीवन में इसका दर्शन शुभ है यात्रा के समय यदि कोयल दिखाई पड जाय तो मंगलकारी होता है।

श्री कण्ठचरित महाकाव्य में शिव के साथ संग्राम के लिए जाते समय दैत्यों के मार्ग में कोकिलों का शब्द अशुभ माना गया है।[4] विदेशों में भी कोयल के सम्बन्ध में अनेक विश्वास प्रचलित हैं। पुंस कोकिल की आवाज मधुर होती है परन्तु मादा कोयल कटु तथा कर्कश बोली बोलती है जो

---

१. "आरे आरे कारी कोइलिया;
आँगन मोरे आवहु।
आजु मोरे पहिला बिआह,
नेवत देइ आवहु॥"

२. 'अइसन असीसवा कोइलरि हमरा के दीह;
सोने मऊरी बिआह ए।
उहवाँ से लवटबि कोइलरि चीर पहिनाइबि;
सोनवा मढ़इबों दूनो ठोर रे॥"
—डॉ० उपाध्याय—भो० लो० गी०, भा० १, पृ० ४६

३. "एक सौ आमवा लगवली,
सवा सौ जामुन हो।
आहो रामा तबहू ना बगिया सोहावन;
एक रे कोइलरि बिनु हो॥"
—त्रिपाठी—ग्रा० गी०, पृ० २६८

४ मंखक—श्रीकण्ठ चरित २२/३५

भारतीय विश्वास के सर्वथा प्रतिकूल है। इंग्लैण्ड के कुछ प्रदेश में लोगों की धारणा है कि कोयल २१ अप्रैल को प्रथम बार दिखाई पड़ती है। वोर्सेस्टर शायर के लोग यह मानते हैं कि २० अप्रैल से २६ जून तक इसकी वाणी सुनने को मिलती है। इंग्लैण्ड के उत्तरी भाग के निवासियों का विश्वास है जब कोयल की वाणी सुनाई पडे और उस समय पाकेट में पैसा न हो तो यह बड़ा ही अमंगलकारी है। नारफोक के लोग यह मानते हैं कि कोयल की वाणी सुनाई पड़ने के समय उस समय मनुष्य जो भी कार्य करता रहता है वह वर्ष भर तक उसी काम को करता रहेगा।[१] कुछ दिनों पहिले यह धारणा थी कि यदि कोई स्त्री प्रातःकाल खेत में चली जाय और कोयल की वाणी सुन ले तो उसे अपने भावी पति की मूर्ति के रंग का आभास मिलता है।[२]

कोर्निश के निवासी दाहिनी ओर से कोयल की वाणी का सुनना शुभ और बायीं ओर से अशुभ मानते हैं।[३] जर्मनी के लोगों का यह विश्वास है कि यदि कोयल से अपनी आयु के विषय में प्रश्न किया जाय तो वह अपनी वाणी की आवृत्ति करके उसका उचित उत्तर प्रदान करती है।[४] श्रोप शायर में जनता के लिए यह सामान्य बात थी कि जब ये कोयल की वाणी वर्ष में प्रथम बार सुनते थे तब अपने कार्यों को छोड़कर आनन्द मनाने लगते थे।[५]

कोकिल के विषय में अनेक कवितायें प्रसिद्ध हैं। वसन्त के आगमन पर इसका दर्शन प्रायः होता है।[६] डेनिश लोग जब कोयल की आवाज सुनते है

---

१. डायर—इं० फो०, पृ० ५७

२. वही, पृ० ५८

३. वही, पृ० ५८

४. "Cuckoo, cherry tree;
Good bird, tell me
How many years, have I to live."— वही, पृ० ५८

५. वही, पृ० ५९

६. "In April the cuckoo shows his bill;
In May he is singing all day.
In June he changes his tune;
In July he prepares to fly"—वही पृ० ५९

तब ग्राम-बालिकायें अपने हाथों का चुम्बन कर अपने विवाह के विषय मे प्रश्न करती है। स्वीडेन मे भी ग्राम की लड़कियाँ अपनी शादी के संबंध मे इससे जानकारी चाहती हैं।[1]

(१३) खंजरीट

खंजरीट को भोजपुरी में खड़लिच और हिन्दी में खंजन कहते हैं। यह बड़ा ही शुभ पक्षी है। कार्तिक मास में इसका दर्शन मंगलकारी माना जाता है। लोगो का ऐसा विश्वास है कि गोबर के ऊपर सर्प बैठा हो और उसके फन के ऊपर खंजन बैठा हो तो उसका दर्शन करने वाला व्यक्ति राजा होता है। यद्यपि यह स्थिति कठिन है परन्तु यदि हो तो उसके दर्शक के भाग्य में राजयोग लिखा होता है।

महाकवि 'जायसी' ने भी इस लोक-विश्वास का उल्लेख अपने महाकाव्य में किया है।[2]

> "पन्नग पंकज मुख गहे; खजन तहाँ बईठ।
> छात, सिंहासन, राजधन; ता कहँ होय जो दीठ॥"

अर्थात् मुख मे कमल को ग्रहण किये हुए यदि सर्प स्थित हो और उसके सिर पर खंजन बैठा हो तो इस शकुन को देखने वाले व्यक्ति को राजकीय छत्र, सिंहासन तथा राज्य एवं धन की प्राप्ति होती है।

संस्कृत साहित्य में खंजन के विषय में अनेक शकुन उपलब्ध होते हैं। वासवदत्ता में स्वयम्बर मण्डप में राजपुत्रों का वर्णन करते हुए खंजरीट पक्षी के विषय में यह लिखा है कि वर्ष के प्रथम दिन उसके दर्शन से जिस प्रकार के शुभ या अशुभ फल की प्राप्ति होती है समस्त वर्ष भर वैसा ही फल मिलता रहता है।[3] हनुमन्नाटक में सीताहरण के पश्चात् राम के द्वारा सर्प के फण पर

---

१. 'Cuckoo grey, tell to me;
Up in the tree; true and free.
How many years, I must live
And go unmarried."—डायर—ई० फो०, पृ० ६०

२. डॉ० वीणा द्विवेदी—पद्मावत में लोक संस्कृति का अध्ययन—पृ० १६६

३. "के चित् खंजना इव सांवत्सर फलदर्शिनः सुबन्धु"
—स्वप्नवासवदत्ता. पृ० १८८

खंजरीट पक्षी का दर्शन राज्य प्राप्ति का सूचक माना गया है।[१] राजतरंगिणी में राजा का गुप्त आदेश ले जाते समय मातृगुप्त के लिए मार्ग में सर्प के फण (फन) पर स्थित खंजन पक्षी का दर्शन राज्य प्राप्ति का सूचक है।[२] मार्ग में सीधी ओर जाते हुए खंजन का दर्शन सम्पत्ति की प्राप्ति का शुभ कारण है।[३] इस प्रकार लोक-साहित्य तथा संस्कृत साहित्य में सर्प के फन पर स्थित खंजन का दर्शन राज्य प्राप्ति की सूचना देता है।

क्रुक ने लिखा है कि खंजन को 'राम चिरैया' भी कहा जाता है जिसका अर्थ राम का पक्षी होता है। भगवान् विष्णु से इसका संबंध है क्योंकि इसके गले में जो निशान बने हुए हैं वह शालग्राम के अनुरूप है।[४] इस पक्षी का वर्षा के अन्त में आगमन होता है और पतझड़ के अन्त में यह चला जाता है अर्थात् अदृश्य हो जाता है। प्रथम आगमन के पश्चात् इसे सभी लोग प्रणाम करते हैं। यदि कोई मनुष्य पानी के समीप, हाथी के ऊपर अथवा सर्प के फन पर खंजन को देख ले तो यह शुभकारक माना जाता है।[५] इस पक्षी को भिन्न-भिन्न दिशाओं में देखने से भिन्न-भिन्न शकुनों की प्राप्ति होती है।[६] आयरलैण्ड में लोगों की यह धारणा है कि खंजन की हत्या अत्यन्त अशुभ है।[७]

(१४) नीलकण्ठ

जैसा कि इस पक्षी के नाम से ही प्रकट है इसका कण्ठ प्रदेश नीला होता है। अतः इसे शिव का प्रतीक मानते हैं क्योंकि विषपान करने के कारण शिव

---

१. "राज्य भुजंगस्य फणाधिरूढो,
व्यनक्ति अहो दाक्षिण खंजरीटः।।"—हनुमन्नाटक—अंक ५/३१

२. "अपश्यत् स फणाकोटौ, खंजरीट महे पथि,
स्वप्ने प्रासादमासह्य; स्वं चोल्लिंघित सागरम्।"
—कल्हण—राजतरंगिणी तरंग, ३/२२४

३. "खंजनः खं सृजन्नग्रे, ददृशे दक्षिणं व्रजन्।"
—हेम विजयगणि—विजय प्रशस्ति सर्ग, १२/२०

४. क्रुक—पा० रि० फो० ना० इ०, भाग २, पृ० २४८

५. वही, पृ० २४६

६. वही, पृ० २४६

७ हिसमप पेपर्स ६

का कण्ठ भी नीला है। शिव का प्रतीक होने के कारण यह पक्षी शुभ है। विशेषकर दशहरा के दिन इस पक्षी का दर्शन अत्यन्त शुभ माना जाता है। बहेलिया इस पक्षी को पकड़ कर घर-घर में घूमकर लोगों को दशहरा के दिन इसका दर्शन कराते फिरते हैं। इसके फलस्वरूप लोग उस बहेलिया को कुछ दक्षिणा देते हैं। कुछ लोग बगीचों में घूमकर इसका दर्शन करने का प्रयास करते हैं। हिन्दी के किसी कवि ने अन्योक्ति अलंकार के द्वारा इसी तथ्य की ओर संकेत किया है।[1]

संस्कृत साहित्य इस पक्षी के शकुन के सम्बन्धों से भरा पड़ा है। कवि अभिनन्द ने नीलकण्ठ पक्षी का बोलना शीघ्र ही कार्य सिद्धि का सूचक माना है।[2] श्रीमत् देवसूरि के प्रस्थान के समय नीलकंठ पक्षी का दर्शन मंगलकारी है।[3] जय विमल मुनि के प्रस्थान के समय नीलकण्ठ पक्षी द्वारा सीधी ओर आकर तीन बार प्रदक्षिणा करना शुभ सूचक है।[4] इसी प्रकार से इस पक्षी का यात्रा के समय सीधी ओर बोलना शुभ है।[5] परन्तु संस्कृत काव्यों में ठीक दशहरा के ही दिन इसके दर्शन का महत्त्व तथा इसके शुभ होने का उल्लेख नहीं पाया जाता। सम्भवतः यह लोक-विश्वास का ही अभिन्न अंग है।

किसी कार्य के लिए प्रस्थान करते समय वाम भाग में चारा खाते नीलकण्ठ का दर्शन शुभ है।[6] राजा दशरथ के अयोध्या से विवाह के लिए

---

१. "काल्हु दसहरा बीतिहैं, धर मुरख हिय लाज।
छिपे फिरत कत द्रुमन में नीलकण्ठ बिनु काज॥"—वि० स०

२. अभिनन्द—रामचरित, ४/८२

३. यशःचन्द्र—कुमुदचन्द्र, अंक २

४. हेम विजय गणि—विजयप्रशस्ति, ६/५

५. देव विमल गणि—हरि सौभाग्य, ११/६६

६. "वाम भाग चाखा चखु खाय।
काग दाहिने, सेव सुहाय।
सफल मनोरथ समझो जाय॥"
—पं० रामनरेश त्रिपाठी—ग्रा० सा०, भाग ३, पृ० १०१

प्रस्थान करते समय नीलकण्ठ का दर्शन मंगलकारी है।[1] जायसी ने भी इसका उल्लेख किया है।[2]

(१५) गौरैया

यह घरेलू पक्षी है जिसे अनेक व्यक्ति शौक से घर में पालते हैं। गौरैया बहुत छोटा पक्षी है जो घर मे सदा 'चें-चें' की आवाज करता रहता है। लोगों का ऐसा विश्वास है कि घर में इसका निवास शुभ है और यह सुख तथा समृद्धि बढ़ाने वाला होता है। इसीलिए प्राचीन परम्परा-भक्त अपने नये घर का निर्माण करते समय इस पक्षी के स्थायी निवास के लिए दरवाजों के चौखटों के ऊपर खोखला स्थान बना देते हैं। इसकी आवाज मंगलकारी मानी जाती है।

चुचुहिया एक अन्य पक्षी है जो चू-चू की आवाज करता है। प्रातःकाल में इसकी बोली प्रभात होने की सूचना देती है। इसीलिए जब गाँव की स्त्रियाँ चुचुहिया के बोलने का उल्लेख करती हैं तब उसका अभिप्राय सूर्योदय अथवा अरुणोदय की वेला समझनी चाहिये। संयोगिनी स्त्रियों के लिए यह पक्षी दुःख का कारण होता है। एक लोकगीत मे इस चुचुहिया के बोलने का उल्लेख दुःखदायी रूप में पाया जाता है।[3]

---

१. "चारा चाषु वाम दिसि लेही।
मनहु सकल मंगल कहि देहीं॥"

—रा० च० मा० (बा० का०), ३०२

२. पद्मावत, पृ० ५६

३. "दिनवा के बैरी रे सासु ननदिया,
मैं का करों यार राति बैरी अंजोरिया॥
कसहूँ मैं ठोकि-ठाकि के बालका सुतवलों,
मैं का करो यार, बोले लागल चुचुहिया॥
मैं का करो यार—"

—डॉ० उपाध्याय—भो० लो० गी०, भा० १

(१६) मुर्गा

इस पक्षी को भोजपुरी में मुरुगा और संस्कृत में कुक्कुट कहते हैं। यह प्रातःकाल में 'कुकुडूकूँ' की आवाज किया करता है जिसे 'बाँग देना' कहा जाता है। रात्रि के अवसान में की गई इसकी आवाज प्रातःकाल होने की सूचना देती है। इसकी चोटी लाल होती है। अतः इसे संस्कृत में 'अरुण-शिखा' की संज्ञा प्राप्त है। गोस्वामी तुलसीदास जी ने इस तथ्य की ओर निम्नांकित शब्दों में उल्लेख किया है।

> "उठे लखन निसि बिगत सुनि,
> अरुणसिखा धुनि कान।"

जब समय की सूचना देने वाली घड़ियों का अभाव था, तब इस मुर्गा की आवाज प्रभातकाल होने की सूचना देती थी। इसीलिए किसी आवश्यक साधन के न होने पर भी किसी कार्य के सिद्धि के विषय में कहा जाता है कि "क्या जहाँ मुर्गा नहीं होगा, वहाँ बिहान नहीं होता क्या"[1]

मुर्गा अशुभ पक्षी माना जाता है। इसीलिए इसे घर में पाल कर कोई नहीं रखता। 'कुकुडूकूँ' की आवाज बड़ी कर्ण-कटु होती है। अतः उसे कोई सुनना भी नहीं चाहता।

बृहत्संहिता के लेखक ने कुक्कुट पक्षी के शुभ और अशुभ लक्षणों के संबंध में बड़े पते की बात कही है। जिस मुर्गे के पंख और अँगुली सीधी हो, जिसका मुख, नख और चोटी ताम्रवर्ण अर्थात् लाल हो। जो रात्रि के अवसान मे सुन्दर स्वर में बोलता हो ऐसा मुर्गा राजा और राज्य की वृद्धि करता है।[2] इसके साथ ही जिस मुर्गे का कण्ठ जौ के समान हो, जिसका सिर बड़ा हो और जो सफेद लाल, पीला और काला आदि रंगों से युक्त हो ऐसा मुर्गा युद्ध में शुभ माना जाता है।[3] इसी प्रकार से मुर्गी के विषय मे यह लक्षण कहा गया है।

जो मुर्गी कोमल और सुन्दर शब्द करती हो, स्निग्ध शरीर वाली हो,

---

१. "जहाँ न कुक्कुट शब्द तहँ,
होत न कहा बिहान।"

२. वराहमिहिर—बृ० सं०, ६/३१

३. वही, ६३/३

तथा सुन्दर हो तो वह राजाओं को चिर काल तक लक्ष्मी, यश, विजय और सम्पत्ति देती है।[१]

'कुक्कुटी च मृदु चारु भाषिणी,
स्निग्ध मूर्तिरुचिराननेक्षया ।
सा ददाति सुचिरं महीक्षितां,
श्रीयशोविजयवीर्य सम्पदः ॥"

इस प्रकार मुर्गा और मुर्गी के लक्षणों से शुभ और अशुभ सूचनाओं के मिलने का वर्णन इस ज्योतिर्विद ने किया है।

विदेशों में लोगों का यह विश्वास है कि प्रातःकाल मे जब मुर्गा बोलता है, उस समय प्रेतात्माएँ इस संसार को छोड़कर चली जाती हैं। महाकवि शेक्सपीयर ने भी अपने 'हेमलेट' नाटक में इस तथ्य की ओर संकेत किया है। डायर ने भी इसी लोक-विश्वास की पुष्टि की है।[२] इंग्लैण्ड के डेवोन शायर और कार्नवाल प्रदेश निवासियों की यह धारणा है कि यदि मुर्गा सामान्य रूप से अधिक बोलता है तो किसी अतिथि के आने की सूचना मिलती है। किन्हीं स्थानों में इसका बोलना ऋतु परिवर्तन का सूचक है।[३]

मुर्गियों के संबंध में भी लोक-विश्वासों की कुछ कमी नहीं है। डर्बी-शायर के किसानों की यह धारणा है कि यदि मुर्गियों का झुण्ड किसी ऊँचे स्थान पर बैठे और अपने पंखों को खुजलाये तो यह वर्षा का निश्चित सूचक है।[४] इसी प्रदेश की लड़कियाँ यदि दरवाजे के छेद से झाँककर बाहर मुर्गी के जोड़े को देखती थीं तो वे वर्ष के भीतर ही अपने विवाह की संभावना का अनुमान कर लेती थी।[५]

---

१. वराहमिहिर — बृहत्संहिता, ६३/३

२. "The cock crows, and the morning grows on.
When it is decreed, I must be gone."
— डायर—इं० फो०, पृ० ९२

३ "If cock crows on going to bed.
He is sure to rise with a watery head."—वही, पृ० ९८

४. वही, पृ० ९२

५. वही, पृ० ९३

(१७) चातक

हिन्दी साहित्य में इस पक्षी की प्रसिद्धि पाई जाती है, यह शुद्ध तथा निःस्वार्थ प्रेम का प्रतीक माना जाता है। चातक सदा स्वाति नक्षत्र में आकाश से गिरे हुए जल को ही पीता है। चाहे वह प्यासा रहकर भले ही अपने प्राणों का त्याग कर दे परन्तु स्वाति के जल को छोड़कर अन्य जल को कदापि ग्रहण नहीं कर सकता। उसके प्रण के विषय में यह सूक्ति कही जाती है कि मृत्यु के समय भी वह इसे नहीं छोड़ता।[1] इसीलिए आदर्श प्रेमी की उपमा चातक से दी जाती है।

मेघदूत में यक्ष का सन्देश लेकर मेघ के प्रस्थान करते समय बायीं ओर चातक का शब्द करना कार्य-सिद्धि का सूचक माना गया है।[2]

(१८) चकोर

इस पक्षी के विषय में यह प्रसिद्धि है कि यह चन्द्रमा की किरणों को पीकर जीवित रहता है। अतः यह रात्रि में सदैव चन्द्रमा की ओर टकटकी लगाये देखता रहता है। चन्द्रमा के साथ इसका प्रेम अटूट है। अतएव यह चातक की ही भाँति आदर्श प्रेमियों का प्रतीक माना जाता है। लोगों की ऐसी धारणा है कि चकोर आग के टुकड़ों-चिनगारी को खाता है यद्यपि ऐसा करते हुए इसे किसी ने आज तक देखा नहीं है।

(१९) चकवा-चकवी

यह एक छोटा सा पक्षी है जो प्रायः खेतों में पाया जाता है। इसके संबंध में यह किम्बदन्ती प्रसिद्ध है कि किसी ऋषि या मुनि के शाप से चकवा और चकवी रात्रि में अलग हो जाते हैं। ये रात में किसी तालाब के दो विभिन्न किनारों पर बैठ कर आवाज किया करते हैं परन्तु आपस में मिल नहीं पाते।

---

१. "बधिक बध्यौ, जल में गिरयौ, उलटि उठाई चोंच।
तुलसी चातक मरत हूँ, प्रन में लगी न खोंच।।"

२. "वामश्चाय न दति मधुरं, चातकस्ते सगन्धः।।"

—मेघदूत—पूर्व श्लो० १०

इसीलिए उस दम्पत्ति की उपमा चकवा-चकवी से दी जाती है जो नौकरी के कारण अथवा परदेश जाने से आपस मे मिल नहीं पाते । पक्षि-शास्त्र के विशेषज्ञों का तो यहाँ तक कहना है कि यदि चकवा और चकवी को रात में पिंजड़ा में बन्द करके रख दिया जाय तो वहाँ भी वे एक दूसरे से विमुख होकर बैठे रहते हैं । अतः साहित्य मे चकवा-चकवी का चित्रण वियोगी व्यक्तियों के रूप में किया गया है । रामायण में गोस्वामी तुलसीदास जी ने इस तथ्य की ओर संकेत किया है ।[1]

(२०) पपीहा

इस पक्षी की विशेषता यह है कि यह सदा पी, पी कहा करता है । इस प्रकार यह "पी कहाँ, पी कहाँ" की रट लगाता रहता है । हिन्दी के गीति-कालीन कवियों ने इस पक्षी का बड़ा सुन्दर वर्णन किया है । सम्भवतः पी, पी की रट लगाने के कारण ही इसे पपीहा कहा जाता है । किसी व्यक्ति की रट लगाने की उपमा पपीहा से दी जाती है । वर्षा ऋतु में पपीहा की रट अधिक सुनाई पड़ती है ।

(२१) तीतर

इस पक्षी को संस्कृत में 'तित्तिर' कहते हैं । संभवतः इसका मांस बड़ा स्वादिष्ट होता है, अतः शिकारी लोग प्रायः इसका शिकार किया करते हैं । यह प्रायः खेतों में विचरण करने वाला पक्षी है । तीतर लड़ने की कला में प्रवीण होता है अतएव शिकारी प्रायः तीतर की लड़ाई का आयोजन जनमन के अनुरंजन के लिए किया करते हैं ।

तीतर के साथ ही बटेर पक्षी का भी प्रायः उल्लेख किया जाता है । संभवतः इसका मांस भी स्वादिष्ट होता है, अतः शिकारी इसे सदा खोजते फिरते हैं । यह भी लड़ाकू पक्षी है । अतः तीतर और बटेर की लड़ाई प्रसिद्ध है । इन दोनों पक्षियों का मांस अनेक रोगों को दूर करने की अचूक औषधि माना जाता है । लोक-विश्वास के क्षेत्र में इनकी विशेष प्रसिद्धि नहीं पाई

---

१. "सम्पति चकई, भरत चक । मुनि आयसु खेलवार ।
तेहि निसि आश्रम पिंजरा, राखेहु भा भिन्दसार ॥"

—रा० च० मा०

जाती। विजय प्रशस्ति नामक काव्य में तित्तिर पक्षी का बायीं ओर बोलना शुभ माना गया है।[1]

(२२) बाज

यह शिकारी पक्षी माना जाता है। यह आकृति में छोटा होने पर भी बडा तेज उड़ता है और बड़े-बड़े पक्षियों को अपनी चोंच से मार कर गिरा देता है। यद्यपि बाज पक्षी सब पक्षियों का शिकार करता है परन्तु भूचेंगन नामक पक्षी इसे भी पराजित कर देता है।[2] रावण से युद्ध के लिए समुद्र पार कर जाते समय बाजों का नीचे की ओर झपटना अशुभ माना गया है।[3] बाज को सदा अशुभ पक्षी की मान्यता दी गई है।[4]

(२३) सुर्खाब

सुर्खाब बड़ा ही भाग्यसूचक पक्षी माना जाता है। लोगों का ऐसा विश्वास है कि इस पक्षी की यदि छाया भी किसी व्यक्ति पर पड़ जाय तो वह राजा हो जाता है। यह विदेशी पक्षी माना जाता है परन्तु संस्कृत साहित्य में संभवतः एक ही स्थान पर इसका उल्लेख उपलब्ध होता है। ईश्वर विलास महाकाव्य मे ईश्वर सिंह के ऊपर सुर्खाव पक्षी की छाया पडना महाभाग्य का सूचक माना गया है।[5] यहाँ सुर्खाब पक्षी का नाम्ना उल्लेख नहीं किया गया है परन्तु उसे "द्वीप चरो विहंगमः" की संज्ञा दी गई है।

सुर्खाब पक्षी के पंख जिस व्यक्ति को मिल जायँ वह भी भाग्यवान् समझा

---

१. "अववद् तित्तिरिस्तारं वामोऽवमदिशि स्थितः"
—हेम विजय गणि—विजय प्रशस्ति, १२।११

२. 'सब पंछिन में बाज सितारा।
ओहू के भूचेंगन मारा।।"

३. "काकाः श्येनाः तथा गृध्राः,
नीचैः परिपतन्ति च।"—वा० रा० (यु० का०), सर्ग २३/११

४. दीपचन्द शर्मा—सं० का० श०, पृ० १५६

५. "तस्मिन् महाभाग्य-समूह-सूचकः।
पयोनिधि द्वीपचरो विहंगमः।।
प्रसार्य पक्षौ कमनीय पक्षतिः।
तस्योपरिच्छत्रतया व्यतिष्ठत श्रीकृष्ण भट्ट ईश्वर विलास ८ ३७

जाता है। अतः लोक में यह कहावत किसी विशिष्ट व्यक्ति के विषय मे कही जाती है क्या उसमें सुर्खाब का पंख लगा है। सुर्खाब को संभवतः उर्दू मे 'हुमा' कहते हैं जिसकी छाया पड़ने से ही व्यक्ति धनी तथा ऐश्वर्यवान् बन जाता है। एक उर्दू की कविता मे इसी तथ्य की ओर संकेत किया गया है।[१]

(३) परिच्छेद—जलचर

(१) घड़ियाल

घड़ियाल जलचरों में ह्वेल मछली को छोड़कर संभवतः सबसे बड़ा तथा भयंकर जीव होता है। यह दस-बारह फीट से भी अधिक लम्बा होता है और अपने लम्बे तथा कटीले दाँतों से किसी भी जीव को पकड़ कर नष्ट कर सकता है।

पुराणों मे गज और ग्राह का युद्ध अत्यन्त प्रसिद्ध है। ग्राह गज जैसे विशालकाय जीव को पकड़ कर पानी में घसीटने लगा तब गज ने ग्राह से मुक्ति के लिए भगवान् विष्णु को पुकारा। विष्णु गज की आर्त्तवाणी को सुनकर नंगे पैर दौड़ पड़े और सुदर्शन चक्र से ग्राह का नाश कर गज की रक्षा की। महाभारत में 'गजेन्द्र मोक्ष' की कथा अत्यन्त सुन्दर तथा मधुर शब्दों में कही गई है।

मगर, जिसका स्वरूप आधा घड़ियाल और आधा शार्क मछली के समान होता है, प्रेम के अधिष्ठाता देवता, कामदेव का वाहन है। भारतीय कला में गंगा मगर के ऊपर आरूढ़ चित्रित की गई है।[२] मल्लाह लोगों में यह विश्वास प्रचलित है कि यदि मगर की सम्यक् प्रकार से पूजा की जाय तो वह इनके ऊपर आक्रमण नहीं करता।[३]

संभवतः घड़ियाल की आँखों में आँसू का अभाव होता है। अतः जो व्यक्ति किसी के साथ व्यर्थ में ही सहानुभूति दिखलाता है उसे "घड़ियाली आँसू" बहाना कहते हैं अंग्रेजी में इसे "क्रोकोडाइल टीयर्स" कहा जाता है।

मगर का दर्शन शुभ माना जाता है। बिहारी ने कृष्ण के द्वारा अपने

---

१. 'बुलबुल ने जिस चमन से आशिआना उठा लिया।
उसकी बला से बूम रहे, या "हुमा" रहे।।"

२. डॉ० वासुदेव उपाध्याय—'भारतीय कला में गंगा' शीर्षक लेख

३. North Indian Notes & Queries Vol. I 4. 38

कानों में मगर की आकृति का कुण्डल पहिनने का उल्लेख किया है जो मंगल-कारी है।[1] घड़ियाल की हड्डी मे जादू की शक्ति होती है। अत: वह बच्चों के द्वारा ताबीज के रूप में धारण की जाती है।

(२) कछुआ

कछुआ जलचर जीव है जो सदा पानी में ही निवास करता है। परन्तु कुछ कछुए स्थल पर रहने के अभ्यासी हैं जिन्हें कुछ लोग पालकर रखते हैं।

भगवान् विष्णु ने अपना दूसरा अवतार कछुआ के रूप में ही धारण किया था। जिसे कच्छपावतार कहते हैं। इस अवतार में इन्होंने प्रलय काल में वेदों की रक्षा की थी जिसका उल्लेख महाकवि जयदेव ने इन शब्दों में किया है।[2] देवों तथा असुरों ने जब समुद्र-मन्थन किया था और नागराज वासुकि को रस्सी और मन्दराचल को दण्ड बनाया था तब इसी कच्छप की पीठ पर यह मन्दर पर्वत समुद्र में रखा गया था। इस प्रकार समुद्र-मन्थन की कथा में कच्छप की प्रधान भूमिका समझनी चाहिए। सामान्य जनता का ऐसा विश्वास है कि यह पृथ्वी पाताल लोक में स्थित कच्छप की कठोर पीठ पर आश्रित है। जब कछुआ अपने शरीर में संकोच करता है अथवा अपने अगों को सिमेट लेता है तब उस पर स्थित पृथ्वी पर भूकम्प आ जाता है।

गीता में भगवान् श्री कृष्ण ने स्थितप्रज्ञ व्यक्ति की उपमा कच्छप से दी है। बंगाल के गनटार जाति के लोग कोको कुमारी नामक देवी को, जो समुद्र की कन्या समझी जाती है, कच्छप की बलि के रूप में चढ़ाते हैं। यह देवी केवल कछुआ की बलि को ही स्वीकार करती है और जो लोग इन्हे बलि नही देते वे विभिन्न रोगों से अभिभूत हो जाते हैं।[3] कछुआ मुण्डारी कोलों के द्वारा 'टोटेम' के रूप में माना जाता है। मिर्जापुर के खरवार और माँझी जाति के सदस्य कछुआ की मिट्टी की मूर्तियों की पूजा करते है। जिसे ये आदर से अपने घरों में रखते हैं।

---

१. "मकराकृति गोपाल के, कुण्डल सोभित कान।
धस्यौ मनौ हिय धर समर, ड्यौढ़ी लसत निसान।।"—वि० स०

२. प्रलय पयोधि जले धृतवानसि वेदम्।
× × × केशवधृत कच्छप रूप, जय जगदीश हरे। गी० गो०

३ बुकानन— ईस्टर्न इण्डिया भाग ३ पृ० ५३२

गोण्ड जाति के लोगों का विश्वास है कि कछुआ ने एक बार इनके पूर्वज 'लिंगो' को घड़ियाल के आक्रमण से बचाया था। अत: वे आदर की दृष्टि से इसे देखते हैं।[1]

(३) मछली

भगवान् विष्णु के दस अवतारों में मत्स्यावतार सर्वप्रथम माना जाता है। अतएव मत्स्य के महत्त्व का अनुमान इसी एक तथ्य से किया जा सकता है। सृष्टि सम्बन्धी पौराणिक कथा (मिथक) से भी मछली का घनिष्ठ सम्बन्ध माना जाता है। मनु से एक मछली ने कहा कि मैं प्रलय में आपकी रक्षा करूँगी। उसने मनु से एक नाव का निर्माण करने को कहा। प्रलय काल आने पर इस मछली ने नाव को लेकर एक सुरक्षित स्थान पर लगा दिया जिससे मनु की रक्षा हो गई।

मछली अत्यन्त शुभ जीव है। यात्रा में प्रस्थान के समय इसका दर्शन अत्यन्त मंगलकारी माना जाता है। गोस्वामी तुलसीदास ने इसका उल्लेख अनेक बार किया है।[2] मछली का दर्शन शुभ होने के कारण ही इन्हें काशी, मथुरा, अयोध्या, गोरखपुर, हरिद्वार और नेपाल आदि स्थानों में मारना अत्यन्त निषिद्ध माना जाता है। काशी तथा हरिद्वार में गंगा में हजारों की संख्या में मछलियाँ पाई जाती है। परन्तु सरकारी आज्ञा के अनुसार इनका मारना अत्यन्त निषिद्ध है। धार्मिक व्यक्ति राम का नाम कागज या भोजपत्र पर लिखकर, आटे में रखकर उसकी गोलियाँ बनाते हैं तथा इन गोलियों को मछलियों को खिलाते हैं। हरिद्वार में हरकी पैड़ी पर सन्ध्या के समय यह दृश्य देखा जा सकता है। लोगों का यह विश्वास है कि ऐसा करने से अनन्त पुण्य की प्राप्ति होती है।

हिमालय में स्थित सारस्वत तालाब में मृकुण्ड नामक मछली पाई जाती है। प्रत्येक मास के शुक्लपक्ष की चतुर्दशी को इन मछलियों को अन्न खिलाया जाता है और पितरों की शान्ति के लिए पूजा की जाती है।[3]

मछली ख्वाजा खिज्र नामक जल देवता का वाहन माना जाता है, अतएव पवित्र है। अवध के नवाब मछली को अपने राजकीय चिह्न के रूप में धारण

१. क्रुक—पा० रि० फो० लो० ना० इ०, भाग २, पृ० २५५

२. "सन्मुख आयउ दीख अरु मीना।
कर पुस्तक दुइ विप्र प्रवीना॥"—रा० च० मा० (बा० का०), ३०/२४

३ एटकिंसन हिमालयस गजेटियर भाग २, पृ० ३८०

करते थे। आजकल उत्तर प्रदेश के सरकार की राजकीय मुद्रा (सील) में शुभ होने के कारण मछली का चिह्न अंकित पाया जाता है। लोक-कथाओं में मछली का प्रधान स्थान है। शकुन्तला नाटक में राजा दुष्यन्त की अँगूठी का मछली के पेट से पाये जाने का उल्लेख है। क्रुक ने ऐसी अनेक लोक-कहानियों का वर्णन अपने ग्रन्थ में किया है।[1]

(४) मेढ़क

यह जीव जलचरीय है परन्तु स्थल पर भी रहता है। संस्कृत में इसे मण्डूक और भोजपुरी में बेंग कहते हैं। यह बड़ा प्राचीन जीव ज्ञात होता है। वैदिक ऋषियों ने 'मण्डूक सूक्त' में इसका स्मरण किया है। इसके टर्राने की उपमा वैदिक ब्रह्मचारी के द्वारा वेद पाठ से दी गई है। गोस्वामी तुलसीदास जी ने भी इसी लक्ष्य की ओर संकेत किया है।

"दादुर धुनि चहुँ ओर सुहाई।
वेद पढ़हिं जनु बटु समुदाई॥"

सामान्य जनता की यह धारणा है कि मेढ़कों के टर्राने की आवाज वर्षा की सूचक है। अतः जब बरसात में मेढ़क जोरों से टर्राने लगते हैं तब वर्षा अवश्य ही होती है। ऐसा माना जाता है मेढ़क को मारने से कान में दर्द पैदा हो जाता है। अतः ग्रामीण स्त्रियाँ अपने बच्चों को मेढ़क मारने के लिए निषध करती हैं। यह मान्यता है कि मेढ़क का मांस जादूपूर्ण औषधि के लिए प्रयुक्त होता है जिसके प्रयोग से डायनें आकाश में उड़ने लगती है।[2]

विदेशी लोक-विश्वास के अनुसार मेढ़क के सिर मे मणि होती है। महाकवि शेक्सपियर ने इस विश्वास की ओर अपने नाटक में संकेत किया है।[3] एक मान्यता के अनुसार मेढ़क और मकडा में बडी शत्रुता होती है और वे अपने विष से एक दूसरे को नष्ट करने की चेष्टा करते हैं। डायर ने अपनी पुस्तक में मेढ़क के संबंध में अनेक विश्वासों का उल्लेख किया है।[4]

---

१. क्रुक—पा० रि० फो० लो० ना० इ०— भाग २, पृ० २५४

२. टानी—ओशन आफ स्टोरी—भाग २, पृ० ५७४

३. "Sweet are the uses of adversity;
Which like the toad ugly a venemous
Finds yet a precious jewel in its head."—शेक्सपियर

४ डायर—इ० फो० पृ० १३६ १४०

विदेशों में मेढ़क को विषैला जीव माना जाता है जिसका उल्लेख शेक्सपियर ने 'वेनेमस' (विषैला) कहकर किया है। इंग्लैण्ड में मेढ़क का संबंध डायनों (Witches) से माना जाता है। यह अपने सिर में मणि को धारण करता है जिसका उल्लेख शेक्सपियर ने भी किया है।[१]

(४) परिच्छेद—सरीसृप

ब्रह्मा की सृष्टि में कुछ ऐसे भी जीव हैं जो पृथ्वी पर रेंगते हैं अथवा चलते हैं। ऐसे जीवों में साँप, बिच्छू, गोजर, जोंक, छिपकली आदि प्रसिद्ध है। लोक-विश्वास की दृष्टि से इनमें सर्प सबसे अधिक समृद्ध है जिसकी चर्चा अगले पृष्ठों में की जायेगी।

इसके अतिरिक्त कुछ ऐसे कीड़े, मकोड़े भी हैं जो लोक-विश्वास की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हैं। इनमें चींटी, चिउटा, दीमक, मकड़ा, रेशम का कीड़ा, हाड़ा, बिरनी (ततैया) आदि की गणना की जा सकती है। अगले पृष्ठों में संक्षेप में इन पर विचार करने का प्रयत्न किया जायेगा।

(१) सर्प

सर्प के संबंध में जितना अधिक लोक-विश्वास प्रचलित है संभवतः उतना किसी अन्य जीव के संबंध में नहीं है। यदि इन विश्वासों को एकत्रित किया जाय तो एक बहुत बड़ा पोथा तैयार हो सकता है। सुप्रसिद्ध विद्वान् डॉ० वोगेल ने अपनी पुस्तक में इसका अत्यन्त विस्तृत वर्णन प्रामाणिक रूप से किया है।[२] ब्रैण्ड आयमर नामक अमेरिकी मनीषी ने मिथक, जन्तु-कथा, लोक-कथा, निबन्ध, कविता, नाटक, धर्म तथा व्यक्तिगत यात्राओं में प्राप्त सर्प संबंधी लोक-विश्वासों का बड़ा ही विस्तृत विवेचन प्रस्तुत किया है।[३] सर्प के संबंध में जितनी प्रामाणिक, विस्तृत तथा आलोचनात्मक मीमांसा इस ग्रन्थ में उपलब्ध है उतना अन्यत्र नहीं।

भारतीय संस्कृति से सर्प का संबंध अत्यन्त प्राचीन काल से चला आ रहा

---

१. क्रुक—पा० रि० फो० ना० इ०—भाग २, पृ० २५६

२. Dr. Vogel—Indian Serpent lore

३. Brandt—Aymar—Treasury of snake lore (Newyork)

है। भगवान् शिव अपने गले मे हार के रूप में सर्प को धारण करते है। यही कारण है कि शिव की मूर्तियाँ सर्पों से वेष्टित मिलती हैं तथा शिव मंदिरों के ऊपर सर्प की आकृति उत्कीर्ण प्राप्त होती है।

पुराणों में सर्पों के संबंध में अनेक आख्यान उपलब्ध होते हैं। सर्पों के प्रसिद्ध आठ कुल माने जाते हैं जिनमें तक्षक आदि प्रसिद्ध हैं। इसी तक्षक ने जनमेजय के पिता परीक्षित को काट कर उन्हें परलोक पहुँचा दिया था। सर्पों के राजा शेषनाग माने जाते हैं। पुराणों में ऐसा वर्णन पाया जाता है कि भगवान् विष्णु क्षीर सागर में शेष नाग पर ही शयन करते हैं और ये अपने फनों (फणों) के द्वारा उन पर छाया करते रहते हैं। भगवान् श्री कृष्ण ने कालिय नाग नामक दुष्ट सर्प को 'नाथ' कर उसका सर्वनाश कर दिया था। इस सर्प ने अपने विष के कारण ब्रजवासियों के पेय जल को दूषित कर रखा था। इस प्रकार हिन्दू संस्कृति के प्रधान देवता शिव, विष्णु तथा कृष्ण से सर्प का संबंध दिखाई पड़ता है।

सर्व साधारण जनता का यह विश्वास है कि पृथ्वी शेषनाग के फनों पर आश्रित है और जब वे अपने भार को हलका करने के लिए एक फन से दूसरे फनों को बदलते हैं तो पृथ्वी पर भूकम्प आ जाता है। हिन्दू धर्म में नाग देवता की पूजा की जाती है। श्रावण मास शुक्ल पक्ष की पंचमी नाग पंचमी के नाम से प्रसिद्ध है। इस दिन नाग देवता की पूजा की जाती है। मिट्टी के बर्तन में दूध और खील (धान का लावा) को एक स्थान पर रख दिया जाता है। ऐसा माना जाता है कि नाग देवता सर्प के रूप में आकर इसको ग्रहण करते हैं। कहीं-कहीं सचमुच यह दृश्य देखने को मिलता है।

लोगों की यह धारणा है कि नाग के सिर में मणि होती है जिसका उल्लेख संस्कृत के एक श्लोक में पाया जाता है।[१] मार्ग में सर्प का दर्शन अपशकुन है। यह विश्वास है कि सर्प गर्भिणी स्त्री को नहीं काटता, यदि ऐसी स्त्री सर्प के सामने खड़ी हो जाय तो वह आगे नहीं बढ़ सकता। ऐसा माना जाता है कि जो व्यक्ति साँपों को मारता है उसकी आकृति सर्प की आँखों में उतर आती है और वह उसका प्रतिशोध लेता है।

सर्प बड़ा ही प्रतिशोधी जीव है अतः उसे जान से ही मार कर उसको

---

१. "मणिना भूषितः सर्पः किमसौ न भयंकरः।

समाप्त कर देना चाहिए क्योंकि वह किसी समय उसका बदला ले सकता है। सर्प से कहीं अधिक घायल सर्पिणी और भी अधिक भयंकर होती है। उसका काटा हुआ मनुष्य जीवित नहीं बच सकता। गाँवों में जब किसी व्यक्ति को साँप काट देता है तो उसे अच्छा करने के लिए झाड़ फूंक करने वाले ओझा बुलाये जाते हैं। ये पीडित व्यक्ति की पीठ पर काँसे की थाली रखकर उस पर मिट्टी फेंक कर उसे झारते हैं।

सर्पों के मंदिर—अनेक स्थानों पर सर्पों के मंदिर विराजमान है जिनमे इनकी पूजा की जाती है। उत्तर प्रदेश के गढ़वाल जिले के पाण्डुकेश्वर नामक स्थान में और रतगाँव के भेकलनाग की पूजा की जाती है। कैलानाग हिमालय के लोक देवताओं में सबसे प्रसिद्ध माना जाता है। लोगों का ऐसा विश्वास है कि इसकी पूजा से मौसम अच्छा होता है।

सर्प अथवा नाग जानवरों तथा जलाशयों का अधिष्ठातृ देवता माना जाता है। नेपाल के एक मन्दिर में नाग कन्या की प्रतिमा कच्छप के ऊपर स्थित अंकित है। मध्य प्रदेश के बिलासपुर नामक नगर में एक प्राचीन मंदिर है जिसमें नाग की प्रतिमा प्रतिष्ठापित है। फर्रुखाबाद जिले के संकिशा नामक प्राचीन स्थान में एक मन्दिर में नाग की पूजा का उल्लेख फाह्यान ने किया है। प्रयाग के दारागंज मुहल्ले में सर्प का एक प्रख्यात मन्दिर है जो 'नागवासुकी'' नाम से प्रसिद्ध है। वाराणसी में 'नाग कुँआ' नाम का एक तालाब है जहाँ नाग पंचमी के दिन पण्डित लोग शास्त्रार्थ किया करते है। ऐसा विश्वास है कि इसी कुएँ में आयुर्वेद के प्रवर्तक आचार्य धनवन्तरि ने अपनी समस्त औषधियाँ मृत्यु के समय फेंक दी थीं।[1]

ऐसा दृढ मूल विश्वास है कि सर्प कोषागार (खजाना) का रक्षक होता है। जब कोई धनी व्यक्ति, जिसका कोई उत्तराधिकारी नहीं होता, मर जाता है तथा उसकी भावनायें उसी धनराशि से लिपटी रहती हैं। अन्त में उसकी प्रेतात्मा सर्प के रूप में आकर उस धन की रक्षा करती है यही कारण है कि प्राचीन दुर्गों की खोदाई करने पर कोषागार वाले कक्ष की रक्षा करने वाले जीवित सर्प वहाँ उपलब्ध होते हैं।

साँपों को दो जीभ होती है। उसके संबंध में यह प्रसिद्धि है कि समुद्र-

१. सर्पों के मन्दिरों तथा इनके संबंध में विशेष वर्णन के लिए देखिये—
क्रुक—पा० रि० फो० लो० ना० इ० भाग २ पृ० १२१ १४५

मन्थन से जब अमृतभाण्ड निकला तब इन्द्र ने उस भाण्ड को कुश (एक प्रकार की घास) पर रख दिया। साँप ने उस कुश को चाट लिया। कुश के तेज अग्र भाग से कट कर उसकी जीभ दो टुकड़ों मे हो गई है। तब से वह द्विजिह्व (दो जीभ वाला) हो गया।

क्रुक ने लिखा है कि सावन के महीने में "नागिन" कहलाने वाली स्त्रियाँ दो-तीन दिनों तक भीख माँगती हैं। इन दिनों मे वे न तो किसी घर में सोती है और न नमक ही खाती है। इस भिक्षा की आधी राशि को ब्राह्मणों में वितरित कर देती हैं और आधी में नमक और मिष्ठान्न मिलाकर गाँव वालो को बाँट देती हैं।[1] सर्प दंश से मुक्ति के लिए अनेक तंत्र-मन्त्र प्रसिद्ध हैं। जिसका प्रयोग ओझा लोग किया करते हैं। गाँवों में डाक्टरों के अभाव में ये ही ओझा 'विषवैद्य' का काम करते हैं।

(२) बिच्छू

सर्प के एक मात्र अपवाद को छोड़कर यह सबसे अधिक जहरीला जीव होता है। बिच्छू का डंक बड़ा ही तेज होता है और वह शीघ्र ही शरीर में व्याप्त हो जाता है। गोस्वामी तुलसीदास जी ने इस तथ्य की ओर संकेत किया है।[2] सर्प दंश की भाँति बिच्छू के काटने पर भी उसे मन्त्रों से झारते हैं। ऐसा माना जाता है कि बिच्छू के काटने पर यदि इमली का बीज रगड़ कर उस स्थान पर लेप कर दिया जाय तो इसका जहर शान्त हो जाता है।

(३) छिपकली

यह एक छोटा सा जीव है जो घर की दीवालों पर प्रायः दिखाई पड़ती है। यह ग्रीष्म तथा वर्षा ऋतु में अधिक दिखलाई पडती है। शरीर पर छिपकली के गिरने पर नाना प्रकार के लोक-विश्वास जनता में प्रसिद्ध हैं। छिपकली का शरीर पर गिरना शुभ नही माना जाता। विशेषकर रविवार तथा मङ्गलवार के दिन छिपकली के शरीर पर गिरने पर नमक का दान कर देने पर उसका प्रायश्चित्त हो जाता है। इस समय स्नान करना भी आवश्यक है। छिपकली के पूँछ को काट कर ताबीज़ के रूप में धारण करने पर

---

१. ग्रियर्सन—बिहार पीजेण्ट लाइफ, पृ० ४०५

२. "नगर व्यापि गई बात सुतीछी।
मनहु चढ़ी सब जन तन बीछी॥"—रा० च० मा०

'जड़ैया' (जूड़ी बुखार) नामक रोग दूर हो जाता है। भड्डरी ने छिपकली के संबंध में जो लोक-विश्वास प्रचलित है उसका बड़ा ही सुन्दर चित्रण किया है—

"सिर पर गिरे राजसुख पावै; जो ललाट ऐश्चर्यहिं धावै।
कंठ मिलावे पिय को धाई; काँध पड़े विजय दरसाई ।।
हाथन ऊपर जोकहु गिरई; सम्पति सकल गेह में भरई।
निश्चय पैर, पीठि सुख पावै; पैर कांध प्रिय बन्धु नसावै ।।
परे जाँघ पर होय निरोगी; परब परे तन जीव वियोगी।
या विधि पल्लीमबद विचारा; कह्यौ भड्डरी जो जस सारा ।।"

भड्डरी की इस उक्ति में छिपकली के संबंध में शुभ और अशुभ दोनों शकुनों का विचार किया गया है। लोक में भी इसके संबंध में अनेक विश्वास प्रचलित हैं जिनका संक्षेप में ऊपर वर्णन किया गया है।

(५) परिच्छेद—कीट-पतंग

चींटी-चींटा

यह जीवों में सबसे छोटा जीव है यह अपनी लघुता तथा नम्रता के लिए प्रसिद्ध है। हिन्दी के किसी कवि ने इस तथ्य की ओर संकेत किया है।[1] चींटी को आटा खिलाना पुण्य का कार्य माना जाता है। अतएव कुछ भक्त लोग जन-मार्ग पर चलने वाली चींटियों को भी आटा खिलाते हुए दिखाई पड़ते हैं।

अहिंसा के परम उपासक जैनी लोग चींटी को भी मारना पाप समझते हैं। अत: जैनी साधु झाडू से रास्ता बुहार कर चलते हैं जिससे चींटी कही पैर से दब कर मर न जाय।

चींटियों के द्वारा अपने अण्डों को एक स्थान से दूसरे स्थान को ले जाना वर्षा का सूचक माना जाता है।[2] चींटी और चींटा दोनों ही गुड़ तथा चीनी के बड़े प्रेमी होते हैं। कहा जाता है कि चींटी की घ्राण शक्ति बड़ी तेज है। वह दूर स्थित मिष्ठान्न को केवल सूँघ कर वहाँ पहुँच जाती है। चींटा के संबंध में भी यही बात कही जा सकती है। इसलिए हिन्दी में यह लोकोक्ति प्रसिद्ध है कि "जहाँ गुड़ होगा वहाँ चींटा अवश्य लगेगा।"

१ "चींटी शक्कर लै गई, हाथी के सिर धूर।"
२ कल्हण—राजतरंगिणी –तरंग, ८/७२२

दीमक

इसे संस्कृत में 'वल्मीक' कहते हैं। ऐसी प्रसिद्धि है कि वाल्मीकि ऋषि जब कठोर तपस्या कर रहे थे तो उनके समस्त शरीर में दीमक (वल्मीक) लग गया था। अतः वल्मीक से पैदा होने के कारण इनका नाम वाल्मीकि पड़ गया। इसी प्रकार से च्यवन ऋषि के शरीर में अनवरत तपस्या के कारण दीमक लग जाने के कारण सुकन्या ने उनके शरीर को वल्मीक का ढेर समझ लिया था जिसका दुःखद परिणाम उसे भुगतना पड़ा।

गाँवों में जब किसी व्यक्ति को साँप काट लेता है तब ओझा लोग पीड़ित व्यक्ति की पीठ पर काँसे की प्याली रख कर दीमक के द्वारा "भुरकाई" गई मिट्टी को लेकर मंत्र पढ़कर थाली पर फेंकते है। यदि थाली उस व्यक्ति की पीठ पर चिपक (सट) जाती है तब वह व्यक्ति सर्प का काटा गया माना जाता है।

काठ में दीमक अधिक लगने की संभावना होती है। दीमक जिस वस्तु में लग जाती है उसे सारहीन बना देता है। पुस्तकों को भी दीमक चाट जाते हैं। अतः अनेक नवीन उपायों से इनसे पुस्तकों की रक्षा की जाती है।

ततैया

ततैया दो प्रकार का होता है जिसे भोजपुरी में 'हाडा' तथा 'बिरनी' के नाम से पुकारते हैं। हाड़ा आकृति में लाल तथा 'बिरनी' पीली होती है। हाडा की अपेक्षा बिरनी का दंश अधिक कष्टदायी होता है। लोगों का ऐसा विश्वास है कि यदि इन दोनों में से कोई भी 'काट' दे अथवा दंश कर दे तो उस स्थान को लोहे की बनी चाभी से धीरे-धीरे रगड देने से वह दंश शान्त हो जाता है तथा दंश से उत्पन्न सूजन भी नहीं होने पाती।

बिरनी, जो पीली होती है घर की दीवाल में यदि कोई छोटा सा मिट्टी का "घर", जिसे 'बाँबी' कहते हैं, बनाती है तो यह घर में किसी सन्तान के होने का सूचक है। यदि यह "घर" लम्बा बनाया गया हो तो लडकी पैदा होती है। यह विश्वास कहाँ तक सत्य है यह कहना कठिन है परन्तु ग्रामीण स्त्रियों की इसमें अखण्ड आस्था पायी जाती है।

महाकवि जायसी ने लिखा है कि ततैया (बिरनी) पद्मावती की कटि को अपना प्रतिद्वन्द्वी समझ कर समस्त मनुष्यों को काटता फिरता है।[1]

---

१. पद्मावत—पद्मावती, नखशिख खण्ड

रेशम का कीड़ा

रेशम का कीड़ा शहतूत के पेड़ों पर पाला जाता है। यह इसकी पत्तियों को खाता है और रेशम के तार को बुनता जाता है। अन्त में इसे मारकर रेशम निकाला जाता है। परन्तु कुछ धार्मिक व्यक्ति इस कीड़ों की हत्या के कारण ऐसे रेशम का प्रयोग नहीं करते। बल्कि वे उस रेशम को धारण करते है जो कीड़ा को बिना मारे ही तैयार किया जाता है और जो 'मटका' रेशम के नाम से प्रसिद्ध है।

मिर्जापुर जिले में जब रेशम का कीडा घर में लाया जाता है तब कोल और भुइया जाति के लोग गोबर से जमीन को लीपकर इसे स्थापित करते है। उनका विश्वास है कि इससे सौभाग्य की प्राप्ति होती है। उस समय घर के स्वामी को बहुत सावधान रहना पड़ता है। उसे पलँग पर नहीं सोना चाहिए, उसके लिए अपने बालों तथा नाखून को काटना निषिद्ध है। उसे सहवास, तैल मर्दन का निषेध तथा घृत मिश्रित भोज्य पदार्थों का परित्याग आवश्यक है। वह शृङ्गारमती देवी से आवश्यक रेशम उत्पन्न करने की प्रार्थना करता है। जब रेशम का कोवा (Cocoons) दिखाई पडता है तब वह गाँव की स्त्रियों को गाने को बुलाता है। बंगाल में रेशम के कीड़े के 'शेड' से स्त्रियाँ बचने का प्रयास करती हैं।[1]

मक्खी

इसकी गणना अत्यन्त लघु जीवों मे की जाती है। यह गन्दे स्थानो मे प्राय: निवास करती है। अत: घर में इन मक्खियों का होना शुभ नहीं माना जाता। मक्खी यदि किसी पेय द्रव में गिर कर मर जाती है तो उसे अखाद्य समझ कर फेंक दिया जाता है। दूध मे गिरते ही मक्खी को निकाल कर फेक देते हैं। अतएव किसी अवांच्छित व्यक्ति के विषय में कहा जाता है वह 'दूध' की मक्खी बन गया है।

परन्तु दावात में यदि मक्खी गिरकर मर जाय तो इसे शुभ मानते है। परीक्षा के लिए जाते हुए लड़कों की दावात में यदि मक्खी गिर गई अथवा मर गई तो यह उनकी सफलता की सूचना देती है। भोजन करने के प्रारम्भ मे ही मक्खी का उसमें गिरना अशुभ का सूचक है। इस संबंध में संस्कृत मे

१. क्रूक—पा० रि० फो० लो० ना० इ०, भाग २, पृ० २५७

एक लोकोक्ति प्रचलित है—"प्रथमग्रासे मक्षिकापातः" जिसका अर्थ है भोजन के प्रथम कवल में ही मक्खी का गिर जाना। इसका भाव है कि किसी कार्य के प्रारम्भ में ही विघ्न-बाधा का उपस्थित हो जाना। भोजपुरी में स्वल्प मात्रा में किसी वस्तु की उपमा "माँछी की मूड़ी" अर्थात् मक्खी के सिर से दी जाती है।

मधुमक्खी

मधुमक्खी अनेक पुष्पों से रस का संकलन कर उसे एक स्थान पर एकत्रित करती है जिसे मधुमक्खी का 'छाता' कहा जाता है। इसे अंग्रेजी में 'बी-हाइव' कहते हैं। इन मधुमक्खियों में एक प्रधान मक्खी होती है जिसे 'राजा' कहते हैं। मधुमक्खी के "छाता" का घर में लगाना शुभ माना जाता है।

लघुजीव

(१) चूहा

यह जानवरों में संभवतः गिलहरी को छोड़कर सबसे छोटा जानवर है। यह बुद्धि के देवता गणेश जी का वाहन माना जाता है। अतः गणेश के प्रत्येक मंदिर में गणेश की प्रतिमा के पास यह वाहन के रूप में विराजमान दिखाई पड़ता है। मध्यप्रदेश के उज्जैन नगर में गणेश की सबसे बड़ी मूर्ति उपलब्ध होती है जिसमें उनका वाहन भैंस के बच्चे के आकार में निर्मित है। काशी में भी बड़े गणेश का मंदिर लोहटिया मुहल्ले में विराजमान है जहाँ गणेश चतुर्थी के दिन बहुत बड़ा मेला लगता है। चूँकि चूहा गणेश जी का वाहन है। अतः चूहे को फँसाने या पकड़ने वाली "चूहेदानी" इस मंदिर के आस-पास नहीं बिकती। लोगों का ऐसा विश्वास है कि इन चूहों को किसी प्रकार से कष्ट नहीं देना चाहिए।

राजस्थान में "चूहों का मंदिर" प्रसिद्ध है जहाँ हजारों की संख्या में चूहे निवास करते हैं परन्तु वे किसी प्रकार का नुकसान नहीं करते। शंकर दिग्विजय मे मृग, हाथी, व्याघ्र, सिंह और चूहों का अपना शाश्वतिक विरोध छोड़कर निवास करना शुभ माना गया है।[1] क्रुक ने अपनी पुस्तक में चूहों के संबंध मे अनेक देशी तथा विदेशी लोक-विश्वासों का वर्णन किया है।[2]

---

१. शर्मा—संस्कृत काव्य में शकुन, पृ० १५२

२. क्रुक—पा० रि० फो० लो० ना० इ०. भाग २. पृ० २४१

(२) छछुन्दर

यह बड़ा ही गन्दा, गर्हित तथा घृणित जीव है। इसके शरीर में दुर्गन्ध होती है। अतः छुछुन्दर घर के जिस भाग में रहती है वह स्थान 'बसाने लगता' है अर्थात् दुर्गन्धित हो जाता है। इसीलिए समाज में किसी गन्दी, फूहड़ तथा गर्हित स्त्री की उपमा छुछुन्दर से दी जाती है।

भोजपुरी समाज में ऐसी प्रसिद्धि है कि एक बार सीता जी रावण का चित्र बना रही थीं। उसी समय राम की बहिन शान्ता ने अपने भाई से यह शिकायत की कि सीता मेरे भाई के शत्रु का चित्र बना रही थी। इस पर सीता ने क्रोधित अपनी ननद शान्ता को यह शाप दिया कि चुगली लगाने के कारण तुम अगले जन्म में छुछुन्दर बन जाओ। अतः आज भी चुगली अथवा 'लाई' लगाने वाली स्त्रियों को 'छुछुन्दर' की उपाधि से विभूषित किया जाता है। इस संबंध में लोकगीत भी प्रचलित हैं।

किसी अयोग्य व्यक्ति को यदि कोई बहुमूल्य पदार्थ प्राप्त हो जाय अथवा वह उसकी स्पृहा करे तब यह कहावत कही जाती है कि "छुछुन्दर के सिर पर चमेली के तेल" अर्थात् अनुचित तथा अयोग्य व्यक्ति को योग्य वस्तु की प्राप्ति।[1]

(३) गिलहरी

लोक-भाषा मे इस जानवर को 'रूखी' कहा जाता है। संभवतः यह सदा रूख अर्थात् वृक्ष पर चढता-उतरता रहता है इसलिए इसका नाम 'रूखी' पड गया हो। गिलहरी की पीठ पर तीन रेखाये होती है। इसके संबंध में लोगो मे यह धारणा प्रचलित है कि भगवान् रामचन्द्र जब लका जाने के लिए समुद्र मे पुल बाँध रहे थे उस समय गिलहरी ने अपनी शक्ति के अनुसार उनकी बडी सहायता की थी। वह बालू में "लोट" जाती थी और अपने शरीर मे लगे बालू के कणों को समुद्र में झाड़ देती थी। इस प्रकार उसने राम की बडी सेवा की। भगवान् ने प्रसन्न होकर अपने हाथों से उसकी पीठ को थपथपाया। उनकी अँगुलयों के ही ये निशान उसकी पीठ पर आज तक विद्यमान हैं।

गिलहरी को मारना पाप समझा जाता है। यह निरपराध जीव है। यह किसी को कोई नुकसान नहीं पहुँचाता है।

—०—

१. लोकोक्ति—लेखक का निजी संग्रह

पंचम अध्याय

शरीर के विभिन्न अंगों के सम्बन्ध में लोक-विश्वास

शरीर के विभिन्न अंगों के विषय में भी अनेक लोक-विश्वास प्रचलित है। सिर से लेकर पैर तक जितने अंग है उनमें से प्रत्येक के सम्बन्ध में कोई-न-कोई मान्यता उपलब्ध होती है। इन अंगों में भी आँख, हाथ, जंघा और बालों के विषय में विशेष शकुन प्रसिद्ध हैं। यहाँ पर सिर के बालों से लेकर पैर के अँगूठे तक के सम्बन्ध में प्रधान-प्रधान लोक-विश्वासों का वर्णन संक्षेप में उपस्थित किया जाता है। इसके साथ ही अन्य देशों में प्रचलित तत्सम्बन्धी विश्वासों का भी तुलनात्मक पद्धति से परिचय दिया जाता है। विदेशी विश्वासों का वर्णन करने का तात्पर्य केवल इतना ही है कि भारत में जो विश्वास प्रचलित हैं वही समान भाव-धारा अन्य देशों में भी प्रवाहित होती है।

शरीर के इन अवयवों के नाम निम्नांकित हैं। (१) बाल, (२) ललाट, (३) कान (४) भौं (५) नाक (६) आँख (७) गर्दन (८) छाती (९) बाँह (१०) जंघा (११) पैर (१२) अँगुलियाँ आदि।

(१) परिच्छेद

केश

शरीर के विभिन्न अंगों में केश का स्थान सर्वोपरि है। केशों के काटने अथवा न काटने के सम्बन्ध में अनेक लोक-विश्वास प्रचलित हैं।

केश अत्यन्त पवित्र माना जाता है। स्त्रियाँ प्राय: यह मनौती मानती हैं कि उन्हें पुत्र-रत्न की प्राप्ति होने पर उसका मुण्डन संस्कार अमुक देवी-देवता के स्थान पर किया जायेगा। उत्तर प्रदेश के पूर्वी भाग में मिर्जापुर जिले में

स्थित विन्ध्यवासिनी देवी के मंदिर में बालकों का प्रथम मुण्डन कराने की मनौती प्रायः मानी जाती है। आश्विन मास के शुक्ल पक्ष में इस मंदिर में सैकड़ों बालकों का मुण्डन होते देखा जा सकता है। यह मुण्डन संस्कार पुत्र-जन्म के प्रथम, तृतीय, पंचम अथवा सप्तम अर्थात् विषम वर्षों में किया जाता है।

बाल पवित्र माना जाता है। अतः इन्हें काटकर किसी नदी या तालाब में प्रवाहित कर दिया जाता है। जहाँ इनका अभाव होता है वहाँ किसी वृक्ष के नीचे इन्हें गाड़ देते हैं। तीर्थस्थानों में मुण्डन कराने की प्रथा विद्यमान है। काशी में गंगा के तट पर, गंगासागर में समुद्र के किनारे और दक्षिण भारत में तिरुपति के सुप्रसिद्ध मंदिर के पास मुण्डन कराने की प्रथा विद्यमान है। ऐसे तो यात्रियों को किसी भी तीर्थस्थान में मुण्डन कराना पुण्य का कार्य समझा जाता है परन्तु तीर्थराज प्रयाग में मकर-संक्रांति के अवसर पर बालों का कटवाना आवश्यक माना जाता है। त्रिवेणी के तट पर स्थित 'नाई-बाड़ा' में सैकड़ों व्यक्तियों को एक साथ मुण्डन कराते हुए देखा जा सकता है।

यज्ञोपवीत के अवसर पर ब्रह्मचारी के बालों का मुण्डन एक अनिवार्य कर्म है। संन्यासी लोग संन्यास धर्म की दीक्षा लेने के पहिले अपने बालों को मुड़वा देते हैं। यदि कोई व्यक्ति परलोक को प्राप्त हो जाता है तो उसके दाह कर्म के पहिले 'दाही' का मुण्डन किया जाता है। मृतात्मा के श्राद्ध के दसवें दिन जिसे 'दशाह' कहते है—दाही के साथ ही परिवार के सभी निकट संबंधियों का मुण्डन कराना आवश्यक विधान है। लोगों का ऐसा विश्वास है कि बालों में छूत होती है। अतः श्राद्ध के अवसर पर बालों के कटवा देने से यह अशौच नष्ट हो जाता है।

निषेध—विभिन्न अवसरों पर बालों का काटना निषिद्ध माना जाता है। यदि किसी व्यक्ति की मृत्यु हो जाय तो 'दशाह'—दस दिनों तक बालों को नहीं काटना चाहिए। यदि घर में कोई बालक पैदा हो जाय तो अशौच होने के कारण कुछ दिनों तक संभवतः छठी तक—बालों को नहीं काटना चाहिए। जिस घर में शीतला माता (चेचक) का प्रकोप होता है उस घर के लोगों को भी बाल कटवाना निषिद्ध है। आश्विन कृष्ण पक्ष, जिसे पितृपक्ष भी कहा जाता है, में पितरों को तिलाञ्जलि देने वाले व्यक्ति के लिए पन्द्रह दिनों तक क्षौर कर्म कराना अत्यन्त निषिद्ध है। पितरों को महालया के दिन

पिण्डदान करने तथा ब्राह्मण भोजन कराने के पश्चात् ही वह अपना मुण्डन करवा सकता है।

किसी कार्य की पूर्ति या सिद्धि की कामना करने वाले व्यक्ति अपने कार्य की सफलतापर्यन्त बाल न कटवाने की प्रतिज्ञा करते हैं। जब उनकी मनोकामना सिद्ध हो जाती है तभी वे मन्दिर अथवा नदी के किनारे तीर्थस्थानों पर इन बालों को मुड़वाते हैं। कुछ व्यक्ति अपने उद्देश्य की सिद्धिपर्यन्त सिर की चुटिया के बालों को न बाँधने की प्रतिज्ञा करते हैं। नन्दवंश का नाश किये बिना अपनी शिखा न बाँधने की कूटनीतिज्ञ चाणक्य की प्रतिज्ञा प्रसिद्ध ही है। इसी प्रकार से द्रौपदी ने भी दुःशासन के खून के बिना अपने केश को न बाँधने की प्रतिज्ञा की थी।

लोगों की ऐसी धारणा है कि बालों का उपयोग डायन के द्वारा मन्त्र-तन्त्र करने में किया जाता है। अतः बालों की सुरक्षा में लोग बड़ी सावधानी बरतते हैं। इसीलिए लोग कटे हुए अपने बालों को किसी नदी या तालाब में प्रवाहित कर देते हैं। आयरलैण्ड में बालों को जादू-टोने का साधन माना जाता है। अतः बालों को ऐसे स्थानों पर नहीं रखा जाता जहाँ चिड़ियाएँ उन्हें लेकर अपना घोंसला बना लें। ऐसा होने पर वह व्यक्ति वर्ष भर सिर के दर्द से पीड़ित रहता है।[1] यदि विदेशी 'मैगपाई' नामक पक्षी किसी के बालों से अपना घोंसला बनाता है तो वर्ष भर के भीतर ही उस व्यक्ति की मृत्यु निश्चित है।[2] कंघी करने पर बालों का सिर से अधिक संख्या में निकलना भावी विपत्ति का सूचक माना जाता। आकस्मिक तथा भयानक घटनाओं के द्वारा बालों के सफेद हो जाने की भी धारणा प्रचलित है। शेक्सपियर ने भी इस तथ्य की ओर संकेत किया है।[3]

कानों के पास सफेद बालों का उगना वृद्धावस्था का सूचक माना जाता है। गोस्वामी तुलसीदास जी ने दशरथ के विषय में इस घटना का उल्लेख किया है।[4] सधवा स्त्रियों के बालों का मुण्डन करना नितान्त निषिद्ध माना

१. Lady wilde—"Legends," १६७

२. डायर—इं० फो०, पृ० २७६

३. "Thy father's beard is turned white with the news."

—वही, पृ० २७७

४. "श्रवन समीप भये सित केसा।
मनहुँ जरठ कह अस उपदेसा॥"—रा० च० मा०

गया है। परन्तु विधवा स्त्रियाँ तीर्थस्थानों में अपने बालों का मुण्डन करवा सकती हैं। लोगों की यह धारणा है कि जिस व्यक्ति के सिर में बालों का अभाव होता है अर्थात् जो "खल्वाट" हैं वह भाग्यशाली तथा धनवान होता है।[१] परन्तु स्त्रियाँ कभी खल्वाट नहीं देखी जाती।

साधु तथा महात्मा लोग अपने लम्बे-लम्बे बालों को जटा-जूट के रूप में बाँध कर रखते हैं। जिस साधु की जटा जितनी बड़ी होती है वह उतना ही बड़ा महात्मा समझा जाता है। गोस्वामी जी ने इस तथ्य का उल्लेख किया है।[२] भगवान् रामचन्द्र जब जंगल को जाने लगे तब उन्होंने अपने राजसी वस्त्रों को उतार कर जटा-जूट धारण किया था। गोस्वामी जी ने लिखा है कि कलियुग में केश ही स्त्रियों का आभूषण है।[३]

(२) भँवरी

ललाट के ऊपर, सिर के अग्रभाग में भँवरी का होना भी शुभाशुभ का सूचक है। जनता का यह विश्वास है कि यदि किसी व्यक्ति के ललाट के ऊपर भँवरी हो तो यह मंगलकारी होती है। भँवरी को संस्कृत में "ऊर्णा" कहा जाता है। कादम्बरी में चन्द्रापीड के ललाट-पट्ट पर ऊर्णा का चिह्न होना उसके चक्रवर्ती राजा होने का सूचक माना गया है।[४] इसी प्रकार से नागानन्द नाटक में मस्तक के ऊपर पगड़ी जैसे चिह्न का होना, भौंहों के बीच में भँवरी का चिह्न अंकित होना विद्याधरों के चक्रवर्ती पद की प्राप्ति का सूचक है।[५]

(३) मस्तक-ललाट

सिर का बड़ा होना शुभ तथा प्रशस्त माना जाता है। यह बुद्धिमान तथा

---

१. "क्वचित् काणः भवेत् साधुः।
क्वचित् खल्वाट निर्धनः॥"

२. "जाके सिर पर जटा बिसाला।
सो तापस प्रसिद्ध कलिकाला॥"—रा० च० मा०

३. "अबला कच भूषण भूरि छुधा।"—रा० च० मा०

४. बाण-कादम्बरी— पूर्व भाग, पृ० १४५-४६

५. (राजा) हर्षवर्धन—नागानन्द, अंक १/१८

विद्वान् का लक्षण माना जाता है ।[1] इसके ठीक प्रतिकूल मस्तक या सिर का छोटा होना बुद्धि-हीनता का लक्षण है ।

इसी प्रकार ललाट का ऊँचा तथा प्रशस्त होना शुभ तथा मंगलकारी माना जाता है । श्री हर्ष ने दमयन्ती के उन्नत ललाट की उपमा अर्धचन्द्र से दी जिसमें उसकी विशालता का कुछ अनुमान किया जा सकता है ।[2] आधुनिक मनोवैज्ञानिकों के अनुसार भी ललाट का उन्नत होना बुद्धिमत्ता तथा उसका नीचा या गहरा होना मूर्खता का लक्षण है । कुछ लोगों के ललाट में तीन उर्ध्व रेखाएँ होती हैं जो मंगलकारी मानी जाती हैं ।

(४) भौंह

लोक-साहित्य में भौंह की उपमा कमान से दी गई है । अतः भौंहों का टेढ़ा होना सुन्दर माना जाता है । बिहारी ने वक्र वस्तुओं की सुन्दरता का वर्णन करते हुए भौंह की भी उसमें गणना की है ।[3] भौंहों का घना होना शुभ माना गया है । लोगों का विश्वास है कि जिस स्त्री के भौंह घने होते हैं उसके पति की आयु कम होती है । भौंहो का घने बालों से युक्त होना शुभ माना जाता है ।[4] सामुद्रिक-शास्त्र के अनुसार जिस स्त्री के भौंह के बाल घने होते हैं और दोनों भौंहें आपस में सटी होती हैं उसका "स्मर-मन्दिर" अत्यन्त कोमल होता है ।[5]

'भ्रू-भंग' क्रोध का कारण माना जाता है । भृकुटी का टेढ़ा होना भी इसी बात का द्योतक है । रामायण में सीता जी की भौहों का परस्पर आश्लिष्ट होना शुभ सूचक है ।[6]

(५) आँख

शरीर के अंगों में जितना अधिक लोक-विश्वास आँखों के विषय में

---

१. "सिर बड़ा सरदार का,
पैर बड़ा गँवार का ।"

२. श्री हर्ष—नैषधीय चरित

३. "गृह रचना, वरुनी, अलक; चितवनि भौंह कमान ।
आधु निकाई ही लसैं, तरुनि, तरंगम, तान ।।"—बिहारी

४. अश्वघोष—बुद्धचरित, १/६०

५. 'नवनीतोपमं तस्याः भवति स्मरमंदिरम् ।"

६. बा० रा० (यु० का०), सर्ग ४८

प्रचलित है उतना संभवतः अन्य अंगों के विषय में नहीं पाया जाता। लोगों में ऐसी मान्यता है कि पुरुष की दाहिनी तथा स्त्री की बायीं आँख का फड़कना शुभ है। परन्तु इसके विपरीत आँखों का स्फुरण अशुभ है। गाँवों में जब किसी स्त्री की बायीं आँख फड़कने लगती है तब उसके प्रियतम के आगमन का सूचक माना जाता है। लोक-गीतों में शुभ तथा मंगल के रूप में बायीं आँख के फड़कने का अनेक बार उल्लेख हुआ है।

गोस्वामी तुलसीदास जी ने इस लोक-विश्वास का अनेकशः उल्लेख किया है। मंथरा द्वारा उकसाये जाने पर कैकेयी के दाहिने नेत्र के स्फुरण से भावी विपत्ति का आभास होने लगता है।[1] अशोक वाटिका में बैठी सीता का बायाँ नेत्र फड़कने लगता है अतः निराशहृदया सीता के हृदय में राम के मिलन की आशा का संचार होता है।[2] रामचन्द्र जी रावण का बध करके सीता और लक्ष्मण के साथ अयोध्या लौट रहे हैं। भरत के नेत्र और दाहिनी भुजा का स्फुरण प्रिय की प्राप्ति की सूचना देता है।[3] संस्कृत की कथाओं तथा लोक-कहानियों में भी पुरुष की दाहिनी आँख का फड़कना शुभ का सूचक माना गया है।[4]

संस्कृत साहित्य में आँखों के फड़कने के विषय में अनेक लोक-विश्वास प्रचलित हैं जिनमें से कुछ का उल्लेख यहाँ किया जाता है। मायावी कंचन मृग को मार कर लौटते हुए राम के बायें नेत्र का फड़कना सीता की अप्राप्ति

---

१ "सुन मंथरा बात फुर तोरी।
दाहिनि आँख नित फरकत मोरी॥"—रा० च० मा० (अ० का०)

२ "जब उर भयेउ विरह उर दाहू।
फरकेउ बाम नयन अरु बाहू॥
सगुन विचार धरी मन धीरा।
अब मिलिहहिं कृपाल रघुबीरा॥"

—रा० च० मा० (लं० का०), १००/२

३. "भरत नयन, भुज दच्छिन, फरकत बारहिं बार।
जानि सगुन मन हरष अति, लागे करन विचार॥"

—रा० च० मा० (अ० का०)

४. टानी—ओ० स्टो० भाग १, पृ० १२८

का अशुभ-सूचक है।[1] चारुदत्त नाटक में विदूषक की बायीं आँख का फड़कना चोरी की सूचना देने के रूप में अमंगलकारी है।[2] मृच्छकटिक नाटक में वसन्तसेना के दाहिने नेत्र का स्फुरण भावी विपत्ति का सूचक है।[3]

अभिज्ञानशाकुन्तल नाटक में कण्व के आश्रम में प्रवेश करते समय दुष्यन्त की दाहिनी भुजा तथा आँख का फड़कना शकुन्तला की प्राप्ति की सूचना देता है।[4] राजा दुष्यन्त के दरबार में पहुँच जाने पर शकुन्तला के दाहिने नेत्र का फड़कना पति द्वारा परित्याग का अशुभ सूचक है।[5] परन्तु राजा दुष्यन्त की दाहिनी भुजा का स्फुरण सुन्दर स्त्री की प्राप्ति की सूचना देता है।[6]

लक्ष्मण के द्वारा सीता का वन-भ्रमण के लिए ले जाते समय सीता जी के दाहिने नेत्र का स्फुरण अशुभ है।[7] मालविकाग्निमित्र नाटक मे मालविका के बायें नेत्र का फड़कना प्रिय-दर्शन का सूचक है।[8] मुद्राराक्षस नाटक में अमात्य राक्षस की बायीं आँख का फड़कना अशुभ माना गया है।[9] जीमूतकेतु के लिए बायें नेत्र का स्फुरण अमंगलकारी है।[10] हर्षचरित में महाराज

---

१. वा० रा० (अरण्य का०), ५७/२४

२. भास—चारुदत्त, अंक ३, पृ० ३८

३. शूद्रक—मृच्छकटिक, अं० ६

४. "शान्तमिदमाश्रम पदं, स्फुरति च बाहुः कुतो फलमिहास्य।
अथवा भवितव्यानां; द्वाराणि भवन्ति सर्वत्र ॥"
—अ० शा०, अंक १/१६

५. "अहो में वामेतरं नयनं स्फुरति।"—वही, अंक ५, पृ० १६१

६. वही, अंक ७/१३

७. "जुगूह तस्याः पथि लक्ष्मणो यत्, सत्येतरेण स्फुरता तदक्ष्णा।
आख्यातमस्यै गुरु भावि दुःखंअत्यन्त लुप्त प्रिय दर्शनेन ॥"
—कालिदास—रघुवंश, १४/४६

८. मालविकाग्निमित्र—अंक २/४

९. विशाखदत्त—मुद्राराक्षस, अंक ४

१० हर्ष—नागानन्द अंक १

हर्षवर्धन के बायीं आँख का फड़कना पिता की मृत्यु की सूचना देता है।[१] कादम्बरी में मन्त्री शुकनाश के साथ गर्भवती रानी विलासवती के भवन मे राजा तारापीड का दाहिने नेत्र का स्फुरण पुत्र-रत्न की प्राप्ति का सूचक है।[२] विद्धशालभंजिका नाटिका में प्रधानमन्त्री भागुरायण के दाहिने नेत्र का स्फुरण शुभ तथा नवसाहसांकचरित महाकाव्य में नागराज कन्या शशिप्रभा के वामनेत्र का स्फुरण पति प्राप्ति का सूचक माना गया है।[३]

इसी प्रकार से वाम तथा दक्षिण नेत्रों के स्फुरण के संबंध में सैकड़ों लोक-विश्वास संस्कृत साहित्य में भरे पड़े हैं।

जिस व्यक्ति की आँखें मृग अथवा मीन के समान होती हैं उसे मृगनैनी तथा मीनाक्षी कहा जाता है जो अत्यन्त शुभ है। दक्षिण भारत के मदुरा नगर मे मीनाक्षी देवी का मन्दिर प्रसिद्ध है जो अपनी कला तथा सुन्दरता में विश्व मे अद्वितीय माना जाता है। खंजन भी सुन्दर नेत्रों के उपमान माने जाते हैं। अत. मृग, मीन तथा खंजन के सदृश नेत्र शुभ हैं।

जिस व्यक्ति की एक आँख नहीं होती उसे काना अथवा एकाक्ष कहा जाता है। प्रातःकाल में अथवा किसी यात्रा के लिए प्रस्थान करते समय एकाक्ष का दर्शन अशुभ है। जो दोनों आँखों से रहित है उसका दर्शन तो अमङ्गलकारी है ही। जो व्यक्ति कुछ तिरछा देखता है उसे "ऐंचा-ताना" कहते हैं। ऐसे व्यक्ति कभी सज्जन नहीं होते। इनकी दुर्जनता के विषय में यह लोकोक्ति प्रसिद्ध ही है कि—

"सौ में अन्धा, हजार में काना।
सवा लाख में ऐंचा-ताना।
ऐंचा-ताना कहे पुकार।
कञ्जा से रहिहऽ होसियार॥"

कहने का आशय यह है कि जो व्यक्ति नेत्र विकार से युक्त हैं वे कभी सज्जन तथा सीधे नहीं हो सकते हैं। लोक में यह बात प्रत्यक्ष रूप से देखी जा सकती है।

---

१. बाण—हर्ष चरित, उच्छ्वास ५

२ बाण—कादम्बरी, पूर्व भाग

३ परिमल गुप्त—न० सा० च०, ६/६७.

(६) कान

कानों का लम्बा होना अच्छा माना जाता है। महायान बौद्ध धर्म मे तथागत के कानों के लम्बे होने का वर्णन पाया जाता है। इसीलिए बौद्ध मूर्ति-कला में बुद्ध के लम्बे कानों का चित्रण किया गया है। जो व्यक्ति किसी की बात को बिना जाँचे-बूझे ही विश्वास कर लेता है वह 'कान का कच्चा' कहा जाता है। बायें कान का फड़कना अशुभ तथा दाहिने का शुभ माना जाता है।

विदेशी लोक-विश्वास के अनुसार दाहिने कान का फड़कना किसी मित्र से वार्ता की सूचना देता है। परन्तु यदि बायाँ कान फड़कता है तो शत्रु से बात होती है। शेक्सपियर ने भी अपने एक नाटक में इस विश्वास की ओर संकेत किया है।[१] फ्रान्स में यह मान्यता ठीक विपरीत रूप मे प्रचलित है। वहाँ बायें कान का फड़कना शुभ और दाहिना अशुभ है।[२] ब्रिटेन में दाहिने कान का फड़कना किसी के द्वारा शुभ और बायें कान का फड़कना अशुभ माना जाता है।

(७) मुख

मुख का प्रसन्न होना शुभ तथा अप्रसन्न या उदासीन होना अशुभ माना गया है। लोकगीतों में इसका अनेक बार उल्लेख पाया जाता है। विवाह करके लौट कर घर आने पर अप्रसन्न मुख वाले बालक को देखकर उसकी माता कहती है कि मेरा पुत्र प्रसन्न चित्त से विवाह करने के लिए गया था वह "मन बेदिल" (उदासीन) होकर क्यों लौटा है।[३] भोजपुरी में एक कहावत प्रसिद्ध है जिसका भाव यह है कि माता बालक के मुख, उसकी प्रसन्नता, को सदा देखती रहती है परन्तु स्त्री मोटरी अर्थात् धन की चिन्ता करती रहती है।[४]

राम द्वारा सुग्रीव को लंका पर चढ़ाई करते समय वानर सेना का प्रसन्न

---

१. "Much Ado About Nothing."

२. डायर—इं० फो०, पृ० २७६

३. "हँसत खेलत मोर बाबू गइले।
मन बेदिल काहे अइले।।"—डॉ० उपाध्याय—भो० लो० गी०, भा० १

४. "मइया निहारे मुँहरी।
धोइया निहारे मोटरी ।"

मुख होना शुभ-सूचक है ।[१] चम्पू रामायण में वीरों का युद्ध के लिए प्रस्थान करते समय उनकी स्त्रियों के मुख का मलिन होना अशुभ माना गया है ।[२] इसी प्रकार से मुख का प्रसन्न होना मंगल तथा अप्रसन्नता अमंगल की सूचना देता है ।

(८) नाक

नाक का सुन्दर तथा सुडौल होना अच्छा माना जाता है । ग्रामीण स्त्रियाँ अपने बच्चों के नोकीले (चोख) नाक की प्रशंसा करती हैं । इसीलिए नाक की उपमा सुग्गे की नासिका से की जाती है । महाकवि जायसी ने लिखा पदमावती की नाक इतनी सुडौल तथा नोकीली थी कि शुक भी उसे देख कर लज्जित हो गया ।[३] नाक शरीर का सबसे अधिक प्रधान अंग है । अतः "नाक का कट जाना" एक मुहावरे के रूप में प्रयुक्त होता है जिसका अर्थ है बेइज्जत हो जाना अथवा कलंक को प्राप्त करना । ऐसा विश्वास है कि जो दीपक के बुझा दिये जाने पर अपनी नाक से उसकी गंध को नहीं सूँघ सकता, अर्थात् जिसकी घ्राण शक्ति कम हो गई है उसकी मृत्यु आसन्न होती है ।[४] राजा कलश की नाक से यज्ञ-पात्र में रक्त का गिरना अशुभ सूचक माना गया है ।[५]

(९) छाती (वक्षस्थल)

छाती का चौड़ा तथा विशाल होना अच्छा माना जाता है । कालिदास ने रघुवंशी राजाओं का वर्णन करते हुए लिखा है कि उनकी छाती प्रशस्त तथा चौडी थी, उनका कन्धा बैल के समान मजबूत था और हाथ बहुत ही लम्बे थे ।[६] लोगों का ऐसा विश्वास है कि जिसकी छाती में बाल नहीं होते उसका

---

१. वा० रा० (यु० का०), ४/५५

२. चम्पू रामायण—यु० का०

३. "नासिक देखि लजानेउ सुआ ।
सूक आइ बेसरि होइ उवा ।।"—पद्मावत—नखशिख खण्ड

४. "दीप निर्वाण गन्धं च, सुहृदवाक्यमरुन्धतीम् ।
न जिघ्रन्ति, न शृण्वन्ति, न पश्यन्ति गतायुषः ।।"—सुभाषित

५. कल्हण—रा० त० तरंग, ७/७००

६. "व्यूढोरस्कः वृषस्कन्धः शालप्रांशुः महाभुजः ।"
— रघुवंश. सर्ग १. श्लोक—१३

विश्वास नहीं किया जा सकता।[१] कुछ लोगों की छाती में बिल्कुल बाल नहीं होते हैं। अतः ऐसे व्यक्ति का विश्वास नहीं करना चाहिए। इसके ठीक विपरीत बाल से युक्त व्यक्ति सज्जन तथा विश्वसनीय होते हैं। कौमुदी महोत्सव नाटक में कुमार के वक्षस्थल का श्रीवृक्ष से चिह्नित होना शुभ माना गया है।[२] वैष्णव लोग अपने वक्षस्थल में चन्दन का टीका लगाते हैं और शैव लोग इसे भस्म से विभूषित करते हैं। रामानुज के मतानुयायी अपने बाहों तथा वक्षस्थल पर तप्त मुद्रा धारण करते हैं जो उनका साम्प्रदायिक चिह्न है।

(१०) बाँह

बाँह को भुजा भी कहते हैं। इसके फड़कने अथवा स्फुरण के संबंध में अनेक लोक-विश्वास प्रचलित हैं। लोगों का ऐसा विश्वास है कि स्त्रियों की बायीं भुजा और पुरुष की दाहिनी भुजा का फड़कना शुभ है। इसके विपरीत बाहों का स्फुरण अशुभ माना जाता है। लोकगीतों में इस विश्वास का अनेकशः उल्लेख मिलता है।[३] महाकवि बिहारी ने इस विश्वास की ओर संकेत किया है। बिहारी की विरहिणी कहती है कि यदि मेरी बायीं बाँह के फड़कने से, जो शुभ मानी जाती है, मेरा प्रियतम घर आ जाता है तो मैं अपनी दाहिनी भुजा को दूर रख कर बांयी से ही उससे मिलूँगी।[४] हिन्दी के अन्य कवियों ने भी इसी प्रकार के भावों की अभिव्यञ्जना की है।[५]

संस्कृत साहित्य में भी इस लोक-विश्वास का प्रचुर परिमाण में उदाहरण उपलब्ध होता है। राम के साथ युद्ध करने के लिए प्रस्थान करने वाले राक्षस खर की बायीं भुजा का फड़कना अशुभ सूचक माना गया है।[६] कांचन मृग को

---

१. "जेकरा छाती में बार ना।
   ओकर एतबार ना॥"—लोकोक्ति

२. विज्जिका—कौ० म०, अंक १/६

३. डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय—भो० लो० गी०, भा० १

४. "बाम बाहु फरकत मिले, जो हरि जीवन मूरि।
   तो तोहीं सो भेटिहौं, राखि दाहिनी दूरि॥"—वि० स०

५. सूरदास—सूर सागर,

६ वा० रा० अ० का०) २३ १७

(११) हाथ

सामुद्रिक-शास्त्र में हाथ और पैरों के लक्षण के विषय में अनेक बातें उपलब्ध होती हैं। हाथ की रेखाओं से मनुष्य की आयु, विद्या, धन, सन्तान और वैभव का पता लगता है। परन्तु इस शास्त्र की चर्चा यहाँ अनावश्यक है।

हाथों का कमल के समान लाल होना शुभ माना जाता है। हाथों में तिल का होना धन की प्राप्ति का सूचक है। हाथ-पैर की रेखाओं का जालों से युक्त होना शुभ माना गया है। नल के हाथ का कमल की रेखा से चिह्नित होना शुभ-सूचक है।[१] पैरों तथा हाथों में कमल, ध्वज, चक्र और शंख का होना साम्राज्य-प्राप्ति की सूचना देता है।

(१२) जंघा

जंघा के सम्बन्ध में भी लोक-विश्वास प्रचलित है। अशोकवाटिका में स्थित सीता के बायें नेत्र, बायीं जंघा के धड़कन का शीघ्र ही राम की प्राप्ति का सूचक माना गया है।[२] रामायण मंजरी महाकाव्य मे त्रिजटा ने अशोकवाटिका में स्थित सीता के अनुकूल बायें जंघा का फड़कना शुभ सूचक के रूप में माना है।[३]

(१३) पैर

पैरों का बड़ा होना अच्छा नहीं माना जाता। यह कहावत प्रसिद्ध है कि बुद्धिमान का माथा बड़ा होता है परन्तु गँवार तथा मूर्ख मनुष्य का पैर ही बडा होता है।

> "सर बड़ा सरदार का,
> पैर बड़ा गँवार का।"

---

१. श्रीहर्ष—नैषधीय चरित, सर्ग १/६५

२. वा० रा० (सु० का०), सर्ग २७/४६-५०

३. नेत्रोरुबाहु स्पन्दश्च, दक्षिणस्या विलक्ष्यते।
शुभं शाखाश्रयो नित्यं, सीता वदति वायसः॥
—क्षेमेन्द्र—रा० मं० (सु० का०)

पैरों में चक्र-चिह्न का होना शुभ माना जाता है। बुद्ध चरित में बुद्ध के पैरों में चक्र का चिह्न होना उनके महान् होने का सूचक है।[१] नैषधीय चरित में राजा नल के चरणचिह्न का होना शुभ माना गया है।[२] जिसके पैर लाल होते हैं और उसमें कमल का चिह्न बना होता है वह चक्रवर्ती राजा होता है। यदि चलते समय पैर से चट-चट की आवाज होती हो तो अपशकुन समझा जाता है। पैरों का चपटा होना बुरा है। भूत-प्रेतों के पैरों का अग्र भाग पीछे की ओर मुड़ा होता है।

(१४) चरण-चक्र

पैरों में चक्र अथवा ऊर्ध्वरेखा का होना भी शुभाशुभ की सूचना देता है। लोगों का ऐसा विश्वास है कि जिसके पैर में चक्र का चिह्न बना रहता है वह अत्यन्त संक्रमणशील होता है। अर्थात् वह यायावरी वृत्ति को धारण कर सदा घूमता रहता है। इसीलिए गाँवों में जो व्यक्ति सदा चलता या घूमता रहता है उसके विषय में यह कहा जाता है कि इसके पैर में चक्कर (चक्र का चिह्न) है। इस प्रकार पैर में चक्र-चिह्न का होना प्रायः शुभ माना जाता है।

महाकवि श्री हर्ष ने लिखा है कि राजा नल के चरण का ऊर्ध्व रेखा से अंकित होना सर्वोत्कृष्टता का सूचक है।[३] विजयानन्द रंग के पैरों तथा हाथों में चक्र का चिह्न होना साम्राज्य प्राप्ति की सूचना देता है।[४] सामुद्रिक-शास्त्रज्ञाताओं ने भी हाथ तथा पैर में चक्र-चिह्न का होना शुभ माना है।

(१५) अँगुलियाँ

लम्बी और पतली अँगुलियाँ सुन्दर मानी जाती हैं। किसी-किसी व्यक्ति के पैरों अथवा हाथों में छः-छः अँगुलियाँ होती हैं जो मंगल की सूचना देती हैं। इस प्रकार अँगुलियों का पाँच से कम होना अशुभ और अधिक होना शुभ का लक्षण है। रामायण में सीता के अँगुलियों का, स्निग्ध तथा सम होना

---

१. अश्वघोष—बुद्धचरित, सर्ग १/६०
२. नैषधीय चरित—१/१८
३. "अधो विधानात् कमल प्रवालयोः,
शिरस्सु दानादखिल क्षमाभुजाम्।
पुरेदमूर्ध्वं भवतीति वेधसा;
पदं कियस्यां कितमूर्ध्व रेखया॥—नैषधीय चरित, १/१८
४ आनन्दरंग विजय चम्पू स्तवक ३/१५

शुभ सूचक के रूप में उल्लेख किया गया है।[1] बुद्धचरित में अँगुलियों तथा हाथ-पैर की रेखाओं का जालों से युक्त होना मंगलकारी है।[2] हाथ अथवा पैर की अँगुलियों में चक्र-चिह्नों का होना अत्यन्त शुभकारी है। यदि पैर की अँगुलियों में चक्र हो तो वह व्यक्ति भ्रमणशील होता है।

(१६) पाद-तल

पैरों के तलवों में यदि अंकुश एवं केतु के चिह्न अंकित हों तो यह शुभ माना जाता है।[3] यदि पैरों का तलवा कमल के समान लाल हो तो वह शुभ-कारी है। पैर की अँगुलियों का छितनार (फैली हुई) होना अच्छा तथा सुन्दर नहीं माना जाता है।

(१७) चक्रवर्ती राजाओं के लक्षण

महाकवि बाणभट्ट ने कादम्बरी में राजा तारापीड के सुपुत्र चन्द्रपीड के भावी चक्रवर्ती-पद के सूचक निम्नांकित वस्तुओं का उल्लेख किया है।[4]—

(१) ललाट पट्ट पर ऊर्णा का चिह्न होना।
(२) वक्र पलकों से युक्त श्वेत नेत्र।
(३) लाल हथेली।
(४) शंख और चक्र से युक्त हाथ।
(५) ध्वज, रथ, तुरंग, छत्र के चिह्नों तथा कमल की रेखाओं से युक्त चरण।
(६) अत्यन्त गम्भीर स्वर आदि।

इसी प्रकार से तिरुवेंकट के पुत्र विजयानन्द रंग के पैरों में तथा हाथों में कमल, ध्वज, छत्र, चक्र, शंख एवं कलश आदि का चिह्न होना उसके सम्राट् होने के शुभ लक्षण हैं।[5] महाकवि वाल्मीकि ने रामचन्द्र की शरीर-यष्टि तथा शारीरिक सौन्दर्य का जो वर्णन रामायण के प्रारम्भ में किया है वह

१. वा० रा० (यु० का०), सर्ग ४८
२. अश्वघोष—बुद्धचरित, सर्ग १/६०
३. विजया—कौमुदी महोत्सव, अंक १/६
४. बाण—कादम्बरी पूर्व भाग पृ० १४५-४६
५. श्री निवास कवि—आनन्द रंग विजय चम्पू स्तवक ३/१५

चक्रवर्ती राजा के ही अनुरूप है।[१] इस प्रकार चक्रवर्ती सम्राट् के शारीरिक चिह्न सर्व साधारण लोगों से कुछ विशिष्ट होते हैं।

(१७) सीता के शरीर के शुभ लक्षण

आदि कवि वाल्मीकि ने रामायण में सीता के शरीर के निम्नांकित लक्षणों को मंगलकारी तथा शुभ बतलाया है।[२]

(१) चरणों में चिह्नों का होना।
(२) सम तथा नीले केशों का होना।
(३) परस्पर आश्लिष्ट भौंहों की स्थिति।
(४) गोल तथा रोमहीन जंघा।
(५) दाँतों में छेद न होना।
(६) नेत्रों का शंख के आकार का होना।
(७) हाथ, पैर, घुटनों तथा जंघाओं का सुन्दर होना।
(८) नाखूनों का गोल-गोल होना।
(९) अँगुलियों का स्निग्ध तथा सम होना।
(१०) परस्पर सटे हुए स्तनों का होना।
(११) मग्न अर्थात् निम्न नाभि।
(१२) सुन्दर कोख तथा छाती।
(१३) मणि जैसे वर्ण।
(१४) कोमल रोम-राशि।
(१५) हाथ और पैर में रेखाओं के चिह्न।
(१६) मन्द हास्य।

(२) परिच्छेद

(१) मन

मन की प्रसन्नता तथा अप्रसन्नता से भी शकुन तथा अपशकुन का ज्ञान होता है। राम के विवाह के पश्चात् जनकपुरी से अयोध्या लौटते समय

१. वा० रा० (बा० का०) सर्ग, १/१-१५ श्लोक
२ वा० रा० (यु० का०) सर्ग ४८

दशरथ के मन का विषादयुक्त होना अशुभ माना गया।[1] कांचन मृग को मारकर लौटते समय राम के चित्त का अप्रसन्न होना सीताहरण का सूचक होने से अमंगलकारी है।[2] विक्रमोर्वशीय नाटक में राजा पुरुरवा के मन में अचानक ही आनन्द का अनुभव होना उर्वशी के मिलन की सूचना देता है।[3] सीताहरण के पश्चात् राम के मन में प्रसन्नता का आगमन शीघ्र ही कार्य-सिद्धि का सूचक है।[4] ईश्वर सिंह के जन्म के अवसर पर प्रजा-जनों के मन मे हर्ष का संचार शुभ माना गया है।[5] परन्तु मन का मलिन होना अथवा चित्त का प्रसन्न न होना अमंगलकारी है।[6]

लोक में भी मन में उत्साह का अभाव किसी कार्य की सिद्धि न होने का द्योतक है। इसीलिए यात्रा के समय कार्य की निष्पत्ति के लिए हृदय में उत्साह का होना आवश्यक माना गया है। अतः अंगिरा नामक आचार्य का मत है कि यदि मन में उत्साह हो तभी यात्रा करनी चाहिए।[7] चित्त के प्रसन्न न होने पर अथवा मन मलीन होने पर कार्य की सिद्धि संदिग्ध हो जाती है।

(२) स्मृति

मनोवैज्ञानिकों का कथन है कि किसी वस्तु को स्मरण न रखना उस व्यक्ति या वस्तु के प्रति उदासीन होने का कारण होता है। परन्तु लोक-विश्वास के क्षेत्र में स्मृति का अभाव अशुभ माना जाता है। भगवान् श्रीकृष्ण

---

१. "किमिदं हृदयोत्कम्पि मनो मम विसीदति।"
—वाल्मीकि रामायण (बा० का०), ७४/१२

२. "मनश्च मे दीनमिहाप्रहृष्टं
चक्षुश्च सव्यं कुरुते विकारम्।
असंशयं लक्ष्मण ! नास्ति सीता
हृता, मृता वा पथि वर्तते वा॥"—वा० रा० (अ० का०), ५७/२४

३. कालिदास – विक्रमोर्वशीय, अंक २/६

४. अभिनन्द—रामचरित, ४/७६

५. श्रीकृष्ण भट्ट—ईश्वरविलास, ८/२

६. कवि कर्णपूरः—पारिजातहरण, १३/५५

७ "अंगिरा मनसि उत्साहः विप्रवाक्यं जनार्दनः।"

ने गीता में लिखा है कि स्मृति के नाश से बुद्धि का नाश हो जाता है और बुद्धि के नाश से मनुष्य का नाश हो जाता है ।[1]

रणभूमि के लिए प्रस्थान करते समय वीरों की स्मृति का शिथिल पड़ जाना अशुभ माना गया है ।[2] भोजपुरी प्रदेश में किसी व्यक्ति के साठ वर्ष की अवस्था प्राप्त कर लेने पर उसके लिए अपमानसूचक शब्दों में यह कहा जाता है कि "इसकी बुद्धि सठिया गई है" जिसका भाव यह है कि इसकी बुद्धि भ्रष्ट हो गई है क्योंकि इसे किसी भी व्यक्ति या वस्तु का स्मरण नहीं रहता ।

(३) गति (चलना)

मानव की गति से चलने-फिरने से भी शुभ और अशुभ की सूचना मिलती है । नायिकाओं के जो चार भेद किये गये हैं, यथा—शंखिनी, चित्रिणी, पद्मिनी, और हस्तिनी । इनमें हस्तिनी नायिका वह है जो हस्तिनी के समान मंद गति से चलती है । गजगामिनी स्त्रियों की बड़ी प्रशंसा की गई है ।

आज भी किसी व्यक्ति का मन्द गति अथवा उतावलेपन के साथ चलना उसके स्वभाव का परिचायक होता है । किसी स्त्री के पैर का आँगन मे सीधा न पड़ना उसके आनन्द और उछाह का परिचायक है । कविवर बिहारी ने इस तथ्य की ओर संकेत किया है ।[3] पैरों का लड़खड़ाना अशुभ माना जाता है । कौमुदी महोत्सव नाटक में कुमार की गति का हरवृष की गति के समान होना शुभ का सूचक माना गया है ।[4] टेढ़ी गति से चलना अशुभ है । राजा हर्ष का झोपड़ी में प्रवेश करते समय पैर से ठोकर खाना मृत्यु का सूचक है ।[5]

(४) स्वर

स्वर अर्थात् आवाज के द्वारा भी शुभ और अशुभ का विचार किया जाता है । मीठी तथा मधुर वाणी सदा शुभ होती है । इसके ठीक विपरीत कर्कश अथवा घर्घर स्वर का होना अशुभ माना जाता है । कादम्बरी मे तारापीड के पुत्र चन्द्रापीड के भावी चक्रवर्ती पद के सूचक अनेक लक्षणो के

१. "स्मति भ्रंशात् बुद्धि नाशो, बुद्धि नाशात् प्रणस्यति ।"—गीता
२. भट्टि—रावणवध, १७/१०
३. "सूधो पांय न पड़त धर, शोभा ही के भार ।"—वि० स०
४. विज्जिका—कौमुदी महोत्सव, अंक १/६
५. कल्हण राजतरंगिणी ७/६५५

उल्लेख के समय अति गंभीर तथा धीर स्वर में बोलना शुभ माना गया है।[१] हर्ष के श्वास की गति से भी शुभ सूचना मिलने का उल्लेख है।[२] फटी हुई आवाज का होना, विस्वरता और कर्कशता आदि अशुभ है। हिन्दी के किसी कवि ने तो यहाँ तक लिखा है कि जो स्त्री खाँव-खाँव करके पति से कुछ व्यवहार करती है, ऐसी स्त्री किसी व्यक्ति के भाग्य के फूटने पर ही घर में आती है।[३] वाणी की मधुरता, मोहकता और मनोरमता सदा शुभ कार्य की सूचना देती है।

(३) परिच्छेद

स्वप्न-विचार

स्वप्न में जो वस्तु देखी जाती है उसके शुभ और अशुभ होने के संबंध में अनेक लोक-विश्वास प्रचलित है। स्वप्न के द्वारा हमें भावी घटनाओं का पूर्व में ही आभास मिल जाता है। इनके आधार पर हम भावी मंगल अथवा अमंगल का अनुमान करते है। ब्राह्ममुहूर्त में जो स्वप्न देखा जाता है वह प्रायः सच्चा होता है। इस स्वप्नों की यथार्थता पर लोक का अटूट विश्वास होता है।

लोगों की यह मान्यता है कि स्वप्न में जो वस्तु देखी जाती है उसका विपरीत फल होता है। उदाहरण के लिए स्वप्न में रोना आनन्द तथा हर्ष की प्राप्ति का सूचक तथा विवाह एवं उत्सव किसी दुःखद घटना का परिचायक होता है।[४] सर्वसाधारण जनता का यह विश्वास है कि स्वप्न में जो वस्तु अपने लिये देखी जाती है, वह दूसरे किसी व्यक्ति पर जाकर घटती है।[५]

---

१. बाण — कादम्बरी पूर्व भाग, पृ० १४५-४६

२. कल्हण—राजतरंगिणी तरंग, ७/४९७

३. "खसम को देखे, खाँव-खाँव कर धावती।
ऐसी कर्कशा यह कसाइन, कुलच्छनी है,
करम के फूटे नारि ऐसी घर आवती ॥"

४. डॉ० प्रियम्वदा गुप्त—लो० वि० अ०, पृ० २१०

५. "अपने देखे, पराया होय।"

उदाहरणार्थ यदि अपने घर के किसी सदस्य की मृत्यु देखें तो किसी दूसरे के घर में मृत्यु होती है। स्वप्न में देवी या देवता का दर्शन वरदानसूचक माना गया है। परन्तु विवाह जैसे मांगलिक कार्य का दर्शन अशुभ की कोटि में परिगणित किया जाता है।

स्वप्न में चाँदी का देखना शुभ है। परन्तु स्वर्ण पदार्थ का दर्शन अशुभ माना गया है। समुद्र, हाथी, बगुला, धेनु और सूर्य आदि को देखना मंगलकारी माना जाता है। शुद्धोधन की रानी माया ने स्वप्न में यह देखा था कि उनके गर्भ में सफेद हाथी प्रवेश कर रहा है। इसका फल ज्योतिषियों ने बतलाया था कि किसी महान् व्यक्ति का अवतार होने वाला है। इस घटना के कुछ ही मासों के पश्चात् भगवान् बुद्ध ने जन्म ग्रहण किया।

दाँतों का टूट-टूटकर गिरना, नाक और कान का कटना, देश का जल कर भस्म होना और सूर्य का निःस्तेज होना अशुभ माना जाता है। स्वप्न में सर्पों का दर्शन शुभ है। यह लोक-विश्वास है कि सर्पों के रूप में पितरों का आगमन होता है।

लोकगीतों में स्वप्न के संबंध में अनेक विश्वास उपलब्ध होते हैं। गर्भवती स्त्री यदि जौ का हरा-भरा खेत तथा हरी दूब देखे तो उसे पुत्र-रत्न की प्राप्ति होती है। स्वप्न में आम्रफल का दर्शन पुत्र के उत्पन्न होने का सूचक है।[1] इसके विपरीत सड़े-गले आम को देखना अशुभ माना जाता है। कुम्हड़ा और भतुआ आदि को देखने से भी पुत्र की प्राप्ति की सूचना मिलती है। परन्तु लौकी को देखने से पुत्री का जन्म होता है। स्वप्न में हरी-भरी तुलसी और दही का दर्शन किसी शुभ फल का देने वाला माना जाता है। देवकी के द्वारा स्वप्न में उपर्युक्त वस्तुओं के देखने का उल्लेख पाया जाता है। जिसके फलस्वरूप भगवान् श्रीकृष्ण का जन्म होता है।[2]

---

१. "बम्हना तउ देखेउँ निसरत गइया के भेंटत हो,
सासु आमावा त देखेउँ बउरवत;
आमावा फल लागेल हो।"

—डॉ० उपाध्याय—भो० लो० गी०, भा० १

२. "पहिला पहर राति सुतली, सपन एक देखली हो,
ललना हरियर तुलसी के बिरवा,
दुवारी के तो रोपि गेलइ हो। २

(शेष फुटनोट पृष्ठ १६७ पर)

स्वप्न में किसी स्त्री के माँग से सिन्दूर का नष्ट हो जाना वैधव्य का प्रतीक है। श्वेतवस्त्रधारिणी स्त्री के दर्शन से लक्ष्मी की प्राप्ति का विश्वास होता है। परन्तु स्त्री यदि लाल वस्त्र धारण करने वाली हो इससे मृत्यु की अशुभ सूचना मिलती है। स्वप्न में किसी व्यक्ति का श्वेत वस्त्र पहन कर दक्षिण दिशा की ओर जाना मृत्युसूचक है।

रामचरित मानस में भी स्वप्न के सम्बन्ध में अनेक विश्वासों का वर्णन किया गया है। स्वप्न में सीता जी अपने सास को मलिन वेश धारण किये हुए देखती हैं जो अशुभ है।[1] रामचन्द्र जी लक्ष्मण से अपने मन की आशंका को प्रकट करते हुए कहते हैं कि यह शुभ नहीं है।[2] स्वप्न में नगर दाह, सिर का कटना तथा भुजाओं का नष्ट होना घोर अमंगल का लक्षण है। त्रिजटा ने ऐसा ही सपना देखा था जिससे रावण का नाश ही हो गया।[3] सूरसागर

(पृष्ठ १६७ का शेष फुटनोट)

तीसर पहर जब बीतल, सपन एक देखली हो
ललना कोरे नदिया में दहिया,
दुवारी के तो रखि गेलइ हो। ३
एतना सपन जब देखली,
वसुदेव हँसि बोलथि हे। ४
जनम लेलन जदुनाथ
जनम भेल सोवारथ है।"५

—डॉ० विश्वनाथ प्रसाद—मगही संस्कार गीत, पृ० ५३

१. "सकल मलिन मन दीन दुःखारी।
देखी सास आनु अनुहारी॥"

—रा० च० मा० (अ० का०), २२५/३

२. "लखन सपन यह ठीक न होई।"—वही

३. "सपने बानर लंका जारी। जातुधान सेना सब जारी॥
खर आरुढ़ नगन दससीसा। मुंडित सिर खंडित भुज बीसा॥
एहि विधि सो दच्छिन दिशि जाई। लंका मनहु विभीषन पाई॥

—रा० च० मा० (सु० का०), दो० १०

में भी त्रिजटा इसी प्रकार स्वप्न देखती है।[1]

स्वप्न में किसी वाहन, वृक्ष अथवा पहाड़ से गिरना, नदी में डूबना अशुभ स्वीकार किया गया है। किसी की मलिन आकृति, तेल और गोबर के गर्त मे प्रवेश मृत्यु का सूचक है। धधकती हुई अग्नि का अचानक बुझ जाना भी अपशकुन है। स्वप्न भावी घटनाओं की सूचना देते है। कृष्ण के मथुरा जाने के पूर्व नन्द बाबा यह सपना देखते हैं कि बलराम और कृष्ण को कोई ठग कर ले गया है और उनके सखा उनके वियोग में रुदन कर रहे हैं।[2]

संस्कृत साहित्य में स्वप्न के संबंध में बड़ा ही विस्तृत विचार किया गया है। इन स्वप्नों को दो श्रेणियों में विभक्त किया जा सकता है:—(१) ब्राह्ममुहूर्त मे देखे गये स्वप्नो से प्राप्त शकुन (२) ब्राह्ममुहूर्त से इतर काल में स्वप्नों से प्राप्त शकुन। हर्षचरित में प्रभातकालीन स्वप्न में सूर्य-मण्डल से अवतरित दो सशस्त्र कुमारों का रानी यशोवती के उदर मे प्रवेश भविष्य में दो पुत्रों के होने के कारण शुभ माना गया है।[3] महाराज हर्ष-वर्धन रात्रि के चतुर्थ प्रहर (ब्राह्ममुहूर्त) में अग्नि में जलते हुए सिंह और सिंहिनी को स्वप्न में देखते हैं। इसका फल उनके माता-पिता की भावी मृत्यु के रूप में अशुभकारी है।[4] वेणीसंहार नाटक में रानी भानुमती के स्वप्न में जंगली सूअर तथा नकुल द्वारा सर्पों का वध कौरवों के विनाश का सूचक है।[5] रामायण मञ्जरी में प्रभातकाल में भरत स्वप्न में समुद्र का शुष्क हो जाना और आकाश से चन्द्रमा का पतन देखते हैं जो अत्यन्त अशुभ तथा अमंगलकारी है।[6]

---

१. "सुनु सीता सपने की बात।
जरत धुजा, पताक, छत्र, रथ मनिमय करत प्रकास।
रावन सीस पुहुमि पर लोटत, मन्दोदरि बिलखाइ॥

—सूरसागर, नवम स्कन्ध, पृ० ६३

२. डॉ० प्रियम्बदा गुप्त—लो० वि० अ०, पृ० २१०-१२ (अ० प्र०)

३. बाण—हर्षचरित, उच्छ्वास ४

४. बाण—हर्षचरित, उच्छ्वास ५

५. भट्ट नारायण—वेणीसंहार, अंक २, पृ० ६२

६. क्षेमेन्द्र—रामायण मञ्जरी (अ० का०), पृ० ८०

रामायण मञ्जरी में त्रिजटा अनेक प्रकार का स्वप्न प्रभात में देखती हुई कहती है कि – "शुक्ल माला, चन्दन और वस्त्रों से युक्त राम रक्तपान कर रहे हैं। सीता समुद्र से वेष्टित श्वेत पर्वत पर आरूढ़ होकर राम के साथ लंकापुरी में प्रवेश कर रही है। रावण पुष्पक विमान से गिर रहा है। एक स्त्री उसी भूमि पर रावण को घसीट रही है" कहने की आवश्यकता नहीं कि ये सभी स्वप्न अमंलकारी हैं।[1] चन्द्रप्रभचरित महाकाव्य में चन्द्रपुरी नगरी के राजा महासेन की पत्नी अर्धरात्रि के पश्चात् स्वप्न में गजेन्द्र आदि को देखती है, जो भावी पुत्र की प्राप्ति के कारण अत्यन्त शुभ माना गया है।[2]

शान्तिनाथ महाकाव्य में स्वप्नों से प्राप्त अनेक शकुनों का वर्णन मिलता है। जैन काव्यों में एक सामान्य प्रवृत्ति के स्वप्नों का दर्शन होता है जिनसे सन्तान-प्राप्ति की सूचना मिलती है। इन महाकाव्यों में स्वप्नों के सामूहिक रूप का उल्लेख मिलता है, जैसे स्वप्न चतुष्क, स्वप्न सप्तक और स्वप्न चतुर्दश आदि। इसी प्रकार से प्रभातकाल में देखे गये स्वप्नों का वर्णन अनेक ग्रन्थों में उपलब्ध होता है।[3]

वाल्मीकि रामायण के अयोध्याकाण्ड तथा सुन्दरकाण्ड में विभिन्न प्रकार के स्वप्नों का बड़ा ही विस्तार के साथ वर्णन प्रस्तुत किया गया है। राजा दशरथ की मृत्यु के पश्चात् भरत को अयोध्या बुलाने के लिए अनेक दूत जब कैकय नगर जाते हैं तब भरत पिता की मृत्यु के सूचक अनेक स्वप्न देखते हैं। यथा—हँसते हुए राजा दशरथ का चुल्लू से तेल पीना, समुद्र का सूखना, चन्द्रमा का पृथ्वी पर गिरना, संसार का अन्धकारमय होना, हाथी के दाँतो का टुकड़े-टुकड़े होना, धधकती आग का बुझ जाना, धरती का फट जाना, गधे से युक्त रथ पर बैठकर राजा का दक्षिण ओर प्रस्थान करना, पर्वतों का टूट कर गिरना आदि।[4] इसी प्रकार राक्षसियों को त्रिजटा अपना जो स्वप्न सुनाती है वह अत्यन्त अशुभ तथा अमंगलकारी है। महर्षि वाल्मीकि ने इसकी एक बड़ी लम्बी सूची प्रस्तुत की है।[5]

---

१. क्षेमेन्द्र—रामायण मञ्जरी (अ० का०), पृ० ८०
२. वीरनन्दी—चन्द्रप्रभचरित, पृ० १२१
३. इसके विशिष्ट प्रामाणिक तथा विस्तृत वर्णन के लिए देखिए—
—डॉ० दीपचन्द्र शर्मा—सं० का० श० १८६-२०६
४. वा० रा० (अ० का०), ६६/१-१८
५. वा० रा० (सु० का०) २७/६-२२

स्वप्न में किसी व्यक्ति द्वारा चन्द्रमा और सूर्य को स्पर्श करना, उसके लिए शुभ है। तापस वत्सराज नाटक में स्वप्न में रुदन शुभ माना गया है दशावतार चरित काव्य में दुर्योधन के द्वारा कृष्ण के शान्ति प्रस्ताव को ठुकराने के बाद कर्ण ने शुभ और अशुभ स्वप्नों का उल्लेख किया है।[1] इसी प्रकार से संस्कृत साहित्य में स्वप्नों के शुभाशुभ फल का बड़ा विस्तृत विवरण पाया जाता है।[2]

विदेशों में भी स्वप्न में देखी हुई वस्तुओं के आधार पर शकुनों का विचार किया जाता है। इंग्लैण्ड में स्वप्न में रक्त-दर्शन परिवार के किसी सदस्य की मृत्यु होने के कारण अशुभ माना जाता है।[3] ट्यूटानिक देशों में स्वप्न में लोहे का देखना आग लगने का सूचक है।[4] दक्षिणी अफ्रीका में स्वप्न में बीमार व्यक्ति की मृत्यु उसके स्वस्थ होने का सूचक है। परन्तु इसके ठीक विपरीत विवाह मृत्यु की सूचना देता है।[5] आस्ट्रेलिया में स्वप्न में उल्लू का दर्शन शत्रु द्वारा आक्रमण की आशंका पैदा करता है।[6] न्यूजीलैण्ड में स्वप्न में रुग्ण व्यक्ति की मृत्यु शुभ समझी जाती है। कैनेडा में सपना में पर्वतारोहण में सफलता शुभ और उसमें असफलता अमंगलकारी है।[7] अमेरिका में शव यात्रा का दर्शन विवाहसूचक तथा रक्त दर्शन भयंकर दुर्भाग्य की सूचना देता है।[8]

रोम में स्वप्न में श्वेत बादलों का दर्शन शुभ और काले बादलों का अशुभ माना जाता है।[9] बेबीलोन में स्वप्न में अग्नि और विद्युत् का दर्शन मित्र की मृत्यु का सूचक है।[10]

---

१. क्षेमेन्द्र —दशावतार चरित
२. दीपचन्द्र शर्मा—सं० का० श०, पृ० २०७-२३७
३. M. C. Dovell—Dreams and their true meanings, p. 12
४. Hastings—Encyclopedia of Religion and Ethics vol. V, p. 37
५. E. B. Tylor—Primitive culture, 1903—Vol. I P., 122
६. Ibid, P 121
७. Gournal of American Folklore, Vol. 31 (1918), P. 32
८. I bid—Vol. 23 (1910), P. 409.
९. Encyclopedia Britannica the edi.—Vol. 7, P. 293
१०. Encyclopedia of Religion ethics.

हेस्टिङ्गस ने अपने सुप्रसिद्ध ग्रन्थ में स्वप्नों के संबंध में बड़ा ही प्रामाणिक तथा विस्तृत विवरण प्रस्तुत किया है।[१] इन विदेशी शकुनों का भारतीय शकुनों से तुलना करने पर यह स्पष्ट ही प्रतीत हो जाता है कि संसार में प्रचलित लोक-विश्वास प्रायः सर्वत्र एक समान ही हैं।

इस प्रकार से स्वप्नों से शकुनों की प्राप्ति में विश्वास की परम्परा विश्वव्यापी दिखाई पड़ती है। आज भी विवेकी पुरुष किसी सीमा तक इस विश्वास को मान्यता प्रदान करते हैं।[२] मानव-मानस सर्वत्र एक समान पाया जाता है। अतः संसार के प्रत्येक देश में एक ही प्रकार के समान विश्वास सर्वत्र उपलब्ध होते हैं।

—o—

१. Ency. R. E. वही, I Vol 5, P. 33

२. The belief that in dreams an insight is given into the future events, was universally prevatent in ancient times and is shared in to some extent by intelligent people in our day.

—The New Popular Encyclopedia.—Vol. X, P. 164

षष्ठ अध्याय

संस्कार सम्बन्धी लोक-विश्वास

(१) परिच्छेद

हिन्दू धर्म-शास्त्रों में षोडश संस्कारों की गणना की गई है जो गर्भाधान से लेकर मृत्युपर्यन्त पाये जाते हैं। परन्तु युग-धर्म के प्रभाव से तथा धार्मिक कार्यों एवं आस्तिकता के अभाव के कारण इन संस्कारों का अब धीरे-धीरे लोप होने लगा है। अब केवल छः संस्कार ही शेष रह गये है जिनका किसी-न-किसी रूप में आजकल पालन किया जा रहा है—

(१) पुत्र-जन्म (२) मुण्डन (३) यज्ञोपवीत (४) विवाह (५) गवना तथा (६) मृत्यु। इन्हीं छः संस्कारों के विषय में लोक-जीवन में लोक-विश्वास उपलब्ध होते हैं।

हमारे धर्माचार्यों ने पुत्र उत्पन्न होने के पहिले भी अनेक संस्कारों का विधान किया है, जैसे गर्भाधान, पुंसवन,......आदि। पुंसवन संस्कार का तात्पर्य यह होता है कि भविष्य में जो संतान उत्पन्न होने वाली है वह पुरुष-पुत्र हो, स्त्री या कन्या नहीं। हिन्दू समाज प्राचीन काल में पुरुष प्रधान था और आज भी वैसा ही है। अतः इस संस्कार की अत्यन्त अधिक प्रधानता है।

(१) **गर्भाधान**—हमारे समाज में प्रचलित प्रधान छः संस्कारों के विषय में अनेक वैदिक विधि-विधान उपलब्ध होते हैं जो इन अवसरों पर किये जाते हैं परन्तु प्रस्तुत प्रसंग में इन संस्कारों के संबंध में उन मुख्य लोक-विश्वासों का ही वर्णन किया जायेगा जिन पर जनता की पूर्ण आस्था है।

पुत्र-जन्म के पहिले किये जाने वाले संस्कारों में गर्भाधान प्रधान माना जाता है। संभवतः लोक में इस अवसर पर कोई विधि-विधान नहीं किया

जाता। परन्तु गर्भिणी स्त्री के विषय में अनेक लोक-विश्वास अवश्य ही विद्यमान हैं जिनका पालन स्त्रियाँ बड़ी कठोरता से करती हैं।

गर्भिणी स्त्री के लिए सूर्य-ग्रहण तथा चन्द्र-ग्रहण को देखना नितान्त निषिद्ध माना जाता है। अतः इस अवसर पर स्त्रियाँ अपने कक्ष से बाहर नहीं निकलतीं। ऐसा विश्वास है कि ग्रहण को देखने से गर्भस्थ शिशु को शारीरिक क्षति पहुँचती है। गर्भिणी स्त्री को कोई भारी वस्तु—जैसे जल से भरा घड़ा, अन्न से भरी गठरी नहीं उठानी चाहिए क्योंकि इससे गर्भस्राव की आशंका बनी रहती है।

दोहद—गर्भिणी स्त्री की भोजन संबंधी इच्छा को 'दोहद' कहा जाता है। इस स्थिति में स्त्री जिस किसी भी वस्तु—अन्न, फल, मिष्ठान्न की कामना करती है उसकी आपूर्ति करना अत्यन्त आवश्यक माना जाता है। लोगों की यह धारणा है कि ऐसा न करने से शिशु के उत्पन्न होने पर उसके मुँह से सदा लार टपकता रहता है, जो बालक बहुत बोलता है तथा व्यर्थ में बरबराता रहता है उसके विषय मे लोगों की यह धारणा होती है कि गर्भावस्था में इसकी माता ने अवश्य बर्रें (ग्रामीण अन्न), जिससे तेल निकाला जाता है, खाया होगा।

गर्भावस्था में गर्भिणी स्त्री जैसी सुखद अथवा दुःखद स्थिति में होती है उसका प्रभाव भी गर्भस्थ शिशु के जीवन पर पड़ता है। यदि इस अवस्था में माता और पिता में किसी कारण कलह अथवा झगड़ा हो तो पुत्र झगड़ालू पैदा होता है। महाभारत की कथा से ज्ञात होता है कि अर्जुन ने अपनी गर्भिणी स्त्री को चक्रव्यूह भेदन की कला बतलायी थी जिसे गर्भस्थ शिशु अभिमन्यु ने गर्भ में ही जान लिया था। अतः आजकल इस बात का बड़ा ध्यान रखा जाता है कि गर्भिणी का कक्ष वीरों तथा देशभक्तों के चित्रों से सजाया जाय जिसका भावी शिशु पर प्रभाव अच्छा पड़े। आधुनिक वैज्ञानिक भी इस लोक-विश्वास की सत्यता को अब मानने लगे हैं।

पुंसवन—प्राचीनकाल में इस संस्कार के अवसर पर विशेष विधि-विधान किया जाता था जिसका उद्देश्य यह था कि भावी सन्तान पुत्र ही हो, पुत्री नहीं। परन्तु आजकल साधारण जनता के द्वारा कोई ऐसा शास्त्रीय विधान नहीं किया जाता। इस संबंध में लोगों की यह दृढ़ धारणा है कि सम-तिथियों—जैसे द्वितीया, चतुर्थी, षष्ठी आदि—में 'समागम' करने से पुत्र की प्राप्ति होती है और विषम तिथियों में पुत्री की।

यद्यपि स्त्री पुरुष के समागम के लिए, किसी विशेष मास के लिए कोई विधि-निषेध प्रचलित नहीं है परन्तु पक्षों के विषय में यह धारणा प्रचलित है कि शुक्ल पक्ष में गर्भाधान पुत्रोत्पत्ति का सूचक होता है और कृष्ण पक्ष मे पुत्री का। दिन में समागम करना नितान्त निषिद्ध माना जाता है क्योंकि इससे मन-वांछित संतान की उत्पत्ति नहीं होती। इसी प्रकार से गोधूली मे, रात्रि के पिछले प्रहर में प्रातःकाल में यह कार्य अत्यन्त गर्हित है। जब स्त्रियाँ रजस्वला होती हैं, तब उन दिनों में वे किसी वस्तु का स्पर्श नहीं कर सकती क्योंकि वे अशुद्ध या अपवित्र मानी जाती हैं। इन दिनों में समागम भी अत्यन्त निषिद्ध कर्म है।

पुत्र जन्म—पुत्र के जन्म के अवसर पर गाँवों में अपनी प्रसन्नता को व्यक्त करने के लिए थाली (छीपा) बजाने की प्रथा है। यह थाली प्रायः पीतल या कांसे की हुआ करती है। परन्तु पुत्री के जन्म के अवसर पर थाली नहीं बजाई जाती। यदि कोई लड़का बड़ा होने पर अवारा या मूर्ख हो जाता है तब गाँव के लोग व्यंग्यपूर्वक उससे कहा करते हैं कि इनके जन्म पर भी थाली बजाई गई होगी (इनकरो जनम पर थाली बाजल होई) अर्थात् प्रसन्नता का प्रदर्शन किया गया होगा।

गाँवों में जिस घर में बच्चा पैदा होता है उसे "सउरि" कहा जाता है। इसे संस्कृत में "सूतिका-गृह" कहते हैं। इस घर में कोई भी व्यक्ति प्रवेश नही कर सकता। यदि दाई अथवा घर की स्त्री सउरि में जाती है तो वह पैरो को धोकर ही प्रवेश कर सकती है। इस 'सउरि' घर के द्वार पर 'पउडी' (मिट्टी का पात्र) में आग सदा जलती रहती है जिससे कोई दुष्ट आत्मा (evil spirit) घर के भीतर प्रवेश न कर सके। यदि नवजात शिशु 'सउरि' मे बीमार पड़ जाता है अथवा अकाल में ही वह काल-कवलित हो जाता है तब स्त्रियों का यह विश्वास है कि यम ने उसे छू दिया है अर्थात् किसी भूत-दूत ने उसे ग्रस्त कर लिया है।

किसी शुभ मुहूर्त में नवजात शिशु की माता सौर-घर से निकलती है और स्नान कर नये वस्त्रों को धारण करती है। शिशु की आँखों में काजल लगाया जाता है और उसके दोनों हाथों तथा पैरों में काला "फुदेना" बाँध दिया जाता है जिससे किसी व्यक्ति की कुदृष्टि उस पर न लगने पावे। कहीं-कहीं गाँवों में शिशु को छः मास तक घर से बाहर नहीं ले जाया जाता, क्योंकि इस अवधि तक उसे 'कुदृष्टि' लगने का भय बना रहता है।

छः मास के पश्चात् उसका 'अन्नप्राशन' संस्कार किया जाता है अर्थात् उसे प्रथम बार अन्न खिलाया जाता है । इस अवसर पर शिशु का मामा सोना अथवा चाँदी की बनी हुई कटोरी और चम्मच लाता है । उसे इसी कटोरी में इस अवसर पर खीर खिलाई जाती है ।

प्रतिदिन अनेक बार नवजात शिशु के शरीर में सरसों का तेल लगाया जाता है । माताओं का विश्वास है कि इससे उसकी शारीरिक पुष्टि होती है । तेल लगाने के बाद वे उसकी आँखों में काजल लगाना नहीं भूलतीं जो कुदृष्टि का अवरोधक माना जाता है । इस प्रकार माता-पिता का प्यार पाकर वह शिशु प्रतिदिन बढ़ता जाता है । मुण्डन के पहिले शिशु के बालों में कंघी करना निषिद्ध है । अतः धीरे-धीरे उसके मटमैले बाल 'जटा' का रूप धारण कर लेते हैं ।

मुण्डन

बालक का मुण्डन संस्कार विषम वर्षों—अर्थात् जन्म के एक, तीन, पाँच—में किया जाता है क्योंकि सम वर्षों में इसका निष्पादन निषिद्ध है । इस संस्कार के अवसर पर बालक के बालों को प्रथम बार काटा जाता है । इसके पहिले उसके बालों का काटना निषिद्ध है । कुछ लोग किसी पवित्र स्थान, जैसे मिर्जापुर की विन्ध्यवासिनी देवी के मंदिर में अपने पुत्रों के मुण्डन की मनौती मानते हैं । यही कारण है कि इस स्थान में मुण्डनार्थियों की सदा भीड़ लगी रहती है । जो लोग कोई मनौती नहीं मानते वे किसी नदी के किनारे अथवा मंदिर में इस मुण्डन कर्म का सम्पादन करते हैं ।

भोजपुरी प्रदेश में यज्ञोपवीत संस्कार के पहिले बालकों के बालों को छुरा (अस्तुरा) से नहीं काटा जाता । परन्तु अन्य राज्यों में ऐसा कोई प्रतिबन्ध नहीं है । बालक की बुआ अथवा बहिन इन बालों को अपने आँचल में रखती जाती है । इसके लिए उसको नेग (दक्षिणा) देना पड़ता है । चूँकि बाल अत्यन्त पवित्र माने जाते हैं अतः इनको किसी नदी अथवा तालाब में प्रवाहित कर दिया जाता है । इस संस्कार के पश्चात् बालक के बालों को काटने में कोई प्रतिबन्ध नहीं रहता ।

यज्ञोपवीत

द्विजाति अथवा ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य के लिए यज्ञोपवीत संस्कार

अत्यन्त आवश्यक बतलाया गया है। ब्राह्मण बालक के लिए जन्म के आठवें वर्ष में उसका जनेऊ कर देने का विधान पाया जाता है।

जनेऊ के एक दिन पूर्व बालक के अभ्यास के लिए उसे एक सूत का धागा पहिना दिया जाता है जिसे 'गोबर जनेऊ' कहा जाता है। इसके द्वारा बालक शौचादि के समय कान पर जनेऊ चढ़ाने का अभ्यास करता है। मुण्डन की ही भाँति जनेऊ भी किसी तीर्थ स्थान में अथवा मंदिर या पवित्र नदी के तट पर किया जाता है। इस अवसर पर बालक के गले में मृग-चर्म तथा सूत का जनेऊ पहिनाया जाता है। बालक के बालों को काटते समय उन बालों को उसकी बुआ अथवा बहिन अपने आँचर में धारण करती है। इसके पश्चात् ब्रह्मचारी काशी पढ़ने जाने के लिए सभी लोगों से भिक्षा माँगता है। काशी जाने का अभिनय करने के पश्चात् वह घर लौट आता है और उसका समावर्तन संस्कार किया जाता है। इस प्रकार वेदारम्भ अध्ययन तथा समावर्तन इन तीनों संस्कारों को एक साथ ही सम्पादित कर यज्ञोपवीत संस्कार का कार्य समाप्त माना जाता है।

विवाह

यह मनुष्य के जीवन का सबसे प्रसिद्ध तथा प्रचलित संस्कार है जिसे सभ्य तथा असभ्य सभी जातियाँ समान रूप से मनाती हैं। आजकल तिलक और दहेज की प्रथा पराकाष्ठा पर पहुँची हुई है। अतः विवाह में देय तिलक की देय राशि के पश्चात् किसी शुभ दिन को तिलक चढ़ाया जाता है। इसके पश्चात् वर और कन्या दोनों के घरों में लोकगीत गाये जाते हैं जिन्हें 'सगुन' कहा जाता है। तिलक के बाद लड़की का पिता विवाह के लिए मण्डप बनाता है जिसे 'माँड़ो' कहते हैं। किसी शुभ तिथि पर वर पक्ष के लोग बारात लेकर कन्या के घर विवाह के लिए आते हैं। बारात में जाने के पहले घर की स्त्रियाँ वर को लोढ़ा से 'परीछती' हैं और उसकी आँखों मे काजल लगाती हैं। उनका यह विश्वास है कि ऐसा करने से वर की सुरक्षा होती है और उसे किसी की कुदृष्टि नहीं लगती।

बारात के जाने पर मण्डप में वर-कन्या का विवाह होता है। 'सप्तपदी' संस्कार के पश्चात् विवाह पूर्ण तथा पक्का माना जाता है। विवाह के बाद स्त्रियाँ वर को 'कोहबर' में ले जाती हैं जहाँ उसके साथ अनेक हास-परिहास किया जाता है। अन्त में दूसरे या तीसरे दिन बारात लौटकर आ जाती है।

बारात के आने पर वर को सकुशल लौट आने के लिए फिर लोढ़ा से 'परीछा' जाता है।

गवना

आज से लगभग एक सौ वर्ष पहिले उत्तर प्रदेश मे बाल-विवाह की प्रथा भयंकर रूप मे प्रचलित थी। उस समय पांच तथा सात वर्ष के बच्चों का भी विवाह संस्कार कर दिया जाता था। परन्तु वयस्कता प्राप्त करने पर ही उनका गवना होता था। ऐसी परिस्थिति में यह गवना तीन, पांच, सात तथा नौ वर्षों के पश्चात् हुआ करता था। गवना विषम वर्षों में ही किया जाना चाहिए ऐसी शास्त्रीय मान्यता है। अतः लोग तीन, पांच, सात वर्षों के पश्चात् ही अपने बालकों का गवना कराते हैं। आजकल वयस्क अवस्था मे विवाह होने के कारण विवाह के साथ ही कन्या की विदाई कर दी जाती है। परन्तु जिन लोगों को विवाह के साथ ही विदाई नहीं 'सहती' वे लोग एक वर्ष के भीतर ही कन्या का गवना करा लेते हैं।

विवाह की ही भांति गवना के अवसर पर भी एक "छोटी सी बारात" कन्या के घर जाती है। रात्रि में भोजन के पश्चात् दूसरे दिन कन्या की विदाई करा उसे घर ले आते हैं। घर में प्रवेश के अवसर पर वर-वधू बांस की बनी छबड़ी (दौरा) में अपना पैर रखकर चलते हैं। लोगों की मान्यता है कि बांस वंश का प्रतीक है। अतः अधिक सन्तान की कामना से ऐसा किया जाता है। घर में कन्या से अन्न-राशि का स्पर्श कराया जाता है जिसका आशय प्रभूत धन-धान्य की सम्भावना है।

मृत्यु संस्कार

यह मानव जीवन का अन्तिम संस्कार है जिसे संसार के सभी लोग किसी-न-किसी रूप में सम्पादित करते हैं। हिन्दू समाज में किसी व्यक्ति की मृत्यु होने पर उसे श्मशान पर ले जाने के लिए जो विमान बनाया जाता है उसे 'अरथी' कहा जाता है। इसे चार आदमी कन्धों पर लेकर चलते हैं। इस 'अरथी' को ढोना अनन्त पुण्य का कारण माना जाता है। अतः महान् पुरुषों की अरथी में सैकड़ों व्यक्ति अपना कन्धा लगाते हैं। श्मशान घाट पर चिता सजाई जाती है। इस चिता को सजाने के लिए आम, पीपल और चन्दन

की लकड़ी पवित्र मानी जाती है। राजा, महाराजा तथा धनी-मानी पुरुष केवल चन्दन की चिता पर ही जलाये जाते हैं ।

पिता की मृत्यु पर उसका ज्येष्ठ पुत्र ही मुखाग्नि देने का अधिकारी माना जाता है। परन्तु उसके अभाव में छोटा पुत्र अथवा कोई भी सगा-सम्बन्धी मुखाग्नि दे सकता है। मुखाग्नि देने वाले व्यक्ति को 'दाही' कहा जाता है। इस व्यक्ति के लिए 'दशाह' तक खाट पर सोना, बाल कटवाना, जूता पहिनना, तेल लगाना आदि निषिद्ध माना जाता है। वह प्रतिदिन प्रातः तथा सायंकाल 'घंट' में मन्त्र पढ़कर जल देता है। लोगों का ऐसा विश्वास है कि प्रेत आत्मा को इससे शान्ति मिलती है और उसकी क्षुधा तथा पिपासा शान्त होती है।

दस दिनों तक यह जलांजलि 'घंट' में देने के पश्चात् 'दशाह' कर्म किया जाता है। उस दिन दाही तथा परिवार के समस्त लोग बालों का मुण्डन कराते हैं। शास्त्र के अनुसार बालों में ही 'छूत' रहती है। अतः उसको कटा देने पर 'छूत' नष्ट हो जाती है। 'दशाह' के दिन दस तथा एकादशाह के दिन ग्यारह पिण्डदान मृत व्यक्ति के प्रेत आत्मा की शान्ति के लिए किया जाता है। ऐसी धारणा है कि यह 'पिण्ड' उस प्रेतात्मा को मिलता है। 'तेरहीं' के दिन ब्राह्मण भोजन कराया जाता है और इसके पश्चात् श्राद्ध-कर्म की समाप्ति समझी जाती है।

सामान्य तथा मृत व्यक्ति की 'बरखी' एक वर्ष के पश्चात् की जाती है परन्तु जो पुत्र अथवा पुत्री के विवाह के लिए आतुर रहते हैं वे लोग केवल तीन दिनों में ही समस्त श्राद्ध-कर्म को समाप्त कर उसकी 'बर्षी' (बरखी) भी कर देते हैं।

मृत्यु संस्कार में अनेक लोक-विश्वास अन्तर्भुक्त पाये जाते हैं। जैसे श्मशान में मृत व्यक्ति को जला देने के पश्चात् उस स्थान पर ३६ का अंक लिखना। इसका भाव यह होता है कि संसार से उसका अब नाता टूट गया इसी प्रकार पिण्डदान की प्रक्रिया में भी अनेक लोक-विश्वास समाहित हैं।

(२) परिच्छेद

जाति सम्बन्धी लोक-विश्वास

विभिन्न जातियों के सम्बन्ध में अनेक लोक-विश्वास प्रचलित हैं। ऐसी

अनेक लोकोक्तियाँ उपलब्ध होती हैं जिनमें इन जातियों की विशेषताओं का वर्णन किया गया है। इन कहावतों से यह पता चलता है कि किस जाति का कौन सा विशेष गुण है।

ये लोकोक्तियाँ प्रधानतया ब्राह्मण, कायस्थ, अहीर, बनिया और हरिजनों के सम्बन्ध में अधिक उपलब्ध होती हैं। जिनमें इनके विशेष गुणों का वर्णन किया गया है। इन जातियों के ये विशिष्ट गुण या तत्त्व लोक-विश्वास के रूप में परिणित हो गये हैं। इन कहावतों में वर्णित ब्राह्मण अथवा अहीरों की विशेषताओं को सुनकर अथवा पढ़कर साधारण जनता में इनके प्रति जो विश्वास पैदा हो गया है उन्हीं के सम्बन्ध में संक्षिप्त विवरण यहाँ पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत किया जाता है—

(१) ब्राह्मण

ब्राह्मणों के चरित्र की विशेषताओं को प्रदर्शित करने वाली अनेक लोकोक्तियाँ प्रसिद्ध हैं। इन कहावतों से ब्राह्मणों के तीन विशेष गुणों का पता चलता है। (१) प्रथमतः तो ये बड़े ही भोजन-भट्ट होते हैं। (२) ये अपनी जाति के लोगों से घृणा करते हैं और (३) ये स्पर्शास्पर्श का बहुत विचार करते हैं जो कभी-कभी हास्यास्पद कोटि तक पहुँच जाता है।

ब्राह्मण लोग बड़े ही पेटू होते हैं। यदि दही और चिउड़ा के भोज का पता इन्हें लग जाय तब ये वृद्धावस्था में भी झुकते हुए चलकर अस्सी कोस की भी यात्रा कर सकते हैं।[१] इसी सम्बन्ध में यह दूसरी कहावत प्रसिद्ध है कि ब्राह्मण दही और चिउड़ा को खाने के लिए बारह कोस अर्थात् चौबीस मील (३६ किलोमीटर) तथा पूड़ी खाने के लिए यदि निमन्त्रण मिल जाय तो वह अठारह कोस अर्थात् छत्तीस मील (५४ किलोमीटर) जाने के लिए तैयार हो जाता है।[२] यद्यपि ये लोकोक्तियाँ अतिरंजित हैं परन्तु इनमें कुछ यथार्थ भी पाया जाता है।

ब्राह्मण अपनी जाति के लोगों से घृणा करता है। वह नहीं चाहता कि

---

१. "दही-चिउड़ा के सुनगुन पाईं।
अस्सी कोस निहुरिए धाईं॥"

२. "चिउड़ा-दही बारह कोस।
लुचुई अठारह कोस॥"

उसके स्थान (पद) पर कोई दूसरा ब्राह्मण आ जाय। इसलिए वह दूसरे ब्राह्मण को देखकर कुत्ते की भाँति गुर्राता रहता है।[१]

ब्राह्मणों में स्पर्शास्पर्श की झूठी भावना भी समधिक मात्रा में पायी जाती है। जहाँ तीन कन्नौजिया ब्राह्मण मिल जाते है वहाँ एक दूसरे का छुआ हुआ भोजन न करने के कारण उन्हें पृथक्-पृथक् चूल्हों की आवश्यकता होती है।[२] इसी प्रकार से एक लोकोक्ति में इनके गोत्रों की श्रेष्ठता के कारण इनकी उच्चता का श्रेणी विभाजन किया गया है। तीन और तेरह की सूक्ति लोक में प्रसिद्ध है। कोई अपनी नम्रता दिखाते हुए कहता है कि हम न ता तीन में हैं और न तेरह में।"[३]

परन्तु किन्हीं-किन्हीं लोकोक्तियों में ब्राह्मण की प्रशंसा भी की गई है और इनके वचनों (व्यवस्थाओं) को प्रामाणिक माना गया है।[४] इनकी सज्जनता के के विषय में भी एक कहावत प्रचलित है जो इनकी अत्यन्त सिधाई अर्थात् मूर्खता को प्रकट करती है।[५]

(२) कायस्थ

कायस्थ बहुत ही चतुर तथा चालाक जाति होती है। ये बड़े ही बुद्धिमान होते हैं। इनमे शिक्षा का भी समधिक प्रचार है। अतः बुद्धिजीवी वर्ग में इनकी गणना की जाती है। प्राचीन काल से ही इनका संबंध कचहरी से पाया जाता है। संस्कृत के मृच्छकटिक नाटक में कचहरी से इनका अभिन्न सम्बन्ध बतलाया गया है। ये आज भी अपनी परम्परागत पेशा का पालन कर रहे हैं।

लोकोक्तियों में इनके पेशा के सम्बन्ध में संकेत उपलब्ध होते हैं। पटवारी, जो प्रायः कायस्थ हुआ करते हैं, की यदि एक कलम खिसक जाती है तो एक दो नहीं, बल्कि बावन (५२) गाँव इधर से उधर हो जाते हैं। "एक कलम घसके तऽबावन गाँव खसके।,

---

१. "बाभन, कुकुर, नाऊ आपन जाति देखि गुर्राऊ।"

२. "तीन कनौजिया, तेरह चूल्हा।"

३. "तीन में कि तेरह में।"

४. "बराह्मन वचन परमान।"

५. "बाभन पोंग ही पोंग।"

इसका भाव यह है कि पटवारी अपनी कलम से किसी आदमी का खेत किसी दूसरे के नाम लिख देता है ।

"कायथ का कागदे सूझेला" इस लोकोक्ति में उसके पेशे की ओर संकेत किया गया है ।

कायस्थ अपनी जाति के लोगों का बड़ा ही पक्षपात करता है और उनको अधिक मात्रा में नौकरी दिलाकर एकत्रित करना चाहता है । इसीलिए यह कहावत प्रसिद्ध है कि—

कायथ, गउवा, टोट जाति-जाति बटोर ।
कौआ और गीदड़ का भी यही स्वभाव होता है ।

(३) बनिया

वैश्य जाति का कार्य प्रधानतया कृषि-कार्य को सम्पादित करना है । परन्तु आजकल ये व्यापार ही अधिक करते हैं । बनिया 'बद्धमुष्ठि' अर्थात् अत्यन्त कंजूस होता है । वह चाहता है कि भले ही शारीरिक क्षति ही क्यों न हो परन्तु एक दमड़ी भी खर्च न करनी पड़े ।[१] बनिया को इससे बड़ी प्रसन्नता होती है कि उसे केवल एक दमड़ी का ही दान करना पड़ा ।[२] बनिया अत्यधिक मक्खीचूस होने के कारण जब किसी घोर संकट में पड़ता है तभी कुछ रुपये लाचारी से खर्च करता है । कहावत है कि आम, नींबू और बनिया दबाने से ही रस देते हैं ।[३] इसकी कंजूसी के सम्बन्ध में एक दूसरी कहावत भी प्रचलित है ।[४]

ये अपने व्यापार में ईमानदारी से काम नहीं लेते और कोई भी सामान पूरा तौल कर नहीं देते । इनका 'डण्डी मारना' तो प्रसिद्ध ही है ।[५] धनी होने पर भी ये स्वभाव से बड़े कायर तथा डरपोक होते हैं ।[६] इस प्रकार बनिया अपनी कंजूसी बेईमानी तथा दब्बूपन के लिए प्रसिद्ध है ।

---

१. "चमड़ी जाय, दमड़ी न जाय ।"
२. "बनिया के खुशी भइल, दमड़ी के दान कइलसि ।"
३. "आमी, नीबू, बानिया, चापें ते रस देइ ।"
४. "माँगे बनिया गुड़ ना दे ।
मूँह मलला पर भेली दे ।।"
५. 'कुछ हाथ की सफाई, कुछ डण्डी का फेर ।
दोसरा के तीन पाव, बनिया के सेर ।।"
६. "बनिया के जीव धनिया बरोबरि ।"

(४) नाई

नाई को भोजपुरी क्षेत्र में 'हजाम' कहा जाता है। ये अनपढ़ होने पर भी बड़े चतुर होते हैं। जिस प्रकार पक्षियों में कौआ चालाक माना जाता है उसी प्रकार मनुष्यों में नाई काँइयाँ होता है।[1] ये लोग दूसरों की प्रकृति को पहिचानने में बड़े निपुण होते हैं और बड़े लोगों से चिकनी-चुपड़ी बातें करके मनोनुकूल धन प्राप्त करते हैं।[2]

नाऊ को ठाकुर (श्रेष्ठ) भी कहा जाता है। अतः ऐसा प्रसिद्ध है कि नाई की बारात में सब अपने को ठाकुर (श्रेष्ठ) ही समझते हैं।[3] इसमें सन्देह नहीं कि नाई बहुत चतुर जाति है और चालाकी में इससे कोई पार नहीं पा सकता।

नाऊ ब्राह्मण की ही भाँति अपनी जाति के लोगों से प्रेम नहीं करता और उन्हें अपने पास फटकने नहीं देता।[4]

(५) अहीर

उत्तर भारत में अहीर अपनी शारीरिक शक्ति तथा बल के लिए प्रसिद्ध हैं। ये प्राचीन काल के आभीर वंशी राजाओं के वंशधर हैं। अतः इनमें शौर्य और बल की भावना का विद्यमान होना स्वाभाविक है।

परन्तु लोकोक्तियों में इनकी मूर्खता और सीधेपन का वर्णन अधिक उपलब्ध होता है। एक लोकोक्ति से ज्ञात होता है कि अहीर कितना भी चतुर क्यों न हो जाय वह लोरिक नामक लोक-गाथा, जो उनका राष्ट्रीय महाकाव्य है, को छोड़कर दूसरा कोई गीत नहीं गायेगा।[5] अहीर के ऊपर

---

१. "चिरई में कउवा, मनई में नउवा।"

२. "नउवा केवट चीन्हें जात।
बड़ लोगन के चिक्कन बात॥"

३. "नउवा के बरियात में सब ठाकुरे ठाकुर।"

४. "बाभन, कुकुर, नाऊ।
आपन जाति देखि गुर्राऊ॥"

५. "कतनो अहीरा होय सयाना।
लोरिक छाडि ना गावहि बाना।"

अधिक विश्वास नहीं करना चाहिए क्योंकि साँवा की खेती और अहीर कभी-कभी ही मित्र होते हैं।[1]

किसी-किसी लोकोक्ति में इनकी जवानी, शारीरिक बल तथा धन का भी वर्णन पाया जाता है। यदि कोई अहीर जाति का सदस्य हो, दूसरे अपनी भरी जवानी में वर्तमान हो और तीसरे उसके खेत में नौ मन धान अर्थात् प्रचुर अन्न-राशि पैदा हो गई हो तब वह अपने बल और शान का प्रदर्शन अवश्य ही करेगा।[2]

(६) चमार

हरिजन जातियों में चमारों का स्थान प्रसिद्ध है। ब्रिग्स ने इनकी विशेषताओं का वर्णन अपनी विख्यात पुस्तक 'दि चमार्स' में किया है। गाँवों में ऐसा अन्ध-विश्वास है कि चमार अपने इष्टदेव की पूजा करके पशुओं में बीमारी फैलाते हैं।[3] इसीलिए इनके संबंध में यह लोकोक्ति प्रसिद्ध है कि चमार के कहने से पशु नहीं मरते[4] एक दूसरी हरिजन जाति डोम है जो अपनी वीरता के लिए प्रसिद्ध हैं। ये लोग धोबी को अपने से नीच समझते हैं।[5] इसलिए ये धोबी के हाथ का छुआ हुआ अन्न का भोजन नहीं करते।

इसी कोटि में दुसाध जाति के लोग भी अन्तर्भुक्त होते हैं जिनके विषय में प्रसिद्ध है कि इनका घर गाँव के बाहर ही होता है।[6] दुसाध जाति के लोग दूसरों के यहाँ नीचे जमीन पर बैठकर खाते हैं परन्तु उनकी दृष्टि घर की ऊँची जगहों पर दौड़ती रहती है। अर्थात् ये चोरी करने के लिए दूसरों के घरों का भेद लेते रहते हैं।[7] इस प्रकार हरिजनों के संबंध में अनेक लोकोक्तियाँ प्रसिद्ध हैं।

---

१. "साँवा की खेती अहीर मीत।
कबो-कबो होखे मीत॥"

२. "एक त अहीर, दोसरे जवान।
तीसरे होगल, नौ मन धान॥"

३. डॉ० शशिसेखर तिवारी- भोजपुरी लोकोक्तियाँ, पृ० १२८ (फुटनोट नं० ३)

४. "चमार के मनबला से डाँगर ना मुयेला।"

५. "डोम के जनते धोबी नीच।"

६. "दुसाध के खोभाड़ि, कहीं गाँव में बसेला।"

७. "दुसाध जाति खाये नीचे, ताके ऊँचे।"

(३) परिच्छेद

तीर्थ संबंधी लोक-विश्वास

भारत धर्म-प्रधान देश है। अतः ऋषियों और मुनियों ने यहाँ की पवित्र नदियों—जैसे गंगा और यमुना के तट पर अनेक तीर्थस्थानों की स्थापना की थी जहाँ प्राचीन काल में यात्रीगण जाकर और देवताओं का दर्शन कर अपने को पाप से मुक्त मानते थे।

आठवीं शताब्दी में भगवान् आद्य शंकराचार्य ने भारत की सांस्कृतिक, तथा भावनात्मक एकता को संगठित करने के लिए इस देश की चारों दिशाओं में चार तीर्थ स्थानों की स्थापना की, जो आजकल 'धाम' के नाम से प्रसिद्ध है। इन्होंने उत्तर प्रदेश के गढ़वाल जिले में जोशी मठ (ज्योतिर्मठ) पूर्व में उडीसा में जगन्नाथ जी, पश्चिम में, सौराष्ट्र में द्वारिका जी और दक्षिण के तमिलनाडु राज्य में रामेश्वरम् धाम को स्थापित किया। आजकल चारो धामों के दर्शन की जो परम्परा है यह तभी से प्रवर्तित हुई।

इन विभिन्न तीर्थ स्थानों के संबंध में अनेक लोक-विश्वास प्रचलित है जिनकी चर्चा संक्षेप में यहाँ प्रस्तुत की जाती है। तीर्थस्थानों की अधिकता के कारण यहाँ केवल प्रधान तीर्थस्थानों का ही उल्लेख किया जाता है।

(१) काशी

काशी भारत का सबसे प्रधान तीर्थस्थान माना जाता है। आज हजारो वर्षों से इसकी महिमा का वर्णन हमारे धर्म-ग्रन्थों तथा पुराणों में उपलब्ध होता है। वैदिक काल से लेकर आज तक इसका महत्त्व अक्षुण्ण रूप से बना हुआ है।

सर्वसाधारण जनता का यह अटूट विश्वास है कि काशी भगवान् शिव के त्रिशूल पर विराज रही है। इसीलिए पूजा के अवसर पर इसके लिए "त्रिकंटक विराजिते" कहा जाता है। शिव के त्रिशूल पर विराजमान होने के कारण यह नगर संसार से अलग माना जाता है। इसीलिए इसके संबंध में यह लोकोक्ति प्रसिद्ध है कि—

"काशी तीनों त्रिलोक से न्यारी।"

पुराणों में काशी की महिमा मुक्त-कण्ठ से गाई गई है। विशेष कर

पद्मपुराण में इसका महत्त्व प्रधान रूप से प्रतिपादित किया गया है। इस पुराण मे लिखा है कि कोई पापी दुष्ट तथा अधार्मिक मनुष्य भी काशी आता है तो वह समस्त संसार को पवित्र कर देता है :—

"यदि पापी, यदि शठो, यदि वाधार्मिको नरः,
वाराणसीं समासाद्य: पुनाति सकलं भुवम् ।"

इसी प्रकार से लिंगपुराण, अग्निपुराण तथा मत्स्यपुराण में भी काशी की महिमा का वर्णन पाया जाता है।

लोगों का यह विश्वास है कि काशी में भगवान् शिव मृत व्यक्ति को 'तारक' मंत्र देते हैं जिससे उसकी इस संसार में आवागमन से मुक्ति हो जाती है। शास्त्रों में कहा भी गया है कि—

"काश्यां मरणात् मुक्तिः"

अर्थात् काशी में मरने से मुक्ति मिलती है। यही कारण है कि अनेक मनुष्य जीवन की गोधूली में काशी-वास करते हैं जिससे मृत्यु के उपरान्त उन्हें मुक्ति मिल सके। काशी में दूर-दूर स्थानों से लोग मुर्दों को जलाने के लिए ले आते हैं। इस कार्य में भी उनके भीतर यही विश्वास काम करता हुआ पाया जाता है। काशी को 'महाश्मशान' भी कहा जाता है जिसका भाव यह है, यहाँ श्मशान में मुर्दे सदा जलते रहते हैं।

प्राचीन काल में काशी विद्या का केन्द्र रहा है। यह परम्परा आज भी अक्षुण्ण रूप से चली आ रही है। अतः यज्ञोपवीत के अवसर पर ब्रह्मचारी वेदाध्ययन के लिए अपने गुरु के पास काशी चला जाता था। आज भी जनेऊ के अवसर पर इस परम्परा का अनुकरण किया जाता है। किंबहुना, यह नगरी अपनी महिमा में स्वर्ग से भी बड़ी है। स्वर्ग भी इसकी तुलना में लघु अर्थात् छोटा है।

(२) प्रयाग

"प्रकृष्टेन यागः प्रयागः।" इस प्रकार प्रयाग का अर्थ वह नगर है जहाँ विशेष रूप से यज्ञ किया गया हो। जब पौराणिक काल में समुद्र-मन्थन से अमृत की उत्पत्ति हुई तब देवताओं तथा असूरों में उसके विभाजन के लिए झगड़ा हुआ। देवता लोग उस अमृत-कुम्भ को लेकर भागे। परन्तु उसकी कुछ बूँदें प्रयाग में गिर पड़ीं। तभी से यहाँ प्रति बारहवें वर्ष 'कुम्भ' का विशाल

मेला लगता है। त्रिवेणी के तट पर लगने वाला यह विराट मेला भारतीय जनता की दृढ़ आस्था का प्रतीक है, यह उनकी धार्मिक भावना की पुञ्जीभूत महान् राशि है।

लोगों का ऐसा विश्वास है कि त्रिवेणी के संगम पर स्नान करने वाले मनुष्यों को मुक्ति की प्राप्ति होती है। महाकवि कालिदास ने रघुवंश में "तनुत्यजां नास्ति शरीर बन्धः" लिखकर इसी तत्त्व का प्रतिपादन किया है।[1] गंगा और यमुना का यह संगम युग-युग से अत्यन्त पवित्र स्थान माना जाता रहा है। फिर यहाँ अन्तःसलिला सरस्वती का संगम होने से इस त्रिवेणी का महत्त्व सब तीर्थों से अधिक बढ़ गया। इसीलिए प्रयाग को तीर्थों का राजा 'तीर्थराज' कहा जाता है।

प्राचीन काल में यहाँ संगम पर अक्षयवट विराजमान था। लोगों का ऐसा विश्वास था कि इस वृक्ष से गिरकर त्रिवेणी के जल में मृत्यु हो जाने पर मानव को साक्षात् मोक्ष की प्राप्ति होती है। यह विश्वास इतना दृढ़ मूल हो गया था कि अनेक राजा यहाँ आकर 'भृगुपतन' करते थे और अपने शरीर को अग्नि में जलाकर (अग्निदाह) मुक्ति के भागी बनते थे। कलचुरी नरेश गांगेय देव के एक शिलालेख से पता चलता है कि उसने अपनी एक सौ स्त्रियों के साथ प्रयाग में संगम पर स्थित 'अक्षयवट' के पास मुक्ति प्राप्त की थी।

"प्राप्ते प्रयाग-वट-मूल-निवेश-बन्धौ;
सार्धं शतेन गृहिणीभिरमुत्र मुक्तिम्"

(ए० इ० भाग २, पृ०४)

इसी प्रकार कुमार गुप्त के अपसद स्थान में प्राप्त शिलालेख से ज्ञात होता है कि उसने प्रयाग में आकर अग्नि में जलकर अपना प्राण त्याग कर दिया था

'शौर्यं सत्यव्रत धारी, यः प्रयाग गतो घने"

इस प्रकार प्रयाग के संगम तीर्थ तथा अक्षयवट के महत्त्व का वर्णन

१. 'समुद्रपत्न्योर्जलसन्निपाते,
पूतात्मनामत्र किलाभिषेकात्।
तत्त्वावबोधेन विनापि यत्र;
तनुत्यजां नास्ति शरीरबन्धः।"

पुराणों तथा शिलालेखों में प्रचुर परिमाण में पाया जाता है । पद्मपुराण में प्रयाग की महिमा का अनेक सुन्दर श्लोकों में वर्णन आया है जिसकी अन्तिम पंक्ति है—

"स तीर्थराजो जयति प्रयागः ॥"

(३) गया

प्राचीन काल में गया एक बहुत बड़ा तीर्थस्थान था जिसकी महत्ता आज भी उसी रूप में अक्षुण्ण है । काशी, प्रयाग और गया ये तीन स्थान "त्रिस्थली" के नाम से प्रसिद्ध थे जिनका वर्णन "त्रिस्थली सेतु" नामक ग्रन्थ में अत्यन्त विस्तार के साथ किया गया है ।

लोगों की यह धारणा है कि गया में जाकर पितरों को पिण्डदान करने से उन्हें संसार के आवागमन से मुक्ति मिल जाती है । अतः आश्विन के कृष्ण पक्ष, जो पितृ पक्ष के नाम से प्रसिद्ध है, में इस देश के भिन्न प्रान्तों से लोग गया जाकर पितरों को पिण्डदान देते हैं । जिन लोगों के माता और पिता दोनों की मृत्यु हो जाती है वे लोग यहाँ पिण्डदान करके अपने पितरों को "बैठा" देते हैं अर्थात् उन्हें अपने जीवन में पुनः पितरों को पिण्डदान देने की आवश्यकता नहीं पड़ती ।

गया में फल्गु नदी में स्नान करना पुण्यदायक माना जाता है परन्तु यह बरसात के दिनों को छोड़कर प्रायः सूखी रहती है । यहाँ 'विष्णुपद' नामक मन्दिर है जहाँ विष्णु के पदों (चरणों) की स्थापना की गई है । प्रायः सभी भक्तगण फल्गु नदी में स्नान कर इस मन्दिर में भगवान् विष्णु का दर्शन करते हैं ।

(४) अयोध्या

भगवान् रामचन्द्र की जन्म-भूमि होने के कारण अयोध्या अत्यन्त महत्त्व-पूर्ण तीर्थस्थान माना जाता है । वाल्मीकीय रामायण में इसका विशेष वर्णन पाया जाता है । यह नगर सरयू नदी के तट पर अवस्थित है जिसका वर्णन कालिदास ने रघुवंश में किया है । लगभग चार सौ वर्षों से भगवान् राम के जन्मस्थान पर प्राचीन मन्दिर को तोड़वाकर बाबर ने एक मस्जिद बनवा दी थी । परन्तु यह प्रसन्नता की बात है कि अब हिन्दू लोगों को कचहरी से उस स्थान पर अधिकार प्राप्त हो गया है

पवित्र सप्तपुरियों में अयोध्या की गणना सबसे पहिले की गई है। इसी से इसकी महिमा का कुछ अनुमान किया जा सकता है।

"अयोध्या, मथुरा, माया, काशी, कांची, अवन्तिका।
पुरी, द्वारावती चैव; सप्तैताः मोक्षदायिकाः॥

इस प्रकार मोक्ष प्रदान करने वाली पुरियों में अयोध्या का स्थान सर्वप्रथम है। रामनवमी को, भगवान् रामचन्द्र के जन्म-दिन के अवसर पर, अयोध्या में बड़ा भारी मेला लगता है। उस समय भक्तगण सरयू में स्नान कर तथा राम जन्म-भूमि आदि पवित्र स्थानों का दर्शन कर अनन्त पुण्य का अर्चन करते हैं।

(५) मथुरा

यदि अयोध्या को भगवान् राम की जन्म-भूमि होने का गौरव प्राप्त है तो मथुरा की महिमा आनन्दकन्द श्रीकृष्ण के अवतार ग्रहण से है। कंस के अत्याचारों से पीडित तथा जेल की दीवार में बन्द वसुदेव के पुत्र के रूप में यहीं भगवान् कृष्ण ने जन्म लिया था। आज श्रीकृष्ण की उपेक्षित जन्म-भूमि के स्थान पर विशाल तथा भव्य मन्दिर का निर्माण हो गया है जो अत्यन्त दिव्य तथा दर्शनीय है। श्रीकृष्ण ने यद्यपि मथुरा में जन्म लिया था परन्तु उसका लड़कपन गोकुल में ही व्यतीत हुआ। अतः मथुरा के आस-पास की भूमि श्रीकृष्ण की लीलाओं के कारण परम पवित्र मानी जाती है।

सप्तपुरियों में मथुरा का नाम दूसरे स्थान पर आता है। यथा—

"अयोध्या, मथुरा, माया" आदि।

मथुरा यमुना नदी के तट पर स्थित है जो भारत की पवित्र नदियों में गंगा के पश्चात् अन्यतम मानी जाती है। स्नान करते समय धार्मिक पुरुष सामान्य नदी के जल में गंगा और यमुना का आवाहन कर उसे पवित्र किया करते हैं। यथा—

"गंगे च यमुने चैव; गोदावरी, सरस्वती।
नर्मदे सिन्धु; कावेरी; जलेस्मिन् सन्निधिं कुरु।"

मथुरा-निवासी यमुना को प्रायः 'जमुना मइया' कहकर इसके प्रति अपने प्रेम का प्रदर्शन करते हैं।

यमुना में स्नान करने के लिए अनेक पक्के घाट बने हुए हैं जिनमें विश्राम घाट अत्यन्त प्रसिद्ध है। लोगों का यह विश्वास है कि भगवान् कृष्ण ने कंस का वध करके यहीं विश्राम किया था। इसीलिए इसका नाम विश्राम घाट पड़ गया। कार्तिक शुक्ल द्वितीया को, जिसे यमद्वितीया भी कहा गया है, मथुरा में इस घाट पर स्नान करने की अत्यन्त महिमा है। जनता की ऐसी धारणा है कि इस दिन यमुना में स्नान करने से मानव को मुक्ति मिल जाती है और उसे यम का भय नहीं रहता। इस दिन भाई और बहिन का यहाँ एक साथ स्नान करना अनन्त पुण्य को देने वाला माना जाता है।

मथुरा से ६-७ मील की दूरी पर वृन्दावन स्थित है जो कृष्ण की लीलाओं का प्रत्यक्ष साक्षी है। इसके आस-पास बरसाना, नन्द गाँव, संकेत, गोवर्धन आदि गाँव बसे हुए हैं जिनका सम्बन्ध राधा और कृष्ण की लीलाओं से किसी-न-किसी रूप में पाया जाता है। एक दोहे में इन स्थानों की विशेषताओं का बड़ा ही सुन्दर वर्णन किया गया है।

"वृन्दावन सम वन नहीं, नन्दगाँव सो गाँव।
गोवर्धन सम गिरि नहीं, बरसाना सो ठाँव॥"

इस प्रकार मथुरा, वृन्दावन, नन्दगाँव तथा बरसाना आदि स्थान राधा-कृष्ण की ललित-लीलाओं के आज भी मूक साक्षी के रूप में अवस्थित हैं।

(६) हरिद्वार (माया)

इस तीर्थस्थान की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि यहीं पर गंगा जी पहाड़ से उतर कर समतल मैदान में आती हैं। इसके नामकरण का कारण यह है कि यहाँ से बदरीनाथ (विष्णु) के लिए रास्ता जाता है। अतः यह उस मन्दिर तक जाने के लिए द्वार स्वरूप है। इसे हरद्वार भी कहा जाता है क्योंकि केदारनाथ (शिव मन्दिर) के लिए भी यहाँ से यात्री जाते हैं।

हरिद्वार में गंगा का जल अपने परम पवित्र तथा निर्मल रूप में प्रवाहित होता है जिसे देखकर आश्चर्य होता है। यह जल इतना स्वच्छ तथा पारदर्शी (Transparent) है कि गंगा की तलहटी में पड़ा पैसा भी स्पष्ट दिखाई पड़ता है। यहाँ गंगा की धारा निर्मल तथा स्वच्छ होने के साथ ही अत्यन्त तीव्र भी है। अतः यात्रियों को बड़ी सावधानी के साथ यहाँ, गंगा में डुबकी

लगानी चाहिए। यहाँ सन्ध्या समय गंगा जी की आरती का दृश्य बड़ा ही सुहावना तथा दर्शनीय होता है। इसलिए तीन स्थानों में गंगा जी का दर्शन तथा अवगाहन अत्यन्त दुर्लभ माना जाता है।

"हरिद्वारे, प्रयागे च; गंगासागर संगमे।
सर्वत्रसुलभा गंगा; त्रिस्थानेषु सुदुर्लभा।"

आज भी हरिद्वार में कलकल-निनादिनी गंगा का दृश्य स्वर्गीय है जिसे देखकर यह कहा जा सकता है कि—

"समश्नुते मे लघिमानमात्मा।"

(७) उज्जैन (अवन्तिका)

इस तीर्थ स्थान की सप्तपुरियों में गणना की गई है। यथा—

"अयोध्या, मथुरा, माया, काशी, कांचो, अवन्तिका।
पुरी, द्वारावती चैव, सप्तैता, मोक्षदायिकाः॥"

प्राचीन काल में उज्जैन को अवन्तिका कहा जाता था। जिसका उल्लेख ऊपर के श्लोक में किया गया है। यहाँ महाकाल-शिव का अत्यन्त प्रसिद्ध तथा प्राचीन मन्दिर है जिसका उल्लेख महाकवि कालिदास ने 'मेघदूत' मे किया है। महाकाल का यह मन्दिर द्वादश ज्योतिर्लिङ्गों में माना जाता है। इस मंदिर की विशेषता यह है कि यहाँ महाकाल की मूर्ति पृथ्वी की सतह से नीचे के स्थान मे स्थित है। अतः दर्शनार्थ नीचे जाने के लिए सीढ़ियाँ बनी हुई हैं।

उज्जैन में शिप्रा नदी कलकल निनाद करती हुई प्रवाहित होती है। यह बडी ही द्रुत गति से बहती है। अतः इसे 'क्षिप्रा', तेज बहने वाली, भी कहा जाता है

प्रयाग तथा हरिद्वार की भाँति यहाँ भी बारह वर्षों के पश्चात् कुम्भ का विशाल मेला लगता है। उस अवसर पर देश के विभिन्न राज्यों से भक्तगण आकर शिप्रा में स्नान कर महाकाल का दर्शन करते हैं। यह नगर कालिदास की जन्मभूमि माना जाता है। यहाँ इस महाकवि के ग्रन्थों पर शोध करने के लिए एक अनुसन्धान संस्थान की स्थापना की गई है।

(८) जगन्नाथपुरी

आद्य शंकराचार्य ने भारत के पूर्वी भाग में पुरी (उड़ीसा) में दूसरे धाम

की स्थापना की थी जो 'गोवर्धन मठ' के नाम से आज प्रसिद्ध है। यहाँ पर पुरी के विशाल मंदिर में भगवान् जगन्नाथ (कृष्ण) अपने भाई बलराम और बहिन सुभद्रा के साथ विराजमान हैं। इस मन्दिर में अनेक विशेषताएँ उपलब्ध होती हैं। सर्वप्रथम किसी भी मन्दिर में, पुरी के मन्दिर के एक अपवाद को छोड़कर, भगवान् कृष्ण अपने भाई और बहिन के साथ विराजमान नहीं दिखाई पड़ते। दूसरी विशेषता यह है कि भगवान् की मूर्तियाँ प्रायः पत्थर अथवा किसी धातु पीतल, ताँबा, चाँदी, सोना की बनी हुई होती है परन्तु इस मन्दिर में ये तीनों ही मूर्तियाँ लकड़ी की बनी हुई है। ऐसी प्रसिद्धि है कि प्रत्येक बारहवें वर्ष समुद्र में लकड़ी अनायास बहती हुई चली आती है। पण्डा लोग समुद्र में बहती हुई उस लकड़ी को पकड़ लेते हैं और उसी से इन तीनों मूर्तियों का निर्माण किया जाता है।

हिन्दू मूर्तिशास्त्र के अनुसार मूर्तियों के सभी अंग परिपूर्ण होते हैं उनके सिर तथा भुजायें अधिक हो सकती हैं परन्तु कम नहीं। परन्तु इन तीनों मूर्तियों के आधे [illegible] हुए हैं। इसका 'माइथोलाजिकल' रहस्य कुछ हो सकता है परन्तु [illegible] जनता इसे नहीं समझती है।

इस मंदिर [illegible] बड़ी तथा प्रधान विशेषता यहाँ स्पर्शास्पर्श का अत्यन्त अभाव [illegible] खान-पान में कोई छुआछूत नहीं मानी जाती। भगवान् जगन्नाथ को अन्न, पक्वान्नों के साथ भात-दाल का भी भोग लगाया जाता है। यही दाल-भात' मिट्टी के बर्तनों में रखकर खुलेआम बाजारों में बिकता है और भक्तगण भगवान् का प्रसाद मानकर इसे बाजार से खरीद कर प्रेम से खाते हैं। इसी पके हुए चावल को जो धूप में सुखाया गया रहता है भक्तगण प्रसाद के रूप में अपने घर ले आते हैं जो 'महाप्रसाद' के नाम से प्रसिद्ध है।

आषाढ़ शुक्ल द्वितीया के दिन यहाँ रथ यात्रा का अत्यन्त विशाल मेला लगता है। इस अवसर पर तीन विशाल रथों पर इन तीनों मूर्तियों को स्थापित कर हजारों किम्वा लाखों भक्त उन्हें रस्से से खींचकर गन्तव्य स्थान को ले जाते हैं। इस रथ को खींचना अनन्त पुण्य की प्राप्ति का कारण माना जाता है। प्राचीनकाल में भक्तगण इन रथों के पहियों के नीचे दबकर अपने प्राणों का बलिदान कर देते थे। उनका यह दृढ़ विश्वास था कि ऐसा करने से मोक्ष की प्राप्ति होती है। परन्तु अंग्रेजों के राज में यह प्रथा बन्द कर दी गई। आज भी जगन्नाथपुरी की महिमा पूर्ववत् अक्षुण्ण है।

(९) द्वारिका (द्वारावती)

द्वारिका भी एक प्रसिद्ध धाम है जो गुजरात के सौराष्ट्र प्रदेश में समुद्र के किनारे स्थित है। आद्य शंकराचार्य ने अन्य धामों के साथ इसकी भी स्थापना की थी। यह तो प्रसिद्ध ही है कि भगवान् श्री कृष्ण महाभारत के युद्ध के पश्चात् द्वारिका चले गये थे और वहीं समुद्र के तट पर इस नगरी को उन्होंने बसाया था। श्रीकृष्ण का देहावसान यहीं हुआ था, जहाँ 'देहोत्सर्ग' के नाम से एक मंदिर भी पाया जाता है।

द्वारिका में समुद्र में स्नान कर भगवान् श्रीकृष्ण के दर्शन करने का अधिक महत्त्व है। इस स्थान का प्राकृतिक दृश्य बड़ा सुन्दर तथा सुहावना है। मंदिर के तीन ओर कोसों तक लम्बा मैदान है तथा एक ओर समुद्र की उत्ताल तरंगें इस मंदिर के चरण का प्रक्षालन करती हैं। यहाँ रुक्मिणी देवी का भी एक मंदिर पाया जाता है जो अन्यत्र उपलब्ध नहीं होता। रुक्मिणी श्रीकृष्ण की परिणीता तथा पाणिग्रहीता भार्या थी। परन्तु राधा के सामने उनका महत्त्व बहुत ही कम है।

समुद्र में टापू पर बसी हुई यह एक नगरी है जिसे 'बेंट द्वारिका' कहते हैं। यहाँ श्रीकृष्ण, राधा तथा अन्य देवताओं के भी मंदिर उपलब्ध होते हैं जिनका द्वारिका (द्वापर) में नितान्त अभाव है। इस प्रकार द्वारिका भगवान् श्रीकृष्ण के उत्तर चरित्र से संबंधित तीर्थस्थान है।

(१०) रामेश्वरम्

रामेश्वरम् दक्षिण भारत के तमिलनाडु राज्य में अवस्थित चौथा धाम है जिसकी स्थापना शंकराचार्य के द्वारा ही की गई थी। द्वारिका की भाँति यह भी समुद्र के ठीक तट पर स्थित है। ऐसी प्रसिद्धि है कि भगवान् रामचन्द्र ने रावण का वध करके तथा लंका पर विजय प्राप्त कर वहाँ से लौटते समय, यहाँ भगवान् शिव की प्रतिमा की स्थापना की थी। चूँकि राम ने ही इन्हें स्थापित किया था अतः इनका नाम रामेश्वर पड़ गया।

गाँवों में इस तीर्थ को सेतुबन्ध रामेश्वर कहा जाता है। चूँकि राम ने यहाँ समुद्र में पुल बाँधकर लंका की यात्रा की थी। अतः यह 'सेतुबन्ध रामेश्वर' के नाम से जाना जाता है। इस मंदिर में हरिद्वार या काशी से गंगा जल लाकर शिव के ऊपर चढाना अनन्त पुण्यदायक माना जाता है। अत अनेकों

यात्री बड़ी श्रद्धा से गंगा जल को यहाँ शिव पर चढ़ाते हैं जिसके लिए उन्हें कुछ फीस भी देनी पड़ती है।

आजकल रामेश्वरम् मंदिर के परिसर में ही वर्तमान शंकराचार्य का आश्रम भी स्थित है। रामेश्वरम् समुद्र में टापू पर बसा हुआ है जहाँ केवल रेल के द्वारा ही जाया जा सकता है। इसका अन्तिम रेलवे स्टेशन 'मण्डपम्' है जो समुद्र तट पर अवस्थित है।

(११) बद्रीनाथ

आद्य शंकराचार्य ने इस विशाल देश के चारों भागों में चार 'धामों' की स्थापना की जिसमें उत्तर दिशा मे स्थापित 'ज्योतिर्मठ' प्रसिद्ध है। इसे आज कल 'जोशी मठ' कहा जाता है। बद्रीनाथ, जिसका शुद्ध रूप बदरीनाथ है, का मंदिर इसी जोशी मठ से लगभग पचास-साठ मील ऊपर पहाड़ की अधित्यका पर अवस्थित है। यह स्थान पहिले उत्तर प्रदेश के गढ़वाल जिले में स्थित था परन्तु अब नये जिले की सृष्टि के कारण दूसरे जनपद में अवस्थित है।

प्राचीनकाल में जब इस तीर्थस्थल तक पक्की सड़कों का निर्माण नहीं हुआ था तब इस दुर्गम तीर्थ तक पहुँचना अत्यन्त कठिन था। लोग बड़ी कठिनाई से महीनों की पैदल यात्रा करके यहाँ पहुँचते थे। सर्व साधारण जनता का यह विश्वास है कि जो मनुष्य एक बार बद्रीनाथ का दर्शन कर लेता है वह अपनी माता के उदर में पुनः नहीं आता अर्थात् आवागमन से उसको मुक्ति मिल जाती है। "जो जाय बदरी, ऊ न आवे ओदरी" इस प्रकार बद्रीनाथ का दर्शन आवागमन से मुक्ति मिलने का प्रधान साधन है।[1]

(१२) बाला जी

यह दक्षिण भारत के आन्ध्र प्रदेश राज्य में तिरुपति नगर में स्थित, इस देश का सबसे धनी तथा समृद्ध मंदिर है। यह तिरुमल पर्वत की चोटी पर स्थित बड़ा ही रमणीय देव स्थान है जहाँ दर्शन करने के लिए लाखों भक्त प्रतिवर्ष आते हैं। उत्तर भारत के लोग इस मंदिर को बाला जी के नाम से पुकारते हैं। इस मंदिर में भगवान् विष्णु की पुरुष प्रमाण प्रतिमा स्थापित है। इस

१. इस लोकोक्ति को लेखक ने अपनी परम पूजनीय माता श्रीमती मूर्ति देवी से बचपन में सुना था।

प्रतिमा की छाती में व्रण का चिह्न आज तक दिखाई पड़ता है जो किसी भक्त की अतिशय भक्ति का परिणाम है।

इस मंदिर में भगवान् को सुवर्ण अर्पित करने की परम्परा पाई जाती है। अतः सभी भक्त अपनी श्रद्धा के अनुसार थोड़ा-बहुत सोना यहाँ अवश्य ही चढ़ाते हैं। भक्तों की भयंकर भीड़ के कारण यहाँ भगवान् का दर्शन पाँच-सात घंटे से कम समय में नहीं हो सकता। परन्तु जो लोग धनी हैं वे २५), ५०), १००) तथा २००) रुपयों का टिकट खरीद कर भगवान् का शीघ्र भी दर्शन कर सकते हैं।

यहाँ प्रत्येक यात्री अपने सिर के बालों का मुण्डन कराता है। ऐसा विश्वास है कि इससे अक्षय पुण्य का लाभ होता है। राज्य सरकार द्वारा इस मंदिर की व्यवस्था सुचारु रूप से की जाती है और प्रत्येक यात्री को निःशुल्क प्रसाद दिया जाता है जो इसी मंदिर की प्रधान विशेषता है।

(१३) गंगासागर

गंगा नदी बंगाल की खाड़ी में जहाँ समुद्र से मिलती है उस स्थान को 'गंगासागर' कहा जाता है। ऐसी प्रसिद्धि है कि इसी स्थान पर कपिल मुनि तपस्या कर रहे थे। अपने पिता के घोड़े को खोजते हुए राजा सगर के साठ हजार पुत्रों ने यहाँ आकर कपिल मुनि के साथ अत्यन्त अशिष्ट व्यवहार किया। अतः क्रोधित होकर मुनि ने उन्हें शाप दे दिया और वे सभी जल कर भस्म हो गये। अनेक शताब्दियों के पश्चात् उनके वंश में भगीरथ नामक एक प्रतापी राजा हुए। उन्होंने मुनि के शाप से भस्म अपने पूर्वजों के उद्धार के लिए कठोर तपस्या की और गंगा, जो उस समय स्वर्गलोक में थी, को पृथ्वी पर लाकर अपने पितरों का उद्धार किया। चूँकि गंगा राजा भगीरथ की तपस्या तथा प्रयास से पृथ्वीतल पर आई थी अतः इनका नाम 'भागीरथी' पड़ गया जो आज भी इसी नाम से प्रसिद्ध है।

प्राचीन काल में संभवतः यहीं पर कपिल मुनि का आश्रम था अतः आज भी इनका विशाल मन्दिर यहाँ अवस्थित है। मकर संक्रान्ति, १४ जनवरी, के अवसर पर प्रति वर्ष गंगासागर में स्नान करने के लिए लाखों तीर्थ-यात्री इस देश के विभिन्न भागों से यहाँ आते हैं और समुद्र में स्नान करके अनन्त पुण्य का संचय करते हैं। इस स्थान में गंगा जी समुद्र में आकर मिलती हैं अतः इसका प्राकृतिक दृश्य भी बड़ा ही सुन्दर है और वातावरण अत्यन्त पवित्र है।

जनता की यह धारणा दृढ़मूल है कि सब तीर्थों की यात्रा तो बार-बार की जाती है परन्तु गंगासागर में एक बार स्नान ही आवागमन में मुक्ति पाने के लिए पर्याप्त है।[1]

"सब तीरथ बार-बार।
गंगा-सागर एक बार॥"

इस लोकोक्ति का यह भी संकेत है कि गंगासागर तक पहुँचने की कठिनाइयों के कारण कोई भक्त दूसरी बार गंगासागर जाने की हिम्मत नहीं कर सकता। प्राचीन काल में जब रेलगाड़ियाँ नहीं थीं, पक्की सड़कों का भी निर्माण नहीं हुआ था तथा बसें भी नहीं चलती थी; उस समय भक्तों को वहाँ तक पहुँचने के लिए कितनी भयंकर कठिनाइयों का सामना करना पड़ता रहा होगा इसकी केवल कल्पना करके ही शरीर में रोमांच हो जाता है। आज भी गंगासागर की यात्रा कुछ कम कठिन नहीं है। फिर भी भक्तगण मकरसंक्रान्ति के अवसर पर वहाँ लाखों की संख्या में जाते हैं।

(१४) तारकेश्वर

यह पश्चिम बंगाल में कलकत्ता से थोड़ी दूरी पर स्थित है। भगवान् शिव के इस मन्दिर की बड़ी ख्याति है। सर्वसाधारण जनता का यह विश्वास है कि यहाँ भक्तों की मनोकामना पूर्ण होती है। अतः अनेक भक्त इस मन्दिर के प्रांगण तथा जगमोहन में अनेक दिनों तक बिना अन्न-जल ग्रहण किये हुए पड़े रहते हैं। अन्त में जब भगवान् शिव उन्हें स्वप्न में यह सन्देश देते हैं कि तुम्हारी मनोकामना पूरी होगी तभी वे अन्न-जल ग्रहण करते हैं। इस कारण तारकेश्वर के मन्दिर के जगमोहन में सोते हुए भक्तों की भीड़ सदा देखी जा सकती है।

जिस प्रकार उत्तर प्रदेश में विन्ध्यवासिनी देवी अत्यन्त "चलती हुई" देवी मानी जाती है उसी प्रकार से पश्चिम बंगाल के तारकेश्वर के इस शिव का महत्त्व है। मेरी ऐसी धारणा है कि कलकत्ता की काली के मन्दिर को छोड़कर तारकेश्वर का यह शिवालय बंगाल में सबसे प्रसिद्ध तीर्थस्थान है। यह शान्त तथा ग्रामीण वातावरण में स्थित है। अतः यहाँ जाकर तथा भगवान् तारकेश्वर का दर्शनकर अनन्त शान्ति की प्राप्ति होती है।

---

१ इस लोकोक्ति को भी मैंने अपनी पूजनीयता माता श्रीमती मूर्ति देवी से सुनकर प्राप्त किया था।

हस्त-प्रक्षालन

शौच के पश्चात् हाथों को मिट्टी से मलने की प्रथा है। "आह्निक सूत्रावली" में इस विषय का विस्तार के साथ वर्णन पाया जाता है कि किस हाथ में कितनी बार मिट्टी लगानी चाहिए। प्राचीन परम्परा का पालन करने वाले पण्डित लोग शौच के बाद पहिले बायें हाथ में अनेक बार मिट्टी लगाते हैं, फिर दाहिने हाथ के साथ भी ऐसा ही करते हैं इसके पश्चात् दोनों हाथों में और अधिक मिट्टी लगा कर हाथों को मलते हैं। बाद में जल से हाथ धोकर उन्हें साफ करते हैं।

इतना ही नहीं, वे दोनों पैरों के तलवे में भी मिट्टी लगाते हैं। इस प्रकार दोनों पैरों में अनेक बार मिट्टी लगाकर वे इन्हें साफ करते हैं। परन्तु धीरे-धीरे यह परम्परा नष्ट होती जा रही है।

किसी वस्तु को शुद्ध बनाने का साधन मिट्टी समझी जाती है। इसीलिए मिट्टी लगाकर बर्तन को साफ किया जाता है। शहरों में रहने वाले कुछ धार्मिक लोग साबुन से हाथ मलने पर भी उसे मिट्टी लगाकर बिना धोये स्वच्छ तथा पवित्र नहीं मानते।

दन्तधावन

शौच के पश्चात् दन्तधावन किया जाता है। स्वास्थ्य सम्बन्धी एक सूक्ति में नित्य प्रति दाँतों को मंजन लगाकर उन्हें साफ करने का आदेश दिया गया है।

"आँख में अंजन, दाँत में मंजन।
नितकर, नितकर, नितकर॥"

प्राय: आम-वृक्ष की 'दतुअन' पवित्र मानी जाती है। परन्तु बबूल तथा नीम की 'दतुअन' ही अधिक श्रेयस्कर मानी जाती है। उसमें भी नीम अधिक प्रशस्त तथा दाँतों के लिए लाभकारी है।

'दतुअन' एक बित्ता लम्बी तथा मोटी होनी चाहिए। घाघ ने लिखा है कि जो मोटी दातौन करता है उसका स्वास्थ्य ठीक रहता है। अत: स्वभावत: किसी वैद्य की उसे आवश्यकता ही नहीं पड़ती।

"मोटी दतुअन जो करै,
ता घर बैद न जाय।"

प्रत्येक दिन नीम अथवा बबूल की दातौन की जाती है। परन्तु 'ऋषि पचमी' व्रत के दिन चिचिण्डा की दातौन करना पवित्र तथा श्रेयस्कर माना गया है। कुछ स्त्रियाँ इस व्रत के दिन वर्ष के प्रत्येक दिन के लिए ३६५ दातौन करती हैं। यह केवल लोक-विश्वास है जिसमें कोई विशेष तत्त्व ज्ञात नही होता।

स्नान

किसी पवित्र नदी के जल में अथवा किसी तीर्थस्थान के स्नान करना पुण्यकारक माना जाता है। विशिष्ट मासों में विशेष नदियों में स्नान करने का महत्त्व पाया जाता है। काशी में कार्तिक मास में पंचगंगा घाट पर स्नान करने का बड़ा महत्त्व माना जाता है। जो लोग पूरे कार्तिक मास तक स्नान नही करते यदि वे कार्तिक शुक्ल एकादशी से लेकर पूर्णिमा तक केवल पाँच दिन स्नान कर लें तो उन्हें पूरे मास में स्नान करने का पुण्य मिलता है।

इसी प्रकार से प्रयागराज में त्रिवेणी के संगम पर माघ मास में स्नान करना अनन्त पुण्य का दायक जाना जाता है। यहाँ विशेषकर मकर संक्रान्ति १४ जनवरी के दिन स्नान करना मोक्ष को देने वाला है। अतः इस दिन प्रयाग में स्नानार्थियों की अपार भीड़ एकत्रित होती है। कार्तिक शुक्ल पक्ष द्वितीया, जिसे भातृद्वितीया भी कहा जाता है, को मथुरा में यमुना नदी मे स्नान करना अत्यन्त शुभ है। इस दिन यमुना मे स्नान करने से यमराज का भय नहीं रहता और मनुष्य को मुक्ति मिल जाती है। वैशाख मास में हरिद्वार मे गंगा में स्नान करना स्वर्ग प्राप्ति का कारण होता है। यहाँ मेष-संक्रान्ति अर्थात् १४ अप्रैल को विशाल मेला लगता है तथा भक्तगण गंगा में स्नानकर अपने को पापरहित मानते हैं।

ब्राह्ममुहूर्त में स्नान करना अति उत्तम माना जाता है। प्रत्येक मनुष्य के लिए दैनिक कर्म के रूप में प्रतिदिन स्नान करना आवश्यक है। जो पण्डित लोग त्रिकाल सन्ध्या करते हैं उनके लिए दिन में तीन बार स्नान करना आवश्यक धर्म है। बहुत से लोग प्रातः तथा सायं स्नान करते हैं।

धार्मिक लोग जब किसी नदी में स्नान करते हैं तब उस जल में इस देश की विभिन्न नदियों के जल का निम्नांकित मंत्र से आवाहन करते हैं।

"गंगे च यमुने चैव गोदावरी सरस्वती।
नर्मदे सिन्धु कावेरी जलेस्मिन् सन्निधि कुरु

इस मंत्र के पढ़ने से स्नान का जल पवित्र हो जाता है।

जिस मनुष्य ने किसी के मुँह में मुखाग्नि दी हो उनके लिए दिन में दो बार, घंट में जल देने के लिए स्नान करना अत्यन्त आवश्यक माना जाता है। संन्यासियों के लिए दोनों समय स्नान करना एक धार्मिक कृत्य है। प्रायः शीतल जल से स्नान करना चाहिए यद्यपि जाड़े के दिनों में गर्म जल से स्नान किया जा सकता है परन्तु सिर पर गर्म जल कभी नहीं डालना चाहिए। नदी में स्नान करना उत्तम है परन्तु जिस जलाशय—नदी या तालाब को पहिले से नहीं जानते उसमें कभी भी स्नान करना उचित नहीं है क्योंकि कोई खतरा हो सकता है। भगवान् मनु ने स्पष्ट ही लिखा है—

'नाऽविज्ञाते जलाशये ॥"

स्नान का निषेध

परन्तु कुछ अवस्थायें ऐसी होती है जिनमें स्नान करना निषिद्ध माना जाता है। जो स्त्री ऋतुमती हो उसे तीन दिनों तक स्नान नहीं करना चाहिए। वह केवल चौथे दिन स्नान कर शुद्ध होती है। इसी प्रकार से जिस गर्भवती स्त्री को बच्चा पैदा हुआ हो तथा जो अभी सूतिका-गृह (सौर-घर) में हो उसके लिए भी स्नान करना वर्जित है। किसी पण्डित या ज्योतिषी से कोई शुभ मुहूर्त दिखलाकर जब वह सूतिका-गृह से बाहर निकलती है, तभी स्नान कर सकती है अन्यथा नहीं।

किसी नदी में कमर भर से अधिक जल में बैठ कर स्नान नहीं करना चाहिए। इसी प्रकार से समुद्र में बैठकर ही स्नान करना उत्तम तथा सुरक्षित होता है। अन्यथा समुद्री लहरों के चपेट में आकर बह जाने की आशंका सदा बनी रहती है। रात्रि में सामान्यतया स्नान नहीं करना चाहिए परन्तु रात्रि में चन्द्र ग्रहण के अवसर पर स्नान करना धार्मिक कृत्य तथा आवश्यक कर्म है।

पाश्चात्य देशों में स्नान करना एक आवश्यकीय दैनिक कृत्य नहीं माना जाता। वहाँ 'पब्लिक स्वीमिंग पूल' (तरण ताल) अथवा समुद्र में स्नान करना भोग-विलास तथा आनन्द का साधन माना जाता है। अतः इन स्थानों में स्नान करना लोग अधिक पसन्द करते हैं।

पूजा-पाठ करना

मूर्ति पूजा

प्रत्येक व्यक्ति अपनी इच्छा तथा श्रद्धा के अनुसार अपने इष्ट देव की पूजा करता है। परन्तु पूजा प्रारम्भ करने के पहिले अभीष्ट देवता की मूर्ति की स्थापना करनी पड़ती है। शिव के कुछ भक्त प्रतिदिन पार्थिव पूजा करते हैं। अतः वे मिट्टी के सैकड़ों छोटे-छोटे लिंगों का निर्माण कर उनको धूप, दीप तथा पुष्प एवं चंदन से पूजते है। प्रतिदिन सैकड़ों शिवलिंगों को मिट्टी से बनाकर उनकी पूजा करना बड़ा ही कठिन व्यापार है परन्तु ये भक्त इस कष्ट को सहर्ष सहन करते हैं।

नवरात्र में शक्ति की उपासना करने वाले लोग सिंहवाहिनी दुर्गा की मिट्टी की प्रतिमा को बड़ी श्रद्धा से नौ दिनों तक पूजा करते हैं। ये पुरुष-प्रमाण प्रतिमायें विशेषप्रकार की मिट्टी से बनाई जाती हैं। इनके निर्माण में कई मास लगते हैं तथा हजारों रुपये व्यय होते हैं। ये मूर्तियाँ नवरात्र के बाद नदी में प्रवाहित कर दी जाती हैं।

किसी मांगलिक कार्य के प्रारम्भ में गणेश की पूजा की जाती है। धातु-मयी मूर्ति के अभाव में गोबर से इनकी प्रतिमा बनाकर पूजी जाती है। इसी-लिए इसे 'गोबरगणेश' भी कहा जाता है। अन्य देवताओं की पाषाण अथवा धातु से निर्मित मूर्ति की ही पूजा की जाती है।

आसन

पूजा प्रारम्भ करने के पहिले भक्त किसी आसन पर बैठ कर ही पूजा करता है। साधारण लोग किसी पीढ़ा अथवा काठ की छोटी चौकी (तख्ता) पर बैठकर पूजा करते हैं। परन्तु पूजा करने के लिए सबसे पवित्र तथा उचित आसन कुशासन ही समझा जाता है। यह कुश की बनी हुई दो-तीन फीट लम्बी तथा चौड़ी चटाई होती है। परन्तु कुछ धनी तथा समृद्ध पुरुष मृग चर्म के आसन पर अपने अभीष्ट देवता की आराधना करते हैं। कुश के आसन के समान ही मृग चर्म भी पवित्र माना जाता है।

परन्तु इन दोनों के अभाव में ऊन की बनी हुई आसनी भी इस कार्य के लिए प्रयोग में लाई जाती है। जहाँ यह आसनी भी न हो वहाँ कोई भी स्वच्छ सूती वस्त्र आसन के रूप में बिछाकर पूजा किया जा सकता है। भगवान् श्रीकृष्ण ने गीता में आसन के सन्दर्भ मे "चैलजिन कुशोत्तरम्" का उल्लेख किया है जिसका भी अभिप्राय यही है। समुद्र के किनारे अथवा किसी नदी

के तट पर पूजा करते समय वहाँ की बालुका राशि ही उत्तम आसन है। किसी पहाड़ी नदी के किनारे पाषाण-शिला पर आसन जमाकर पूजा की जा सकती है। इस प्रकार स्थान के अनुसार आसन का चुनाव करना चाहिए।

पुष्प, धूप तथा आरती

भगवान् की पूजा में पुष्प, धूप और आरती आवश्यक उपादान माने गये हैं। साधारणतया किसी भी रंग का पुष्प देवता की पूजा में चढ़ाया जा सकता है परन्तु दुर्गा को लाल फूल अधिक प्रिय है। अतः इन्हें अड़हुल का लाल पुष्प अर्पित किया जाता है। इस देवी को अड़हुल की लाल माला पहिनाई जाती है।

सावन मास में भगवान् शिव के लिंग पर बेल-पत्र चढ़ाने का अधिक माहात्म्य है। अतः भक्तगण बेल-पत्र पर लाल स्याही से 'राम नाम' लिख कर शिव को अर्पित करते हैं। शिव को संभवतः सफेद फूल पसन्द है। अतः इन पर मदार का लम्बा तथा सफेद पुष्प चढ़ाया जाता है। एक श्लोक में 'मदार माला' का उल्लेख भी प्राप्त होता है।

पूजा के अन्त में देवता की आरती की जाती है। यह आरती शुद्ध घी में रुई की बत्ती भिगोकर बनाई जाती है। हरिद्वार में सन्ध्या समय गंगा मइया की जो आरती की जाती है वह बड़ी ही भव्य तथा दिव्य होती है। परन्तु इसके अभाव में कपूर को भी जलाकर आरती की जाती है परन्तु यह थोड़ी ही देर में बुझ जाती जाती है। आजकल पूजा में धूप बत्ती जलाई जाती है। परन्तु कुछ वर्षों पहिले धूप जलाया जाता था जो चन्दन के चूर्ण से बनता था। इस प्रकार पुष्प तथा धूप देकर तथा आरती करके किसी देवता की पूजा पूर्ण समझी जाती है।

नाखून काटना (विदेशी-मान्यता)

नाखून काटने के संबंध में विदेशों में उनके लोक-विश्वास प्रचलित हैं। इन नाखूनों को विभिन्न दिनों में काटना शुभ तथा अशुभ शकुन का सूचक है रविवार को नाखून काटना अशुभ है। सोमवार को स्वास्थ्यवर्धक, मंगलवार को धन देने वाला, बुधवार को शुभ संदेशदायक, वृहस्पति को दुःखदायक,

शुक्रवार को विपत्तिकारक समझा जाता है। परन्तु शनिवार को किया गया यह कार्य अगले ही दिन प्रियतमा की प्राप्ति का सूचक है।[1]

रोमन साम्राज्य के लोगों के लिए प्रत्येक मास की नवीं तारीख (तिथि) को नाखून काटना अशुभ की सूचना देता था। यहूदी लोग शुक्रवार को यह कार्य करना शुभ मानते थे। हर्टफोर्ड शायर में इसी से मिलती-जुलती एक अन्य लोकोक्ति भी प्रसिद्ध है।

कपड़ा धोना (विदेशी-मान्यता)

किस दिन कपड़ा धोना शुभ है तथा किस दिन यह अशुभ माना जाता है। इसके संबंध में लोक-विश्वासों की कुछ कमी नहीं है। इंग्लैण्ड में कपड़ा साफ करने के लिए सभी दिन शुभ तथा मंगलदायक नहीं माने जाते। सोमवार को कपड़ा धोने से आगे के पूरे सप्ताह में सूखा पड़ता है। परन्तु मंगल के दिन यह बात नहीं है। बुधवार के दिन यह कार्य करने से कपड़े बहुत ही साफ धुलते हैं। परन्तु बृहस्पति के दिन यह बात नहीं है। शुक्रवार के दिन आवश्यकता के लिए यह कार्य किया जाता है। परन्तु शनिवार को मूर्ख लोग ही यह काम करते हैं।[2]

---

१. "A man had better never been born,
Than have his nails on a Sunday shorn,
Cut them on Monday, cut them for health,
Cut them on Tuesday, cut them for wealth,
Cut them on Wednesday, cut them for news,
Cut them on Thursday, for a pair of new shoes,
Cut them on Friday, cut them fer sorrow,
Cut them on Saturday, see your sweet heart To-morrow"

—डायर—इं० फो० लो०, पृ० २३६

२. "They that wash on monday,
Have a whole week to dry,
They that wash on Tuesday,
Are not so much arye,

(शेष फुटनोट पृष्ठ २०३ पर)

विविध कर्म तथा पदार्थ संबंधी विश्वास

संसार में ऐसे अनेक कर्म अर्थात् क्रियायें होती है जैसे शीशा का टूट जाना, किसी वर्तन का गिर कर फूट जाना आदि जिनके विषय में अनेक लोक-विश्वास पाये जाते हैं। इसी प्रकार से अनेक धातु—जैसे लोहा, सोना, चाँदी, आदि हैं जो लोक-विश्वास के लिए प्रसिद्ध हैं। इसके अतिरिक्त अनेक स्वयंचालित शारीरिक क्रियायें—जैसे छींक का आना, जम्हाई का लेना आदि भी हैं जिनके विषय में जनता में अनेक मान्यतायें प्रचलित हैं।

कुछ बहुमूल्य पत्थर—जैसे हीरा, नीलम, मूँगा, पन्ना आदि भी हैं जो लोक-विश्वास के धनी हैं। इन्हीं सब क्रियाओं तथा पदार्थों का वर्णन इस अध्याय में किया जाता है। चूँकि इन विविध पदार्थों का कोई श्रेणी विभाजन करना कठिन है। अतः इन सभी पदार्थों को विविध अध्याय में स्थान दिया गया है। आशा है इस प्रकार से वर्णन में सुविधा प्राप्त होगी।

शरीर की स्वतःचालित क्रियायें

(क) छींक

छींक शरीर की एक ऐसी स्वयंचालित क्रिया है जो अनायास आप-से-आप हुआ करती है। इसके लिए कोई प्रयास नहीं करना पड़ता।

भड्डरी

लोक कवि भड्डरी ने छींक के विषय में बड़ा विचार किया है। उनके अनुसार यदि छींक सामने हो तो लड़ाई की संभावना होगी और यदि पीठ पीछे हो तो उस मनुष्य को सुख होगा। दाहिने ओर की छींक धन का नाश करने वाली तथा बाईं ओर की छींक सदा सुख देने वाली होती है। जोरों

(पृष्ठ २०२ का शेष फुटनोट)

They that wash on Wednesday,
May get their cloths clean,
They that wash on Thursday
Are not so much to mean.
They that wash on Friday,
Wash for their need.
But they that wash on Saturday
Are clarty-paps indeed."

हायर ० फो० लो० पृ० २४६

से की गई छींक शुभ और हल्की छींक भय उत्पन्न करने वाली होती है। अपनी छींक बड़ी ही सुखदायिनी होती है।[१]

विदेशों में छींक सम्बन्धी विश्वास

भारत की भाँति विदेशों में भी छींक के सम्बन्ध में लोक-विश्वास प्रचलित हैं। डेवोनशायर में यह मान्यता प्रसिद्ध है कि यदि रविवार के दिन प्रातः छींक हो तो उस मनुष्य को अपनी प्रियतमा की प्राप्ति होती है।[१] इसी जनपद में विभिन्न दिनों छींक होने से निम्नांकित फल की प्राप्ति होती है।[२] सोमवार को छींक करने से क्रोध आना, मंगल को किसी अपरिचित का चुम्बन, बुध, बृहस्पति तथा शुक्र को छींकना दान देना, शनि के दिन पुरस्कार पाना तथा रविवार के प्रातः जलपान करने के पहिले छींकना प्रिया की प्राप्ति का सूचक है।[३]

---

१. "सनमुख छींक लड़ाई भाखै ।
पीठि पाछिली सुख अभिलाषै ।।
छींक दाहिनी धन को नासै ।
बाम छींक सुख सदा प्रकासै ।।
ऊँची छींक महा सुभकारी ।
नीची छींक महा भयकारी ।
अपनी छींक महा सुखदाई ।
कहु भड्डर जोसी समुझाई ।।"

—त्रिपाठी—ग्राम साहित्य, भा० ३, पृ० १६३

२. "Sneeze on Sunday morning fasting you will enjoy your own true love to ever lasting,"

३. "To sneeze on Monday hastens anger,
To sneeze on Tuesday kiss a stranger,
To Sneeze on Wednesday
To Sneeze on Thusday,
To Sneeze on Friday, give a gift.
To sneeze on Saturday, receive a gift.
To sneeze on Sunday,
Before you break your fast yow'll see your true love,
Before a week's past." —डायर—इं० फो० लो०, पृ० २३६

लोक में प्रचलित एक अन्य लोकोक्ति के अनुसार शनिवार की रात्रि को यदि कोई व्यक्ति प्रकाश के बुझ जाने पर छींकता है तब दूसरे दिन प्रातःकाल उसे एक ऐसे अपरिचित व्यक्ति से भेंट होगी जिसे उसने कहीं नहीं देखा हो। परन्तु सोमवार को छींकने पर एक सप्ताह में भीतर ही किसी पुरस्कार के पाने की संभावना होती है।[१]

परन्तु इन लोक-विश्वासों का सम्बन्ध स्वाभाविक रूप से आने वाली छींक से ही समझना चाहिए। जुकाम (ठंढक) अथवा नस के सूँघने से होने वाली छींकों से इसका कोई सम्बन्ध नहीं है।

(५) परिच्छेद

गृह-सामग्री सम्बन्धी लोक-विश्वास

(१) मूसल

मूसल से चावल को छाँटने का कार्य किया जाता है। जब धान से चावल कूटने की मशीनें नहीं थीं तब इन्हीं मूसलों से चावल कूटा जाता था।

विवाह के अवसर पर जब वर बारात के साथ जाने को तैयार होता है तब घर की स्त्रियाँ मार्ग में मिलने वाले प्रेतात्माओं से उसकी रक्षा के लिए वर के सिर के चारो ओर मूसल घुमाती हैं। जब वर विवाह करके नव-विवाहिता वधू के साथ घर लौटता है उस समय भी घर तथा गाँव की स्त्रियाँ दोनों के सिर के चारों ओर मूसल घुमाती हैं जिसे 'परीछना'' कहते हैं। लोक-गीतों में इसका उल्लेख प्रायः पाया जाता है।

बंगाल में जब किसी बालक का अन्नप्राशन संस्कार किया जाता है उस समय भी मूसल से उसे 'परीछा' जाता है। बैसाख में मूसल की नियमित रूप से पूजा की जाती है। वर के विवाह के लिए चले जाने पर, मूसल के अगले भाग को सिन्दूर से सुशोभित कर उस पर तेल गिरा कर अभिषिक्त करते हैं। फिर अक्षत तथा दूब इस पर चढ़ाते हैं। इस प्रकार इसकी पूजा की जाती है।

मूसल श्रीकृष्ण के भाई बलराम का आयुध या हथियार है। इसीलिए

---

१. "Sneeze on Monday, and you will
Have a present ere the week is out."

—डायर—इं० फो० लो०, पृ० २४०

वे 'मुशली' कहे जाते हैं। बलराम के चित्र में उन्हें दाहिने हाथ में मूसल लिये अंकित किया गया है। भोजपुरी स्त्रियाँ भयंकर आपसी युद्ध के अवसर पर मूसल को लेकर मार-पीट करती हैं जिसका उल्लेख एक बिरहा में इस प्रकार उपलब्ध होता है।

"सासु पतोहिया में लागल बा झगरवा
कइली मुसरवा के मार।
आजु पतोहिया के हम बन दिहिति
कि जीयत रहिते बूढ़ऊ हमार।"[1]

(२) सिल (सिलवट)

सिलवट पर लोढ़ा के द्वारा मसाला आदि पीसा जाता है। अत: यह घरेलू वस्तुओं में महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। सिलवट और लोढ़ा का साहचर्य अभिन्न है क्योंकि एक के बिना दूसरे का उपयोग असंभव है।

तिलक के दिन पितरों की पूजा की जाती है। उसी दिन से लोढ़ा के साथ सिलवट को उलट कर किसी घर में रख दिया जाता है। विवाह के दिन फिर इस सिलवट को उलट कर पूर्व अवस्था में कर दिया जाता है। ऐसा करने से पितरों की रक्षा तथा उनका पुन: आगमन माना जाता है। सिलवट पर मसाला पीस कर उसको उलट कर रख देना चाहिए। यदि सिलवट टूट कर दो टुकड़ों में हो तो इसे अशुभ मानते हैं। दीवाली के दिन सिलवट पर दीपक रख कर उसको आदर दिखाया जाता है।

(३) लोढ़ा

लोढ़ा ठोस पत्थर से बनाया जाता है और यह सिलवट पर मसाला पीसने के काम में लाया जाता है। भोजपुरी प्रदेश में यह प्रथा विद्यमान है कि विवाह के लिए जाते हुए वर को घर तथा गाँव की स्त्रियाँ लोढ़ा से "परीछती" हैं। उनकी यह धारणा है कि इससे वर की रक्षा होती है। विवाह के पश्चात् वधू के साथ घर लौटने पर भी वर-वधू को लोढ़ा से 'परीछा' जाता है। लोहा तथा पत्थर मे प्रेतात्मा (Lower spirits) को भगाने की शक्ति मानी जाती है। इसीलिए सम्भवत: यह प्रथा प्रचलित है।

भोजपुरी क्षेत्र में तिलक के पश्चात् सिल और लोढ़ा की पूजा की जाती

1. डॉ० उपाध्याय — भो० लो० गी०, भाग 1

हैं और उन्हें उलट करके घर में एक सुरक्षित स्थान पर रख दिया जाता है। जिस दिन बालक का विवाह होता है उस दिन सिल और लोढा दोनों को उलट कर पूर्व अवस्था में कर दिया जाता है। इस प्रक्रिया को 'पितर नेवतना' कहा जाता है। लोकगीतों मे वर को परीछने के अनेक गीत उपलब्ध होते हैं जो बड़े ही मार्मिक हैं।[1]

(४) चलनी

चलनी का उपयोग आटा छानने के लिए किया जाता है। इसे भोजपुरी में चालनि, संस्कृत में 'तितउ' तथा अंग्रेजी में 'सीभ' (Sieve) कहते हैं। ऋग्वेद में लिखा है कि जिस प्रकार चलनी से अन्न (आटा) छाना जाता है उसी प्रकार से विद्वान् लोग वाणी का चयन कर (छानकर) उपयोग करते हैं। चलनी में सैकड़ों छिद्र होते हैं। अतः वह उस व्यक्ति का प्रतीक है जिसमें अनेक दोष हैं। अतः लोगों में यह लोकोक्ति प्रसिद्ध है कि "सूप हँसे तो हँसे, लेकिन चलनिया का हँसे जेकरा में सैकड़न छेद।" अर्थात् जो व्यक्ति स्वयं सैकड़ों दुर्गुणों से युक्त है वह दूसरों की क्या हँसी उड़ा सकेगा।

स्काटलैण्ड में चलनी का प्रयोग भविष्य के सूचक के रूप में किया जाता था। इसका उपयोग भूत-दूतों को भगाने के लिए भी होता था। आयरलैण्ड में विवाह के अवसर पर चलनी में भोज्यान्न को वधू के सिर पर रखा जाता था। विश्वास था कि ऐसा करने से घर में समृद्धि का आगमन तथा वन्ध्यापन दूर हो जाता है।[2]

(५) सूप

सूप का उपयोग कदन्न को 'फटक' कर अलग कर देने में किया जाता है। कबीरदास ने लिखा है कि साधु पुरुष का स्वभाव सूप के समान होता है वह थोथा वस्तुओं को निकाल कर केवल सत्य तथा तथ्य को धारण करता है।[3] भोजपुरी स्त्रियाँ दीवाली के दूसरे दिन सूप को छड़ी से पीटती हुई

---

१. (क) "परीछि ना लेहु मोरे राम हो दुलरुआ।"
   (ख) "अपना राम के हम अपने परीछबि।"
   —डॉ० उपाध्याय—भो० लो० गी०; भाग १

२. क्रुक—पा० रि० फो० लो० ना० इ०, भाग २, पृ० १८७-८८

३. "साधु ऐसा चाहिए, जैसा सूप सुभाय।
   सार-सार को गहि रहे, थोथा देइ उड़ाय॥"

दरिद्रा को अपने घर से निकाल देती हैं जिसे 'दलिद्दर खेदना' कहते हैं। उनका ऐसा विश्वास है कि इससे दरिद्रता दूर हो जाती है। इसी प्रथा पर आधारित यह लोकोक्ति प्रसिद्ध है कि "सूप के डबडबाने (या पीटने) से दरिद्रता दूर नहीं हो सकती।"

संस्कृत में सूप को 'सूर्पी' कहते हैं। प्राचीन काल से ही मोटी तथा भद्दी वस्तु को सूक्ष्म से पृथक् करने की सूप की प्रवृत्ति का उल्लेख पाया जाता है।[1] नवजात शिशु कृष्ण को सूप में लेकर वसुदेव ने यमुना पार कर उन्हे यशोदा तथा नन्द के घर गोकुल पहुँचाया था।

महाराष्ट्र में नवजात शिशु को सूप में सुलाते हैं और विशिष्ट अवसर पर उसकी पूजा की जाती है। उत्तरी भारत में यह प्रथा पाई जाती है यदि किसी माता का प्रथम पुत्र मर जाता है तब दूसरे नवजात पुत्र को वह सूप में रख कर उसका 'खदेटन' या 'घसीटन' नामकरण करती है जिससे उस बालक को कुदृष्टि न लगने पाये। विवाह में कन्या का भाई सूप में लावा को रख कर वर-कन्या के ऊपर फेंकता है। लोगों का यह विश्वास है कि ऐसा करने पर स्त्री का वन्ध्यापन दूर हो जाता है। मधुयामिनी के लिए जाते हुए नव विवाहित वर-वधू पर लावा फेंकने की प्रथा विद्यमान है।

भोजपुरी प्रदेश में सूप को पीटकर 'दलिद्दर खेदना' (दरिद्रा निःसारण) की प्रथा की भाँति ही एक अन्य प्रथा पाई जाती है। गाँव के नवयुवक संध्या को एकत्रित होकर टीन को बजाते हुए तथा हल्ला मचाते हुए दूसरे गाँव को जाते हैं। दूसरे गाँव के युवक उनका स्वागत करते हैं और 'पास्टेरली' की प्रतिमा को गाँव के बाहर फेंक आते हैं। ग्रीक लोगों में भी कुछ ऐसी ही प्रथा प्रचलित थी जिसका उल्लेख थियोक्रिटस ने किया है। स्काटलैण्ड मे वन्ध्यापन को दूर भगाने के लिए सूप मे अन्न रखकर उसका प्रयोग किया जाता था।[2]

---

१. 'सत्कविरसना सूर्पिः, निष्तुषतर सालिपाकेन।
  ....दयिताधारमपि, नाद्रीयते का सुधा दासी॥"

२. इसके विशेष विवरण के लिए देखिए—
  —क्रुक, पा० रि० फो० लो० ना० इ० भाग २, पृ० १८७-९०

(६) झाड़ू

गृह की स्वच्छता को प्रतिदिन सम्पन्न करने के लिए प्रत्येक गृहिणी झाड़ू का प्रयोग करती है। परन्तु कुछ ऐसे अवसर भी आते हैं जब घर में झाड़ू लगाना निषिद्ध माना जाता है। यदि कोई प्रिय व्यक्ति घर से परदेश चला जाता है तो उस दिन घर में झाड़ू का प्रयोग अशुभ माना जाता है। दिवाली के दिन लक्ष्मी का घर में आगमन होता है, ऐसा लोक-विश्वास है। अतः दिवाली के दूसरे दिन से भइया दूज तक घर में झाड़ू लगाना निषिद्ध है। ऐसा करने से घर में आई हुई लक्ष्मी के चले जाने की आशंका होती है। इसी प्रकार से राम नवमी की पूर्व रात्रि को देवी की पूजा की जाती है। अतः रामनवमी को दिन भर घर में झाड़ू नहीं लगाया जाता। नवागता वधू की विदाई के दिन भी घर को झाड़ू से साफ नहीं किया जाता।

बृहस्पति और शनिवार को बाजार से झाड़ू नहीं खरीदना चाहिए। सूर्यास्त हो जाने पर घर की सफाई झाड़ू से नहीं करनी चाहिए। जब सफाई का कार्य समाप्त हो जाय तब झाड़ू को दीवाल के सहारे खड़ा रखना अशुभ है। इससे घर मे झगड़ा लगने की आशंका होती है। मोर के पंखों से बने हुए झाड़ू का प्रयोग प्रेतात्मा से पीड़ित व्यक्ति के भूत-दूत को 'झारने' के प्रयोग मे लाया जाता है।

महाराष्ट्र में जिस बालक को नजर लग जाती है उसे नीरोग करने के लिए टोटका के रूप झाड़ू को तीन बार जमीन पर पटका जाता है। इसी राज्य में यह मान्यता है कि झाड़ू को पैरों से रौंदना नहीं चाहिए अन्यथा गर्भिणी स्त्रियों को कष्ट होता है।

विदेशों में झाड़ू के संबंध में अनेक लोक-विश्वास प्रचलित हैं। जर्मनी के बवेरिया प्रदेश में घर की दासियाँ इस बात का सदा ध्यान रखती हैं कि झाड़ू को पैरों से रौंदा न जाय। गर्भिणी स्त्रियों के लिए तो ऐसा करना अत्यन्त निषिद्ध है। इस नियम का उल्लंघन करने पर प्रसव में अनेक कष्ट होता है। यदि बालक पैदा भी हुआ तो उसका शरीर छोटा परन्तु सिर बड़ा होता है। यदि कोई व्यक्ति अनजान में गलती से झाड़ू को लाँघ जाता है तब वह इस दोष का परिमार्जन पुनः पीछे उलट कर लौट जाने से कर देता है।[1]

1 फोकलोर पत्रिका भाग 1 पृ० 157

इटली देश में झाड़ू का प्रयोग लैटिन काल में भूत-दूत को भगाने में किया जाता था।[1] इङ्गलैण्ड के 'पब्लिक स्कूलों' में उदण्ड बालकों को दण्डित करने के लिए इसका उपयोग बहुत वर्षों तक किया जाता था।

(७) साबुन

साबुन एक ऐसा घरेलू पदार्थ है जिसका उपयोग प्रत्येक घर में आवश्यक रूप से होता है। साधारण किसान की झोपड़ी से लेकर राज-प्रासादों तक इसका व्यवहार पाया जाता है। कुछ वर्षों पहिले संस्कृत के पण्डितों की यह धारणा थी कि साबुन जानवरों की चर्बी से बनाया जाता है। अतः यह अपवित्र है। इस कारण पण्डित जन इसका प्रयोग नहीं किया करते थे परन्तु यह विश्वास अब धीरे-धीरे समाप्त होता जा रहा है।

इंग्लैण्ड के लोगों का यह लोक-विश्वास है कि यदि साबुन की बट्टी किसी व्यक्ति के हाथ से छटक कर दूर गिर जाय तो यह दुर्भाग्य का सूचक है। 'नोट् एण्ड क्वेरीज़' नामक पत्रिका के एक संवाददाता ने एक ऐसी ही घटना का उल्लेख किया है। "एक बुढ़िया किसी दुकान से आधा पाउण्ड साबुन कपड़ा धोने के लिए खरीद कर ले गई। परन्तु कपड़ा धोने के पहिले ही वह साबुन हाथ से छूटकर गिर गया। वह पुनः साबुन खरीदने उसी दूकान पर गई। दूकानदार ने इस घटना की जानकारी प्राप्त कर उसे वहाँ न जाने की चेतावनी दी। परन्तु हठी बुढ़िया न मानी और अन्त में उसे हठधर्मिता का दुष्परिणाम भुगतना पड़ा।"[2]

(८) शीशा

शीशा का टूटना अशुभ का सूचक माना जाता है। परन्तु यात्रा के समय शीशा में मुख देखकर जाना अत्यन्त शुभ है। आजमगढ़ तथा फैजाबाद जिलों में ऐसी मान्यता है कि छोटे बालकों को जब तक वे तुतलाने न लगें शीशा नहीं दिखलाना चाहिए। क्योंकि इसके पहिले शीशा में उनका मुँह दिखला देने पर उनके गूँगा हो जाने की आशंका बनी रहती है।

विदेशों में भी शीशा का टूट जाना मृत्यु विशेषकर गृह स्वामी, की सूचना देता है। कार्नवाल में शीशा का दो टुकड़ों में हो जाना सात वर्षों तक विपत्ति

---

१. क्रुक—पा० रि० फो० लो० ना० इ० भाग दो, पृ० १९०-९१

२. डायर—इं० फो०, पृ० २७२

का सूचक है। सुप्रसिद्ध सैनिक तथा फ्रांस के सम्राट्, कर्मठ तथा वीर नेपोलियन की इस विश्वास के प्रति अटूट आस्था प्रसिद्ध है। इटली के ऊपर आक्रमण के समय एक दिन अपनी प्रेयसी जोसेफिन के चित्र के सामने शीशा के टूट जाने से बुरी आशंका तथा अपशकुन से वह अत्यन्त बेचैन हो गया। उसने अपने विशेष दूत को जोसेफिन का शुभ समाचार लेने के लिए भेजा। उसके मानस पटल पर अपनी प्रियतमा की मृत्यु की आशंका इतनी दृढ़ हो गई थी कि जब तक उस दूत ने जोसेफिन का शुभ समाचार उसे नहीं सुनाया तब तक उसे शान्ति नहीं मिली।[1]

(९) मोमबत्ती

भारत में मोमबत्ती का उपयोग सर्वसाधारण जनता नहीं करती। अत: संभवत: इसके संबंध में कोई लोक-विश्वास प्रचलित नहीं हैं। परन्तु विदेशों में इसका समधिक प्रयोग होने के कारण इसके विषय में अनेक मान्यतायें प्रसिद्ध है।

ग्रीस का कथन है कि यदि मोमबत्ती की लौ के चारों ओर मोम की चर्बी ऊँची खड़ी दिखाई पड़े तो यह अशुभ-सूचक है। इस कारण परिवार के किसी व्यक्ति की मृत्यु हो सकती है। यदि मोमबत्ती के लौ का प्रकाश अधिक तेज हो तो यह समझना चाहिए कि किसी प्रेमी का पत्र आयेगा। हण्ट ने लिखा है इस पत्र के आने के समय का भी अनुमान लगाया जा सकता है। यदि मोमबत्ती के आधार पात्र (कैण्डिलस्टिक) को टेबुल पर पटका जाय और ऐसा प्रथम बार करने पर ही चिनगारी निकलने लगे तब वह पत्र दूसरे ही दिन प्राप्त हो जायेगा। यदि दो बार पटकने की आवश्यकता पड़े तो दो दिनों के बाद समझना चाहिए।[2]

(१०) आल्पिन

सरकारी तथा गैर सरकारी कार्यालयों के किरानी बाबू (क्लर्क) लोग पिन या आलपिन से पूर्णतया परिचित होते हैं। यह पिन आफिस के विभिन्न कागजों को एक साथ जोड़कर रखने के उपयोग में आता है। परन्तु उन क्लर्कों को यह क्या पता है कि जिन आलपिनों के द्वारा वे कागजों को एक साथ मिलाकर रखते हैं इन्हीं पिनों के द्वारा इंग्लैण्ड में दो प्रेमी जीवों के

१. डायर—ई० फो, पृ० २७७

२. "Popular Romances of the west of England."—Hunt

हृदय को भी जोड़ा अथवा मिलाया जा सकता है। १५ जुलाई सन् १८७३ ई०—आज से एक सौ वर्ष पूर्व, डर्बी नामक स्थान में बेन्जमिन हडसन नाम के किसी व्यक्ति को अपनी स्त्री की हत्या के लिए अपराधी पाया गया था। उस मृत स्त्री के 'पर्स' में एक पत्र पाया गया था जिसमें पिनों के द्वारा अपने पति के हृदय को वश में करने का उल्लेख था।[1] इंग्लैण्ड के कुछ अन्य भागों में भी पिन के द्वारा प्रेमी अथवा प्रेमिका के हृदय को जीतने का जादू पाया जाता है।

(११) हल

कृषि-कर्म का अद्वितीय साधन हल सदा से रहा है। आधुनिक काल मे अनेक आविष्कार के हो जाने पर भी हल की उपयोगिता आज भी बनी हुई है। प्राचीन काल में बलराम हल को अपने आयुध के रूप में धारण करते थे। इसीलिए इन्हें "मुशली, हली" कहा जाता है।

भोजपुरी प्रदेश में विवाह के अवसर वर को 'जुआठि' पर खड़ाकर उसे स्नान कराया जाता है। कन्या पक्ष के घर विवाह मण्डप के बीच 'हरिस' गाड़ी जाती है जो हल का सबसे प्रधान अंग है। कन्या के घर जिस दिन मण्डप 'गाड़ा' या तैयार किया जाता है उस दिन मण्डप के मध्य भाग मे 'हरिस' की स्थापना कर उसकी पूजा की जाती है। बोआई का मौसम जब प्रारम्भ होता है तब हल की पूजा की जाती है। लोगों का यह विश्वास है कि ऐसा करने से अधिक अन्न खेतों में पैदा होता है।

दिवाली के दिन हल के विभिन्न—फार, जुआठि, हरिस आदि अंगों को दीपक दिखलाया जाता है। ओरांव जाति के लोग भी विवाह के अवसर पर विभिन्न रूप से हल की पूजा करते हैं। अन्न का उत्पादक होने के कारण हल पूजा, समृद्धि तथा वैभव का कारण है।

(१२) नमक

भोजन के लिए नमक का होना अत्यन्त आवश्यक है। यदि शाक मे नमक का अभाव हो तो वह स्वादहीन हो जाता है। गोस्वामी जी ने इसकी

---

१. "It is not these pins, I mean to burn,
But Ben Hundsons heart I mean to turn.
Let him neither eat, speak, drink nor comfort find,
Till me comes to me and speaks his mind."

डायर इं० फो० पृ० २७१

ओर संकेत किया है।[1] नमक को जमीन पर व्यर्थ में नहीं फेंकना चाहिए। लोगों की ऐसी धारणा है कि जमीन पर गिराये गये नमक को अगले जन्म में पलकों (पपनी) से उठाना पड़ता है। अतः भोजपुरी मातायें अपने बच्चों को व्यर्थ में नमक को गिराने या फेंकने के लिए मना करती हैं।

किसी व्यक्ति का 'नमक खाना' उसके प्रति स्वामिभक्ति का सूचक माना जाता है। इसीलिए कृतज्ञ के लिए 'नमक हलाल' और कृतघ्न के लिए 'नमक हराम' शब्दों का प्रयोग किया जाता है। दो प्रकार का नमक होता है—(१) सेंधा तथा [२] साधारण। सेंधा नमक पहाड़ से निकलने के कारण शुद्ध तथा पवित्र माना जाता है। व्रत के दिनों में सेंधा नमक के सेवन का ही विधान बतलाया गया है।

पुराणों में क्षीर सागर की भाँति लवण सागर की भी कल्पना पाई जाती है। परन्तु इसकी भौगोलिक स्थिति कहीं नहीं पाई जाती। समुद्र का जल क्षार या नमकीन होता है। लोगों की धारणा है कि कुम्भज ऋषि ने समुद्र को पीकर जो मूत्र त्याग किया उसी से सागर का जल खारा हो गया।

इंगलैण्ड के उत्तरी भाग में किसी व्यक्ति के प्लेट में नमक का रख देना दुर्भाग्य का सूचक माना जाता है। किसी व्यक्ति के सामने नमक गिरना अशुभ शकुन का सूचक है। मिस्टर पेनान्ट (Pennant) ने लिखा है कि नमक का व्यर्थ में बिखेरना भावी आपत्ति का सूचक जर्मन लोगों के द्वारा माना जाता है। विशेष कर घरेलू झगड़ा उत्पन्न होने की आशंका होती है। इसके निराकरण के लिए कुछ नमक को आग में फेंक दिया जाता है। जिस पात्र में नमक रखा हो उसे उलट देना अत्यन्त अशुभ है। सुप्रसिद्ध चित्रकार लियोनार्डो दि विंशी ने "लास्ट सपर" (अन्तिम भोज) नामक अपने विख्यात चित्र में जूडा के द्वारा नमक को उल्टा रख देने का चित्रण किया है जिससे उसके द्वारा भावी प्रतारणा की सूचना मिलती है।

यदि कोई प्रिया अपने प्रियतम के हृदय को जीतना चाहती है तो उसे लगातार नौ दिनों तक आग में नमक डालना या फेंकना चाहिए। इससे

---

१. "लवण बिना बहु व्यंजन जैसे।"

अवश्य ही कार्य में सिद्धि होगी।[1] नमक खाने से शोक की उत्पत्ति होती है। नमक को पाकेट में बिना लिए कहीं नहीं जाना चाहिए।[2]

(१३) दधि (दही)

प्राचीन ग्रन्थों के अनुशीलन से पता चलता है कि पुरा काल में दधि खाने की परम्परा प्रचलित थी। पाणिनि की अष्टाध्यायी के अनुशीलन से पता चलता है उस समय दही खाने का बड़ा प्रचार था। यह दही दो प्रकार की होती थी—(१) दही और (२) तक्र जिसे आज कल मट्ठा कहा जाता है। दूध को जमाकर बिना मक्खन निकाले जो दही जमाई जाती थी उसे तक्र कहते थे और जो मक्खन निकाल कर दही जमाई जाती थी उसे दही के नाम से पुकारते थे जो आजकल 'छिनुई' दही के नाम से प्रसिद्ध है। 'सजाव' दही उसे कहते हैं जो घृत से युक्त हो।

पाणिनि के समय में दही डाल कर अनेक भोज्य पदार्थ बनाये जाते थे। दही में बनाया गया भोज्य पदार्थ 'दाधिक' तथा मट्ठा (तक्र) से बनाया गया खाद्य पदार्थ 'औदश्वित' या 'औदश्वित्क' कहा जाता था। पाणिनि ने दधि के मिश्रण से बनाये गये भोज्य पदार्थ की प्रक्रिया का भी बड़ी सूक्ष्मता से वर्णन किया है।[3]

महर्षि पतञ्जलि ने भी अपने महाभाष्य में दधि खाने का उल्लेख किया है। प्राचीन काल में भी ब्राह्मण-भोजन के अवसर पर अथवा किसी विशेष आगन्तुक के आने पर उसे दही खिलाने की प्रथा विद्यमान थी। यह परम्परा आज भी उसी रूप में वर्तमान है। महाभाष्य में कोई आतिथेय अपने सहयोगियों को आदेश दे रहा है कि देखो भाई ब्राह्मणों को दही परोसो और कौण्डिन्य जी को तक्र परोसो।—

> "दधि ब्राह्मणेभ्यो दीयताम्।
> तक्रं कौण्डिन्यायेति॥"

---

१. "It is not salt
I mean to burn,
But my true lover's heart
I mean to burn."

२. "नमक सम्बन्धी लोक-विश्वास के विशेष विवरण के लि[ए] देखिए।"—डायर · इ. फो; २७५

३ डॉ० वासुदेवशरण पाणिनि कालीन भारतवर्ष पृ० ११७

आतिथेय इसके बाद कहता है कि देवदत्त जी ! अब अधिक दधि खाना बन्द कीजिए। अब आप शाक के साथ भात खाइए।

"तिष्ठतु दधि, अशान त्वं शाकेन।"

आज भी भोजपुरी प्रदेश में ब्राह्मणों के भोजन के अन्त में दही खिलाने की प्रथा है। बारातियों को दही खिलाना उनके भोजन तथा सत्कार का एक आवश्यक अंग माना जाता है।

इस प्राचीन युग में भी लोगों का विश्वास था दधि (दही) का खाना अर्थ सिद्धि अथवा मंगल सिद्धि का आदि कारण है। महाभाष्यकार ने स्वयं इस विषय का उल्लेख किया है।

"दधि भोजनमर्थसिद्धेरादि:" (६-४-१६१)

यह प्रथा आज भी समाज में प्रचलित है। कोई भी व्यक्ति यात्रा के समय दही का दर्शन करके अपनी यात्रा का प्रारम्भ करता है। परन्तु कुछ लोग दही-चीनी खाकर ही प्रस्थान करते हैं। उनका विश्वास है कि इससे उनकी यात्रा मंगलमय होगी तथा उन्हें किसी भी प्रकार के कष्ट का सामना नहीं करना होगा।

-- o --

सप्तम अध्याय

यात्रा सम्बन्धी लोक-विश्वास

हमारे देश में यात्रा सम्बन्धी लोक-विश्वास का प्रचुर प्रचार पाया जाता है। ग्रामीण जनता इसमें अटूट विश्वास रखती है। सच तो यह है कि यात्रा सम्बन्धी मान्यता उनके जीवन का अविछिन्न अंग हो गई है। यदि अपने घर से उन्हें दो-चार मील (किलोमीटर) भी दूर जाना हुआ तो उसके लिए भी शुभ मुहूर्त ढूढ़ते हैं। चाहे कोई आवश्यक कार्य क्यों न हो, कार्य में कितनी भी क्षिप्रता की अनिवार्यता क्यों न हो ग्रामीण जन बिना भद्रा-भद्रा का विचार किये हुए, बिना शुभ मुहूर्त देखे हुए, घर के आगे चार डग (पैर) भी नहीं रख सकता। उसकी इसी अक्षिप्रकारिता के कारण जनता में यह लोकोक्ति प्रसिद्ध है कि :—

"घरी में घर छूटे, नव घरी भद्रा"

अर्थात् एक क्षण मे घर छूटना चाहता है, नष्ट होने वाला है परन्तु घर छोड़कर भागने वालों के लिए अभी नौ घड़ी (तीन घण्टा) तक भद्रा है। अर्थात् प्रस्थान करने का शुभ मुहूर्त नहीं है। कहने का आशय केवल इतना ही है कि गाँव का आदमी बिना शुभ मुहूत के कही नहीं जाता। चाहे किसी भी कार्य के लिए जाना हो, वह कार्य भले ही नष्ट हो जाय।

(१) परिच्छेद

यात्रा के संबंध में निम्नांकित विषयों पर निश्चित रूप से विचार किया जाता है :—

(१) दिन विचार (२) तिथि विचार (३) ग्रह विचार (४) योगिनी विचार (५) काल विचार (६) दिशा विचार।

इसी विषय का यहाँ अत्यन्त संक्षिप्त रूप में विवरण प्रस्तुत किया जाता है।

(१) दिन तथा दिशा विचार

ज्योतिष शास्त्र के अनुसार विशिष्ट दिनों को किसी विशिष्ट दिशा में यात्रा करना श्रेयस्कर बतलाया गया है। अतः कल्याण चाहने वाले व्यक्ति को इन्हीं दिनों में ही यात्रा करनी चाहिये। यात्रा के लिए शुभ दिन तथा शुभ दिशाओं की तालिका नीचे दी जाती है :—

शुभ दिन	शुभ दिशा
(१) रविवार	पूर्व, उत्तर, दक्षिण
(२) सोमवार	पश्चिम, उत्तर, दक्षिण
(३) मंगलवार	पूर्व, पश्चिम, दक्षिण
(४) बुधवार	पूर्व, पश्चिम, दक्षिण
(५) बृहस्पतिवार	पूर्व, पश्चिम, उत्तर
(६) शुक्रवार	पूर्व, उत्तर, दक्षिण
(७) शनिवार	पश्चिम, उत्तर, दक्षिण

इस संबंध में भड्डरी की यह लोकोक्ति प्रसिद्ध है जिसके अनुसार सोम और शनिवार को पूर्व दिशा में नहीं जाना चाहिए। मंगल तथा बुधवार को उत्तर दिशा में जाना निषिद्ध है। जो वृहस्पतिवार को दक्षिण दिशा को जाता है वह बिना अपराध के ही जूता खाता है।[1] बुध को यात्रा करना अत्यन्त निषिद्ध है क्योंकि इस दिन कहीं जाने से एक कौड़ी से भी भेंट नहीं होती अर्थात् अर्थ की प्राप्ति बिलकुल नहीं हो सकती।[2]

---

१. "सोम, सनीचर, पुरुब न चालू।
मंगल, बुध, उत्तर दिसि कालू॥
जे वियफै को दक्खिन जाय।
बिना गुनाहे, पनही खाय॥"—त्रिपाठी—ग्रा० सा०, पृ० १८६

२. "बुध कहै मैं बड़ा सयाना।
मोरे दिन जिनि करो पयाना॥
कौड़ी से नहिं भेंट कराऊँ।
खेम कुसल से घर पहुँचाऊँ॥"—वही; पृ० १८६

दिशाशूल

ज्योतिषशास्त्र में कुछ विशिष्ट दिनों को विशेष दिशाओं में जाना निषिद्ध तथा वर्जित है। इसे 'दिक् शूल' कहा जाता है। जायसी ने विभिन्न दिनों को अमुक दिशाओं में जाना अशुभ बतलाया है। उनके अनुसार सोम तथा शनिवार को पूर्व दिशा में नहीं जाना चाहिए। मंगल तथा बुधवार को उत्तर दिशा में जाना अशुभ है। रविवार तथा शुक्रवार को पश्चिम दिशा की यात्रा निषिद्ध है। बृहस्पतिवार को दक्षिण दिशा में प्रस्थान करना अनुचित है। इस प्रकार जायसी के अनुसार यात्रा के लिए अशुभ दिन, दिशाशूल तथा उसके अशुभ फल की तालिका निम्नांकित है।[1]

(क) दिन	(ख) दिशाशूल	(ग) फल
रविवार	पश्चिम दिशा	राहु का निवास
सोमवार	पूर्व ,,	निषिद्ध
मंगलवार	उत्तर ,,	मृत्यु की प्राप्ति
बुधवार	उत्तर ,,	मृत्यु की प्राप्ति
बृहस्पतिवार	दक्षिण ,,	अग्नि दाह
शुक्रवार	पश्चिम ,,	राहु का निवास
शनिवार	पूर्व ,,	निषिद्ध

१. "आदित, सुक, पछिम दिसि राहू,
बियफे, दखिन लंक दिसि डाहू।
सोम, सनीचर पूरुब न चालू;
मंगर, बुध उत्तर दिसि कालू॥"—पद्मावत ३८२/१-२

दिशा-शूल का परिहार

'दिशा-शूल' का शाब्दिक अर्थ है दिशा का कंटक अथवा विघ्न। अतः उपर्युक्त दिनों में दिशा-शूल होने के कारण यात्रा करना अत्यन्त निषिद्ध है। परन्तु यदि किसी मनुष्य को दिशा-शूल के दिन यात्रा करना अत्यन्त आवश्यक हो तो उसके दोषों के परिहार करने का भी उपाय बतलाया गया है। "मुहूर्त-चिन्तामणि" नामक ज्योतिष ग्रंथ में इस विषय का उल्लेख पाया जाता है। इसके अनुसार रविवार को सिखरन (श्रीखण्ड), सोमबार को पायस (खीर) मंगलवार को कांजी, बुधवार को उबाला हुआ दूध, बृहस्पतिवार को दही, शुक्रवार को कच्चा दूध और शनिवार को प्रस्थान करते समय तिल और भात खाना चाहिए। क्योंकि ऐसा करने से उस दिन-विशेष को यात्रा का दोष (दिशा-शूल) नष्ट हो जाता है। अतः जिस दिन यात्रा करनी अभीष्ट हो उस दिन उस दोष को नष्ट करने वाले भोजन को ग्रहण करके जाना उचित है। मुहूर्त चिन्तामणि के लेखक ने इन परिहार के विषयों को 'दोहद' की संज्ञा से स्मरण किया है।[१]

इसी प्रकार से विभिन्न दिशाओं की यात्रा में 'दिशा-शूल' के परिहार के लिए उन्होंने निम्नांकित परिहार बतलाया है। यदि पूर्व दिशा में यात्रा करनी हो तो घृत (घी), पश्चिम में तिल और भात; उत्तर में मछली और दक्षिण में दूध खाकर जाने से दोष नहीं लगता है।[२]

महाकवि जायसी ने भी 'दिशाशूल' के परिहार का वर्णन अपने महा-काव्य में किया है। उनके अनुसार रविबार को पान खाना, सोमवार को दर्पण में मुँह देखना, मंगल को धनिया खाना, बुध को दही खाना, वृहस्पतिवार को गुड़, शुक्रवार को राई तथा शनिवार को वाय विडंग को मुँह में रखकर कूँचने से 'दिशा-शूल' में यात्रा करने का समस्त दोष नष्ट हो जाता है।[३]

---

१. "रसालां, पायसं, काञ्जीं, शृतं दुग्धं तथा दधि।
पयोऽशृतं तिलान्नं च; भक्षयेत् वार-दोहदम्॥"
—रामाचार्य—मुहूर्त चिन्तामणि, यात्रा प्रकरणम्, पृ० १५७

२. "आज्यं तिलौदनं मत्स्यं, पयश्चापि यथाक्रमम्।
भक्षयेत् दोहदं दिश्यं, आशां पूर्वादिकां व्रजेत्।"
—मु० चि० (यात्रा प्रकरण), पृ० १५७

३. पद्मावत; ३८२/३-७

'शीघ्र बोध' नामक ज्योतिष ग्रन्थ में भी इसी प्रकार के 'दोष
उल्लेख पाया जाता है।

इनकी तुलनात्मक निम्नांकित सारणी से यह विषय स्पष्ट ह

(क) दिन	(ख) दिशाशूल	(ग) दिशाशूल का दोष जायसी के अनुसार
रविवार	पश्चिम दिशा	पान खाना
सोमवार	पूर्व ,,	दर्पण में मुँह देखना
मंगलवार	उत्तर ,,	धनिया खाना
बुधवार	उत्तर ,,	दही खाना
बृहस्पतिवार	दक्षिण ,,	गुड़ खाना
शुक्रवार	पश्चिम ,,	मुँह में राई डाल लेना
शनिवार	पूर्व ,,	बायविडंग कूचना

"प्रस्थान रखना—'दिशाशूल' के दोष-परिहार का एक दूसर
जिसे "प्रस्थान रखना" कहा जाता है। 'प्रस्थान' का शाब्दिक
यदि किसी दिन दिशाशूल हो, परन्तु किसी आवश्यक कार्यवश
अनिवार्य हो तो यात्रा की पूर्व रात्रि को कोई वस्त्र, जनेऊ अथ
अन्य कोई सामग्री किसी व्यक्ति के घर रख दी जाती है।
'प्रस्थान रखना' कहते हैं। ऐसा माना जाता है कि ऐसा कर
दोष का परिहार हो जाता है।

लोगों का विश्वास है कि जिस दिशा में प्रस्थान रखा ह
व्यक्ति के पास रखा हो उसके पास प्रस्थानकर्ता को नहीं ज
यात्रा के पहिले प्रस्थान के लिए कौन-सी वस्तु रखनी चाहिए
चिन्तामणिकार का कथन है कि ब्राह्मण को यज्ञोपवीत क्षत्रिय

को शहद (मधु) और शूद्र को आँवला रखना चाहिए अथवा जिस व्यक्ति को जो वस्तु परम-प्रिय हो उसी को प्रस्थान के रूप में रखना चाहिए।[१]

नक्षत्र विचार

यात्रा करते समय नक्षत्रों का भी विचार किया जाता है। किस नक्षत्र मे यात्रा करना शुभ अथवा अशुभ है, इस विषय पर भी ज्योतिषियों ने बड़ा विचार किया है। मुहूर्त चिन्तामणि के अनुसार ज्येष्ठा नक्षत्र में पूर्व दिशा में, पूर्वाभाद्रपद नक्षत्र में दक्षिण दिशा में, रोहिणी मे पश्चिम दिशा तथा उत्तरा फाल्गुनी नक्षत्र में उत्तर दिशा में यात्रा कदापि नहीं करनी चाहिए।[२] परन्तु नक्षत्रों में अश्विनी, पुनर्वसु, अनुराधा, मृगशिरा, पुष्य, रेवती, हस्त, श्रवण तथा धनिष्ठा—इन नौ नक्षत्रों में यात्रा करना शुभ तथा प्रशस्त माना जाता है।[३]

तिथि विचार

किन तिथियों में यात्रा करना शुभ अथवा अशुभ है इस संबंध में बड़ा विचार किया गया है। जायसी के मतानुसार परिवार (प्रतिपद्) और नवमी तिथि को पूर्व दिशा में यात्रा नहीं करनी चाहिये। द्वितीया और दशमी को उत्तर की ओर जाना अशुभ है। पंचमी और त्रयोदशी को दक्षिण दिशा में लक्ष्मी का निवास होता है। अतः इस तिथि को यात्रा शुभ है। षष्ठी और चतुर्दशी को पश्चिम दिशा में यात्रा सिद्धिदायिनी होती है।[४]

---

१. "कार्याद्यैरिह गमनस्य चेद् विलम्बो,
भू-देवादिभि रूपवीतकायुधश्च।
क्षौद्रश्चामलफलमाशु चाल नीचं,
सर्वेषां भवति यदेव हृत्प्रियं वा।"
—मु० चि०, (यात्रा प्रकरण), पृ० १५८.

२. मु० चि० (यात्राप्रकरणम्), पृ० १३०

३. वही, पृ० १३०

४. "परिवा, नवमी, पुरुब न भाएँ।
दूइज, दशमी उत्तर अदाएँ।।
पाँचई, तेरसि, दखिन रमेसरी।
,ठिछ चौदसि, पच्छिऊँ परमेसरी।।"
—पद्मावत—रतनसेन बिदाई खण्ड, पृ० १६८
(शुक्ल जी, द्वारा सम्पादित १४वाँ संस्करण).

"मुहूर्त चिन्तामणि' के अनुसार यात्रा के लिए षष्ठी, अष्टमी तथा द्वादशी तिथियाँ प्रशस्त नहीं है। इनके अतिरिक्त शुक्लपक्ष की प्रतिपदा, पूर्णिमा, अमावस्या तथा रिक्ता तिथियाँ भी यात्रा के लिए शुभ नहीं मानी जाती है।[1] ग्रामीण क्षेत्रों मे परिवा तथा अमावस्या आदि तिथियाँ यात्रा के लिए शुभ नही हैं। लोग इन तिथियों को यात्रा करने से हिचकते हैं।

(२) परिच्छेद

यात्रा के अन्य प्रतिबन्धक

पिता घातिक

जिस दिन किसी व्यक्ति के पिता की मृत्यु होती है वह दिन उसके लिए अत्यन्त अशुभ माना जाता है। ऐसे दिन को ग्रामीण भाषा मे "पिता घातिक" कहा जाता है जो "पितृ घातक" शब्द का अपभ्रंश रूप है। इस 'पिता घातिक' के दिन यात्रा करना अत्यन्त निषिद्ध माना जाता है। कोई भी व्यक्ति इस दिन यात्रा नहीं करता है। क्योंकि इस दिन यात्रा करने से अमंगल होने की आशंका बनी रहती है।

कुल-मानि

जिस दिन किसी कुल में कोई दुर्घटना हो जाती है, कुल का कोई वृद्ध वशिष्ठ मृत्यु को प्राप्त हो जाता है, वह दिन उस कुल के समस्त प्राणियों के लिए अशुभ माना जाता है। ऐसे दिन को 'कुल मानि' कहते है अर्थात् कुल के लिए यह अशुभ तथा अमंगलकारी होता है। इसलिए इस दिन कोई व्यक्ति यात्रा करना नहीं चाहता।

परन्तु 'कुल-मानि' यात्रा के लिए उतना बडा प्रतिबन्धक नहीं है जितना कि 'पिता घातिक'। आवश्यकता पड़ने पर कुल-मानि के दिन कोई यात्रा भले करे परन्तु 'पिता घातिक' के दिन तो कदापि नहीं करता।

ग्रह-विचार

यात्रा में ग्रह का भी विचार किया जाता है। जायसी ने लिखा है कि यात्रा के समय यदि चन्द्रमा सम्मुख हो तो बहुत लाभ होता है। यदि वह दाहिने हो तो यात्रा सुख कर होती है। किन्तु यदि वह बायें हो तो दुख और आपत्ति आती है।[2] सामान्यतता यात्रा के अवसर पर चन्द्रमा का विचार तो किया ही जाता है परन्तु विवाह के अवसर पर नव विवाहित कन्या के ससुराल जाने के समय चन्द्रमा की स्थिति का विचार अत्यन्त आवश्यक

---

१. "न षष्ठी, न च द्वादशी, नाष्टमी,
नोसिताद्या: तिथि: पूर्णिमाऽमा न रिक्ता:।"—वही, पृ० १३०

२. "दहिन चन्द्रमा सुख सम्पदा,
बाएँ चन्द त दुख आपदा" शुक्ल पद्मावत पृ० १६६

माना जाता है। इस समय यदि चन्द्रमा सामने तथा दाहिने हो तो यह यात्रा शुभदायक और मंगलकारक मानी जाती है। ज्योतिष के ग्रंथों में लिखा है कि यदि चन्द्रमा सन्मुख हो तो धन की प्राप्ति होती है, दाहिने हो तो सुख मिलता है, पृष्ठ भाग (पिछले) में हो तो मृत्यु और बायीं ओर होने पर धन का नाश होता है।[1]

काल विचार

यात्रा में काल का विशेष विचार नहीं किया जाता। इसीलिए सम्भवतः जायसी ने इसका विशेष वर्णन न करके केवल संकेत मात्र किया है। काल के विषय में कहा गया है कि 'सन्मुखे नेष्टम्' अर्थात् जिस दिन जिस दिशा में काल रहे उस दिन उस दिशा में यात्रा नहीं करनी चाहिए। काल का ज्ञान इस प्रकार से समझना चाहिए।

रविवार को उत्तर दिशा में, सोमवार को वायव्य दिशा में, मंगल को पश्चिम दिशा मे, बुद्धवार को नैऋत्य कोण में, बृहस्पति को दक्षिण में, बुधवार को आग्नेय कोण में, और शनिवार को पूर्व दिशा में काल का निवास होता है। अतः उक्त दिनों को उस दिशा की ओर यात्रा करना निषिद्ध है।[2]

समय-विचार

यात्रा में किस दिशा में किस समय (टाइम) पर यात्रा करनी चाहिए। इसके विषय में भी अनेक मान्यताएँ प्रचलित हैं। भड्डरी का कथन है कि पूर्व दिशा में यात्रा करनी हो तो गोधूलि (सन्ध्या) के समय, पश्चिम दिशा में जाना हो तो प्रातः काल, उत्तर दिशा में दोपहर में तथा यदि दक्षिण दिशा में जाना अभिप्रेत है तो रात में प्रस्थान करना चाहिए। ऐसी दशा में यदि उस समय भद्रा और दिशाशूल भी हो वह नष्ट हो जाता है अर्थात् उसका बुरा प्रभाव कुछ नहीं पड़ने पाता।[3]

---

१. "सन्मुखे अर्थ लाभाय, दक्षिणे सुखसम्पदः
पृष्ठतो मरणं चैव, वामेचन्द्रे धनक्षयः ॥"

२. "मुहूर्त चिन्तामणि नामक ग्रंथ में इस विषय का विस्तृत वर्णन पाया जाता है। अतः इसके लिए इसका पृ० १४१ देखना चाहिए।

३. "पुरब गोधूलि, पच्छिम प्रात।
उत्तर दुपहर, दक्खिन रात।
का करै भद्रा, का दिकशूल।
कहै भड्डर सब चकना चूर॥"—त्रिपाठी—ग्रा० सा०, पृ० १८६

(३) परिच्छेद

यात्रा—सम्बन्धी शुभ शकुन

यात्रा के सम्बन्ध में तिथि, दिशा, काल, नक्षत्र, ग्रह आदि का विचार पिछले पृष्ठों मे प्रस्तुत किया जा चुका है। अब यहाँ ऐसे शकुनों का उल्लेख किया जाता है जो यात्रा के अवसर पर शुभ माने जाते हैं। इन शकुनों का सम्बन्ध पशु और पक्षियों के दर्शन, उनकी गति विधि तथा चेष्टाओं से विशेष रूप से सम्बन्धित है।

(१) मछली का दर्शन

यात्रा के अवसर पर मछली का दर्शन अत्यन्त शुभ माना जाता है। इसका प्रधान कारण यह है कि भगवान् ने 'मत्स्यावतार' के रूप में अपना प्रथम अवतार लिया था अतः इसकी गणना शुभ पदार्थों में की जाती है। जायसी ने 'रतनसेन यात्रा खण्ड' में राजा की यात्रा के अवसर पर मछली का दर्शन कल्याणकारक माना है। परन्तु यदि मछली चाँदी के कण्डाल में भरी हो तो उसकी कल्याणकारिता का क्या कहना है।

(२) मृग का दाहिनी ओर मुँह कर जाना

भारतीय साहित्य में मृग अपनी सुन्दरता के लिए विख्यात है। इसकी मनोरम आँखें तरुण युवतियों के नेत्रों के लिए उपमान का कार्य करती हैं। राजा रतनसेन की यात्रा के समय जायसी ने मृग का दाहिनी ओर रहना शुभसूचक माना है।[१] गोस्वामी तुलसी दास जी ने भी राम के विवाह के अवसर पर मृगों के समूह का दाहिने जाना शुभ लक्षण लिखा है।[२] संस्कृत साहित्य में भी मृगों का दाहिनी ओर जाना शुभ है।

परन्तु इसके ठीक विपरीत मृगों का बायीं ओर तथा विपरीत दिशा में चलना अशुभ माना जाता है। भरत के अयोध्या लौटते समय मार्ग में मृगों के प्रतिकूल चलने का अमंगल सूचक के रूप में उल्लेख उपलब्ध होता है।[३]

१. "दाहिने मिरिग आइ गा धाई।—पद्मावत, २३५/४

२. मृग माला फिरि दाहिन आई।
मंगल गन जनु दीन्ह देखाई॥"
—रा० च० मा० (बा० का०), दोहा ३०२

३. भट्टि—रावण वध—सर्ग, ३/२६

(३) कौवे का बायीं ओर बोलना

कौआ के विषय में अनेक लोक-विश्वास प्रचलित हैं। परन्तु इसका सम्बन्ध यहाँ केवल यात्राविषयक शकुन से ही है । जायसी ने कौवे के बायीं ओर बोलने का उल्लेख किया है जो अत्यन्त मंगलदायक माना गया है।[1] गोस्वामी तुलसीदास जी ने हरे-भरे खेत में कौवे का दाहिनी ओर बैठना शुभ लिखा है।[2]

(४) क्षेमकरी का बायीं ओर दिखाई पड़ना

क्षेमकरी आकाश में उड़ने वाली चील को कहते हैं । जायसी ने इसका आकाश की धोबिन के रूप में उल्लेख किया है।[3] गोस्वामी जी ने इसे मंगल करने वाला पक्षी लिखा है।[4] इसी प्रकार से यात्रा के अवसर पर कुररी अर्थात् टिटिहरी पक्षी का बायीं ओर बोलना शुभ माना गया है। "वसन्त राज शकुन" में इसका बायीं ओर शब्द करना अत्यन्त प्रशस्त कहा गया है।[5]

(५) गदहा का बायीं ओर बोलना

गदहा अत्यन्त गर्हित तथा निन्दनीय पशु माना जाता है ! क्योंकि रूप और स्वर दोनों में यह वीभत्स दिखाई पड़ता है। परन्तु जायसी ने यात्रा के समय इसका बायीं ओर आवाज करना शुभ लिखा है।[6] "मुहूर्त चिन्तामणि" नामक ग्रन्थ से भी इस धारणा की पुष्टि होती है।[7] जहाँ बायीं ओर इसका बोलना शुभ है वहाँ दाहिनी ओर इसका रेंकना अशुभ माना जाता है। यात्रा के समय लोमड़ी का बायीं ओर जाना मंगल की सूचना देता है।

---

१. प्रतीहार बोला खर बाँइ ।—पद्मावत, १३५/४

२. दाहिन काग सुखेत सुहावा ।

—रा० च० मा० (बा० का०), दोहा ३०२

३. "बायें अकासी धोबिन आई ।"—पद्मावत, १३५/६

४. "क्षेमकरी कह क्षेम विसेखी ।"

—रा० च० मा० (बा० का०), दोहा ३०२

५. वसन्तराज शकुन, ८/१३

६. पद्मावत, १३५/४

७. "धन्याः वामे स्वर-खनः ।"

—मु०चि० (यात्रा-प्रकरण), श्लोक० १०५

इसी प्रकार से यात्रा के समय बिल्ली का रास्ता काट देना अशुभ माना जाता है। अनेक व्यक्ति ऐसी घटना हो जाने पर घर लौट आते हैं और फिर कुछ विलम्ब के साथ यात्रा करते हैं। जहाँ इस अवसर पर दूध का पीना अत्यन्त अशुभ है वहाँ दही का खाना मंगलकारी है। यदि खाने के लिए दही नहीं मिली तो उसका टीका लगा लेना ही पर्याप्त समझा जाता है।

यात्रा का मूल मंत्र : उत्साह—यात्रा के संबंध में इतने शुभ तथा अशुभ शकुनों के विचार के पश्चात् यह स्पष्ट तथा निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि समस्त यात्राओं का एक ही मूल मंत्र है और वह महामंत्र है—

"मन में उत्साह का होना।"

यदि आपके मन में यात्रा के प्रति उत्साह नहीं है, यदि देश या विदेश मे जाकर निर्दिष्ट कार्य को करने का उमंग नहीं है तो न तो वह यात्रा ही करनी चाहिए और न उस कार्य के सम्पादन में ही संलग्न होना चाहिए।

संस्कृत के विभिन्न आचार्यों के इस विषय में विभिन्न मत हैं। परन्तु आचार्य अंगिरा का यह निश्चित मत है कि जब मन में यात्रा के लिए उत्साह हो, उमंग हो, उछाह हो, तभी उसे करनी चाहिए।[1] अंगिरा का यह मत अनुभूति की कसौटी पर भी खरा उतरता है तथा इसका अनेक बार परीक्षण करने पर भी अंगिरा का कथन सत्य सिद्ध हुआ है। इस विषय में लेखक के स्वयं कई अनुभव हैं जो सत्य सिद्ध हो चुके हैं परन्तु विस्तारभय से उनका यहाँ लिखना समुचित प्रतीत नहीं होता।

यात्रा के संबंध में शुभ और अशुभ शकुन अनन्त है जिनका उल्लेख करना अत्यन्त कठिन है। यह विषय इतना विस्तृत है कि इस पर एक स्वतंत्र ग्रन्थ की ही रचना की जा सकती है। वास्तव में संस्कृत में 'मुहूर्त चिन्तामणि' नामक ग्रन्थ का निर्माण इसी हेतु किया भी गया है, जहाँ यात्रा के संबंध में बड़ा ही विशद विस्तृत तथा प्रामाणिक विवेचन उपलब्ध होता है।

गत पृष्ठों में संक्षेप में यात्रा संबंधी समस्त विषयों पर संक्षिप्त रूप से विचार किया गया है। लोक-जीवन में यात्रा का विशेष महत्त्व है। क्योंकि मानव का समस्त जीवन ही एक सुदीर्घ यात्रा है। अतः यदि ग्रामीण तथा आज कल के नव शिक्षित व्यक्ति भी यात्रा के संबंध में अधिक विश्वास करते तो इसमें कोई आश्चर्य नहीं समझना चाहिए।

—०—

1 **अंगिरा मनसि उत्साह** विप्रवाक्य जनार्दन

अष्टम अध्याय

संख्या सम्बन्धी लोक-विश्वास

संख्याओं के सम्बन्ध में अनेक लोक-विश्वास प्रचलित हैं। यह परम्परा प्राचीन काल से चली आ रही है। इन संख्याओं में कुछ शुभ तथा कुछ अशुभ मानी जाती हैं। अतः इन संख्याओं को दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है—(१) सम तथा (२) विषम। सम संख्यायें वे हैं जो दो से विभाजित हो जायँ। जैसे दो, चार, छ, आठ, दस आदि। परन्तु विषम संख्यायें १, ३, ५, ७, ९ आदि मानी जाती हैं। सामान्यतया संख्या तीन को छोड़कर विषम संख्या शुभ मानी जाती है। इसीलिए विवाह के पश्चात् गवना विषम वर्षों के बीतने पर ही किया जाता है।

परन्तु सम संख्याओं की स्थिति इनसे भिन्न है। जिनका वर्णन आगे प्रस्तुत किया जायेगा। संख्या संबंधी लोक-विश्वास भारत में ही नहीं, बल्कि आधुनिक सभ्यता के केन्द्र विदेशों में भी पाया जाता है। इससे यह ज्ञात होता है कि मानव-मन की भावनायें सर्वत्र समान हैं। क्या देश और क्या विदेश, सभी स्थानों में तथा देशों में लोक-विश्वास का साम्राज्य व्याप्त दृष्टिगोचर होता है।

(०) शून्य

भारतीय साहित्य में शून्य आकाश का प्रतीक है। जैसा कि कहा गया है "शून्य गुणकमाकाशम्" अर्थात् आकाश का गुण शून्य है। शून्य का अर्थ है अभाव। जो अनन्त है- जिसकी कोई स्थिति नहीं है उसे शून्य कहा जा सकता है

के आगे यदि शून्य लगा दिया जाय तो उसका मूल्य दस गुना बढ़ जाता है। इस प्रकार शून्य का मूल्य कुछ कम नहीं है।

लोक-विश्वास के क्षेत्र में शून्य की संख्या नितान्त अशुभ मानी जाती है। इसीलिए किसी व्यक्ति को धन का दान करते समय उसे १००), ५००) या १००० रुपयों का दान नहीं किया जाता बल्कि इस संख्या में एक रुपया और जोड़ दिया जाता है। चूँकि शून्य अशुभ है अतः दान की इस संख्या में एक जोड़ना अत्यन्त आवश्यक है।

अनन्त का वाचक होने के कारण शून्य शान्ति का भी प्रतीक माना जाता है। आजकल 'यूनाइटेड नेशन्स आर्गेनाइजेशन (यू० एन० ओ०) के झण्डे पर तीन शून्य (०°०) अंकित है जो शान्ति का सूचक है। इससे पता चलता है कि इस महान् संख्या का उद्देश्य संसार में शान्ति की स्थापना करना है। अतः शून्य अभाव के साथ ही शान्ति का भी प्रतीक है।

(१) एक

संस्कृत साहित्य में एक संख्या ब्रह्म का प्रतीक मानी जाती है। अतः यह संख्या अत्यन्त शुभ तथा मंगलकारी है। दान देने वाले व्यक्ति रुपयों में ऐसी संख्या का दान नहीं करते जिसके अन्त में शून्य संख्या है, जैसे १०००) या १०,००० रु० आदि। अतः वे इसमें एक संख्या और जोड़कर इसे शुभ संख्या का रूप प्रदान करते हैं।

षट् दर्शनों में अद्वैत वेदान्त, जो आत्मा और परमात्मा की एकता को स्थापित करता है, श्रेष्ठ माना जाता है। इसी प्रकार से सांख्य दर्शन में पुरुष की संख्या एक ही स्वीकार की गई है।

(२) दो

दो की यह संख्या बहुत शुभ नहीं मानी जाती है क्योंकि मुण्डन, और गवना आदि शुभ कार्य समवर्षों में नहीं किये जाते बल्कि इनका सम्पादन विषम वर्षों में करना ही शुभ है। इसके अतिरिक्त दो के सम्बन्ध में कोई अन्य लोक-विश्वास नहीं पाया जाता।

संसार में दो प्रधान तत्त्व पाये जाते हैं—(१) प्रकृति (२) पुरुष। इन्हीं के द्वारा समस्त संसार की सृष्टि की जाती है। यद्यपि ग्रहों की संख्या नौ पायी जाती है परन्तु वास्तव में केवल दो ही ग्रह—सूर्य और चन्द्रमा प्रसिद्ध

हैं। भारतीय दर्शन में द्वैत वेदान्त प्रसिद्ध है जिसमें ब्रह्म और जीव को ही वास्तविक तत्त्व माना गया है।

(३) तीन

हिन्दू दर्शनशास्त्र में त्रिदेव या त्रिमूर्ति-ब्रह्मा, विष्णु और महेश अत्यन्त शुभ माने जाते हैं। इसी प्रकार से त्रिगुण अर्थात् सतोगुण, रजोगुण तथा तमोगुण संसार की सृष्टि, पालन तथा नाश का कारण स्वीकार किया गया है। त्रिस्थली में तीन तीर्थ स्थानों की गणना की जाती है जिसमें काशी, प्रयाग तथा गया आते हैं। वेद भी तीन माने गये हैं—(१) ऋग्वेद (२) यजुर्वेद तथा (३) सामवेद। वैद्यक शास्त्र की समस्त स्थिति "त्रिदोष" के सिद्धान्त पर आश्रित है जिसमें वात, पित्त तथा कफ की गणना की जाती है। किंबहुना, लोक भी प्रधानतया तीन ही है। यथा—स्वर्ग लोक, मृत्यु लोक तथा पाताल लोक। इस प्रकार भारतीय साहित्य, दर्शनशास्त्र तथा संस्कृति में तीन की संख्या शुभ की द्योतिका है।

परन्तु लोक-विश्वास के क्षेत्र में तीन संख्या अत्यन्त अशुभ मानी जाती है। विषम संख्याओं में तीन ही ऐसी संख्या है जिस पर अशुभ तथा अपवित्र होने की मुहर लगी हुई है। जनसाधारण में यह विश्वास दृढ़ मूल हो गया है कि जहाँ यह संख्या रहेगी वहाँ अमंगल ही होगा। इसीलिए यह कहावत लोगों में प्रचलित है कि—

"तीन तिकट महा विकट"

अर्थात् जहाँ तीन संख्या होगी वहाँ आपत्ति आयेगी। इसीलिए तीन ब्राह्मणों का साथ जाना किसी कार्य के नष्ट होने का सूचक माना जाता है। शास्त्र में भी कहा गया है कि तीन ब्राह्मणों को एक साथ किसी शुभ कार्य के निमित्त कहीं नहीं जाना चाहिए।

"न गच्छेत् ब्राह्मणस्त्रयम्"

किसी आगन्तुक व्यक्ति को जलपान के लिए तीन मिठाई नहीं देनी चाहिए। इसी लिए लोग प्रायः दो या चार मिठाई उसके सामने प्रस्तुत करते हैं। किसी व्यक्ति को दान रूप में भी तीन पैसा या तीन रुपया देना अमंगल-सूचक माना जाता है।

परन्तु लोक में कुछ अवस्थायें ऐसी भी है जिनमें तीन संख्या शुभ मानी जाती है। उदाहरणार्थ—सरयूपारीण ब्राह्मणों को दो वर्गों में विभक्त किया

गया है—(१) तीन और (२) तेरह। ये तीन ब्राह्मण गर्ग, गौतम और शाण्डिल्य गोत्रों से सम्बन्ध रखने वाले हैं। जिन्हें ब्राह्मणों में उत्तम माना जाता है। अतः यहाँ तीन की संख्या शुभ है। सावन के महीने में भगवान् शिव को बेलपत्र चढ़ाने की परम्परा है जो अत्यन्त पुण्य-दायक समझी जाती है। इस बेल पत्र में तीन पत्तों का एक साथ होना अत्यन्त आवश्यक है। वही बेल पत्र शुभ और पूजा के लिए उत्तम है जिसमें तीन पत्ते एक साथ लगे हों। किसी देवता के मन्दिर की परिक्रमा पाँच बार अथवा कम-से-कम तीन बार करनी आवश्यक है।

(४) चार

चार की संख्या के शुभाशुभ के सम्बन्ध में कोई विशेष लोक-विश्वास नहीं पाया जाता है। पौराणिक भूगोल के अनुसार समुद्र चार होते हैं। इसी लिए पृथ्वी के विशेषण के रूप में "चतुः समुद्राम्" का उल्लेख पाया जाता है। कहीं-कहीं दिशाओं की संख्या दस के स्थान में चार ही मानी मानी जाती है। जैसा कि निम्नलिखित अवतरण से ज्ञात होता है।

"चतुर्दिगीशान् अवमत्य मानिनी।"

सृष्टि करने वाले ब्रह्मा के चार मुख होते हैं। इस बात की ओर निम्न पद्य मे संकेत किया गया है।

"चतुर्भिः मुखैरित्यवोचत् विधाता"

हिन्दी के मुहावरे में 'चार चाँद लगने' का उल्लेख पाया जाता है। यहाँ चाँदों की संख्या चार ही बतलाई गई है। भगवान् के चार हाथ पाये जाते हैं। इसीलिए उन्हें चतुर्भुज कहा गया है। यद्यपि वेदों को 'वेदत्रयी' कहा जाता है। परन्तु वास्तव में इनकी संख्या चार ही है।

(५) पाँच

पाँच की संख्या अत्यन्त शुभ मानी जाती है। धार्मिक दृष्टि से भी इस संख्या का समधिक महत्त्व है। मन्दिरों में "राम पंचायतन" की पूजा की जाती है जिनमें राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न के साथ भगवती सीता की मूर्ति भी विराजमान रहती है। हमारे यहाँ "पंचदेवोपासना" भी प्रसिद्ध है जिसमें पाँच देवताओं की पूजा का विधान पाया जाता है।

लोक में 'पंच' वे व्यक्ति होते हैं जो किसी झगड़े के निपटाने में मध्यस्थता का कार्य करते हैं इनकी संख्या प्रायः पाँच हुआ करती है। इसीलिए ये पञ्च

कहे जाते हैं। 'पंच' अपनी न्याय-प्रियता के लिए प्रसिद्ध होते हैं। अतः इन्हें परमेश्वर के समान श्रेष्ठ तथा पूजनीय माना जाता है। इसीलिए इन्हें पंचमेश्वर भी कहा जाता है। गावों में यह कहावत प्रचलित है कि "पंचमुख परमेश्वर" अर्थात् पाँच मनुष्यों में मुँह से जो बातें निकलती हैं उसे परमेश्वर की ही वाणी समझना चाहिए। इसीलिए आज भी गाँवों में पंचों का बड़ा आदर किया जाता है तथा उनके द्वारा किया गया ग्रामीण झगड़ों का निर्णय 'कोर्ट' के सामन ही लागू माना जाता है।

गाँवों में पंचो की इसी प्रतिष्ठा तथा ईमानदारी को ध्यान में रखकर वर्तमान सरकार ने ग्रामीण क्षेत्रों में पंचायत राज्य की स्थापना की है जो स्थानीय विवादों का निपटारा किया करती है। इनके निर्णय कचहरी के निर्णयों के समान ही मान्य समझे जाते हैं।

पाँच आदमी मिलकर जो भी काम करते हैं उसमें हार या जीत कुछ भी हो कुछ लज्जा का अनुभव नहीं होता। इस सम्बन्ध में यह लोकोक्ति प्रसिद्ध है कि—

"पंच जना मिलि कीजे काज।
हारे जीते नाहीं लाज॥"

यहाँ पाँच का अर्थ समुदाय समझना चाहिए। चूँकि समुदाय के द्वारा किये गये कार्य में किसी व्यक्ति विशेष का उत्तर दायित्व नहीं होता अतः उसके हार-जीत में किसी प्रकार की लज्जा नहीं होती।

न्याय-प्रिय तथा अन्याय के विरुद्ध लड़ने वाले पाण्डवों की संख्या पाँच ही थी। अत. 'पंच पाण्डव' शब्द न्याय का प्रतीक बन गया है। भगवान् श्री कृष्ण के शंख का नाम 'पाञ्चजन्य' था जिससे पाँच की ध्वनि निकलती है। शिव की पाँच मुख वाली प्रतिमा बड़ी महत्त्वपूर्ण मानी जाती है जिसे "पंचमुखी महादेव" कहा जाता है। ऐसी मूर्ति बहुत कम प्राप्त होती है। इसीलिए इसकी अधिक आदर तथा श्रद्धा के साथ पूजा की जाती है।

(७) सात

संख्या सात के संबंध में भी अनेक लोक-विश्वास प्रचलित है। तीन और तेरह को छोड़ करके यह प्रायः समस्त विषम संख्याएँ शुभ मानी जाती हैं। सात के संबंध में यही बात कही जा सकती है।

भारतीय साहित्य तथा संस्कृति में अनेक वस्तुओं की संख्या सात ही

मानी जाती है। जैसे सप्तसिन्धु, सप्तर्षि मण्डल, सप्त पर्वत आदि। ऋग्वेद हम भारतीय लोगों का सबसे प्राचीन तथा प्रसिद्ध ग्रन्थ है जिसका सायण भाष्य के सहित सबसे प्रथम संस्करण प्रसिद्ध जर्मन विद्वान् मैक्समूलर ने सन् १८८१ ई० मे सम्पादित कर प्रकाशित किया था। मैक्समूलर ने इस ग्रन्थ मे सात वस्तुओं के अनेक समूहों (seven sets) का उल्लेख किया है। जैसे—सप्त आदित्य, सूर्य के सप्त अश्व, ऊषा के सात पुत्र, सप्त स्वर आदि। इसके साथ ही सप्त सिर वाले जीवों, सात पहिये वाले रथ तथा मानव की सात प्रकार की जातियों का भी पता चलता है।

ऋग्वेद के अनुवाद कर्ता ग्रिफिथ महोदय ने इस वेद में १५४ ऐसे सूक्तों का पता लगाया है जिसमें सात की संख्या का उल्लेख हुआ है। तंत्र-शास्त्र मे भी मानव-शरीर में सात चक्रों की स्थिति का वर्णन पाया जाता है जो एक-दूसरे के ऊपर स्थित हैं। पुराणों के अनुसार आकाश में सप्तर्षि मण्डल की स्थिति पाई जाती है। ऐसा लोगों का विश्वास है ये तारे सात ऋषि हैं, जिनके नाम हैं—मरीचि, अत्रि, अंगिरा, पुलस्त्य, क्रतु, वशिष्ठ।

वेदों में "सप्त सिन्धवः" का उल्लेख पाया जाता है। इसके अन्तर्गत पंजाब की प्रसिद्ध पाँच नदियाँ तथा सिन्धु और सरस्वती सम्मिलित हैं। पृथ्वी को सप्तद्वीपा वसुमती कहा गया है जिसमें सात द्वीप पाये जाते हैं। विवाह मे वर तथा वधू को एक साथ सात बार अग्नि की प्रदक्षिणा करनी पड़ती है जिसे 'सप्तपदी' कहा जाता है। किसी राष्ट्र के सात अंग होते हैं—'सप्ताङ्ग राष्ट्र-मुच्यते।' स्वामी, अमात्य, दुर्ग और कोष आदि की गणना की जाती है। सूर्य को "सप्तसप्तिः" कहा जाता है। क्योंकि ऐसा माना जाता है कि सूर्य के घोड़ों की संख्या सात है।

भोजपुरी लोक गीतों में सात की संख्या शुभ मानी गई है। इसीलिए विवाह में वर को जब हल्दी चढ़ाई जाती है तब वहाँ सात स्त्रियाँ मिलकर यह कार्य करती हैं—

> "सात सखे हरि मिलि के,
> हरदी चढ़ावहुँ हमरा लाल के।"

जिस लड़के का जन्म सात महीनों के ही बाद हो जाता है उसे 'सतवाँस' कहते हैं। ऐसे पुत्र का जन्म शुभ नही माना जाता।

भारत के अतिरिक्त अन्य देशों में भी सात संख्या के विषय में अनेक लोक-विश्वास प्रचलित हैं। तिब्बत के लामा मानव जीवन की उत्पत्ति सात चक्रो

से मानते हैं। मुसलमानी धर्म में सात संख्या का समधिक महत्त्व माना जाता है। इस धर्म के अनुसार सात स्वर्ग तथा सात नरक माने जाते हैं। ये पृथ्वी की संख्या सात मानते हैं।

सृष्टि करने के सात दिन माने जाते हैं जिसमें रविवार विश्राम का दिन स्वीकार किया जाता है। प्रत्येक सप्ताह में सात दिन होते हैं। यहूदी धर्मावलम्बियों के अनुसार भगवान् के पास सात दूत होते हैं। मानव का शरीर इन लोगों के अनुसार सात तत्त्वों से बना हुआ है।

ईसाई धर्म में सात की संख्या महत्त्वपूर्ण है। बाइबिल के अनुसार ईसा ने शूली पर चढ़ने पर सात बार अपने शिष्यों से भाषण किया। न्यू टेस्टामेण्ट में सात चर्चों, सात मोमबत्तियों, सात तारों, सात सींग तथा सात आँख वाले मेमना एवं सात दूतों का उल्लेख पाया जाता है। इस प्रकार भारतीय और पाश्चात्य साहित्य तथा समाज में सात की संख्या अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। इससे जन-जीवन के अनेक विश्वास जुड़े हुए हैं।"[1]

संगीतशास्त्र में सप्त स्वर ही प्रधान तथा आधारभूत है जिस पर इस शास्त्र का विशाल प्रासाद अवस्थित है। ये सप्त स्वर हैं :

(१) ऋषभ (२) पंचम (३) धैवत (४) निषाद (५) गान्धार (६) षडज (७) मध्यम।

राजाओं की "प्रकृति" भी सात होती है जिसमें कोष, दुर्ग, सेना आदि की गणना की जाती है। सूर्य के घोड़ों की संख्या भी सात ही होती है। इसी लिए उन्हें "सप्तसप्तिः" अर्थात् सात घोड़ों वाला कहा जाता है। सूर्य की किरणों में रंग भी सात हैं। लोक गीतों में ऐसा वर्णन पाया जाता है कि पाँच-सात सहेलियों के द्वारा गीत गाना चाहिए और विवाह के लिए जाने वाले 'वर' को परीछना चाहिए। पाँच अथवा सात लोग मिलकर यदि कोई निषिद्ध काम भी करें तो उसमें कोई दोष नहीं लगता है। कहावत है—

"पाँच-सात लड़िका, एक सन्तोष[2]।
गदहा मरले, तनिको ना दोष।"

---

१. "सात संख्या के विस्तृत विवरण के लिए" देखिए—'नार्दर्न इण्डिया पत्रिका" ८ दिसम्बर सन् १९८५ का अंक।

२. पण्डित जी के लड़के का नाम।

डिजिटों (इकाइयों) को जोड़ देने पर उनका जोड़ सदा नौ आता है। गोस्वामी तुलसीदास ने इस विशेषता की ओर निम्नलिखित रूप में संकेत किया है—

"जैसे अंक न घटत नौ,
नव (नौ) के लिखत पहार"

लोक-संस्कृति (फोकलोर) के सुप्रसिद्ध विद्वान् एलेक्जेण्डर क्रेपी ने लिखा है कि लोक-परम्परा में संख्या नौ (९) की बारम्बार आवृति तथा उल्लेख इसकी पवित्रता को प्रकट करता है। इसकी प्रधानता का दूसरा कारण इसकी संख्या तीन का वर्गमूल (३ × ३ = ९) होना है।[1] परन्तु यह तथ्य से स्पष्ट नहीं प्रतीत होता है कि तीन के वर्गमूल होने के कारण कोई संख्या (अर्थात् ९) पवित्र तथा प्रसिद्ध कैसे मानी जा सकती है।

इसी प्रकार से इस विद्वान् ने संख्या का गुणन फल (३ × ९ = २७) होने के नाते सत्ताइस (२७) को भी लोकप्रिय संख्या स्वीकार किया है। परन्तु इसका कोई कारण उन्होंने नहीं दिया है।

(१०) दस

दिशायें दस मानी जाती हैं। पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण के अतिरिक्त चारों दिशाओं में स्थित चार कोण तथा आकाश एवं पाताल ये दस दिशायें हैं। लोगों का यह विश्वास है कि प्रत्येक दिशा का पालन करने वाला एक दिकपाल होता है। अतः दिक्पालों की भी संख्या दस होती है। ये दिक्पाल हाथियाँ होती हैं जो दिशाओं के पालन करने के लिए नियुक्त रहती है।

प्राचीन काल में राजा लोग जब दिग्विजय के लिए निकलते थे तब दसों दिशाओं के शासकों को जीतकर उन्हें अपने वश में कर लिया करते थे। इन्द्रियाँ दस होती हैं जिसके द्वारा मनुष्य अपने सब क्रिया-कलापों को किया करता है। भगवान् विष्णु ने संसार के उद्धार के लिए दस अवतारों को धारण किया था जिनके नाम निम्नलिखित हैं—

---

१ "The frequent occurence of number nine is folk traditions is ultimately a consequence of the sacredness of that number. x x x Nine owes its conscipicuous role to the simple fact that it is the square of three."

—क्रेपी—दि साइन्स आफ फोकलोर, पृ० २१५

(१) मच्छ (मछली) (२) कच्छ (३) बाराह (सूअर) (४) नृसिंह (नरसिंह) (५) वामन (६) परशुराम (७) रामचन्द्र (८) बलराम (९) बुद्ध (१०) कल्कि।

इन्हीं सब कारणों से दस संख्या पवित्र मानी जाती है।

(११) ग्यारह

रुद्रों की संख्या एकादश (११) मानी गई है। शिव के भयंकर रूप को रुद्र कहा जाता है। एकादश रुद्रों के समूह में शिव ही प्रधान माने जाते हैं। भगवान् शिव से सम्बन्धित होने के कारण ग्यारह की संख्या भी शुभ है।

(१२) बारह

ग्यारह के समान ही बारह की संख्या भी शुभ मानी जाती है। इसका कारण यह है कि सूर्य अर्थात् आदित्य बारह माने जाते हैं। ऐसी प्रसिद्धि है कि प्राचीन काल में द्वादश आदित्य—बारह सूर्य थे जिनके प्रताप के कारण संसार अत्यन्त तप्त हो जाता था। एक दिन प्रात: काल में उगने वाले रवि मण्डल के लाल गोले को हनुमान जी लाल लड्डू समझ कर निगलना प्रारम्भ कर दिया। जब उन्होंने ग्यारह सूर्यों को निगल लिया तब इन्द्र ने इस आशंका से कि यदि इन्होंने बारहवें सूर्य को भी निगल लिया तब संसार में अँधेरा छा जायेगा अत: अपने वज्र से उन पर आघात कर उन्हें ऐसा न करने के लिए कहा जिससे एक सूर्य बच गया। इस घटना की ओर 'हनुमान चालीसा' में संकेत निम्न प्रकार से किया गया है।

"बाल समय रवि भक्षि लियो
तब तीनहुँ लोक भयो अँधियारो।"
ताहि सों त्रास भयो जग को,
यह संकट काहू सो जात न टारो।
देवन आनि करी बिनती,
तब छाड़ि दियो रवि कष्ट निवारो।"

गुप्त सम्राट् में से किसी एक ने अपनी उपाधि 'द्वादशादित्य' की धारणा की थी जिससे उसका प्रबल पराक्रम प्रकट होता है।

(१३) तेरह

तेरह सख्या अशुभ मानी जाती है विषम सख्याओं में तीन के समान

तेरह भी अमंगलकारी संख्या है। पहिले लिखा जा चुका है कि सरयूपारीण ब्राह्मण दो श्रेणियों में विभक्त किये गये हैं—तीन और तेरह। इनमें प्रथम वर्ग (तीन) के ब्राह्मण श्रेष्ठ माने जाते है परन्तु तेरह की निकृष्टता में गिनती होती है।

इस मान्यता के अन्तर्गत यह लोक-विश्वास विद्यमान है—प्राचीन काल मे भगवान् रामचन्द्र ने एक बहुत बड़ा यज्ञ किया था जिसमें उन्होंने ब्राह्मणो को भोजन के लिए आमन्त्रित किया था। चूंकि दक्षिणा के बिना यज्ञ अपूर्ण माना जाता है अतः राम ने ब्राह्मणों को जो पान खाने के लिए दिया उसमे उन्होंने दक्षिणा का भी उल्लेख कर दिया। तेरह गोत्र वाले ब्राह्मणों ने उस पान को खा लिया और दक्षिणा को स्वीकार कर लिया। परन्तु गर्ग, गौतम और शाण्डिल्य गोत्र वाले तीन ब्राह्मणों ने, जो बहुत चालाक थे, पान खोल-कर दक्षिणा देख ली और उसे अस्वीकार कर दिया। इस प्रकार दान ले लेने के कारण ये १३ गोत्र वाले ब्राह्मण नीच माने जाने लगे और तीन अपने को श्रेष्ठ समझने लगे। तीन और तेरह का यही रहस्य है। इस कारण तेरह संख्या शुभ नहीं मानी जाती।

यूरोपीय देशों में भी तेरह की संख्या को अत्यन्त अशुभ तथा अमंगल-कारी माना जाता है। इस लोक-विश्वास का कारण यह है कि ईसामसीह के जीवन के अन्तिम भोज, जिसे 'लास्ट सपर' (Last supper) कहा जाता है, में उनके तेरह (१३) शिष्य सम्मिलित थे। इनमें से तेरहवें शिष्य का नाम जूडा था। यह बड़ा दुष्ट व्यक्ति था। इसने विश्वासघात करके ईसा-मसीह को शूली के तख्ते पर लटकवा दिया अथवा इसी के षडयंत्र के कारण क्राइस्ट को शूली की सजा दी गई। इसी दुर्घटना के कारण समस्त ईसाई-समार में तेरह की संख्या अत्यन्त अशुभ, अमंगलकारी तथा घृणास्पद समझी जाती है।

थिसलटन डायर ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'इंग्लिश फोकलोर' में ऐसे अनेक उदाहरण प्रस्तुत किये हैं जिनमें तेरह व्यक्तियों के द्वारा एक साथ भोज मे उपस्थित होने के कारण तेरहवें व्यक्ति की मृत्यु एक वर्ष के भीतर हो गई।[1] अतः किसी भोज में तेरह व्यक्तियों का उपस्थित होना अत्यन्त अशुभ माना जाता है। यह संख्या इतनी अशुभ मानी जाती है कि होटलों में भी नं० १३ के कमरे में कोई रहना नहीं चाहता।

---

१. इङ्गलिश फोकलोर—पृ० २७५-७६

(१४) चौदह

यह संख्या अशुभ मानी जाती है। देवताओं तथा असुरों ने जब समुद्र का मंथन किया तब उसमें से निकलने वाले पदार्थों की संख्या चौदह थी जो 'चतुर्दश रत्न' के नाम से प्रसिद्ध है। इनमें से प्रसिद्ध रत्न ऐरावत नामक इन्द्र का हाथी, उच्चैः श्रवा घोड़ा अमृत का कलश (कुम्भ) लक्ष्मी और धन-वन्तरि आदि प्रसिद्ध हैं। इसी प्रकार से विद्याओं की संख्या भी चौदह ही मानी जाती है। इस विषय में यह श्लोक प्रसिद्ध है।

"षडंग मिश्रिताः वेदाः,
धर्मशास्त्रं पुराणकम् ।
मीमांसा तर्कमपि च,
एताः विद्याः चतुर्दश ॥"

भुवनों की संख्या का उल्लेख चौदह के रूप में पाया जाता है जैसे— "चतुर्दश भुवनानि" अर्थात् चौदह भुवन। परन्तु कुछ विद्वान् भुवनों की संख्या केवल तीन ही स्वीकार करते हैं जैसा कि 'त्रिभुवनम्' शब्द से प्रतीत होता है। महाकवि श्रीहर्ष ने भी नैषधीय चरितम् में चौदह विद्याओं की ही ओर संकेत किया है।

"अधीति-बोधाचरण प्रचारणैः
क्रियाः चतस्रः प्रणयन्नुपाधिभिः।
चतुर्दशत्वं कृतवान् स्वयं कुतः,
न वेद्मि विद्यासु चतुर्दशस्वयम् ॥

—नै० च०, सर्ग १

(१५) पन्द्रह

संख्या पन्द्रह के संबंध में संभवतः कोई लोक-विश्वास उपलब्ध नहीं होता। यह एक ऐसी संख्या है जिसका संस्कृत साहित्य में पृष्ठ संख्या की गणना के अतिरिक्त कोई भी उल्लेख नहीं पाया जाता। लोक में भी इसका वर्णन न तो लोक गीतों में मिलता है और न कहावतों और पहेलियों में। अतः यह मनहूस संख्या ऐसी है जिसकी चर्चा न तो साहित्य में ही पायी जाती और न लोक में ही।

हाँ गाँव के छोटे-छोटे बच्चे जब "पहाड़ा पढ़ाते" हैं अर्थात् अंकों के

गुणनफल की गिनती करते हैं तब वे पन्द्रह का "पहाड़ा पढ़ते" समय इसे बड़े ही राग (रिदम) से गाते हैं जो बड़ा ही कर्ण-सुखद मालूम पड़ता है जो इस प्रकार है। "पन्द्रह दूनी तीस, तियाँ पैंतालिस, चउका साठ; पाँचे पचहत्तर, छक्का नब्बे; साते पाँच; आठे बीसा नव (नौ) पैंतीसा झाका झूमरि डेढ़ सौ।" कहने की आवश्यकता नहीं कि यहाँ पाँच का अर्थ १०५, बीसा का १२० और पैंतीसा का आशय १३५ संख्याओं से है। यद्यपि लोक-विश्वास के अन्दर यह सूक्ति अन्तर्भुक्त नहीं होती परन्तु बच्चों की दुनिया में प्रचलित होने के कारण यहाँ इसे उद्धृत किया गया है।

अठारह (१८)

यद्यपि समसंख्यायें प्राय: शुभ नहीं मानी जाती हैं परन्तु अठारह की संख्या इसका अपवाद है। इसे शुभ माना जाता है। भगवद् गीता यद्यपि छोटा-सा ग्रन्थ है परन्तु उसमें अठारह अध्याय पाये जाते हैं। इसी प्रकार हमारे पुराणों की संख्या भी अठारह ही है। यद्यपि उप-पुराणों को लेकर इनकी संख्या अधिक हो जाती है परन्तु महापुराणों की संख्या केवल अठारह ही है। जहाँ भी पुराणों का नाम आता है वहाँ अष्टादश पुराणों का ही उल्लेख है। इस संबंध में एक प्राचीन श्लोक इस प्रकार पाया जाता है—

"अष्टादश पुराणेषु व्यासस्य वचनद्वयम्।
परोपकार: पुण्याय पापाय परपीडनम्।"

अत: इस श्लोक के द्वारा भी इनकी संख्या अठारह ही प्रमाणित होती है।

हमारे राष्ट्रीय महाकाव्य 'महाभारत' में अठारह ही 'पर्व' पाये जाते है। यद्यपि इस महाकाव्य की समस्त श्लोक संख्या एक लाख से भी अधिक है परन्तु 'पर्वों' की संख्या केवल अठारह ही है। इसी पवित्रता के कारण आज-कल भी अनेक लेखक अपने ग्रन्थों के अध्यायों की संख्या अठारह ही रखना चाहते हैं। यह संख्या इतनी शुभ क्यों मानी जाती है इसका कारण कुछ ज्ञात नहीं हैं। बहुत संभव है कि पवित्र पुस्तक गीता के अठारह अध्यायों के कारण ही यह पवित्रता इस संख्या को प्राप्त हो गई हो। विद्याओं की संख्या भी अठारह मानी जाती है। महाकवि श्री हर्ष ने राजा नल के विषय में लिखा है कि इन्होंने अठारहों विद्या का अध्ययन किया था।

"अमुष्य विद्या रसनाऽर्ग्रवर्तिनी;
त्रयीव नीताङ्गगुणेन विस्तरम् ।
अगाहताष्टादशतां जिगीषया;
... ... ॥"

—नै० च०, सर्ग १

३६ तथा ६३

छत्तीस (३६) संख्या की लिखावट ऐसी है जिसे देखने से ही पता चलता है कि एक संख्या (३) दूसरी संख्या (६) से बिल्कुल ही विपरीत है। इसीलिए संसार के कार्यों से उदासीन तथा विमुख रहने वाले व्यक्ति की उपमा छत्तीस (३६) से दी जाती है। इसके ठीक विपरीत तिरसठ (६३) संख्या की लिखावट ऐसी है जो आमने-सामने होने के कारण मिलाप, प्रेम तथा सद्भावना को प्रकट करती है। इसीलिए गोस्वामी तुलसीदास ने संसार के जीवों को इस जगत् से छत्तीस रहने का उपदेश दिया है। इसके ठीक विपरीत उनकी यह शिक्षा है कि भगवान् राम के चरणों में तिरसठ (६३) के समान रहना चाहिए। इसका आशय यह है कि जिस प्रकार ३६ की संख्या की दोनों इकाई (Digit) एक दूसरे से उल्टी है, मनुष्य को उसी प्रकार संसार से विमुख रहना चाहिए। परन्तु राम के चरणों में ६३ संख्या की तरह सामने रहकर प्रेम करना उसका परम कर्त्तव्य है।

गोस्वामी जी का कथन है कि—

"जगतें रहु छत्तीस ह्वै, राम चरण छः तीन।
तुलसीदास कहैं सदा; है यह मतो प्रवीन॥"

इस प्रकार ३६ संख्या विराग तथा उदासीनता का तथा ६३ प्रेम एवं मित्रता का प्रतीक मानी जाती है।

संख्या (४६)

भोजपुरी प्रदेश में जब किसी मृत व्यक्ति को जला दिया जाता है तब उसकी राख को हटाकर उस स्थान पर ३६ का अंक लिख दिया जाता है। चूँकि इस संख्या के दोनों डिजिट (digit) (३६) एक दूसरे के विपरीत हैं। अतः इस संख्या का प्रतीकात्मक आशय यह है कि इस व्यक्ति का अब संसार से नाता टूट गया।

परन्तु विलियम क्रुक ने अपनी पुस्तक में लिखा है कि इस अवसर पर श्मशान-स्थल पर ३६ न लिखकर ४६ की संख्या लिखी जाती है।[1] इसका कारण बताते हुए उसका कथन है कि पण्डितों के कथनानुसार ४६ लिखने पर यह संख्या विष्णु के चक्र तथा उनके शंख की आकृति का अनुकरण करती है।[2] इस विश्वास का दूसरा स्पष्टीकरण यह है कि स्वर्ग के उनचास पवनों को निमंत्रण देकर उन्हें इस स्थान को स्वच्छ तथा पवित्र बनाने के लिए बुलाना है। इस प्रकार ३६ अथवा ४६ संख्या का आशय एक ही है।

संख्या ७४१/२

सर्वसाधारण जनता का यह विश्वास है कि यदि किसी बन्द पत्र के ऊपर ७४१/२ की संख्या लिख दी जाय तो उस पत्र को खोल कर पढ़ने वाले व्यक्ति को बहुत बड़ा पाप लगता है। इस ७४१/२ संख्या संबंधी दो-तीन किम्वदन्तियाँ प्रसिद्ध हैं।

(१) ऐसा कहा जाता है कि मुसलमान बादशाह अलाउद्दीन ने जब चित्तौड़ के किले पर चढ़ाई की थी उस समय मृत रानियों के स्वर्ण के आभूषण को जब तौला गया तब वह ७४१/२ मन वजन का हुआ।[3]

(२) दूसरी किम्बदन्ती यह है कि इस युद्ध में इतने अधिक वीर क्षत्रियों की हत्या की गई थी कि जब उनका जनेऊ अथवा यज्ञोपवीत तौला गया तब उसका वजन ७४१/२ मन हुआ था।

(३) इस संबंध में तीसरी किम्बदन्ती यह है कि सैय्यद सालार जंग ने जब बहराइच के राजा पर आक्रमण किया तब उस युद्ध में मारे गये हिन्दुओं के जनेऊ का वजन ७४१/२ मन था।

अतः किसी चिट्ठी के ऊपरी भाग पर ७४१/२ लिखने का आशय यह है कि इस पत्र को खोल कर पढ़ने वाले व्यक्ति को वही पाप लगेगा जो उन असंख्य हिन्दुओं को मारने में लगा था जिनके जनेऊ का वजन ७४१/२ मन था। यही इस संख्या का रहस्य है।

---

१. क्रुक—पा० रि० फो० लो० भाग २, पृ० ५१
(तृतीय संस्करण १९६८, नयी दिल्ली)

२. वही, पृ० ५१

३ वही पृ० ३६

(१००) सौ

सौ के सम्बन्ध में अनेक लोक-विश्वास प्रचलित हैं। हमारे प्राचीन धर्म शास्त्र में मनुष्य की आयु एक सौ वर्ष मानी गई है। अतः प्रत्येक मनुष्य एक सौ वर्ष जीवित रहने की भगवान् से प्रार्थना करता है।

"जीवेम शरदः शतम्"

यही आर्यों की प्रार्थना तथा आस्था का मूल आधार होता था। वे केवल सौ वर्षों तक जीवित ही नहीं रहना चाहते थे बल्कि इसके साथ ही अपनी समस्त इन्द्रियों की शक्ति को सुरक्षित रखने की प्रार्थना करते थे जिससे वे सुन सकें, बोल सकें, तथा किसी के ऊपर आश्रित न रहकर (अदीन) सम्मानपूर्वक अपना जीवन-यापन कर सकें।

किसी मनुष्य अथवा संस्था की आयु एक सौ हो जाने पर उसकी शताब्दी मनाई जाती है। क्योंकि ऐसा समझा जाता है कि सौ वर्ष की आयु प्राप्त करना विशेष गौरव की वस्तु है। धृतराष्ट्र के पुत्रों की संख्या सौ (१००) थी जिसमें दुर्योधन सबसे बड़ा था। इसी की हठधर्मिता के कारण महाभारत का सुप्रसिद्ध युद्ध हुआ था जो भारतीय इतिहास में प्रसिद्ध है।

(१००८) संख्या

प्राचीन काल में किसी व्यक्ति के नाम के पहिले 'श्री' लिखने की परम्परा थी जो आज भी किसी-न-किसी रूप में विद्यमान है। इस 'श्री' की संख्या जितनी ही अधिक होती थी वह व्यक्ति उतना ही महान् माना जाता था। चूँकि साधु, महात्मा, महन्त तथा मठाधीश आदि समाज में समधिक सम्मान के पात्र माने जाते हैं, अतः उनके नाम के पहिले १००८ श्री लिखने की परम्परा आज भी चली आ रही है। चूँकि चारों पीठों के शंकराचार्यों का साधारण साधु-सन्तों से भी अधिक महत्त्व माना जाता है, अतः उनके नाम के पहिले "अनन्त श्रीविभूषित" लिखने की प्रथा विद्यमान है। काशी के करपात्री जी महाराज को उनके भक्त गण "अनन्त श्री विभूषित" से सम्बोधित किया करते थे। जो साधु सन्त कुछ कम प्रसिद्ध हैं उनके नाम के पहिले केवल "१०८ श्री" ही लिखा जाता है।

किस व्यक्ति के नाम के पहिले कितनी संख्या की श्री लगानी चाहिए इसके सम्बन्ध में एक दोहा प्रसिद्ध है जिससे यह जाना जा सकता है कि समाज में किस व्यक्ति को कितना सम्मान प्राप्त था

"श्री लिखिए षट् गुरुन को,
चार मित्र रिपु तीन।
एक मित्र, अरु नारि को,
है यह मतो प्रवीन॥"

(१,०००) एक हजार

एक हजार की संख्या के सम्बन्ध में कोई लोक-विश्वास उपलब्ध नहीं होता। हाँ, इन्द्र भगवान् की एक हजार आँखें हैं। इसीलिए उन्हें 'सहस्राक्षः' कहा जाता है। इस सम्बन्ध में यह प्रसिद्धि है कि इन्द्र ने कुक्कुट का वेश धारण कर गौतम ऋषि को धोखा दिया था। अतः गौतम ने क्रोध में आकर उनके शरीर में एक हजार आँखें उत्पन्न हो जाने का शाप दे दिया। इसी कारण इन्द्र सहस्राक्ष (एक हजार आँखो वाला) कहे जाते हैं।

ऋग्वेद के "पुरुष सूक्त" में पुरुष (भगवान्) को एक हजार सिरों, १००० आँखों, और १००० पैरों वाला कहा गया है। मन्त्र इस प्रकार है।

"सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः
सहस्रपात्।
स भूमिं सर्वतो स्पृष्ट्वा
अधितिष्ठत् दशाङ्गुलम्॥"

सम्भवतः १००० अंकों का प्रयोग पुरुष की विशालता के लिए किया गया है। हो सकता है कि इस संख्या में कोई प्राचीन विश्वास तथा रहस्य छिपा हुआ हो।

(१००,०००) एक लाख

यों तो संख्या की सबसे बड़ी इकाई परार्ध होती है परन्तु ग्रामीण जनता के लिए एक लाख ही सबसे बड़ी संख्या है। ये लोग करोड़ नहीं जानते। प्रत्युत इनके संख्या ज्ञान की अन्तिम इकाई लाख ही होती है। इसीलिए किसी अत्यन्त धनाढ्य व्यक्ति के लिए 'लखपति' शब्द का ही प्रयोग करते हैं चाहे उसके पास करोड़ों रुपये ही क्यों न हो। इसी प्रकार किसी स्त्री का नाम प्रसन्नतापूर्वक 'लखटकही' रखा जाता है जिसका अर्थ लाख रुपयों(टका) वाली है। इस नामकरण से पता चलता है साधारण जनता के मस्तिष्क में केवल लाख रुपया प्राप्त करने की भावना विद्यमान रहती है।

किसी व्यक्ति की दीर्घ आयुष्य की कामना के लिए आशीर्वाद देते समय उसे लाख वर्षों तक जीवित रहने का आशीष दिया जाता है । लोक-गीतों में "जीयसु बबुआ लाख बरिस" की ही कामना की गई है । उर्दू के साहित्य के सर्वश्रेष्ठ कवि गालिब ने एक वर्ष में एक हजार दिन (३६५ दिन नहीं) होने की कामना की है । परन्तु एक दूसरे कवि ने लाखों वर्षों तक मैखाना के आबाद रहने के लिए शुभ कामना व्यक्त की है ।

"रहे लाखों बरस साकी,
तेरा आबाद मैखाना ।"

इस प्रकार लक्ष (लाख) संख्या अत्यन्त शुभ मानी जाती है ।

—०—

नवम अध्याय

दिन, मास तथा वर्ष सम्बन्धी लोक-विश्वास

इस देश में वर्ष, मास और दिन को बड़ा पवित्र माना जाता है तथा इसके सम्बन्ध में अनेक लोक-विश्वास प्रचलित हैं। भारत में नया वर्ष चैत्र मास के शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा से प्रारम्भ होता है। इसी दिन से वासन्तिक नवरात्र का भी श्रीगणेश होता है परन्तु इस दिन कोई विशेष उत्सव नहीं मनाया जाता। इसके विपरीत ईसाई लोग १ जनवरी को वर्ष का प्रथम दिन होने के कारण बड़े ही धूम-धाम से उत्सव मनाते हैं।

चूंकि चैत्र शुक्ल प्रतिपदा से हमारा नया वर्ष प्रारम्भ होता है अतः यहाँ चैत्र से नया वर्ष प्रारम्भ कर उससे सम्बन्धित लोक-विश्वासों का वर्णन किया गया है। हमारे यहाँ विभिन्न दिन भी बड़े पवित्र हैं तथा कुछ अशुभ माने जाते हैं। अनेक दिनों को तो यात्रा करना भी अशुभ है।

परन्तु वर्ष, मास तथा दिन के सम्बन्ध में ये लोक-विश्वास केवल भारत में ही नहीं बल्कि यूरोप के अन्य देशों में भी प्रचलित हैं। अतः यहाँ पहिले इनके सम्बन्ध में भारतीय लोक-विश्वासों का वर्णन करने के बाद यूरोपीय विश्वासों की चर्चा की गई है।

(१) परिच्छेद

(१) चैत्र

चैत्र का महीना बड़ा ही महत्त्वपूर्ण तथा मंगलमय मास माना जाता है। इसके प्रधानतया तीन कारण हैं। प्रथमतः इस मास की चैत्र पक्ष की नवमी को भगवान् राम ने इस धरा धाम पर अवतार लिया था जैसा कि इस पंक्ति से स्पष्ट है—

"राम चन्दर जनम लिहले,
चइत राम नवमी।"

अतः इस राम नवमी के दिन मंदिरों में बड़ा उत्सव मनाया जाता है। इस प्रकार भगवान् के जन्म लेने के कारण इस मास का महत्त्व समधिक बढ़ गया है।

इस मास की महत्ता का दूसरा कारण वसन्त नवरात्र का प्रारम्भ होना है। शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा से लेकर नवमी तक यह नवरात्र मनाया जाता है। इन दिनों में देवी की पूजा आराधना बड़े ध्यान तथा भक्ति से की जाती है। भक्त लोग देवी के मन्दिरों में जाकर दुर्गा सप्तशती का पाठ करते हैं।

इस मास की तीसरी विशेषता नव वर्ष का प्रारम्भ है। संभवतः यह तथ्य बहुत ही कम लोगों को ज्ञात होगा कि हिन्दू संवत्सर का नवीन दिन चैत्र शुक्ल प्रतिपद से प्रारम्भ होता है। इसी समय से नवीन पंचांग चालू हो जाता है जिससे विवाहादि संस्कारों की शुभ तिथि निश्चित की जाती है।

चैत्र मास के शुक्ल पक्ष की नवमी को ही भगवान् रामचन्द्र ने इस धरा पर अवतार लिया था। अतः राम के जन्म-ग्रहण के कारण यह मास पवित्र माना जाता है। ब्रह्मचारी बालकों का यज्ञोपवीत संस्कार प्रायः इसी मास में सम्पादित किया जाता है। मुण्डन सम्बन्धी मनौतियाँ इसी महीने मे मनाई जाती हैं। सम्पूर्ण वर्ष में दो नवरात्र मनाये जाते हैं—(१) वासन्तिक तथा (२) शारदीय। इनमें पहिला वसन्तकालीन नवरात्र चैत्र शुक्ल प्रतिपद से नवमी तक मनाया जाता है परन्तु शारदीय नवरात्र का महत्त्व इससे कुछ अधिक माना जाता है।

(२) बैसाख

बैसाख के दिनों में गर्मी पड़ती है। जिससे सर्वत्र घास सूख जाती है। इस कारण कहीं भी हरियाली का दर्शन नहीं होता। सभी पशु इस मास मे घास अथवा चरी के अभाव के कारण दुबले-पतले हो जाते हैं परन्तु गदहा दिन प्रतिदिन मोटा होता चला जाता है। इसीलिए इसे "बैसाखनन्दन" भी कहा जाता है अर्थात् बैसाख में सुख को प्राप्त करने वाला पशु। लोगों का यह विश्वास है कि इस मास में सर्वत्र घास के अभाव के कारण गदहा को यह आत्मसुख प्राप्त होता है कि मुझे घास बहुत कम चरनी पड़ेगी। इसी आत्म सन्तोष के कारण वह मोटा होता जाता है।

इस मास में वर्षा के योग के विषय में भड्डरी का कहना है कि बैसाख सुदी प्रतिपदा को बादल और बिजुली हो तो ऐसी अच्छी फसल होगी कि अन्न बिना दाम का ही मिला करेगा।[१]

(२) जेठ

जेठ मास के सम्बन्ध में गाँवों में यह धारणा प्रचलित है कि "तीन जेठ होखेला त बिआह ना होला" अर्थात् जब वर तथा कन्या अपने पिता की जेठी सन्तान हों तो जेठ के महीने में उनका विवाह होना अशुभ माना जाता है। इस विश्वास के पीछे क्या रहस्य है यह कहना कठिन है। परन्तु यह धारणा जनता में बद्ध मूल है।

गावों में प्रचलित एक लोकोक्ति है कि "जेठ से दिन हेठ" अर्थात् जेठ के महीने से दिन 'हेठ' (छोटा) होने लगता है। सम्भवतः २१ जून वर्ष का सबसे बड़ा दिन होता है। इसके बाद दिन छोटे होने लगते हैं। उपर्युक्त उक्ति इसी तथ्य को पुष्ट करती है।

जेठ मास के शुक्ल पक्ष की दशमी तिथि 'गंगा दशहरा' के नाम से प्रसिद्ध है। ऐसी किम्बदन्ती है कि राजा भगीरथ की कठोर तपस्या तथा प्रयास के फल स्वरूप गंगा का इसी तिथि को पृथ्वी तल पर अवतरण हुआ था। अतः काशी आदि तीर्थ स्थानों में इस तिथि के दिन रात्रि में गंगा के तट पर बड़ा भारी उत्सव मनाया जाता है जिसमें गंगा की स्तुति में स्तोत्र-पाठ करने के अतिरिक्त इनकी पूजा आराधना विधिपूर्वक की जाती है। गावों में जेठ पूर्णिमा आर्थिक कार्यों (Financial transactions) जैसे कर्ज देना-लेना या जमीन खरीदना आदि—की अन्तिम तिथि मानी जाती है।

जेठ मास में वर्षा के संबंध में भड्डरी की अनेक सूक्तियाँ पाई जाती हैं। उसका कहना है कि यदि जेठ वदी दशमी को शनिवार का दिन हो तो पृथ्वी पर पानी नहीं बरसेगा[२] परन्तु यदि जेठ महीना भर तक खूब गर्मी पड़े

---

१. "बैसाखी सुदि प्रथम दिन,
बादर बिज्जु करेइ।
दामों बिना बिसाहिजै,
पूरी साख भरेइ।"

२. "जेठ बदी दसमी दिना;
जो सनिवासर होय।
पानी होय न धरनि पर;
बिरला जीवै कोय॥"—त्रिपाठी—ग्रा० सा० पृ० २७

और पृथ्वी तपती रहे तब वर्षा की आशा की जा सकती है।[1] यदि जेठ के उतरते ही मेढक बोलने लगे तो इससे प्रचुर वर्षा होने की सूचना मिलती है।[2]

(४) आषाढ़

आषाढ़ और सावन महीनों में वर्षा के संबंध में भड्डरी ने जितनी सूक्तियाँ कही हैं संभवतः उतनी अन्य किसी मास के लिए नहीं है। उनका कहना है कि यदि आषाढ़ बदी अष्टमी को चन्द्रमा निर्मल दिखाई पड़े तो निश्चय ही सूखा अर्थात् अकाल पड़ेगा और घर का स्वामी मालवा जाकर भीख माँगता फिरेगा।[3] परन्तु यदि आषाढ़ सुदी नवमी को चन्द्रमा के ऊपर हलका-सा बादल छाया हो तो प्रचुर वर्षा होगी और पृथ्वी पर बड़ा ही आनन्द होगा।[4] यदि आषाढ़ बदी दशमी को मंगलवार और रोहिणी नक्षत्र हो तो इतना अन्न सस्ता बिकेगा कि कोई उसे हाथ से भी नहीं छुवेगा।[5]

(५) सावन

सावन का मनभावन मास बड़ा ही सुहावना होता है। प्राकृतिक हरीतिमा इस काल में अपने उत्कर्ष पर होती है। प्राकृतिक सौन्दर्य की पराकाष्ठा के साथ ही यह मास धार्मिक दृष्टि से भी समधिक प्रसिद्ध है।

सावन पवित्र मास माना जाता है। अतः इस मास में शैव-भक्त बेल की पत्तियों पर लाल स्याही से राम-नाम लिखकर उन बेल-पत्रों को शिव जी पर चढाते हैं। यह अनन्त पुण्य को देने वाला माना जाता है।

---

१. "जेठ मास जो तपै निरासा।
तो जानो बरसा की आसा॥"—त्रिपाठी—ग्रा० सा०, पृ० २८

२. "उत्तर जेठ जो बोले दादर।
कहै भड्डरी बरसै बादर॥"

३. "धुर असाढ़ की अष्टमी,
ससि निर्मलियो दीख।
पीव जायके मालवा,
माँगत फिरिहैं भीख॥"—त्रिपाठी—ग्रा० सा०, पृ० २६

४. "सुदि असाढ नौमी दिना, बादर झीनो चन्द।
यों तो जानो भड्डरी, भूमि घनो आनन्द॥"—पृ० ३०

५. "दसैं असाढ़ी कृष्ण को; मंगल रोहिनि होय।
सस्ता धान बिकाइहैं हाथ न छुइहैं कोय

काशी, अयोध्या और मथुरा के मंदिरों में इस मास में भगवान् कृष्ण का झूला सजाया जाता है जिसमें राधा और कृष्ण को विराजमान कर भक्तगण इस झूले को बड़ी भक्ति से झुलाते हैं। मथुरा में तो द्वारकाधीश के मंदिर में सोना और चाँदी का बना हुआ गंगा-जमुनी झूला निकाला जाता है जिसमें युगल-जोड़ी विराजती है। अयोध्या और मथुरा में इस मास में मेला भी लगता है जिसमें बड़ा जन संमर्द होता है।

सावन में कजली गाई जाती है मिर्जापुर में कजली-तीज को बहुत बड़ा मेला जुटता है जहाँ गवैये कजली के दंगल में भाग लेते हैं। सावन शुक्ला-तीज को स्त्रियाँ व्रत रखती हैं और मंगला गौरी का दर्शन करती है। यह व्रत उनके सौभाग्य का वर्धक माना जाता है।

यह मास अत्यन्त पवित्र माना जाता है। इस महीने में शिवजी की पूजा का विशेष विधान है। शैव लोग इस मास में प्रत्येक दिन शिव की प्रतिमा पर बेलपत्र विषम संख्या (अर्थात् ११,२१,५१,१०१) में चढ़ाते हैं। यदि इस बेलपत्र पर लाल स्याही से राम, राम लिख दिया जाय तो ऐसे बेलपत्र के चढ़ाने से समधिक पुण्य का अर्जन होता है। अतः अनेक भक्त बड़े परिश्रम से राम-नाम लिख कर इसे प्रतिदिन शिव को अर्पण करते हैं। बेलपत्र के विषय मे यह ध्यान रखना चाहिए कि इसका कोई भी पत्ता कीड़ों से खाया हुआ अथवा फटा न हो।

सावन मास के प्रत्येक सोमवार को शिव की पूजा का विशेष महत्व है। अतः काशी में इस मास में सोमवार के दिन सारनाथ में बड़ा भारी मेला लगता है। यहाँ लोग 'सारङ्गनाथ' के शिव मंदिर में भगवान् का दर्शन तथा पूजा करते हैं। काशी तथा अयोध्या आदि के मंदिरों में झाँकियाँ सजाई जाती हैं। मथुरा तथा अयोध्या में इस अवसर पर मेला भी लगता है।

(६) भाद्रपद

गाँवों में इस महीने को 'भादो' कहते हैं। सभी बारह महीनों में यह सबसे निकृष्ट और अपवित्र मास माना जाता है। इस महीने में कोई भी मांगलिक कृत्य नहीं किया जा सकता। ग्रामीण क्षेत्रों में यह विश्वास प्रचलित है कि कन्या अथवा बहू की विदाई इस मास में कदापि नहीं करनी चाहिए। यह कार्य अत्यन्त निषिद्ध माना जाता है। यह कहावत प्रसिद्ध है कि 'भादो

में घर से लाठियों ना निकालल जाला' अर्थात् भादों में घर से काठ की लाठी भी नहीं निकालनी चाहिए कन्या की विदाई की तो कथा ही दूर रही।

भादों मास की कृष्ण पक्ष की अष्टमी को 'जन्माष्टमी' कहा जाता है क्योंकि इसी दिन रोहिणी नक्षत्र में भगवान् श्री कृष्ण ने इस धरा धाम पर अवतार ग्रहण किया था। इस मास में वर्षा का प्रचुर योग पाया जाता है। भड्डरी का कहना है कि भादों बदी एकादशी को यदि बादल तितर बितर न हो जायँ तो चार महीने तक लगातार वर्षा होगी।[1] इसके साथ ही भादों मास की कृष्ण पक्ष की षष्ठी को अनुराधा नक्षत्र हो तो प्रचुर परिमाण में वर्षा होगी।[2]

भादों की काली रात अपने घनघोर अन्धकार के लिए प्रसिद्ध है जिसकी सघनता की सूचना देने के लिए "सूचिभेद्यं तमः" की उपमा दी जाती है। 'भादों-भदवारी' में साधारणतया भी कहीं आना-जाना निषिद्ध है। इस मास में एक मकान को छोड़कर दूसरे में जाना भी बुरा माना जाता है।

(७) आश्विन

आश्विन को ग्रामीण क्षेत्रों में कुवार कहा जाता है। उत्तर प्रदेश के पूर्वी जिलों में इसे 'असोज' कहते हैं जो संभवतः 'अशौच' का अपभ्रंश रूप है। कुवार मास का कृष्णपक्ष पितृपक्ष के नाम से प्रसिद्ध है क्योंकि इस मास में धार्मिक व्यक्ति अपने मृत पिता तथा पितरों को जलाञ्जलि दिया करते हैं। यह क्रम प्रतिपद् से अमावस्या तक पन्द्रह दिनों तक चलता रहता है। पितरों को जलांजलि देने वाले व्यक्ति के लिए इस पक्ष में अनेक विधि निषेधों का पालन करना आवश्यक है। उसे इन पन्द्रह दिनों तक बाल नहीं कटवाना चाहिए। तेल नहीं लगाना चाहिए। उसे नेनुआ की तरकारी खाना भी निषिद्ध है। इसीलिए काशी में पितृपक्ष के दिनों में यह तरकारी बड़ी सस्ती हो जाती है। अन्त में अमावस्या के दिन, जिसे महालया कहा जाता है, पितरों को पिण्डदान तथा ब्राह्मण भोजन कराकर यह कृत्य समाप्त होता है।

इस मास के शुक्लपक्ष में प्रतिपदा से 'शारदीय नवरात्र' प्रारम्भ होता

---

१. "भादों बदी एकादसी, जो ना छिटके मेघ।
चार मास बरसै सही; कहै भड्डरी देख॥"

२. भादों जल रे लसी; जो छठ अनुराधा होय।
बिछला वर्ष खड़ा करै; वर्षा चोखी होय॥—त्रिपाठी—पृ० ३६

है जो नौ दिनों तक चलता रहता है। यह इस पक्ष के प्रतिपद से नवमी तक रहता है जिसे 'नवरात्र' भी कहते हैं। इन सब दिनों में भगवती दुर्गा की पूजा बड़े उत्साह तथा आनन्द से की जाती है। दुर्गा के भक्त नौ दिनों तक व्रत रखते हैं तथा प्रतिदिन 'दुर्गा सप्तशती' का पाठ करते हैं। यह पाठ दो प्रकार का होता है (१) साधारण तथा (२) सम्पुट। साधारण पाठ वह होता है जिसमें कील, कवच, अर्गला के सहित पूरी 'सप्तशती' का पाठ किया जाता है। परन्तु 'सम्पुट' में किसी मंत्रों सप्तशती के प्रत्येक श्लोक के पहिले तथा पश्चात् उसका उच्चारण किया जाता है।

दुर्गा सप्तशती का पाठ किसी देवी के मंदिर में करना चाहिए। मिर्जापुर में विन्ध्यवासिनी देवी के मंदिर में पाठ करने वालों की लम्बी पंक्ति देखी जा सकती है। अनेक व्यक्ति अपनी विभिन्न कामनाओं की पूर्ति के लिए इस पाठ को करते हैं। परन्तु जो स्वयं 'सप्तशती' का पाठ नहीं कर सकते वे किसी ब्राह्मण के द्वारा इस कार्य का सम्पादन कराते हैं। वे ब्राह्मण को इस निमित्त दक्षिणा देते हैं। सप्तमी, अष्टमी तथा नवमी को 'सरस्वतीशयन' माना जाता है। अतः लोगों की धारणा है इन तीन दिनों में स्वाध्याय नहीं करना चाहिए। दशमी तिथि को विजय-दशमी का त्यौहार मनाया जाता है।

(८) कार्तिक मास

इस मास को ग्रामीण लोग 'कातिक' कहते हैं। इस महीने में गंगा स्नान का अत्यन्त अधिक महत्त्व है। भक्त लोग प्रातःकाल ब्राह्ममुहूर्त में उठ कर गंगा स्नान के लिए निकल पड़ते हैं और सूर्योदय होने के पहिले गंगा मैया के पावन जल में डुबकी लगाकर अपने को कृतकृत्य मानते हैं। काशी में पंचगंगा घाट पर इस मास में गंगा में स्नान करने का बड़ा ही महत्त्व है।

भड्डरी का कथन है कि कार्तिक सुदी पूर्णमासी को यदि कृत्तिका नक्षत्र हो और संयोग से इसमें फिर घटा घिर आवे और बिजली चमके तो लगातार

चार महीनों तक वर्षा होगी ।[1] कार्तिक की द्वादशी को यदि बादल दिखाई पड़े तो वे बादल आषाढ़ में अवश्य बरसेंगे ।[2]

कार्तिक मास बड़ा ही पवित्र महीना माना जाता है। इस मास मे काशी के पंचगंगा घाट पर स्नान करना अनन्त पुण्य को देने वाला होता है। इसमें सूर्योदय के पहिले स्नान का बड़ा महत्त्व होता है। अतः भक्तलोग एवं विशेषकर स्त्रियाँ प्रातःकाल उठकर सूर्योदय के पहिले ही गंगा स्नान करती दिखाई पड़ती हैं। यों तो इस मास में प्रत्येक दिन गंगा स्नान का महत्त्व है परन्तु शुक्ल पक्ष की एकादशी से पूर्णिमा तक इन पाँच दिनों तक स्नान करना अत्यधिक पुण्यदायक माना जाता है। इन तिथियों में स्वयं काशी नरेश पंचगंगा घाट पर स्नान करने के लिए आते हैं।

इस मास में तुलसी की पूजा अत्यन्त पुण्यदायक है। भक्तगण सायंकाल मे तुलसी की पूजा करते हैं तथा घी का दीपक जला कर इनकी आरती करते है। शुक्ल पक्ष में एक विशेष तिथि को तुलसी जी का विवाह भगवान् विष्णु के साथ सम्पादित किया जाता है। इसीलिए तुलसी को "हरिप्रिया" कहते हैं।

कार्तिक मास की पूर्णिमा को गंगा में स्नान करना अतिशय पुण्य का कारक माना जाता है। उत्तर प्रदेश के पश्चिमी जिलों के स्कूलों में आठ दिनों के लिए "गंगा स्नान की छुट्टी" हुआ करती है इसी से इसका कुछ महत्त्व समझा जा सकता है।

कार्तिकी पूर्णिमा के दिन मेरठ जिले में गढ़ मुक्तेश्वर नामक स्थान पर, मुरादाबाद जिले में राजघाट पर, बलिया के भृगु क्षेत्र में तथा सोनपुर (बिहार) में गंगा स्नान का बहुत बड़ा मेला लगता है। अन्तिम मेला 'हरिहर क्षेत्र का मेला' के नाम से प्रसिद्ध है जो संसार का नम्बर दो मेला समझा जाता है। हजारों की संख्या में स्नानार्थी पंचगंगा घाट पर गोता लगा कर अपने को कलिकल्मष से रहित मानते हैं। पूरे महीने भर तक इस घाट पर प्रातःकाल में मेला लगा रहता है।

कार्तिक के महीने का माहात्म्य इसलिए भी अधिक बढ़ जाता है क्योंकि

१. त्रिपाठी—ग्रा० सा, पृ० १५
२. "कातिक बारस मेघा दरसे।
सो मेघा आषाढ़हि बरसे॥"—वही पृ० १५

इस मास में भगवान् विष्णु अपनी निद्रा परित्याग कर कार्तिक शुक्ल एकादशी को जगते हैं। इसीलिए यह एकादशी 'प्रबोधिनी एकादशी' के नाम से प्रसिद्ध है। आज के दिन के बाद ही कोई मांगलिक कार्य प्रारम्भ किया जा सकता है।

इस मास में 'आकाश दीप' जलाने का भी समधिक महत्त्व है। काशी के पंचगंगा घाट पर सैकड़ों की संख्या में लम्बे बाँस के ऊपरी भाग में रात्रि को जलते हुए दीपकों का समूह देखा जा सकता है जो अपने प्रकाश प्रतिबिम्ब से गंगा के निर्मल जल में अद्भुत शोभा उत्पन्न करते हैं।

कार्तिक शुक्ल नवमी, जिसे अक्षय नवमी भी कहते हैं, को आँवले के वृक्ष की छाया में बैठकर भोजन करना बड़ा पुण्यदायक माना जाता है। अतः अनेक भक्तगण आँवले की छाया में ब्राह्मणों को भोजन करा कर अक्षय पुण्य का अर्जन करते हैं। अक्षय नवमी होने के कारण आज के दिन दिया गया दान अक्षय पुण्य का कारक है। अतः लोग पेठा (भतुआ) में सोना, चाँदी, रुपया रखकर गुप्त रूप से दान देते हैं जिससे उन्हें अनन्त पुण्य प्राप्त होता है।

(९) अगहन

कार्तिक शुक्ला एकादशी को शेषशायी विष्णु निद्रा का परित्याग कर जगते हैं। अतः इस दिन के पश्चात् विवाहादि मंगल कार्यों का श्रीगणेश प्रारम्भ हो जाता है। यद्यपि शास्त्रीय नियमों के अनुसार अगहन में विवाह करने के लिए कोई निषेध नहीं है। परन्तु जनता की यह मान्यता है कि इस मास में विवाह करना अशुभ होता है। राम और सीता का विवाह अगहन मास में ही हुआ था जो अन्त में अमंगलकारी सिद्ध हुआ। फलस्वरूप राम की प्राणप्रिया सीता का अपहरण हो गया और स्वयं राम को चौदह वर्षों तक वनवास का दुःख भुगतना पड़ा। इसलिए कोई भी व्यक्ति इस मास मे विवाह करना अत्यन्त अशुभ मानता है।

परन्तु गवना के विषय में ऐसी बात नहीं कही जा सकती। जिन कन्याओं का विवाह माघ या फागुन में होता है उनके गवना के लिए यह मास अत्यन्त प्रशस्त माना जाता है। इस प्रकार अगहन में पालकी में बैठकर रोती हुई, अपनी ससुराल जाती हुई, बहुओं को प्रचुरता से देखा जा सकता है।

इस महीने में यदि न तो ज्येष्ठा नक्षत्र में गर्मी पड़े और न मूल में तो

भड्डरी का कहना है कि सातों प्रकार के अन्न पैदा होंगे जिनके नाम गेहूँ, जौ, चना, मटर, अरहर, धान और उड़द हैं ।[1] इसी प्रकार अगहन की अष्टमी को बिजली सहित बादल हों, तो सावन में अच्छी वर्षा होगी ।[2]

(१०) पौष

यदि पौष बदी सप्तमी को पानी न बरसे तो आर्द्रा नक्षत्र में वर्षा अवश्य ही होगी और वह थल-जल को एक कर देगी । अर्थात् जल से समस्त पृथ्वी को भर देगी ।[3] यदि पौष मास की अमावस्या को मूल नक्षत्र हो और चारों ओर से हवा चले तो किसान को अपना छप्पर छा लेना चाहिए क्योंकि इसे वर्षा का योग जाना जाता है ।

(११) माघ

इस मास के सम्बन्ध में अनेक लोक-विश्वास प्रचलित हैं । जिस प्रकार कार्तिक मास में काशी के पंचगंगा में स्नान करना अनन्त पुण्य का कारण माना जाता है उसी प्रकार से माघ में त्रिवेणी तट पर प्रयाग में संगम पर स्नान करना पुण्यदायक है । अतः बहुत से लोग संगम के किनारे अपनी झोपड़ी बनाकर पूरे माघ मास तक वहाँ निवास करते हैं । इस निवास को 'कल्पवास' कहा जाता है और वहाँ रहने वाले लोगों को कल्पवासी । ये लोग अनेक नियमों का पालन करते हुए जमीन पर सोते हैं तिल का प्रयोग भोजन तथा दान के लिए करते हैं ।

माघ की अमावस्या, जिसे मौनी अमावस्या कहा जाता है, के अवसर पर प्रति वर्ष यहाँ स्नान के लिए मेला लगता है । प्रत्येक बारह वर्षों के पश्चात् यहाँ 'कुम्भ' का बहुत बड़ा मेला लगता है जिसमें लाखों व्यक्ति एकत्रित होते हैं ।

---

१. "मार्ग महीना माँहि जो,
जेष्ठा तपै न मूर ।
तो इमि बोले भड्डरी,
निपजै सातो तूर ।"—त्रिपाठी—ग्रा० सा०, पृ० १७

२. वही—पृ० १७

३. "पौष अँध्यारी सप्तमी, जो पानी नहिं देइ ।
तो अद्रा बरसै सही जल थल एक करेइ ।।"

कभी-कभी माघ महीने में वर्षा भी होती है। परन्तु कभी इसका अभाव भी देखा जाता है। माघ सुदी पूर्णिमा को यदि चन्द्रमा स्वच्छ दिखाई पड़े तो पशुओं को बेंच डालो, और अन्न को जमा करो क्योंकि भयंकर अकाल की सम्भावना है।[1]

प्रयाग में संगम पर मकर संक्रान्ति अर्थात् १४ जनवरी को बड़ा भारी मेला लगता है जिसमें लाखों की संख्या में भक्तगण आकर संगम में स्नान करते हैं। मकर संक्रान्ति को 'खिचडी संक्रान्ति' भी कहते हैं क्योंकि इस दिन खिचड़ी खाने का बड़ा माहात्म्य है। जिस प्रकार कार्तिक के महीने में काशी में गंगा में स्नान का महत्त्व है उसी प्रकार माघ में प्रयागराज में यमुना में स्नान करना पुण्यदायक माना जाता है।

(१२) फागुन

यह बसन्त का मनभावन मास है। इस समय प्रकृति में नवयौवन का संचार होता है। कोमल पत्तियाँ पौधों में निकलने लगती हैं। इसी मास की पूर्णिमा तिथि को होली का त्यौहार मनाया जाता है जो अत्यन्त लोकप्रिय तथा आनन्ददायक होता है।

इस मास में प्रकृति में नव-यौवन के आगमन के साथ ही बूढ़े मनुष्यों में भी जवानी जाग उठती है। उनकी भी तबीयत भुरभुराने लगती है। इसलिए गाँवों में यह सूक्ति प्रसिद्ध है कि—

"फागुन में बुढ़वा देवर लागे।"

इस मास को फागुन भी कहा जाता है। यह महीना मंगल कार्यों के लिए अत्यन्त शुभ माना जाता है। इस काल में बालकों का यज्ञोपवीत का विधान अधिकांश रूप में होता है। युवक तथा युवतियों के विवाह के लिए यह मास अत्यन्त प्रशस्त माना जाता है। अतः फागुन के महीने में भोजपुरी क्षेत्र में बारातों की धूम दिखाई पड़ती है। प्रकृति में नया उल्लास सर्वत्र विराजमान होता है। इस प्रकार वह महीना आनन्द तथा उल्लास का मास है।

---

१. "माघ सुदी पूनो दिवस, चंद निर्मलो जोय।
पसु बेचा कन संग्रहो, काल हलाहल होय॥"

—त्रिपाठी—वही, पृ० २२

मलमास

मलमास के वर्णन के बिना यह प्रकरण समाप्त नहीं समझा जायेगा। इसे 'अधिक मास' भी कहा जाता है क्योंकि यह बारह महीनों के बाद तेरहवाँ मास समझा जाता है। भारतीय ज्योतिष गणना के अनुसार प्रत्येक तीन वर्षों के बाद 'मलमास' लगता है जो तीस दिनों का होता है।

पण्डित लोग इसे 'पुरुषोत्तम मास' भी कहते हैं क्योंकि इसमें पुरुषोत्तम अर्थात् विष्णु की पूजा का बड़ा ही महत्त्व है। धार्मिक व्यक्ति इन दिनों मे बेलपत्र पर लाल स्याही से राम का नाम लिख इसे शिव के लिङ्ग पर चढ़ाते हैं। प्रतिदिन मन्दिरों में भगवान् विष्णु का बड़ा शृंगार किया जाता है तथा इनकी झाँकी सजाई जाती है। भक्तगण इन मूर्तियों का दर्शन करते हैं। इस मास में कोई भी धार्मिक कार्य करना पुण्य का कारक माना जाता जाता है।

मलमास में बिहार के राजगृह नामक नगर में बड़ा भारी मेला लगता है। यहाँ से तप्त कुण्डों में स्नान कर तथा भगवान् का दर्शन कर मनुष्य अपने को पापों से मुक्त मानता है। यह मेला पूरे मास तक रहता है जिसमे लाखों की संख्या में लोग सम्मिलित होते हैं।

भगवान् विष्णु की पूजा-अर्चा इस मास में विशेष रूप से की जाती है। कुछ लोग नियमित रूप में प्रतिदिन गंगा-स्नान करते तथा भगवान् का दर्शन करते हैं। इस प्रकार यह मास बड़ा ही पवित्र माना जाता है।

विदेशों में मास (वर्षा) सम्बन्धी विश्वास

विदेशों में भी वर्ष के विभिन्न महीनों में वृष्टि अथवा अनावृष्टि के सम्बन्ध में अनेक लोक-विश्वास प्रचलित हैं। जिनके अध्ययन से यह पता चलता है कि भारत के ही समान संसार के अन्य देशों में भी इन वर्षा सम्बन्धी लोक-विश्वासों में साधारण जनता की आस्था कितनी दृढ़-मूल है।

(१) **जनवरी**—इङ्गलैंड में लोगों की यह दृढ़ धारणा है कि जनवरी मास यदि सूखा तथा ठंडा हो तो वह वर्षा होने वाले महीने से अच्छा है क्योंकि ? इससे अधिक हानि हो सकती है। प्राचीन काल में क्रिसमस छ'

जनवरी को पडा करता था। अतः इसके सम्बन्ध में भी बहुत सी लोक-कहावतें पाई जाती हैं। जिनके अनुसार क्रिसमस के दिन पूर्णिमा को होना शुभ नहीं माना जाता था।[1] एक दूसरी लोकोक्ति के अनुसार हरा क्रिसमस होने पर प्रभूत अन्न की पैदावार होती है।[2] "सेण्ट पाल्स डे" अर्थात् २५ जनवरी की तिथि बड़ी ही अमंगलकारी मानी जाती थी। क्योंकि यह दिन अन्धड़ का चलना, युद्ध, अकाल, वर्षा तथा महामारी का सूचक था। वर्ष भर मे होने वाले वर्षा विज्ञान की सूचना सेण्ट पाल के कारण मिला करती थी।[3]

(२) फरवरी

यदि फरवरी में वर्षा हो तो मौसम सुन्दर समझा जाता था।[4] अतः इस मास में वर्षा का स्वागत किया जाता था। परन्तु स्काटलैण्ड के लोग इस मास के प्रति कुछ आशंकित रहते हैं। फरवरी में पड़ने वाले "केण्डेलमस दिवस" के सम्बन्ध में मौसम सम्बन्धी अनेक लोक-विश्वास प्रचलित हैं। लोगों का विश्वास है कि यह दिन शुभ नहीं होता है।[5] स्काटलैण्ड में इस

---

१. डायर—इं० फो० लो०, पृ० २४६

२. "A green Christmas brings heavy harvest."

—वही, पृ. २४६

३. "All superstitions from thy breast repel,
Let credless boys and prattling nurses tell.
when the dark skies,
dissolve in snow or rain,
The lab'ring hind,
Shall yoke the steer is vain."

—डायर—इं० फो० लो०; पृ० २५

४. If February give much snow,
A fine summer it doth foreshow."—वही—, पृ० २५१

५. "If condlemas Day be fair and clear,
There'll be two winters in the year."

दिन के सम्बन्ध में अनेक लोकोक्तियाँ कही जाती है। यदि इस दिन बर्फ अधिक पड़े तब सूर्य अधिक तेजी से चमकेगा।[1]

इसी फरवरी मास में "स्रोभ ट्यूज डे" (Shrove Tuesday) के दिन यदि बादल गड़गड़ाते हों तो इससे अंधड़ आने और अधिक मात्रा में फल पैदा होने की सूचना मिलती है। इसी प्रकार से 'एश बुधवार' (Ash wednesday) के विषय में भी अनेक लोकोक्तियाँ पाई जाती हैं।

(३) मार्च

यदि मार्च के महीने में वर्षा हो तो यह अशुभ माना जाता है क्योंकि इस कारण अन्न की पैदावार कम होती है। इसके ठीक विपरीत सूखा तथा ठंड हो तो प्रचुर मात्रा में अन्न उपजता है।[2] एक प्राचीन लोकोक्ति के अनुसार मार्च के अन्त में ऋतु इसके प्रारम्भिक दिनों से बिल्कुल विपरीत होती है।[3] आठ फरवरी का दिन 'ओल्ड सेण्ट मैथ्यू डे' के नाम से प्रसिद्ध है। आज जैसा मौसम होगा उसका प्रभाव साल भर तक पड़ता रहेगा।

मार्च के अन्तिम तीन दिन 'बारोइङ्ग डेज' (Borrowing days) कहलाते हैं। ऐसा माना जाता है कि ये दिन अप्रैल मास से उधार लिये गये हैं। इन तीन दिनों में प्रथम दिन कुहरा (फ्रास्ट), द्वितीय दिन बर्फ (स्नो) और तीसरे दिन ठंडक पड़ने का अनुमान किया जा सकता है।[4] इस संबंध में अनेक लोकोक्तियाँ प्रसिद्ध हैं।

---

१. "After Candlemas Day,
The frost will be more Keen.
If the sun then shines bright;
Than before it has been."—डायर—इं० फो० लो०, पृ० २५२

२. "A wet March makes a sad harvest,
A dry and cold March, Never begs its bread."
—डायर—वही, पृ० २५३

३. "March comes like a lion
And goes like a lamb."

४. "March borrowed from April,
Three days and they were ill.
The first was frost, the second was snow,
The third was Cauld, as ever could blaw"

(४) अप्रैल

प्राचीन काल में लोगों के द्वारा अप्रैल में जाड़ा पड़ना कृषि कार्य के लिए शुभ माना जाता था।[१] 'आल् फूल्स डे' (मूर्ख दिवस) के दिन बादलों के गड़-गड़ाने का स्वागत किया जाता था। क्योंकि इससे प्रचुर उपज की संभावना होती थी।[२] यदि अप्रैल के प्रथम तीन दिनों तक कुहरा पड़ता रहे तब जून मास में बाढ़ आने की आशंका होती थी।[३]

ईस्टर ईसाई लोगों का प्रसिद्ध त्योहार है। अतः इसके संबंध में लोक-विश्वासों का होना स्वाभाविक है। यदि ईस्टर में वर्षा हो तो पैदावार अच्छी होती है। यदि इस दिन सूर्य चमकता हो तो आगे भी चमकेगा ऐसी सभावना होती है।[४] मार्च और अप्रैल तथा मई के संबंध में यह लोकोक्ति बड़ी प्रचलित है।[५] इङ्गलैण्ड के उत्तरी भाग के निवासी मार्च में धूल उड़ना तथा मई में धूप होना अधिक उपज होने के लिए शुभ मानते हैं।[६]

(५) मई

इस मास मे वर्षा और जाड़ा इतना अनिश्चित होता है कि यह कहावत प्रसिद्ध है कि जब तक मई नहीं बीत जाती तब तक अपने कपड़ों को मत बदलो।[७] मई में जल-वर्षा से प्रचुर अन्न उपजता है। स्काटलैण्ड में यह लोकोक्ति प्रसिद्ध है।[८] मई मास में विवाह करना अमंगल सूचक है। क्योंकि वह आदमी दरिद्र हो जाता है।[९]

---

१. "A cold April, The born will fill."

२. "If it thunders on All Fools Day,
It brings good crops of corn and hay."

३ "A Raing Easter; Betokens a good harvest."

४. "If the sun shines on Easter day,
It shines on whit sunday likewise."

५. "March winds and April showers.
Bring forth may Flowers."

६ "March dust and May sun,
Make corn white, and maiden dun."

७ "Till may be out,
Change not a clout."

८. 'A leaky May and a dry June,
Keeps the puir man's head abune,"

९ "To wed in May. is to wed poverty."

(६) जून

जून मास में वर्षा का होना शुभ माना जाता है। क्योंकि यह कल्याण-कारी है।[१] एक पुरानी जनश्रुति के अनुसासर यदि 'मिडसमर ईव' में वर्षा हो तो इससे फिलबर्ट्स का नाश हो जाता है।[२]

(७) जुलाई

जुलाई का महीना 'सेण्ट स्वीथिन डे' (St. Swithin Day) संबधी लोक-विश्वासों के लिए प्रसिद्ध है। इस विषय में निम्नलिखित विश्वास में सर्वसाधारण जनता तथा साक्षर व्यक्तियों की समान रूप से आस्था पाई जाती है। ऐसी मान्यता है कि यदि इस दिन वर्षा हो तो यह लगातार चालीस दिनो तक होती रहेगी।[३]

(८) अगस्त

इस मास के संबंध में विश्वासों का प्राय: अभाव पाया जाता है। २४ अगस्त का दिन 'सेण्ट बारथोलोम्यु डे' (St. Bartholomew's Day) कहा जाता है। इसके विषय में यह लोकोक्ति प्रसिद्ध है कि यदि इस दिन मौसम साफ तथा बादलों से रहित हो तो इस वर्ष में जाड़े की ऋतु में अन्न की अधिक उपज होने से यह समृद्ध मानी जाती है।[४] यदि अगस्त का महीना सूखा तथा गर्म हो तो इससे कृषि को कोई क्षति नहीं पहुँचती।[५]

---

१. A good leak in June,
Sets all in tune."

२. "If it rains on Midsummer's Eve,
The filberts will be spoilt."—डायर—ई०फो०लो० पृ० २५६-५७

३. "St. Swithin's Day, if thou dost rain,
For forty days it will remain,
St. Swithin Day, if then be fain,
For forty days will rain never."
—डायर—ई० फो० लो०, पृ० २५७

४. "If the twenty, fourth of August,
Be fair and clear,
Then hope for a prosperons,
Autumn that year."—डायर—ई० फो० लो०, पृ० २५८

५. "Dry August and warm,
Doth harvest no harm" वही पृ० २५८

(९) सितम्बर

स्काटलैण्ड में २६ सितम्बर को 'होली रूड डे' (Holy Rood Day) कहा जाता है। इस दिन का अगले वर्ष की ऋतु पर वह प्रभाव माना जाता है जो इङ्गलैण्ड में 'सेण्ट स्वाथिन डे' का है।[१] इस मास में पड़ने वाले 'सेण्ट मैथ्यू डे' (St. Mattheu Day) के विषय में यह प्रसिद्धि है कि यह ठंढ, वर्षा तथा कुहरा के होने की सूचना देता है।[२]

(१०) अक्टूबर

इस मास के २८ अक्टूबर की तिथि को सेण्ट जूडाज फीस्ट (St. Judes Feast) कहा जाता है जो वर्षा के आगमन का सूचक है। अंग्रेजी के नाटकों मे इस विश्वास का उल्लेख अनेकशः पाया जाता है। ३० अक्टूबर का दिन 'सेण्ट लूकाज डे' के नाम से जाना जाता है। इस तिथि के कारण सुन्दर तथा धूप से युक्त मौसम (प्रकाशमान ऋतु) का प्रारम्भ होता है। इस मास में जगली फल पक जाते हैं, प्रकृति लहलहा उठती है और अनेक रंग-विरंग के फूलो से पृथ्वी सुशोभित हो जाती है।

(११) नवम्बर

यदि नवम्बर मास में अत्यधिक शीत बर्फ पड़े तो आगामी क्रिसमस गर्म होगा इसकी सूचना मिलती।[३] इस विश्वास की पुष्टि एक दूसरी लोकोक्ति से भी होती है।[४]

---

१. डायर—इं० फो० लो०, पृ० २५६

२. वही, पृ० २५६

३. 'If the ice bear a man before X'mas,
It will not bear a mouse after."

२. "If there, is Ice in November;
That will bear a duck.
There'll be nothing after,
But sludge and muck."

—डायर—इं० फो० लो० पृ० २६१

(१२) दिसम्बर

दिसम्बर के महीने में बादलों की गड़गड़ाहट और बिजली की तड़तड़ाहट सुन्दर तथा मनोरम ऋतु की सूचना देती है। इस संबंध में एक पुरानी कहावत प्रचलित है।[१] यदि जाड़े (दिसम्बर) में सर्दी कम पड़े तो यह स्वास्थ्य के लिए उत्तम नहीं हैं।[२] इस मास में क्रिसमस पड़ता है परन्तु उसके संबंध मे विशेष लोक-विश्वास उपलब्ध नहीं होते।[३]

गत पृष्ठों में दिये गये विवरणों से यह पता चलता है कि केवल भारत वर्ष में ही नहीं, बल्कि विदेशों में भी विभिन्न महीनों में वर्षा के विषय मे अनेक लोक-विश्वास तथा अन्य परम्परायें प्रचलित हैं। इससे ज्ञात होता है कि लोक-विश्वास की यह परम्परा केवल इसी देश में ही नहीं बल्कि संसार मे सर्वत्र विद्यमान है।

(२) परिच्छेद

दिन

सप्ताह में आने वाले विभिन्न दिनों के विषय में अनेक लोक-विश्वासो की उपलब्धि होती है। हमारे देश में जो सात दिन होते हैं उनका नामकरण विभिन्न ग्रहों के नामों के कारण किया गया है। यूरोप में भिन्न-भिन्न महीनो का नामकरण वहाँ के महापुरुषों के नाम ऊपर हुआ है। उदाहरण के लिए अगस्त मास को लिया जा सकता है। इसका नाम रोमन सम्राट 'आगस्टस' के नाम पर रखा गया है। इसी प्रकार से अन्य महीनों के विषय में भी समझना चाहिए।

भारत में प्राचीन काल से ही सप्ताह में सात दिनों की स्थिति पाई जाती है जिनका नामकरण सूर्य, चन्द्रमा आदि ग्रहों के आधार पर किया गया

---

१ "Winter thunder,
Rich man's food and poor man's hunger."

—डायर—इं० फो० लो०, पृ० २६१

२. " A Green X'mas makes a fat Church yard".

३. इस प्रकरण को लिखने में टी० एफ० थिसलटन डायर की प्रसिद्ध पुस्तक "इंग्लिश फोकलोर" से बड़ी सहायता ली गई है। अतः लेखक उनका बड़ा ही कृतज्ञ है

था। परन्तु यूरोप में प्राचीन काल में सप्ताह में केवल चार या पाँच ही दिन हुआ करते थे। बादे में रोमन सम्राटों के नाम पर दिनों का नामकरण करके इनकी संख्या सात कर दी गई। अतः बाद में जोड़े गये दिनों जैसे जून और अगस्त के संबंध में लोक-विश्वासों का अभाव पाया जाय तो इसमें कुछ आश्चर्य नहीं समझना चाहिए। इन्हीं दिनों के संबंध में प्रचलित लोक-विश्वासों का यहाँ वर्णन किया जाता है।

(१) रविवार

रविवार बड़ा ही पवित्र दिन माना जाता है क्योंकि इसका संबंध सूर्य से है। आज के दिन कुछ धार्मिक व्यक्ति रविवार का व्रत करते हैं। वे प्रातः-काल भगवान् की उपासना करके दिन भर 'अलोना' व्रत रखते हैं अर्थात् नमक बिल्कुल नहीं खाते, परन्तु सूर्यास्त के पश्चात् वे मालपूआ, पूआ, चीनी के साथ रोटी, खीर आदि ऐसा भोजन करते हैं जिसका नमक से संसर्ग नहीं रहता। यह व्रत विभिन्न रोगों की शान्ति के लिए किया जाता है। लोगों का ऐसा विश्वास है कि श्वेत कुष्ट (चरक) भगवान् भास्कर की उपासना से नष्ट हो जाता है। अतः इस रोग से पीड़ित मनुष्य रविवार का व्रत करते हैं।

किसी मनोकामना की सिद्धि के लिए भी यह व्रत किया जाता है। मन की इच्छा पूरी हो जाने पर स्त्रियाँ आटे की छोटी-छोटी गोलियों को घी में पकाकर चीनी के 'पाग' में उन्हें डूबो देती हैं। इस गोले, मीठे आटे के पिण्ड को 'लाड़ू' कहा जाता है। अपनी मनौती के अनुसार इन 'लाडुओं' को सूर्य भगवान् को अर्पित किया जाता है। बाद में इसको प्रसाद के रूप में वितरण कर दिया जाता है।

(२) सोमवार

सोमवार का दिन सोम अर्थात् चन्द्रमा के नाम पर पड़ा है। इस दिन चन्द्रमा की पूजा का महत्त्व माना जाता है। चन्द्रग्रह के दोषजन्य कष्ट के निवारण के लिए यह व्रत किया जाता है। व्रती प्रातःकाल स्नान कर व्रत का संकल्प कर चन्द्रमा को षोडशोपचार पूजा करता है। अर्घ्य देने के उपरान्त व्रती को फलाहार करना चाहिए।

सोमवार के दिन यदि अमावस्या तिथि पड़ जाती है तो वह "सोमवती

अमावस्या" कही जाती है। यह दिन बड़ा ही पवित्र है। भक्त लोग, विशेष कर स्त्रियाँ, इस दिन गंगा अथवा किसी नदी में स्नान करके पीपल के वृक्ष की पूजा करती हैं।

काशी में सावन के महीने में सोमवार के दिन बड़ा भारी मेला लगता है विशेषकर सावन का अन्तिम सोमवार बड़ा ही पवित्र माना जाता है। इस दिन संकटमोचन का दर्शन पुण्यदायक है।

कुछ भक्त लोग इस दिन बाबा विश्वनाथ का दर्शन नियमित रूप से करते हैं। अन्य लोग प्रातःकाल इस दिन विश्वनाथ जी का दर्शन किये बिना अन्न ग्रहण नहीं करते हैं।

(३) मंगलवार

मंगलवार मंगलकारक माना जाता है। इस दिन किसी कार्य को प्रारम्भ करना अथवा उसे समाप्त करना शुभ होता है।[1] कुछ लोग अपनी कामना की सिद्धि के लिए मंगल का व्रत करते हैं। वे दिन भर उपवास रखते हैं। केवल सन्ध्या को एक शाम 'अलोना' भोजन करते हैं। भोज्य पदार्थ विशेष कर गेहूँ और गुण का बना हुआ होना चाहिए। यह व्रत प्रधानतया सन्तानोत्पत्ति के लिए किया जाता है। मंगल ग्रह के दोष के कारण सन्तान की उत्पत्ति में कठिनाई होती है। ऐसा विश्वास है कि इक्कीस सप्ताह तक यह व्रत करने से मंगल ग्रह का दोष दूर हो जाता है। रोग आदि व्याधाओं से मुक्ति के लिए भी यह व्रत किया जाता है।

मंगलवार का सम्बन्ध किसी प्रकार से हनुमान जी से मानते हैं। अतः इस दिन संकट मोचन के मन्दिर में हनुमान जी का दर्शन करने के लिए दर्शनार्थियों की बड़ी भीड़ एकत्रित होती है।

(४) बुधवार

दिनों की गणना में इसका कोई विशेष महत्त्व नहीं है। यों बुध को दिनों में बुद्धू माना जाता है। कोई भी मांगलिक अथवा पवित्र कार्य इस दिन नहीं किया जाता।

---

१. "स्थाप्यं समाप्यं शनि-भौमवारे।"

(५) बृहस्पतिवार

इस दिन के इष्ट देव बृहस्पति हैं। आज के दिन बृहस्पतिवार महादेव की पूजा की जाती है। बृहस्पति को पीली वस्तुओं का दान अधिक अभीष्ट है। अत: पीला फूल, पीला चन्दन, पीला फल और पीली दाल से इनकी पूजा की जाती है। पीले वस्त्र का भी दान करना चाहिए। इस दिन क्षौर कर्म करना निषिद्ध है। काशी में गुरु "बृहस्पतीश्वर" का विशिष्ट मन्दिर है जहाँ विपके के दिन बड़ी भीड होती है।

(६) शुक्रवार

ग्रामीण स्त्रियों में ऐसा लोक-विश्वास प्रचलित है कि शुक्रवार के दिन तेल लगाने से सुन्दर कन्या से विवाह होता है। अत: भोजपुरी मातायें अपने बच्चों के लिए भावी सुन्दर बहू पाने की आशा या दुराशा में अपने बच्चों को तेल जरूर लगाती हैं।

(७) शनिवार

इस दिन के इष्ट देव शनि महाराज हैं। अत: जो लोग शनि ग्रह से पीड़ित होते हैं। वे इस दिन व्रत करते हैं और शनि की पूजा काली वस्तुओं—काला तिल, काली मूँग, और काला कपड़ा से करते हैं।

मंगलवार के समान ही इस दिन भी किसी कार्य को प्रारम्भ तथा समाप्त करना शुभ माना जाता है। शनि के दिन कुछ निर्धन व्यक्ति सरसों का तेल माँगते फिरते हैं। काशी की गलियों में "शनि का तेल दो" की आवाज बहुधा सुनी जा सकती है। मंगलवार के समान इस दिन भी संकट मोचन हनुमान के दर्शन का समधिक महत्त्व माना जाता है।

दिन सम्बन्धी लोक-विश्वास

एक सप्ताह में सात दिन होते हैं। इनमें से प्रत्येक दिन के सम्बन्ध में लोक-विश्वास प्रचलित है। किसी दिन कोई कार्य करना अशुभ है। परन्तु अन्य दिन उसे ही करना शुभ है। उदाहरण के लिए मंगलवार को किसी कार्य का श्रीगणेश शुभ है। परन्तु रविवार के दिन यही अशुभ है। यही बात यात्रा के सम्बन्ध में भी समझनी चाहिए जिसका विचार अन्यत्र किया जायेगा।

किसी विशिष्ट दिन को शुभ या अशुभ मानने के सम्बन्ध में लोक-विश्वास

इसी देश में नहीं, बल्कि विदेशों में भी प्रचलित हैं। यह कुछ आश्चर्य की ही बात मानी जाती है कि आज के वैज्ञानिक युग में भी ये लोक-विश्वास उन सभ्यदेशों में भी प्रचलित हैं। यहाँ पर देश तथा विदेशों में प्रचलित विश्वासों की तुलनात्मक मीमांसा कर यह दिखलाने का प्रयास किया गया कि लोक-मानस का धरातल सर्वत्र सामान्य है और जो धारणा इस देश में प्रचलित है उसकी सत्ता अन्य देशो में भी पाई जाती है।

विदेशों में भी किसी दिन के शुभ अथवा अशुभ होने के सम्बन्ध में अनेक लोक-विश्वास प्रचलित हैं। डायर ने अपनी सुप्रसिद्ध पुस्तक में इस विषय का बड़ा ही विस्तृत वर्णन किया है जिसकी चर्चा संक्षेप में यहाँ प्रस्तुत की जाती है।[1]

(१) **रविवार**—इंग्लैण्ड के डेवोन शायर में रविवार के दिन नाखून काटना निषिद्ध माना गया है।[2] रविवार को दाढ़ी बनाना भी अशुभ है। ऋतु सम्बन्धी अनेक विश्वास इस दिन से जुड़े हुए हैं। नारफोक के लोगों की यह धारणा है कि यदि रविवार को वर्षा प्रारम्भ होती है तो यह पूरे सप्ताह तक थोड़ी बहुत होती रहती है। फाइफ शायर के लोगों की भी यही मान्यता है।[3]

इंग्लैण्ड के पश्चिमी भाग में सप्ताह के विभिन्न दिनों में उत्पन्न बालकों की विशेषताओं के सम्बन्ध में अनेक लोकोक्तियाँ प्रचलित हैं। ग्लोसेस्टर

---

१. इस विषय के प्रामाणिक तथा विस्तृत विवेचना के लिए देखिए :—
   (क) "John Aubrey—Miscellanies essays on "Day Fatality"
   (ख) "Book of hnowledge (Book I, P. 19)
   (ग) "Brand—Popular Antiquities" (1819 vol. 1, PP 44—51).

२. "Who on sabbath pairs his horn.
It were better for him, he had never been born."

—डायर—इं० फो०, पृ० २३५

३. "If it rains on the Sunday before mess,
It will rain all the week more or less."

—डायर—इं० फो०, पृ० २३७

शायर में लोगों का विश्वास है कि रविवार के दिन यदि कोई कब्र खुली छोड़ दी जाय तो एक मास के भीतर उस परिवार में मृत्यु अवश्यम्भावी है। पर्थशायर मे यह माना जाता है कि सप्ताह के अन्य दिनों की अपेक्षा रविवार को रोगी का बुखार अधिक बढ़ जाता है। यदि रविवार के प्रातःकाल कोई छींकता है तो यह शुभ लक्षण है। इससे उस व्यक्ति को अनन्य दाम्पत्य प्रेम की प्राप्ति होती है।[1] यदि कोई व्यक्ति किसी जलपान (प्रातराश) करने के पहिले छींकता है तो उसे निश्चय ही सप्ताहान्त के पहिले कोई वस्तु उपहार के रूप में प्राप्त होगी। विभिन्न दिनों में छींक का फल भिन्न-भिन्न हुआ करता है। इसके सम्बन्ध में इंग्लैण्ड में अनेक कहावतें प्रचलित है।[2]

सोमवार—आयर लैण्ड में किसी कार्य को प्रारम्भ करने के लिए सोमवार का दिन अत्यन्त शुभ माना जाता है। इस दिन छींकने पर किसी उपहार की प्राप्ति की सूचना मिलती है।

मंगलवार—डेवोन शायर में मंगलवार का दिन किसी महत्त्वपूर्ण कार्य को प्रारम्भ करने के लिए शुभ माना जाता है। मंगल को विवाह करना मंगलकारी है।

बुधवार—डेवोन शायर में बुधवार किसी आवश्यक कार्य को करने के लिए शुभ माना जाता है।

शुक्रवार—सप्ताह के अन्य किसी दिन की अपेक्षा शुक्रवार से संबंधित लोक-विश्वासों की संख्या प्रचुर है। इसका कारण संभवतः यह है कि इसी दिन ईसा मसीह को शूली पर चढ़ा दिया गया था। अनेक स्थानों पर इस दिन किसी बालक का जन्म अशुभ माना जाता है। इसी कारण शुक्रवार को विवाह सम्पादित नहीं किया जाता है और इस दिन किसी कार्य का श्रीगणेश भी उचित नहीं है। नाविक गण इस दिन समुद्र की उत्ताल तरंगों पर अपने पोत को ले जाना नहीं चाहते। अंग्रेजी के प्रसिद्ध कवि लार्ड वायरन को इस

---

१. "Sneezes on Sunday morning fasting,
You'll enjoy your own true love to ever lasting."

—डायर—इं० फो०, पृ० २३६

२. रविवार के विस्तृत विवरण के लिए देखिए—

—वही, पृ० २३४—२३६

लोक-विश्वास में बड़ी आस्था थी। अल्प भी महत्त्वपूर्ण कार्य यदि इस दिन प्रारम्भ किया जाता था तो इससे वह बहुत ही चिन्तित हो जाता था।

स्पेन देश के निवासी शुक्र को बड़ा ही अशुभ दिन मानते हैं। यदि कोई फर्म या कम्पनी इस दिन अपना कार्य प्रारम्भ करती थी तो उसे तनिक भी सफलता की आशा नहीं होती थी। इस दिन से संबंधित अनेक लोकोक्तियाँ प्रसिद्ध है।[1]

लंकाशायर में लोगों की धारणा है कि शुक्रवार के दिन प्रेम संबंध स्थापित नहीं करना चाहिए। यदि वह अपनी प्रेमिका के साथ पकड़ लिया जाता है तब उसे अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। एक कहावत से पता चलता है कि शुक्रवार की रात्रि को चन्द्रमा जल्दी निकलता है। इस दिन रात में जो स्वप्न देखा जाता है वह प्रायः सच्चा होता है।[2]

शुक्रवार संबंधी लोक-विश्वास (यूरोपियन)

यूरोप में शुक्रवार के संबंध में लोक-विश्वास प्रचलित हैं। ईसा मसीह को शुक्रवार को ही शूली पर लटकाया गया था। इसी कारण यह दिन अत्यन्त अमंगलसूचक तथा दुर्भाग्यपूर्ण माना जाता है। शुक्रवार के दिन जन्म ग्रहण करना अथवा विवाह करना अशुभ है। इसी प्रकार इस दिन कोई नयी नौकरी का पद ग्रहण अमंगलकारी है। किंबहुना, इस दिन नाखून काटना, अथवा किसी बीमार व्यक्ति को उसके घर जाकर देखना अशुभ की कोटि में गिना जाता है।

यदि कोई व्यक्ति शुक्रवार के दिन अपनी शय्या को सजाता अथवा उसमे परिवर्तन करता है तो उसे निद्रा देवी परित्याग कर देती हैं। नाविक लोग इस

---

१. "As the Friday so the Sunday,
As the Sunday, so the week.
× × ×
A rainy Friday; a rainy Sunday
A Fair Friday; a fair Sunday."—डायर—इं० फो०, पृ० २४२

२. "Friday nights' dream,
On the Saturday told,
Is sure to come true,
Be it never so old"—डायर—इं० फो०, पृ० २४३

दिन नौ-यात्रा नहीं करते। यदि किसी अपराधी पर इस दिन मुकदमा चलता है तब उसे कठोर दण्ड मिलने की आशंक रहती है।

आयरलैण्ड में शुक्रवार को मृत्यु, शनिवार को जमीन में दफनाया जाना तथा रविवार को उसके लिए प्रार्थना करना शुभ माना जाता है। यूरोपीय ऋतु विज्ञान के अनुसार शुक्रवार तथा रविवार को वर्षा होने की संभावना की जाती है।[1] इस प्रकार विदेशों में भी शुक्रवार से संबंध में अनेक विश्वास उपलब्ध है।

शनिवार—भारतवर्ष की भाँति विदेशों में भी शनिवार अशुभ दिन माना जाता है। परन्तु कुछ लोग इसे शुभ भी मानते हैं। आयरलैण्ड के लोगों की यह दृढ़ धारणा है कि शनिवार के दिन इन्द्रधनुष दिखाई पड़े तब पूरे सप्ताह तक वर्षा होती रहती है। शनिवार को द्वितीया के चन्द्रमा का दर्शन शुभ नहीं होता।[2] यह मान्यता है कि यदि सूर्य थोड़ी देर के लिए भी शनिवार को उदित हो तो वह पूरे वर्ष भर अपने प्रकाश को देता है। स्पेन के निवासियों का भी कुछ इसी प्रकार का विश्वास है।

शनिवार को जो नौकर रखा जाता है वह कभी टिकता नहीं और भाग-कर अपने घर चला जाता है।[3] यूरोप में शनिवार के अपराह्न से कार्यालय तथा दूकानें बन्द कर दी जाती हैं तथा सोमवार के प्रातः खुलती हैं। इसके पीछे भी लोक-विश्वास है। शनिवार को कपड़े की सफाई करना भी शुभ नहीं है।[4]

विदेशों में दिन संबंधी लोक-विश्वास

विभिन्न देशों के सम्बन्ध में जिस प्रकार भारत में अनेक लोक-विश्वास प्रचलित हैं वैसे ही विदेशों में भी समझना चाहिए इंग्लैंड तथा जर्मनी,

---

१. "Wet Friday and wet Sunday."

२. 'Saturday's new; and Sunday full;
Was never fine; nor never well."—डायर—इं०फो०, पृ० २४४

३ "Saturday's servants never stay;
Sunday servants run away."—वही, पृ० २४४

४. "But they that wash on Saturday,
'Are clarty—Paps indeed."

आधुनिक सभ्यता से समन्वित, अत्यन्त सभ्य देश माने जाते हैं, परन्तु वहाँ भी सप्ताह के विभिन्न दिनों तथा वर्ष के अनेक महीनों के सम्बन्ध में विविध लोक-विश्वास प्रचलित हैं।

भारतीय दिनों के संबंध में जो विश्वास पाये जाते हैं उनकी चर्चा पहिले की जा चुकी है। यहाँ विदेशी मान्यता का उल्लेख प्रस्तुत किया जाता है।

(१) सन डे (रविवार)

ईसाई लोगों का ऐसा विश्वास है कि ईश्वर ने छः दिनों तक मानवों की सृष्टि की और रविवार (सन डे) के दिन उन्होंने विश्राम किया था। यह धारणा ईसाई संसार में इतनी दृढ़ मूल हो गई कि सर्वत्र यह दिन विश्राम का दिन माना जाने लगा। अतः रविवार को समस्त ईसाई जगत् में छुट्टी रहती है और ये लोग इसे आनन्द, मनोरञ्जन तथा विश्राम का दिवस मानते हैं।

इस दिन गिरिजाघरों (चर्चों) में विशेष प्रकार की विशिष्ट पूजा होती है। जो लोग प्रतिदिन चर्च जाने के अभ्यासी नहीं हैं अथवा जो इसमें श्रद्धा नहीं रखते वे लोग भी रविवार को गिरिजाघर अवश्य ही जाते हैं। अतः रविवार विश्राम का ही दिन नहीं बल्कि विशेष पूजा तथा अर्चना का भी दिवस माना जाता है।

'सन डे' के संबंध में वर्षा सम्बन्धी अनेक विश्वास भी उपलब्ध होते हैं। इंग्लैण्ड के नार फोक तथा फाइफशायर जनपदों में यदि रविवार को वर्षा हो तो ऐसा समझा जाता है कि पूरे सप्ताह तक वर्षा होती रहेगी।[1]

ग्लाउ सेस्टर शायर (इंग्लैण्ड) में यह विश्वास प्रचलित है कि यदि रविवार को कोई कब्र खोली या खोदी जाय तो एक मास के भीतर निश्चित ही किसी की मृत्यु हो जाती है। डेवोन शायर में इस दिन पंख से बने बिछौना (फेदर बेड) को उलटना अशुभ है क्योंकि यह मृत्यु का सूचक है। यदि कोई व्यक्ति ज्वर रोग से ग्रस्त होता है तो इस दिन उसका बुखार अधिक हो

---

१. "If it rains on Sunday,

Before mess (mass)

It will rain all the week,

More or less."——डायर—इं० फो० लो०, पृ० २३७

जाता है। परन्तु इस दिन ज्वर कम हो जाय तो यह और अधिक भयानक समझा जाता है।[1]

विभिन्न दिनों में पैदा होने वाली संतान के विषय में भी अनेक लोकोक्तियाँ पायी जाती हैं। रविवार के दिन उत्पन्न होने वाला लड़का बड़ा सुशील होता है परन्तु सोमवार वाले की मुखाकृति गोली तथा रुचिकर होती है।[2] इस दिन छींकना बड़ा ही शुभ माना जाता है क्योंकि यह प्रियतम की प्राप्ति का सूचक है।

(२) मन डे (सोमवार)

स्काटलैण्ड के उत्तरी भाग में जिस लिङ्ग के व्यक्ति के द्वारा इस शब्द का उच्चारण किया जाता है उसी के अनुसार यह शुभ अथवा अशुभ माना जाता है। आयरलैण्ड में सोमवार किसी कार्य को प्रारम्भ करने के लिए शुभ दिन है। अपने देश में इस कार्य के लिए शनि तथा मंगलवार उपयुक्त समझा जाता है।

(३) ट्यूज डे (मंगलवार)

(४) वेडनस डे (बुधवार)

(५) थर्स डे (बृहस्पतिवार)

इंग्लैण्ड के एक प्रान्त में मंगलवार तथा बुधवार शुभ दिन माने जाते हैं। क्योंकि इन दिनों में किसी महत्त्वपूर्ण कार्य का श्रीगणेश करना मंगलमय है। भारत में भी मंगल को कार्यारम्भ करना शुभ है परन्तु बुध के विषय में ऐसी बात नहीं कही जा सकती। एक उल्लेख से ऐसा ज्ञात होता है कि मंगल तथा बृहस्पति को विवाह करने वाले प्रसन्न रहते तथा सुखमय जीवन बिताते हैं। बुधवार को यात्रा करने वाले मनुष्य को बहुत बड़ा खतरा उठाना पड़ता है।

बृहस्पतिवार के दिन सूर्योदय के पहिले का प्रहर शुभ होता है। अन्यथा यह अशुभ का प्रतीक है। परन्तु भारत में बृहस्पति का दिन विद्या के देवता का दिवस होने से अत्यन्त शुभ तथा पवित्र माना जाता है।

---

१. डायर—इं० फो० लो०, पृ० २३९

२. "Sunday's child is full of grace,
Monday's child is full in face."—डायर—वही, पृ० २३८

(७) सटर्डे (शनिवार)

भारत में तो शनिवार का दिन नितान्त अशुभ माना जाता है। परन्तु विदेशों में यह अंशतः शुभ और अंशतः अशुभ है। लार्ड बेकन ने भी इस तथ्य का समर्थन किया है। आयरलैण्ड में लोगों की यह धारणा है कि यदि इस दिन आकाश में इन्द्रधनुष दिखाई पड़े तो एक सप्ताह तक वर्षा होगी अथवा ऋतु बुरा (राटन) रहेगा। नारफोक की एक लोकोक्ति के अनुसार शनिवार के दिन द्वितीया का चन्द्रमा तथा रविवार को पूर्णिमा का चन्द्रमा अशुभ है। एक लोकोक्ति के अनुसार शनिवार को कपड़ा धोना भी उचित नहीं है।[१]

शनिवार का उत्तरार्ध (अपराह्ण) कार्य के विश्राम का समय माना जाता था। इसीलिए इसे 'सटर्डे स्टाप' (Saturday stop) कहते थे। आजकल भी यूरोप में शनिवार के अपराह्ण में दूकानें तथा समस्त कार्य बन्द हो जाता है। क्या इससे यह नहीं समझा जा सकता कि यह उसी प्राचीन विश्वास का अवशेष या द्योतक है।

एक लोकोक्ति में इन सातों दिनों की विशेषताओं का वर्णन किया गया है। इसमें शनिवार के दिन को आधी छुट्टी का दिन बतलाया गया है।[२] विभिन्न दिनों के लम्बे और बड़े होने के विषय में यह लोकोक्ति बहुत प्रचलित

---

१. "Saturday's new and sunday's full,
Was never fine, nor never wull."

—डायर—ई० फो० लो०, पृ० २४३-४५

२ "You know that Monday,
Is Sunday's brother.
Tuesday is such another,
Wednesday you must go,
To Church and pray
Thursday is half holiday,
On Friday it is too late,
To begin to spin,
The Saturday is half-holiday agen." -डायर—वही, पृ० २४०

है।[1] जिसका भाव यह है कि दिन जैसे-जैसे लम्बे होते जाते हैं अन्धड़ भी
ना ही बड़ा और मजबूत होता जाता है।

इस प्रकार दिनों के सम्बन्ध में भारतीय तथा विदेशों के लोक-विश्वास मे बहुत कुछ समानता पायी जाती है।

वर्ष सम्बन्धी लोक-विश्वास

ईसाई केलेण्डर (पंचांग) के एक वर्ष में बारह महीने होते हैं। इनमे प्रतिवर्ष फरवरी केवल अट्ठाइस दिन की होती है। परन्तु जिस वर्ष संवत्सर की संख्या में चार अंक का भाग लग जाता है उस वर्ष फरवरी में उन्तीस दिन होते हैं। उदाहरण के लिए वर्ष १९८६ ई० में २८ दिन ही फरवरी मे होगे परन्तु १९९२ की संख्या चार से विभाज्य होने के कारण उस वर्ष फरवरी में २९ दिन होंगे। जिस साल फरवरी मास में एक दिन की वृद्धि होती है वह वर्ष "लीप ईयर" (Leep year) कहा जाता है।

लोक-विश्वास की दृष्टि के यह साल शुभ तथा अच्छा माना जाता है।

न्यू ईयर्स डे (नव वर्ष-दिन) के संबंध में लोक-विश्वास

संसार के विभिन्न देशों में नव-वर्ष-दिन (न्यू ईयर्स डे) के संबध मे अनेकों लोक-विश्वास प्रचलित हैं। ईसाई धर्म में इस दिन के संबंध मे जो लोक-विश्वास तथा अन्ध परम्परायें प्रचलित हैं, उनका संक्षेप में यहाँ विवरण प्रस्तुत किया जाता है।

प्राचीन परम्परा के अनुसार नव वर्ष का दिन (१ ली जनवरी) बड़ा ही खतरनाक दिन माना जाता है। इस दिन जो भी कार्य किया जाता है उसका प्रभाव वर्ष के शेष ३६४ दिनों तक रहता है। यदि यह दिन शुभ तथा मंगलमय रहा तब शेष वर्ष के अन्य दिन भी मंगलकारी तथा शुभ होंगे। अन्यथा इसके विपरीत होने पर सारा साल कष्टकारक एवं अमंगलकारी रहेगा।

स्काटलैण्ड के लाईलैण्ड प्रदेश में तथा यूरोप के अन्य देशों में भी यह

---

१. As the days grow longer,
The storms grow stronger
As the days lengthen,
So the storms streogthen '—वही, पृ० २४६

प्रथा प्रचलित थी कि "होली" (Holly) नामक वृक्ष की छड़ी से एक पुरुष दूसरे को मारता था। लोगों का ऐसा विश्वास था कि इस (कु) कार्य से खून की जितनी बूंदें गिरेंगी उतने ही अधिक वर्षों तक वह व्यक्ति जीवित रहेगा।

आक्सफोर्ड विश्वविद्यालय जैसी उच्च शिक्षा संस्था में यह परम्परा प्रचलित थी कि कोषाध्यक्ष प्रति वर्ष कालेज के सदस्यों को 'सुई और डोरा' दिया करता था और उनसे मितव्ययी बनने की याचना किया करता था।

नव वर्ष के प्रथम दिन जिस जूते में छेद हो उसे पहिनना निषिद्ध था। अन्यथा वर्ष भर तक आर्थिक संकट में पड़े रहने की संभावना होती थी। यदि इस दिन नवीन वस्त्र कोई व्यक्ति धारण करे तो पाकेट मे कोई सिक्का अवश्य ही रख लेना चाहिए। भूल करने पर वर्ष के अधिकांश समय में अशुभ तथा अनिष्ट की संभावना बनी रहती है। पुराने तथा जीर्ण-शीर्ण वस्त्रों को इस दिन दूसरे व्यक्ति को नहीं देना चाहिए।

कुमारी युवतियाँ नवीन वर्ष की पूर्व रात्रि को सोने के पूर्व अपनी तकिया के नीचे "होली" नामक वृक्ष की टहनियों को रख कर सोती थीं। उनका विश्वास था कि इस रात को बेरी के फल जितनी संख्या में गिरेंगे उतनी ही संख्या में उन्हें विवाह के लिए उपयुक्त पुरुषों से मिलने की संभावना होगी।

विवाहिता स्त्रियाँ अपना पैर जमीन पर नहीं रखती थीं क्योंकि २५ दिसम्बर से ५ जनवरी तक कोई घरेलू काम करना दुर्भाग्य का सूचक माना जाता था। यह प्रथा सैकड़ों वर्षों से प्रचलित है।

इस दिन डबल रोटी बनाना निषिद्ध माना जाता है क्योंकि वह शीघ्र ही बासी (स्टेल) हो जाता है। मक्खन और पनीर मे खटास उत्पन्न हो जाती है जो दूध, दही के रूप में परिवर्तित हो जाती है तथा अण्डा एवं मांस विकृत हो जाता है।

नव वर्ष की पूर्व रात्रि के मध्यकाल (मध्यरात्रि) में घर का दरवाजा खुला रखा जाता था। नौकर कुँओं से अथवा गाँव के पम्पों से पानी लाने के लिए दौड़ते थे जिससे वे सर्व प्रथम जल प्राप्त कर सकें। इस पवित्र जल को क्रीम (मक्खन) कहा जाता था। इस रात्रि को जो कोई भी कुमारी युवती जल लाने में समर्थ होती थी उसके विषय मे लोगों की यह धारणा होती थी कि वर्ष के अन्त होने के पहिले ही उसका विवाह किसी योग्य वर से हो जायेगा। यदि सर्वप्रथम जल लाने वाली कोई विवाहिता स्त्री होती थी तब वह

अपनी दूध की बाल्टी में पानी भर कर गायों के पास ले जाती थी जिससे वे अधिक दूध देने लगती थीं।

परन्तु सबसे अधिक महत्त्व उस व्यक्ति का था जो मध्य रात्रि में घर मे प्रथम प्रवेश करता था। ऐसा व्यक्ति काले बालों वाला प्रायः अजनबी होना चाहिए। "वह घर में चुपचाप प्रवेश करे और कोई भी उसका स्वागत न करे उसे आंख, नाक, हाथ और पैर किसी भी ओर से विकलाङ्ग नहीं होना चाहिए जब तक वह व्यक्ति सभी लोगों का मंगल कामना न करे तब तक उससे कोई भी बातचीत न करे"।

नव वर्ष-दिन की पूर्व रात्रि को घर की किसी वस्तु को देना नही चाहिए यहाँ तक कि किसी अनजबी को प्रकाश (टार्च लाइट) भी देना मना है। क्योंकि ऐसा करना दुर्भाग्य को निमंत्रण देना है।

यह दिन भविष्य की बातों से सूचित होने का उचित समय है। इस दिन कुमारी युवतियों द्वारा बाल्टी की तलहटी में झांकने से उन्हें रात्रि में भावी पति के दिखलाई पड़ने की संभावना रहती है।

इसे नये वर्ष की प्रथाओं तथा विधि-विधानों मे जल का महत्त्वपूर्ण स्थान है। अतः स्त्रियाँ अपने क्रोधी तथा द्वेषी पतियो के ऊपर बाल्टी भर पानी फेंकती हैं। परन्तु पति स्त्री के ऊपर दूसरे दिन में पहिले न तो कोई चीज फेंक सकता है और न कोई प्रतिक्रिया ही प्रकट कर सकता है।

नव वर्ष के आगमन के पूर्व भारतवासियों के दिवाली के त्यौहार की भाँति सम्पूर्ण गृह को स्वच्छ कर देना चाहिए। उधार में ली गई वस्तु को लौटा कर ऋणों को भी चुका देना चाहिए। कपड़ों को सुधारना अथवा मरम्मत करके घड़ी मे चाभी देना चाहिए। चाँदी तथा पीतल के सभी बर्तनो की सफाई करके बिस्तरों पर स्वच्छ चादरें बिछा देनी चाहिए। इस प्रकार यह नव वर्ष दिवाली के त्यौहार से बहुत कुछ मिलता-जुलता है।[1]

—o—

१. इस विषय के प्रामाणिक तथा विस्तृत वर्णन के लिए देखिए।

डायर इ० फो०

दशम अध्याय

लोक-देवी और देवता

हिन्दू देवता मण्डल (पैन्थियान) को प्रधानतया तीन श्रेणियों में विभक्त किया जा सकता है :—

(१) वैदिक देवता

(२) पौराणिक देवता

(३) लौकिक देवता

वैदिक देवता वे हैं जिनका वेदों में वर्णन पाया जाता है जैसे इन्द्र, अग्नि, वरुण, पर्जन्य और उषा आदि। पौराणिक देवी और देवता वे हैं जिनकी पूजा आधुनिक हिन्दू समाज में प्रधानतया प्रचलित है। ऐसे देवताओं में शिव, विष्णु, राम, कृष्ण तथा दुर्गा आदि प्रसिद्ध हैं। लौकिक देवता उन्हें कहा जाता है जो ग्रामीण क्षेत्रों में सर्व साधारण जनता के द्वारा आदर के साथ पूजे जाते हैं। इन लोक-देवताओं में गणेश, हनुमान, भैरव, शीतला माता, आदि समधिक विख्यात हैं। इनमें से कुछ ऐसे भी देवी और देवता हैं जो रोगों का नष्ट करने वाले माने जाते हैं। जैसे शीतला माता चेचक की अधिष्ठातृ देवी है तथा 'पिलेक मइया' प्लेग की देवता मानी जाती हैं। यहाँ पर इन्हीं लौकिक देवताओं का वर्णन किया जाता है। इसके साथ ही उन देवी-देवताओं पर भी प्रकाश डाला जाता है जो साधारण जनता के रोगों को नष्ट करने वाले हैं।

प्राचीन भारत में लोक देवी और देवता

(क)—वैदिक काल में लोक देवी और देवताओं का वर्णन प्रचुर परिमाण में पाया जाता है। अथर्ववेद तो लोक-संस्कृति के विभिन्न अवयवों जैसे यातु-विद्या, अभिचार, तंत्र-मंत्र, भूत-दूत, वशीकरण, मारण, मोहन, उच्चाटन आदि का अनन्त भाण्डार ही माना जाता है। सच पूछा जाय तो अथर्ववेद लोक-संस्कृति का विश्वकोष है जिसमें सामान्य जन के लोक-विश्वास,

शकुन, अंध परम्परा, प्रेत विद्या आदि का विस्तृत वर्णन उपलब्ध होता है। केवल लोक-संस्कृति (फोकलोर) की दृष्टि से अथर्ववेद का अभी तक कोई विशेष अध्ययन तथा अनुसंधान नहीं हुआ है। यदि ऐसा किया जाय तो इससे लोक-संस्कृति (फोकलोर) संबंधी अक्षय सामग्री के प्राप्त होने की संभावना है।

ऋग्वेद में यद्यपि आर्यों के उच्च वर्ग की संस्कृति का चित्रण है फिर भी इसमें सामान्य लोगों को लोक-विश्वास का संक्षिप्त विवरण पाया जाता है। अतः (इन दोनों) वेदों में वर्णित लोक-देवी और देवताओं का समास रूप से यहाँ विवरण प्रस्तुत किया जाता है।

(१) परिच्छेद

वैदिक देवता

कृत्या

वैदिक लोक-देवियों में कृत्या सबसे अधिक भयानक तथा अमंगल करने वाली मानी जाती है। यह एक निम्नकोटि की सामान्य देवी है। यदि किसी मनुष्य की आकृति नीली अथवा लाल रंग की हो जाय तो लोगों का ऐसा विश्वास है कि कृत्या का इस पर कोप है। कृत्या के दुष्प्रभाव से किसी स्त्री के पति को अनेक कष्टों को भोगना पड़ता है। परन्तु कृत्या का दुष्प्रभाव जब नष्ट हो जाता है तभी स्त्री और पति का मिलन संभव होता है। कृत्या जब किसी व्यक्ति पर आक्रमण करती है तब उसका सुन्दर शरीर भी विद्रूप हो जाता है।

निॠति

निॠति निम्न वर्ग की नीच देवी है जो अत्यन्त शक्तिशाली मानी जाती है। यह अनेक प्रकार के बुराइयों तथा उपद्रवों को करने मे समर्थ है और कभी-कभी किसी व्यक्ति की मृत्यु भी कराने में साधक होती है। यह संख्या में तीन मानी गयी है जिसकी पूजा पशुओं की बलि देकर की जाती है। कबूतर इस देवी का वाहन माना जाता है जिसको भेजकर यह मनुष्यों तथा पशुओं को क्षति पहुँचाती है।

यातुधान

संस्कृत साहित्य में यातुधान का अर्थ राक्षस होता है। वैदिक काल मे यातुधान उस दुष्ट आत्मा (evil spirit) को कहते थे जो मनुष्यों को क्षति पहुँचाया करता था। एक स्थान पर ऐसा वर्णन पाया जाता है कि यह अपने शरीर में पशुओं या घोड़ों के माँस को मलता था और गायों के

दूध का अपहरण किया करता था। ऋग्वेद में 'यातुमावत्' शब्द का प्रयोग पाया जाता है जिसका अर्थ वह व्यक्ति होता है जो तन्त्र-मन्त्र तथा डायन-शास्त्र (Witch craft) की विद्या में निपुण हो।

ससर्परी

यह एक दुष्ट आत्मा (evil spirit) मानी जाती है जिसकी सहायता से विश्वामित्र ने अपने शत्रुओं का नाश किया था। सूर्य की कन्या के रूप में इसका वर्णन किया गया है। यह बड़े जोरों की आवाज करती है। यह स्वयं तो शक्तिशाली है ही, परन्तु जो मनुष्य इसकी शरण में आते हैं उनको भी यह बल तथा शक्ति प्रदान करती है।[1]

ऋग्वेद में यक्ष तथा द्रुहों का वर्णन पाया जाता है जो दुष्ट आत्मा (evil spirits) माने जाते हैं। ऐसा विश्वास किया जाता है कि जो लोग सच्चे नहीं है, जो असत्यभाषी तथा बे-ईमान हैं वे इन्हीं दुष्ट आत्माओं से अभिभूत होते है। एक स्थान पर "पक्षिणी हेति" नामक दुष्ट आत्मा का वर्णन मिलता है जो कबूतर का रूप धारण कर लोगों को कष्ट देता है।

वैदिक काल में भूत-दूत तथा दुष्ट आत्माओं को अपने वश में करने वाले व्यक्ति भी विद्यमान थे जिन्हें 'रक्षस्विन्' कहा जाता था। ये आजकल के ओझा या सोखा के समान थे जो झाड़-फूंक के द्वारा भूतों को भगाने में कुशल माने जाते थे। वेद में 'यातुमावान्' और "यातुमान्" का अर्थ "ओझा" होता है जो मंत्र-विद्या में निष्णात माने जाते हैं। परन्तु ऋग्वेदकालीन आर्य इस जादूगरी और ओझागीरी के कार्य से घृणा करते थे। अथर्ववेद के अध्ययन से पता चलता है उस काल में तंत्र-मंत्र की विद्या का समाज में प्रचुर प्रचार हो गया था और लौकिक देवी और देवता समाज में प्रतिष्ठित तथा पूजित थे।

(ख) वैदिक युग में ही वैदिक देवता और लोक देवता, इन दोनों के मेल-जोल की प्रक्रिया प्रारम्भ हो गई थी। अथर्ववेद के एक सूक्त में अत्यन्त स्वाभाविक रीति से वैदिक देवों के साथ लोक-देवताओं का अनौपचारिक उल्लेख पाया जाता है। वैदिक सूक्त का ऋषि जब अपने समकालीन देवताओं के विषय मे सोचने लगता है तब लोक और वेद दोनों ही कोटियों के देव उसके दृष्टि-पथ में आने लगते हैं। इस सूक्त में इन मिले जुले हुए दोनों प्रकार के

---

१ इन वैदिक लोक-देवताओं के विस्तृत तथा प्रामाणिक विवरण के लिए देखिए।

—डॉ० छन्दा चक्रवर्ती —का० ला० इन दि ऋ० वे० एण्ड अ० वे०

देवताओं की संख्या ६५ (पैंसठ) है जिनमें यक्ष, राक्षस, सर्प, भूत, पितृ और मास-संवत्सर आदि लौकिक देवता ज्ञात होते हैं।[1]

देवी-देवताओं की यह सूची उस बन्धुत्व की ओर संकेत करती है। जिसमे ऊँच-नीच के भेद-भाव के बिना देवों का सब समाज एक स्थान में एकत्रित हुआ है। इस सूची में एक ओर इन्द्र, वरुण, अग्नि, विष्णु और सविता आदि टकसाली वैदिक देवता विराजमान हैं तो दूसरी ओर यक्ष, राक्षस, सर्प आदि छोटे-छोटे लोक-देवता भी पाये जाते हैं। भूमि, पर्वत, नदी और समुद्र ये भूमि सम्बन्धी देवता है जिनकी परम्परा लोक और साहित्य दोनो मे पाई जाती है।

प्राचीन काल मे प्रति वर्ष देवताओं के मेले हुआ करते थे जहाँ भक्तगण बडी श्रद्धापूर्वक जाया करते थे। इन मेलों को 'मह' कहा जाता था जो वैदिक शब्द मख (यज्ञ) का अपभ्रंश रूप ज्ञात होता है। उच्चवर्ण अथवा द्विजातियों के जीवन में जो स्थान वैदिक यज्ञों का था सामान्य लोक के जीवन मे वही स्थान 'मह' का था। काशिका के एक उदाहरण से पता चलता है कि गंगा के एक बहुत बड़े मेले को 'गंगा मह' कहा जाता था।[2] हरिवंश पुराण मे श्रीकृष्ण द्वारा गोवर्धन उठाये जाने की लीला को 'गिरि मह' या 'गिरियज्ञ' कहा गया है—

"स्थितः शक्रमहस्तात, श्रीमान् गिरिमहः स्वयम् (हरि० पु० २/१६/१०)

इसी प्रसंग में इसका स्पष्ट उल्लेख हुआ है कि जिस प्रकार ब्राह्मण मंत्रो द्वारा यज्ञ करते हैं इसी प्रकार किसान हल द्वारा सीता-यज्ञ और गोप लोग गो-पालन द्वारा गिरि-यज्ञ का सम्पादन करते है।[3]

"मंत्र यज्ञपराः विप्राः, सीतायज्ञास्तु कर्षुकाः।
गिरियज्ञास्तथा गोपाः इज्योस्माभिर्गिरि वने॥"

लोक-देवता

बौद्ध ग्रन्थ 'सुत्त निपात' की निद्देस नामक व्याख्या में और 'मिलिन्दपञ्ह' मे लोक-देवताओं की लम्बी सूची प्राप्त होती है।

इन लोक-देवताओं के अनुयायियों को व्रतिक कहा जाता था जो पालि-

---

१. अथर्ववेद, ११/६/१—२३ पापमोचन सूक्त
२. काशिका—सूत्र ५/१/१०६
३. हरिवंश पुराण—२/१६/६

साहित्य में 'वतिक' के नाम से प्रसिद्ध हैं। इसमें से कुछ प्रधान वतिकों के नाम इस प्रकार हैं :—

(१) हत्थि वतिक (२) अस्स वतिक
(३) गो वतिक (४) कुक्कुर वतिक
(५) काक वतिक (६) यक्ख वतिक

मिलिन्दपञ्ह में इन देवताओं के मानने वाले आचार्यो के अनुयायियों को 'गण' की संज्ञा दी गई है। इस ग्रन्थ की सूची में अनेक लोक-देवताओं की गणना की गई है—जैसे पब्बता, पिसाचा, सूरिय, कालि देवता, चन्दिम आदि।

मज्झिम निकाय के गोव्रत और कुक्कुर व्रत का विशेष उल्लेख पाया जाता है।[1] गोव्रत के अनुयायी अपने सिर पर सींग बाँधते थे और गायों के साथ-साथ घास चरते हुए घूमते थे। इसी प्रकार कुक्कुर व्रत पालने वाले व्यक्ति सब कुछ कुत्ते के समान व्यवहार करते थे। इस प्रकार से लोक-देवता में विश्वास रखने को 'व्रत' या भक्ति कहा गया है। इन व्रतियों का यह दृढ़ विश्वास था कि जिस देवता की भक्ति की जायेगी, कालान्तर में उसी देवता का स्वरूप प्राप्त हो जाता है।

भगवद् गीता में लोक-देवता

इन लोक-देवताओं की परम्परा भगवद् गीता में भी पायी जाती है। इस ग्रंथ में इन देवताओं की पूजा और मान्यता के लिए 'व्रत' शब्द का प्रयोग उपलब्ध होता है[2] :—

"यान्ति देवव्रताः देवान्;
पितॄन् यान्ति पितृव्रताः।
भूतानि यान्ति भूतेज्या,
यान्ति मद्याजिनोऽपि माम्।

गीताकार ने इन लोक-देवताओं की एक लम्बी सूची प्रस्तुत करते हुए इन सबको भगवान् की विभूति या नाना रूप कहकर समन्वय स्थापित किया है। परन्तु ध्यानपूर्वक देखने से यह शीघ्र ही स्पष्ट होने लगता है, कि इन

१. मज्झिम निकाय, पंपच सूदनी—भाग ३, पृ० १००
२. गीता, ९/२३

विभूतियों के रूप में लोक-देवताओं की ही गणना की गई है। इन लोक-देवताओं में कुछ प्रधान देवताओं के नाम इस प्रकार है[1]—

बासुकी सर्प, वैश्रवण (कुबेर, यक्ष) सागर, हिमालय, पितृ, यम, सिंह, गरुड़, वायु, अश्वत्थ वृक्ष (रुक्ख देवता), उच्चैःश्रवा अश्व, ऐरावत गज, कामधेनु, मकर, गंगा नदी (जाह्नवी)।

इन सभी लोक-देवताओं को समेट कर गीताकार ने एक माला के मनको के रूप में पिरो दिया है। समन्वयीकरण भागवत धर्म को सबसे बड़ी विशेषता थी जिसमें लोक-देवताओं को भी विष्णु का एक रूप मान लिया गया है।

विष्णुधर्मोत्तर पुराण में लोक-देवता

मनुष्य अपने स्वभाव तथा रुचि के अनुसार अपना देवता चुन लेता है। जो जिसको रुचता है वह उसका देवता बन जाता है। जैसे महावीर के भक्त हनुमान् को और शक्ति के उपासक दुर्गा को अपना अभीष्ट देवता मानते हैं। इस प्रकार के देवता को भागवतों ने 'रोच देवता' की नयी संज्ञा प्रदान की है। इस प्रकार के 'रोच देवताओं' की संख्या २८ (अट्ठाईस) है जिनमें अनेक लोक-देवता भी पाये जाते है, जैसे –

(१) **पितृरोच**—पितरों की पूजा करने से अभीष्ट फल की प्राप्ति होती है।

(२) **वायुरोचक**—इनकी पूजा से वाणिज्य में लाभ की प्राप्ति होती है।

(३) **यमरोच**—यम की पूजा करने से नरक का भय नही रहता।

(४) **वैश्रवणरोच**—कुबेर की पूजा से प्रत्येक जन्म में व्यक्ति धनवान् बनता है।

(५) **शैलरोच**—पर्वत के पूजन से व्यक्ति सुखी होता है। आदि आदि।

मत्स्यपुराण में लोक-देवताओं की एक बहुत ही विस्तृत तथा परिपूर्ण सूची दी गई है जिसमें लगभग २०० देवियों के नामों की गणना पाई जाती है।[2] इनमें से अनेक लोक-देवियाँ हैं—जैसे सुरसा, विडाली, कर्ण मोटी, चामुण्डा, केशिनी, लम्बमेखला आदि।

---

१ गीता अध्याय—१० (विभूति योग)

२ मत्स्यपुराण १७९/१०–३२

काश्यप संहिता के 'रेवती कल्प' के कुषाणकालीन देवियों की लम्बी तालिका उपलब्ध होती है जिसमें लगभग ३० (तीस) से भी अधिक देवियों की गणना की गई है। उस काल में विभिन्न पेशे वाली जातियों की भी अपनी पृथक लोक-देवियाँ थीं जिनको वे बड़ी भक्ति से पूजा किया करते थे, यथा—

(१) अयस्करी जातिहारिणी—यह लोहारों की देवी थी जिसकी वे पूजा करते थे।
(२) कुविन्दी—कोलियों की देवी
(३) तक्षिणी—बढ़ई जाति के लोगों की देवी
(४) सौचकी—दर्जियों की देवी
(५) कुलाली—कुम्हारों की देवी
(६) रजकी—रंगरेजों की देवी
(७) पदकरी—चमारों की देवी
(८) नेजिका—धोबियों की देवी
(९) मालाकारी—मालियों की देवी
(१०) गोपी—ग्वालों की देवी।

आज भी गाँवों में विभिन्न पेशे वाली जाति के लोग अलग-अलग अपनी माताओं या देवियों की पूजा करते हैं।

उपर्युक्त विवरण से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि वैदिक काल में तथा पौराणिक युग में लोक-देवी और देवताओं की प्रचुरता थी। उच्च श्रेणी के देवों, विष्णु, इन्द्र, सविता, वरुण, आदि की उपासना के साथ निम्नश्रेणी के लोगों के द्वारा इन लोक-देवताओं की पूजा होती थी।[1] निम्न समाज में ये बड़ी श्रद्धा तथा भक्ति के साथ पूजे जाते थे।

(२) परिच्छेद

पौराणिक देवता

(१) हनुमान्

लोक-देवताओं में सबसे अधिक लोकप्रिय तथा प्रसिद्ध हनुमान् हैं जिनके मन्दिर प्रायः प्रत्येक गाँव में पाये जाते हैं। इनकी माता का नाम अंजनी तथा

---

१. वैदिक लोक-देवी और देवताओं के प्रामाणिक वर्णन के लिए देखिए—डॉ० वासुदेव शरण अग्रवाल—प्राचीन भारतीय लोक-धर्म।

पिता का नाम पवन है इसीलिये "हनुमान चालीशा" नामक स्तोत्र मे इन्हें 'अंजनि पुत्र पवन सुत नामा" कहा गया है।

हनुमान् का दूसरा नाम 'महावीर' भी है जिससे इनके अत्यन्त बलशाली होने का पता चलता है। इसीलिए इनका स्मरण 'महावीर विक्रम बजरंगी" कह कर किया गया है। ये शक्ति के देवता तथा बल के मूर्तिमान् स्वरूप माने जाते है। इस कारण अखाड़ों में लड़ने वाले पहलवान्, अपने अखाड़ों के पास बांस मे लाल झंडा गाड़ देते हैं जो महावीर का प्रतीक माना जाता है। ग्रामीण लोग जब किसी संकट में पड़ते हैं, अथवा किसी सुनसान स्थान पर भूत-प्रेतों से घिर जाते है तब "जय महावीर जी" "जय हनुमान, जी" कहकर इनका स्मरण करते हैं। वे ऐसा करने से, क्षण भर में ही, इस बाधा से मुक्त हो जाते है। इसीलिए कहा गया है जो मनुष्य मन, कर्म और वचन से इनका ध्यान करता है उसे हनुमान् जी संकट से मुक्त कर देते हैं—

"संकट से हनुमान छोड़ावें।
मन क्रम वचन ध्यान जो लावे।"

हनुमान् की आकृति तथा उनके गुण—हनुमान् जी की आकृति मनुष्य के आकार भी मानी जाती है। उनका शरीर अत्यन्त मजबूत, मासल तथा बलशाली है। मनुष्य की आकृति से केवल अन्तर इतना ही है कि इन्होंने पीठ के पीछे लम्बी पूँछ धारण कर रखी है। इनका शरीर लाल है क्योंकि भक्त लोग सदा इनके शरीर में इंगुर और तेल लगाते हैं। इसीलिए इनके शरीर की आकृति के विषय में कहा गया है कि—

लाल देह लाली लसे, अरु तन लाल लंगूर।
वज्र देह दानव दलन, जय जय जय कपि सूर॥"

हनुमान् का शरीर वज्र के समान कठोर तथा मजबूत है।

ये राक्षसों का नाश करने वाले हैं। इन्होंने लंका में आग लगाकर समस्त राक्षसों को अग्नि ज्वाला मे स्वाहा कर दिया था। इसलिए इन्हें 'दानव-दलन' कहा जाता है। ये संकट से ग्रस्त मनुष्यों का उद्धार करते हैं। अतः इनकी दूसरी संज्ञा 'संकटमोचन' भी है। पिशाच अथवा राक्षसों से रक्षा

करने के कारण ये पिशाचमोचन भी कहलाते है। संस्कृत के एक श्लोक में इनकी आकृति तथा गुणों बड़ा सुन्दर वर्णन किया गया है।

"अतुलितबलधामं; स्वर्ण-शैलाभ-देह,
दनुजवन कृशानुं, ज्ञानिनामग्रगण्यम्।
सकलगुणनिधानं, वानराणामधीशं,
रघुपतिवरदूतं, वातजातं नमामि॥"

हनुमान् के मन्दिर—गाँवों में हनुमान् जी का प्रायः कोई मन्दिर नहीं होता ग्रामीण लोग अपने घरों में एक हरा बाँस गाड़ लेते है जिसके शिरोभाग पर लाल रंग का झंडा फहराता रहता है। इसी लाल वस्त्र के ऊपर हनुमान् जी की आकृति बनी रहती है। यही हनुमान् जी का ध्वजा है जिसे लोग बड़ी श्रद्धा से पूजते है। इसे 'महावीरी झण्डा' भी कहा जाता है जो किसी विशेष अवसर पर जलूस मे निकाला जाता है।

गाँव के बाहर जो अखाड़े बने रहते हैं वहाँ भी इसी प्रकार का झण्डा स्थापित पाया जाता है। पहलवान् लोग लड़ने के पहिले इसकी पूजा करते हैं। चूँकि हनुमान् जी, महावीर के रूप में शक्ति तथा बल के देवता माने जाते हैं अतः उनसे शारीरिक बल देने की प्रार्थना की जाती है।

वाराणसी में संकटमोचन के मन्दिर में हनुमान की अनगढ़ी प्रतिमा स्थापित है। लोगों का कहना है कि गोस्वामी तुलसीदास जी ने इसकी स्थापना की थी। इसी प्रकार अयोध्या में "हनुमानगढ़ी" के नाम से हनुमान् जी का प्रसिद्ध मन्दिर है जहाँ भक्तो की अनन्त भीड़ दर्शन के लिए एकत्रित होती है। हनुमान् जयन्ती के अवसर पर यहाँ बहुत बड़ा मेला लगता है जिससे इनकी लोकप्रियता का कुछ अनुमान लगाया जा सकता है।

हनुमान् की पूजा—यों तो 'हनुमान्' की पूजा प्रत्येक दिन की जाती है परन्तु इनका विशेष प्रिय दिन मंगलवार है। इस दिन भक्तगण इनके मंदिरों में जाकर इनका दर्शन कर प्रसाद चढ़ाते हैं इन्हें बेसन का लड्डू बहुत प्रिय है। इसीलिए इन्हें "मोदक प्रिय" कहा गया है। इन्हें सवा पाव तथा सवा किलो (सेर) लड्डू चढ़ाने का विधान है। परन्तु जिस व्यक्ति की इतनी शक्ति न हो वह अपनी शक्ति के अनुसार थोड़ा या अधिक भी प्रसाद चढ़ा सकता है।

गाँव के लोग जब किसी संकट में पड़ जाते हैं तब कार्य सिद्धि हो जाने

पर इन्हें साधारणतया सवा सेर लड्डू चढ़ाने की मनौती मानते हैं। परन्तु यदि संकट अधिक बड़ा, खतरनाक तथा गंभीर हुआ तो सवा मन (५०किलो) तक लड्डू चढ़ाने की भी मनौती सुनी जाती है।

इनकी पूजा का दूसरा प्रकार इनके शरीर में सरसो के तेल में ईंगुर घोल कर लगाना है जिससे इनकी आकृति सोने के समान चमकने लगती है। कुछ लोग कार्य सिद्धि हो जाने पर इनको नवीन वस्त्र प्रदान करते हैं तथा फूल, मालाओं से सजा कर इनका शृङ्गार भी करते हैं। इस प्रकार हनुमान् की पूजा लोक में समधिक प्रसिद्ध है। अतः इन्हें सच्चे अर्थों में लोक-देवता कहा जा सकता है।

लोगों की यह दृढ़ धारणा है कि आजकल जो बन्दर अथवा लंगूर पाये जाते हैं वे हनुमान् जी के वंशज हैं। अतः इन बन्दरों के प्रति भी लोगो के हृदय में वही श्रद्धा की भावना विराजती है। ये लोग इन बन्दरों को मारना पाप समझते हैं।[1] भक्तगण बड़े प्रेम से इन्हे चना, गुड़ खिलाते हैं। वाराणसी के संकट मोचन के मंदिर में तथा अयोध्या में हनुमानगढ़ी के मंदिर में इन बन्दरों की सेना देखी जा सकती है जहाँ भक्तगण इन्हें चना खिलाते हैं।

महाराष्ट्र में हनुमान् "ग्राम-मारुति" के नाम से पूजे जाते हैं। प्रत्येक गाँव के बाहर इनका मंदिर देखा जा सकता है। हनुमान् की पूजा अर्धसभ्य, आदिम तथा जंगली जातियों के द्वारा भी की जाती है। विन्ध्य तथा कैमूर पर्वतों में निवास करने वाली जातियाँ भी इनकी पूजा-आराधना करती है। बिहार के सिंहभूमि जिले के भुइया जाति के लोग अपने को 'पवनवंशज' अर्थात् पवन (वायु) के वंश में उत्पन्न हुआ मानते हैं।[2] इस प्रकार इनकी पूजा सभ्य तथा असभ्य सभी जाति के लोगों के द्वारा की जाती है।

(२) गणेश

हनुमान् के पश्चात् गणेश जी लोकप्रिय देवता माने जाते हैं। गणेश शब्द का अर्थ है गण अर्थात् जनता का ईश अर्थात् स्वामी। इस प्रकार जो

---

१ वाराणसी की नगरपालिका ने जब एक बार यहाँ से बन्दरों को पकड़वा कर बाहर भेजने का प्रयास किया था तब यहाँ के लोगो ने इन्हें हनुमान् का वंशज बतला कर बड़ा विरोध किया। अतः कार्य न हो सका।

२ हाल्टन—हि० इ० वे०

जनता का स्वामी है उसे गणेश कहा जाता है। इस व्युत्पत्ति के अनुसार ये जन-नायक अथवा जनता के नेता माने जाते हैं।

गणेश प्राचीन देवता हैं। वेदों में इन्हें 'दन्ती' के नाम से स्मरण किया गया है। 'तन्नो दन्तिः प्रचोदयात्' इस मन्त्र में इन्हें 'दन्ति' कहा गया है। इन्हे 'एक दन्त' भी कहते हैं।

परन्तु गणेश का पौराणिक रूप वैदिक रूप से नितान्त भिन्न है। ये विघ्नों को नष्ट करने वाले माने जाते हैं। इसीलिए इनका स्मरण 'विघ्नेश्वर के रूप में किया जाता है। लोगों का ऐसा विश्वास है कि किसी कार्य को प्रारम्भ करने के समय गणेश का नाम ले लेने से सभी विघ्नबाधायें दूर हो जाती हैं। यह भावना जन-साधारण के हृदय मे इतनी बद्धमूल हो गई है कि किसी भी मांगलिक कार्य प्रारम्भ में गणेश की पूजा आवश्यक ही नहीं अनिवार्य मानी जाती है। हिन्दू समाज मे कोई भी मंगल-कार्य ऐसा नहीं हो सकता जिसमें इस विघ्ननाशक देवता की पूजा न की जाती है। इसीलिए यज्ञोपवीत, विवाह, गवना, कथा-वार्ता आदि सभी अवसरों पर गणेश-पूजा एक आवश्यकीय विधान माना जाना है।

गणेश जी की धन देने वाले देवता के रूप में भी मान्यता है। इसीलिए सेठ-साहूकार तथा व्यापारी लोग अपनी बहियों के प्रारम्भ में 'श्री गणेशाय नम' लिख देते हैं। उन्हें यह विश्वास है कि ऐसा करने से उनका आर्थिक वर्ष निर्विघ्न समाप्त होगा तथा उन्हें प्रचुर धन की प्राप्ति होगी।

लेखक लोग जब किसी ग्रन्थ का लेखन प्रारम्भ करते हैं तब सबसे पहिले गणेश की स्तुति में दो-चार श्लोको की अवश्य ही रचना करते हैं। किंबहुना छोटे बच्चे परीक्षा के समय अपनी उत्तर पुस्तिका में प्रश्नों का उत्तर लिखने के पूर्व "श्री गणेशाय नमः" लिखकर अपनी सफलता के लिए गणेश जीसे अशीर्वाद माँगते हैं।

गणेश जी की आकृति— गणेश जी की आकृति बड़ी ही विचित्र है। इनका समस्त शरीर मनुष्य के समान है परन्तु इनके मुख की आकृति हाथी के सूड़ के सदृश है। इसका स्पष्ट उल्लेख सुप्रसिद्ध टीकाकार मल्लिनाथ ने अपने एक श्लोक में निम्न प्रकार से किया है।

'तं नरं वपुषि, कंजरं मुखे,
मन्महे किमपि तुन्दिलं महः।"

गणेश जी का सिर तथा मुख हाथी के समान क्यों है इस सम्बन्ध में एक पौराणिक कथा प्रसिद्ध है।

गणेश जी अपने माता-पिता के बड़े भक्त हैं। एक बार समस्त देवताओं में यह होड़ लगी कि संसार की परिक्रमा करके सबसे पहिले कौन आता है। गणेश जी तुन्दिल होने के कारण अधिक तेजी से नहीं चल सकते थे। अत इन्होंने अपने माता-पिता की ही परिक्रमा की। अन्त में विवाद के पश्चात् यही सर्वश्रेष्ठ देवता माने जाने लगे। सभी देवताओं में इनकी पूजा सबसे पहिले की जाती है उसका रहस्य यही है।

गणेश के मन्दिर—सर्व साधारण जनता मांगलिक अवसरों पर गोबर से गणेश की प्रतिमा का निर्माण कर उसी की पूजा-अर्चा करती है। इसीलिए जो अल्प प्राण, निष्क्रिय व्यक्ति होता है उसकी उपमा 'गोबर गणेश' से दी जाती है। परन्तु गणेश के बहुत विशाल मन्दिर भी निर्मित है जिनमें इसकी पूजा विधिपूर्वक की जाती है। काशी में 'बड़ा गणेश' मुहल्ला ही है जहाँ गणेश जी की विशाल प्रतिमा की स्थापना मन्दिर में की गई है। यहाँ भाद्रपद मास के शुक्लपक्ष की चतुर्थी तिथि को बहुत बड़ा मेला लगता है।

हनुमान के समान गणेश जी भी मोदकप्रिय हैं। अतः भक्तगण इन्हे लड्डू का प्रसाद चढ़ाते हैं। उज्जैन में महाकाल के मन्दिर के पास गणेश की विशाल प्रतिमा स्थापित है जो बीस-पचीस फीट से ऊँची नहीं होगी। इसे 'बडा गणेश' का मन्दिर कहा जाता है। गणेश जी का वाहन चूहा है। इस मन्दिर में इस चूहे की आकृति भैंस के बच्चे (पाड़ा) के समान दिखाई पड़ती है।

महाराष्ट्र में लोकमान्य तिलक ने गणेश-पूजा को राष्ट्रीय महत्त्व का सम्मान प्रदान किया। वहाँ इसे "गणपति महोत्सव" कहा जाता है। उस समय एक सप्ताह तक खेल-कूद, नाच-गाना, तथा व्याख्यान, आदि का आयोजन किया जाता है। वहाँ गणेश जी ग्रामीण देवता नहीं बल्कि राष्ट्रीय देवता के रूप में प्रतिष्ठित माने जाते है।

गणेश की विशिष्ट पूजा—यों तो गणेश जी की पूजा प्रतिदिन तथा प्रत्येक मांगलिक अवसर पर की जाती है परन्तु भाद्रपद मास की शुक्लपक्ष की चौथ को इनकी पूजा—आराधना विशेष रूप से की जाती है। इसे गणेश चतुर्थी कहते हैं क्योंकि इसी दिन इनका जन्म हुआ था.

गणेश-चतुर्थी के दिन प्रातः काल स्नान आदि से निवृत्त होकर इनका पूजन करते समय किसी धातु की प्रतिमा होनी चाहिए। इसके अभाव में गोबर से ही इनकी प्रतिमा का निर्माण किया जा सकता है। इसके बाद धूप, दीप, नैवेद्य और ताम्बूल आदि अर्पित करने के पश्चात् इनकी आरती कर नीचे लिखे श्लोक से इनका ध्यान करना चाहिए।

"लम्बोदरं; चतुर्बाहुं त्रिनेत्रं रक्तवर्णकम् ।
नानारत्नैः सुवेशाढ्यं प्रसन्नास्यं विचिन्तयेत् ।"

इनकी पूजा में २१ मोदक (लड्डू) चढ़ाने का विधान है। पाँच लड्डू इन्हें अर्पित कर शेष प्रसाद रूप में बाँट देना चाहिए। रात में चन्द्रोदय होने पर इन्हे अर्घ्य दकर व्रत की समाप्ति की जाती है। इस प्रकार गणेश जी विघ्ननाशक तथा स्वास्थ्य और धन को प्रदान करने वाले जनता के देवता हैं।[१]

(२) भीम सेन

भीमसेन मध्य प्रदेश के बस्तर जिले के आदिवासियो के देवता है। महाभारत के भीम से इनका कोई सम्बन्ध नहीं है। इनकी पूजा एक अनगढ़ पत्थर के रूप में की जाती है। जिसमें पूजा के अवसर पर सिन्दूर लगा दिया जाता है। इनकी पूजा लकड़ी के दो टुकड़ों के प्रतीक रूप में भी सम्पादित की जाती है जो पृथ्वी में तीन चार फीट की ऊँचाई तक गड़े रहते हैं। गोंड लोगों के लोक-देवता भिवासु से इनकी तुलना की जा सकती है।

श्री हिसलप ने भीमसेन की आठ फीट ऊँची मूर्ति का उल्लेख किया है। जिनके एक हाथ में भाला और दूसरे में खंजर विराजमान है। इनकी पूजा करने वाले पुजारी को "भूमक" कहा जाता है। लोग मंगलवार तथा शनिवार को विशेष रूप से इनकी पूजा करते हैं।

भाटिया गोंड अन्नों को खेत में बोने के पहिले इनकी पूजा करते हैं। भुइया जाति के लोगों के ये प्रधान देवता हैं। इनकी पूजा इनके द्वारा लकड़ी के खम्भों के रूप में सम्पादित होती है जिसे "भीम लाट" या "भीम दादा" कहते हैं।

---

१. इनके विशेष वर्णन के लिए देखिए :—
(क) गेटिस—गणेश—दि एलिफेण्ट गाड
(ख) सम्पूर्णानन्द—गणेश।

उत्तर प्रदेश तथा बिहार में ज्येष्ठ मास में भीमसेनी एकादशी का व्रत किया जाता है। जो लोग साल भर तक एकादशी का व्रत नहीं कर सकते वे केवल इसी एकादशी का व्रत करके समस्त फल को प्राप्त कर सकते हैं।

(४) भीष्म

यह देवता महाभारत के प्रसिद्ध भीष्म पितामह हैं जिन्होंने अपने पिता की प्रसन्नता के लिए आजीवन ब्रह्मचारी रहने की प्रतिज्ञा की थी। इनकी यही प्रतिज्ञा 'भीष्म प्रतिज्ञा' के नाम से प्रसिद्ध है। चूंकि भीष्म ने आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत का पालन किया। अतः इन्हें कोई पुत्र नहीं पैदा हुआ जो इनकी मृत्यु के पश्चात् इन्हें जलांजलि दे सके। अतः माघ मास के शुक्ल पक्ष की अष्टमी तिथि, जो भीष्माष्टमी के नाम से प्रसिद्ध है, के दिन इन्हें जलांजलि अर्पित की जाती है। परन्तु यह परम्परा केवल बंगाल में ही प्रचलित है।

उत्तर प्रदेश, विशेषकर वाराणसी, में कार्तिक मास में गंगा स्नान का बड़ा महत्त्व है। स्त्रियाँ बड़ी श्रद्धा से पूरे मास तक गंगा स्नान करती हैं। कार्तिक मास के शुक्ल पक्ष की एकादशी से लेकर पूर्णिमा तक ये पाँच दिन "भीष्म पंचक" कहलाते हैं। इन दिनों में भीष्म की पूजा करना बड़ा ही पुण्यदायक माना जाता है। काशी में पंचगंगा घाट पर शरशय्या पर लेटे हुए भीष्म की विशाल प्रतिमा मिट्टी से बनाई जाती है तथा स्त्रियाँ इसकी विशेष रूप से पूजा करती हैं। कार्तिक मास से भीष्म का क्या संबंध है यह कहना कठिन है। परन्तु इनकी आराधना का विशेष मास यही है।

(५) द्वार गोसाईं

बिहार के छोटा नागपुर कमिश्नरी मे निवास करने वाली मलेर नामक आदिवासियों के ग्राम देवता के रूप में द्वार गोसाईं प्रतिष्ठित हैं। इनके नाम से ज्ञात होता है कि ये घर के द्वार के स्वामी हैं। जब घर पर कोई आपत्ति आती है तब इनकी पूजा आवश्यक मानी जाती है। घर का मालिक प्रधान द्वार के आगे थोड़ी सी जमीन साफ करके एक वृक्ष विशेष की शाखा की स्थापना वहाँ करता है जो बहुत पवित्र माना जाता है। उस स्थान के पास एक अण्डा रख कर एक पशु (छाग) की बलि दी जाती है और मित्रों को भोज दिया जाता है।[1]

---

१ क्रुक—पा० रि० फो० आफ ना० इ० भाग २

इस विधि-विधान के पश्चात् अण्डा को फोड़ कर वृक्ष की उस टहनी को अन्य फेंक देते हैं। आजकल 'द्वार गोसाईं' को बारह द्वारी के नाम से पुकारते हैं।[1] ऐसा समझा जाता है कि इनके मंदिर में बारह दरवाजा लगे हुए हैं। माघ मास में इनकी पूजा बड़ी श्रद्धा से की जाती है। इस प्रकार इनकी पूजा का इस जाति में समधिक प्रचार है।

(६) भूमिया या खेतपाल

भूमिया को 'खेतपाल' भी कहा जाता है जिसका अर्थ होता है भूमि का स्वामी। खेतपाल शब्द क्षेत्रपाल का अपभ्रंश रूप है। अवध में भूमिया को "भूमिया रानी" कहा जाता है और यह स्त्री देवता मानी जाती है। जमीन पर मिठाई तथा रोटी रखकर अर्थात् भूमि देवी को अर्पित कर इसकी पूजा की जाती है। पूजा के पश्चात् परिवार के सदस्य इस प्रसाद को ग्रहण करते हैं। इस पूजा का उद्देश्य खेती से अधिक पैदावार होने से समझा जाता है।

खेती कट जाने के बाद पुत्र-जन्म तथा विवाह के अवसर पर भूमिया की पूजा की जाती है तथा ब्राह्मणों को भोज दिया जाता है। माताएँ अपने बच्चों को रविवार के दिन पूजा के लिए इस मंदिर में ले जाती हैं जहाँ नयी ब्यायी गाय या भैंस का पहली बार दुहा गया दूध इन्हें चढ़ाया जाता है।[2] इस देवी के सम्मान में साँड़ों को स्वतन्त्र विचरण के लिए छोड़ दिया जाता है जो 'भूमिया साँड़' के नाम से प्रसिद्ध हैं। इनकी तुलना इंग्लैण्ड के पेरिश बुल (Parish Bull) से की जा सकती है।

पर्वतीय क्षेत्रों में भूमिया को परोपकारी अथवा मंगलकारक देवता के रूप में माना जाता है। वहाँ भी यह भूमि अथवा खेतों का स्वामी स्वीकार किया गया है। खेतों मे जब बीज बो दिया जाता है तब खेत के पास स्थित किसी पत्थर पर अन्न के दाने चढ़ा दिये जाते हैं। लोगों का यह विश्वास है कि ऐसा करने से अन्न का उपज प्रभूत मात्रा में होती है तथा उपल-वर्षा और जानवरों से खेत की रक्षा होती है।

भूमिया देवता गाँव का स्वामी माना जाता है। अतः गाँव के समस्त निवासियों की वह रक्षा करता है। वह दुष्टों का दमन तथा सज्जनों को पुरस्कृत करता है। पुत्र-जन्म तथा विवाह आदि अवसरों पर जो मिष्ठान्न

---

१. क्रुक—पा० रि० फो० आफ ना० इ०, भाग २

२. इबाटसन--पंजाब एथनो ग्राफी, पृ० ११४

तथा पक्वान्न बनाया जाता है उन्हे वह सहर्ष ग्रहण करता है। अन्य देवी-देवताओं की भाँति यह बलि ग्रहण की कामना नहीं करता।

पंजाब के कुछ भागों में 'खेर देवता' अथवा 'चानबन्द' की समता इस भूमिया से की जा सकती है। बुन्देल खण्ड मे खेतपाल नामक देवता की पूजा की जाती है जो जानवरों का रक्षक माना जाता है। कुछ स्थानों मे "भूमिश्वर महादेव" तथा उनकी पत्नी "भूमीश्वरी देवी" की पूजा की जाती है जो भूमिया का ही दूसरा रूप समझना चाहिए। इस प्रकार भूमिया की पूजा अनेक प्रान्तों (राज्यों) में फैली हुई है।

(६) भैरव

भैरव शब्द का अर्थ भयंकर होता है। अतः इनके नाम से ही इनके काम का कुछ अनुमान किया जा सकता है। शिव के मंदिरों में प्रायः रक्षा के लिए इनकी मूर्ति प्रतिष्ठित पाई जाती है। परन्तु स्वतंत्र रूप से इनके मंदिरों की स्थिति प्राप्त होती है।

भैरव प्रधानतया नगर रक्षक के रूप में माने जाते हैं। इनका एक स्वरूप काल भैरव के नाम से प्रसिद्ध है। वाराणसी में विश्वेश्वरगंज मुहल्ले के पास काल भैरव का सुप्रसिद्ध मंदिर है। ये नगर के 'कोतवाल' माने जाते है। लोगों की यह धारणा है कि ये समस्त नगर की रक्षा करते है। अतः वाराणसी में आने वाला यात्री अपनी रक्षा के लिए इनका दर्शन करना आवश्यक मानता है। अनेक भक्त गण मंदिर में दर्शन कर प्रसाद रूप में एक काले सूत की माला धारण करते हैं जिसे 'गंडा' कहा जाता है। पण्डा लोग मोर पंख की झाड़ू से भक्तों की पीठ को ठोकते हैं तथा उन्हें नीरोग एवं स्वस्थ रहने का आशीर्वाद देते हैं। माताएँ अपने छोटे बच्चों को स्वास्थ्य-रक्षा के लिए 'गण्डा' जरूर पहिनाती हैं और पण्डा के 'डण्डा' से आशीष प्राप्त करती हैं। अतः वाराणसी में भैरव का 'गण्डा' तथा 'डण्डा' दोनों प्रसिद्ध है।

भैरव की आकृति इनके नाम के अनुरूप भयानक नहीं होती है। साधारणतया इनके दो हाथ होते हैं जिसमें एक हाथ में दुष्टों को दमन करने के लिए वे दण्ड धारण करते हैं। इसीलिए इनका एक स्वरूप "दण्डपाणि" भैरव के नाम से प्रसिद्ध है।

भैरव का वाहन कुत्ता है। अतः इनके मंदिर के प्रधान द्वार पर कुत्ते की पाषाण प्रतिमा स्थापित की गई रहती है। परन्तु काशी के काल-भैरव मंदिर

में जीवित कुत्ते का दर्शन साक्षात् रूप में होता है जो गर्भगृह के बाहर बरामदे के एक कोने में बैठा रहता है। भक्तगण इस कुत्ते को भैरव का वाहन मानकर इसे पूड़ी और जलेबी खिलाते हैं। इस मंदिर में हरिजनों का प्रवेश निषिद्ध था।

भैरव के अनेक स्वरूप हैं। केवल काशी में ही लाट-भैरव, काल-भैरव, बटुक-भैरव और नन्द-भैरव आदि के मंदिर स्थापित हैं। इन सभी भैरवों की अपनी निजी विशेषतायें हैं। क्रुक ने भैरव की अठारह भुजाओं का उल्लेख किया है जिनमें मुण्डमाला लटकती रहती है। महाराष्ट्र में इनको 'भैरोबा' कहा जाता है। इनकी प्रतिकृति (मूर्ति) खड़े पुरुष के रूप में प्राप्त होती है जिसके एक हाथ में त्रिशूल तथा दूसरे में डमरू विराजमान है एवं सर्प से शरीर आवेष्टित है। इस रूप में वहाँ ये काल-भैरव के प्रतिनिधि के रूप में समझे जाते हैं।

(८) दुलहा देव

दुलहा देव द्रविड़ जाति के देवता हैं जिनका प्रधान कार्य विवाह करने के लिए जाने वाले वर अथवा दुलहा की रक्षा करना है। परन्तु आजकल ये द्रविड़ जाति के लोगों के गृह रक्षक अथवा गृह स्वामी देवता के रूप में प्रतिष्ठित हैं।

फाल्गुन मास के अन्तिम दिन विवाह के अवसर पर बकरा का बलिदान करके इनकी पूजा की जाती है। इन्हें पुष्प तथा फल भी अर्पित किया जाता है। गोंड जाति के लोग इन्हें अत्यन्त आदर की दृष्टि से देखते हैं तथा देवताओं में इन्हें प्रथम स्थान प्रदान करते है। भूतपूर्व रीवाँ तथा सरगुजा रियासतों में इनकी पूजा युद्ध का अस्त्र फरसा के रूप में की जाती है। मिर्जापुर जिले में ये विवाह के देवता के रूप में पूजित हैं। विवाह के अवसर पर इनको तेल और हल्दी (Turmeric) अर्पित की जाती है।

ये घसिया (Ghasiyas) लोगों के जातीय देवता माने जाते हैं जो अपने रसोई घर में शराब अर्पित कर इनका सम्मान करते हैं। इनको प्रसन्न करने के लिए जो गीत गाये जाते हैं उनमें उन सुस्वादु पदार्थों का उल्लेख पाया जाता है जो गृह-पत्नी इनके लिए तैयार करती है। खरवार लोगों में भी इनकी पूजा प्रचलित है। विवाह के बाद वर-वधू के घर आने पर रसोईघर में बकरा की बलि चढ़ा कर इनकी पूजा की जाती है।

(९) घनसाम देव

ये प्रधानतया द्रविड़ जाति के देवता हैं जिनका प्रभाव तथा प्रचार कैमूर एवं विन्ध्या की पहाड़ियों में भी पाया जाता है। गोंड जाति के लोग इन्हे अपना प्रमुख देवता मानते हैं। मिर्जापुर के पहाड़ी इलाकों में इसका मंदिर गाँव से सौ गज की दूरी पर बना होता है। इसके भीतर तथा बाहर मिट्टी का प्लेटफार्म बना रहता है जहाँ पर यह देवता बैठता है। इनकी पूजा मे पानी से भरा कलश तथा हाथी और घोड़े की मिट्टी की बनी मूर्तियाँ अर्पित की जाती हैं जो इसका वाहन हैं। परन्तु मध्यप्रदेश में इस देवता का प्रतीक बाँस माना जाता है जिसके आखिरी सिरे पर लाल या पीला झण्डा बाँधा गया होता है। बाँस के पास दो-चार अनगढ़े पत्थर के टुकड़े रखे रहते हैं जो सिन्दूर से रँगे रहते हैं। घनसाम देव का यही साधारण मंदिर माना जाता है।

(१०) मातृपूजा

भारत में मातृ पूजा की परम्परा बड़े प्राचीन काल से चली आ रही है। वेदों में इसका उल्लेख पाया जाता है। जहाँ अदिति और प्रकृति का वर्णन उपलब्ध होता है। पौराणिक काल में भी मातृपूजा की परम्परा अक्षुण्ण रीति से चली आती हुई पाई जाती है। जैसे गंगा माता, धातृ अथवा धरती माता। इनकी पूजा बड़ी श्रद्धा तथा भक्ति से की जाती है।

इन मातृकाओं की संख्या के संबंध में विभिन्न उल्लेख पाये जाते हैं। कही सात माताओं (सप्त मातृका) का वर्णन मिलता है तो कहीं आठ या नौ माताओं (अष्ट या नौ मातृका:) का। इनका नाम निम्नलिखित है—

सप्तमातृका:—(१) ब्रह्माणी (२) माहेश्वरी (३) कौमारी (४) वैष्णवी (५) वाराही (६) इन्द्राणी और माहेन्द्री। इसी प्रकार नव माताओं के नाम हैं—(१) ब्रह्माणी (२) वैष्णवी (३) रौद्री (४) वाराही (५) नारसिंहिका (६) कौमारी (७) माहेन्द्री (८) चामुण्डा और (९) चन्द्रिका। परन्तु कहीं-कहीं सोलह माताओं का भी उल्लेख मिलता है। प्रसिद्धि की दृष्टि से उपर्युक्त मे ही नव मातायें प्रधान हैं।

साधारण जनता में कुछ ऐसी भी माताओं की पूजा की जाती है जो जंगल में निवास करती हैं तथा जो रोगों की अधिष्ठातृ देवी अथवा देवता है जैसे शीतला माता। प्रस्तुत प्रसंग में ऐसे ही अन्तिम कोटि में आने वाली लोक-माताओं का वर्णन किया जाता है।

गुजरात में मातृपूजा—गुजरात राज्य में आज मातृ-पूजा का प्रचुर प्रचार पाया जाता है। सर मोनियर विलियम्स के अनुसार एक सौ चालीस माताओं की पूजा की जाती है। परन्तु ये सभी स्थानीय देवियाँ हैं। इन माताओं की आकृति या स्वरूप विभिन्न रूपों में पाया जाता है। इनमें से कुछ का मंदिर उपलब्ध होता है परन्तु कुछ का प्रतिनिधित्व अनगढ़ पत्थर की मूर्तियाँ करती है। प्रत्येक माता का कार्य पृथक्-पृथक् है। उदाहरण के लिए खोड़ियार (Khodiar) दूसरों को आपत्ति में डाल देती हैं। दूसरी माता अन्ताई खाँसी पैदा करती है और तीसरी बेराई विशूचिका (हैजा) को रोकती है। इनमें से आसपुरा माता समस्त लोगों की आशाओं की पूर्ति करती है। इसीलिए इनका ऐसा नाम पाया जाता है।

परन्तु गुजरात की सबसे प्रसिद्ध माता 'अम्बा भवानी' हैं। नवरात्र की अष्टमी को इनकी पूजा का विधान किया जाता है। इस माता को शराब तथा पशु की बलि अर्पित की जाती है। इनकी आकृति मनुष्य के समान होती है जो काले पत्थर को भोंड़े तरीके से काट कर बनाई जाती है।

उत्तर प्रदेश में मातृपूजा—कुछ मातायें ऐसी हैं जो जंगल की अधिष्ठातृ देवी मानी जाती हैं। बंगाल के नदिया स्थान में "पोरू माई" की पूजा होती है। इनकी प्रतिमा अनगढ़ काले पत्थर से बनी होती है जिसमें सिन्दूर लगाया जाता है। यह मध्य जंगल में निवास करती है।

उत्तर प्रदेश में यह "बनसपति माई" के नाम से प्रसिद्ध है जिसका अर्थ जंगल की अधिष्ठातृ देवी है। इस प्रदेश के पश्चिमी जिलों में यह 'आस-रोरी' के नाम से जानी जाती है क्योंकि इनके मन्दिर के चारों ओर रोरी-पत्थर के छोटे-छोटे टुकड़े-बिखरे पड़े रहते हैं। भक्तों की यह आशा लगी रहती है कि ये हमारी रक्षा करेंगी।

आसरोरी ग्वालों तथा जंगल में निवास करने वाले अन्य व्यक्तियों की ये महती देवता मानी जाती है। इनकी पूजा में मुर्गी, बकरा, सूअर आदि की बलि चढ़ाई जाती है। परन्तु यह पूजा जंगल के निवासियों तथा उनके पशुओं की रक्षा की मनौती पूरी होने पर ही की जाती है। इसके समान ही मिर्जापुर में घटौत (Ghatuat) देवता होता है जो भयंकर दर्रा अथवा घाट का स्वामी माना जाता है। यह पर्वतों की कठिनाइयों तथा भयंकरताओं से मनुष्यों की रक्षा करता है।

---

१. क्रुक—पा० रि०, भाग १–२

(२) परिच्छेद

रोगों के देवी और देवता

प्राचीन काल में असभ्य तथा अर्ध सभ्य लोगों में यह धारणा प्रचलित थी कि मनुष्यों में बीमारी का होना किसी भूत-दूत के प्रकोप का फल है। यह विश्वास आज विदेशों में भी प्रचलित है।

भारत में राजस्थान के निवासियों का यह विश्वास है कि बीमारी के होने का कारण 'खोर' नामक शैतान (spirit) है जो किसी सम्बन्धी की अपमानित आत्मा है। अतः किसी व्यक्ति की बीमारी में खोर को प्रसन्न करने के लिए कोई ओझा या 'सयाना' बुलाया जाता है जो मिष्ठान्न समर्पित कर इसे अपने अनुकूल बनाता है। अहमद नगर के कोली लोगों की भी यही मान्यता है।

मिर्जापुर जिले के कोरवा (korwas) लोगों का यह दृढ़ विश्वास है कि समस्त रोगों का कारण 'देवहार' अर्थात् ग्राम-देवता की अप्रसन्नता है। ये देवता अपनी सम्यक् पूजा के अभाव में क्रोधित होकर रोगों को पैदा कर देते हैं। जिनमें ज्वर, दस्त तथा खाँसी प्रधान है। मनुष्यों की बात तो दूर रही, गाँवों में यदि जानवरों में भी कोई रोग पाया जाता है तो उसका कारण भी किसी देवी-देवता को क्रोध या अप्रसन्नता ही मानी जाती है। इसलिए ग्रामीण जनता पुरुष, स्त्री, बच्चे तथा जानवरों के भी बीमार पड़ने पर इसमें किसी देवता का हाथ (या कारण) समझ कर उसके पूजा-पाठ में बड़ी सतर्क हो जाती है।

(१) शीतला माता

रोगों के इन देवी तथा देवताओं में शीतला माता सबसे अधिक प्रसिद्ध तथा लोकप्रिय हैं। यह चेचक की अधिष्ठातृ देवी मानी जाती हैं। जब कोई बालक चेचक से पीड़ित हो जाता है तब ऐसा समझा जाता है कि शीतला माता का इस पर प्रकोप हो गया है। अतः मातायें अपने बच्चों को इस देवी के प्रकोप से बचाने का प्रयास करती हैं।

शीतला माता की पूजा—माली शीतला माता का सेवक तथा पुजारी माना जाता है। अतः बालक जब चेचक रोग से पीड़ित होता है। तब माली को बुलाकर "माता की पूजा" के लिए प्रार्थना की जाती है। चूंकि शीतला

का निवास नीम के पेड़ पर माना जाता है। अतः माली नीम की एक टहनी लगाकर उस बालक को इससे पंखा झलता है तथा इसकी पत्तियों को उसकी शय्या पर बिछा देता है। ऐसा समझा जाता है कि नीम की पत्तियों पर सोने तथा इसकी हवा लगने से यह रोग शान्त होता है।

मालिन इस कार्य के लिए अत्यन्त निपुण मानी जाती है। वह रोगी के घर में झाड़ू लगाती है और गोबर से उस घर को लीपकर, धूप-दीप चढ़ाकर फूल आदि से देवी की पूजा करती है। मालिन की पूजा से शीतला का प्रकोप धीरे-धीरे कम होने लगता है और कुछ दिनों में वह बालक स्वस्थ तथा चंगा हो जाता है।

शीतला माता के गीत—बालक जब चेचक रोग से पीड़ित रहता है तब इस देवी को प्रसन्न करने के लिए स्त्रियाँ उनकी स्तुति में गीत गाती हैं। शीतला का निवासस्थान नीम के वृक्ष पर माना जाता है अतः इन गीतों मे इस वृक्ष पर झूला लगाकर झूलती हुई वर्णित की गई हैं। चूँकि मालिन उनकी पुजारिन है। अतः उससे वे पीने का पानी माँगती है। यह गीत कितना सुन्दर तथा रमणीय है।

> "निमिया के डाढ़ी मइया लावेली हिलोरवा,
> कि झुलि-झुलि ना, मइया गावेली गीत।
> झुलत-झुलत मइया का लगली पियसिया,
> कि चलि भइली ना, मलहोरिया आवास॥
> सूतलु बाड़ू कि जागलि ए मालिनि,
> उठि के मोंहि के पनिया पिआऊ॥"

जब बालक इस रोग से अत्यन्त ग्रस्त हो जाता है और पीड़ा का अनुभव करने लगता है तब उसकी माता अपना आँचल फैलाकर शीतला माता से बालक की जीवन-भिक्षा देने का प्रार्थना करती है अर्थात् उसको रोग-मुक्त कर देने की भीख माँगती है।

> "आँचारा पसारि भीख माँगेली बालाकावा के माई।
> आरे मइया,
> हमरा के बालाकवा भीखि दी।
> मोर मन राखनि मइया,
> हमरा के बालाकावा भीखि दी।"

इस प्रकार शीतला माता को प्रसन्न करने के लिए उनकी स्तुति में अनेक लोक-गीत गाये जाते हैं।

शीतला के मन्दिर—शीतला माता का कोई औपचारिक मंदिर नहीं पाया जाता। परन्तु काशी में शीतला जी का मंदिर अवश्य उपलब्ध होता है जहाँ भक्तों की भीड़ शीतलाष्टमी के दिन हुआ करती है। वाराणसी के दशाश्वमेध घाट पर भी शीतला का एक छोटा-सा मंदिर है जहाँ इनकी एक छोटी-सी सुवर्ण प्रतिमा स्थापित है। इनका वाहन गदहा माना जाता है। इसकी भी एक छोटी प्रतिकृति यहाँ पायी जाती है।

हरिद्वार के पास कनखल नामक नगर में तथा देहरादून के पास रायवाला नामक स्थान में इनका मंदिर पाया जाता है। परन्तु गाँवों में कुछ अनगढ़ पत्थर ही इनकी प्रतिमा के प्रतीक माने जाते हैं। कुछ स्त्रियाँ सोने अथवा चाँदी की शीतला की प्रतिमा बना कर अपने गले में पहिनती हैं और विशेष अवसरों पर इनकी पूजा करती हैं।

बंगाल में शीतला के स्थान पर "षष्ठी माता" की पूजा की जाती है जो बालकों की रक्षा करने वाली देवता के रूप में पूजित हैं। इस प्रान्त में भी बालक के ज्वर-ग्रस्त तथा चेचक रोग से पीड़ित होने पर मालिन पूजा करती है। इस प्रकार शीतला माता चेचक रोग की अधिष्ठातृ देवता हैं और इनकी ही पूजा करने तथा स्तुति में गीत गाने पर रोगी का रोग दूर हो जाता है।

(२) मातङ्गी देवी

यह भी शीतला के समान ही रोगों की अधिष्ठातृ देवी मानी जाती हैं। ये अपने आठ रूपों (Forms) में प्रसिद्ध हैं—(१) रौका देवी (२) घरौका देवी (३) मेला देवी (४) मण्डला देवी (५) शीतला देवी (६) दुर्गा देवी (७) संकरा देवी आदि। इन नामों के परीक्षण करने से पता चलता है कि इनमें से कुछ पौराणिक देवियाँ हैं तथा कुछ स्थानीय देवताओं के रूप में प्रसिद्ध हैं।

मातङ्गी का स्वरूप—मातंगी नाम से ही पता चलता है इनका स्वरूप कुछ-कुछ मातंग (हाथी) के अनुकूल होगा। इनके कान सूप के समान बड़े तथा चौड़े, दाँत बाहर निकले हुए, खुला हुआ मुँह तथा भयंकर आकृति के होने का विश्वास किया जाता है। शीतला के समान ही इनका भी वाहन गदहा है। यह देवी अपने एक हाथ में झाड़ू तथा दूसरे में सूप लिये रहती है। यह देवी भी शीतला की भाँति बच्चों के रोगों को दूर करने वाली मानी जाती है।

(३) मसानी देवी

यह देवी श्मशान में निवास करती हैं। अतएव लोग इससे बहुत ही अधिक डरते हैं। दुष्ट तथा प्रतिशोध की इच्छा रखने वाली स्त्रियाँ, श्मशान की राख को लेकर अपने शत्रु के बालकों के ऊपर छिड़क देती हैं जिससे वे रोग से पीड़ित हो जाते हैं और धीरे-धीरे उनके शरीर का क्षय होने लगता है। इस प्रकार मसानी देवी बडी ही भयंकर मानी जाती हैं।

(४) ज्वर हरीश्वर

वाराणसी में मलेरिया ज्वर के एक अधिष्ठातृ देव प्रसिद्ध हैं जिसका नाम "ज्वर हरीश्वर" है। जैसा कि इनके नाम से पता चलता है कि ज्वर (मलेरिया) को हरने वाले देवता हैं। इनकी पूजा दूध और भाँग चढ़ा कर की जाती है। इन्हें मिष्ठान्न भी अर्पित किया जाता है। चाइबासा जिले के कोल जाति के लोगों में 'बंगर' नामक ज्वर का देवता विख्यात है।

बंगाल में घेन्टु (Ghentu) नामक एक देवता की विशेष पूजा की जाती है जो खुजली (Itch) के देवता माने जाते हैं। इनकी पूजा का स्थान 'गोहरौरा' (उपलों का समूह) है। इस देवता का प्रतीक एक फूटी हुई मिट्टी की हाँड़ी, जिसका निचला भाग रसोई बनाने से काला हो गया हो, मानी जाती है। इस हाँड़ी के निचले भाग को चूने से पोत देते हैं तथा उसमें सिन्दूर से अनेक रेखाएँ बना देते हैं। इसके साथ ही घेण्टु पौधे की कुछ टहनियाँ और नारियल का झाड़ू रख देते हैं। यह सब सामग्री इस देवता का प्रतीक समझी जाती है। घर की मालकिन पुजारिन के कार्य का सम्पादन करती है। वह कुछ गीत गाती हैं। इसके पश्चात् उस बर्तन को फोड़ दिया जाता है जिसके टूटे हुए टुकड़ों को लेकर छोटे बच्चे खुजली देवी की स्तुति में गीत गाते फिरते हैं।

(५) अच्छेरी या अछेरी

पर्वतीय प्रदेश में अछेरी नामक देवी प्रसिद्ध हैं जो रोगों की अधिष्ठातृ देवता है। जो लोग लाल वस्त्र धारण करते हैं वे इस देवी के प्रिय पात्र होते है। इस देवी के नाम पर अथवा इसकी मनौती मानते हुए लोग अपने गले मे जुकाम (Cold) और खाँसी (goitre) से मुक्ति पाने के लिए लाल सूत बाँधते हैं। यह एक प्रकार का ताबीज माना जाता है। इसके बाँधने से लोगों का विश्वास है कि सर्दी और खाँसी का रोग दूर हो जाता है।

(६) घण्ट करन

यह पर्वतीय देश का दूसरा देवता है जो रोगों, विशेषकर छूत रोग, का अधिष्ठाता माना जाता है। इस नाम से पता चलता है कि इस देवता के कान घण्टा की तरह लम्बे होंगे। जल से भरे कलश के रूप में इसकी पूजा होती है जो अनेक छूत के रोगों को दूर करने की क्षमता रखती है। यह अनेक मंदिरो मे द्वारपाल का काम करता है।[1] काशी में भी 'कर्ण घण्टा' नामक एक मुहल्ला है जहाँ इस देवता का मंदिर पाया जाता है।

(७) मर्ही भवानी

रोगों का निवारण करने वाली देवियों में मर्ही भवानी का नाम बडा प्रसिद्ध तथा लोक प्रसिद्ध है। यह विशूचिका अथवा हैजा रोग की अधिष्ठातृ देवी मानी जाती हैं। हैजा रोग को फैलाना अथवा उसका नियंत्रण करना इनके बायें हाथ का खेल है। अवध में इनकी प्रचण्ड शक्ति के संबंध में अनेक किम्बदन्तियाँ प्रसिद्ध हैं।

(८) हरदौल

रोगों के समस्त देवी और देवताओं की श्रेणी में केवल हरदौल या हरदौल लाल ही ऐसे देवता हैं जो विशुद्ध ऐतिहासिक पुरुष हैं। ये अपने जीवन काल में ऐतिहासिक व्यक्ति के रूप में प्रसिद्ध थे और मृत्यु के पश्चात् देवता के रूप में परिणत हो गये।

हरदौल की ऐतिहासिकता—हरदौल बुन्देलखण्ड की ओरछा रियासत के राजा वीरसिंह देव के द्वितीय पुत्र थे। इनकी मृत्यु के पश्चात् इनके भाई जुझार सिंह गद्दी पर बैठे। दरबारियों के कुचक्र के कारण इन्हें अपने छोटे भाई हरदौल पर अपनी पत्नी से प्रणय सम्बन्ध की झूठी आशंका हो गई। उन्होंने अपनी स्त्री से हरदौल को भोजन विष देकर मार डालने का आदेश दिया स्त्री ने अपने देवर हरदौल के निर्दोष होने के विषय में उन्हें बहुत समझाया परन्तु उन्होंने नहीं माना और हरदौल को भोजन में विष देकर धोखे से उनकी हत्या कर दी गई। यह घटना सन् १६२७ ई० में घटित हुई।

हरदौल की मृत्यु के पश्चात् उनके चमत्कार के सम्बन्ध में अनेक किम्बदन्तियाँ बुन्देलखण्ड में प्रचलित हो गई जिनमें उनके निधन के बाद उनके भूत

---

१ एट किंसन हिमालयन गजेटियर भाग २ पृ० ८३२

(Gbsot) के द्वारा अपनी बहिन के विवाह में समस्त प्रबन्ध करना भी सम्मिलित है। हरदौल ने मर कर भी अपनी बहिन की इच्छा की पूर्ति की।

हरदौल का मन्दिर गाँव के बाहर बनाया जाता है और इसे लाल झण्डो से सजाते हैं। इनकी पूजा विशेष रूप से विवाह के अवसर पर की जाती है। है। वैसाख के महीने में प्रधानतया नीच जाति की स्त्रियाँ इनके मन्दिर में जाकर पूजा करके प्रसाद ग्रहण करती हैं। बारात आने के एक दिन पहिले घर की स्त्रियाँ हरदौल की पूजा करती हैं तथा उन्हें विवाह के अवसर पर आने का निमन्त्रण देती हैं। यदि अंधड़ या तूफान के लक्षण दिखाई पड़ते हें तब निम्न गीत गाकर उन्हें प्रसन्न करने का प्रयास किया जाता है।

"गाँवन में चौतरा,
लाल देसन नाम।
बुन्देल देस के रइया, राउके,
तुम्हारी जय राखे भगवान्॥"

जैसा कि लिखा जा चुका है हरदौल का मन्दिर गाँव से प्रायः बाहर होता है। इनकी प्रतिमा घोडे पर सवार के रूप में प्रतिष्ठित पाई जाती है। बुन्देल खण्ड के प्रत्येक गाँव में हरदौल की प्रतिमा किसी-न-किसी रूप में पाई जाती है। जहाँ इनका कोई औपचारिक मन्दिर नहीं है, वहाँ किसी प्लेटफार्म पर लकड़ी की खूँटियाँ गाड़कर इनकी पूजा की जाती है।[1]

हैजा के देवता के रूप में—बुन्देलखण्ड में हरदौल विवाह के देवता माने जाते हैं परन्तु यमुना के उत्तरी भाग में ये हैजा रोग के देवता के रूप में ही अधिक विख्यात हैं। एक एक बार पिण्डारी युद्ध के अवसर पर बड़े जोरो से हैजा का होशंगाबाद (मध्य प्रदेश) में प्रकोप हुआ था। लोगों का यह विश्वास था कि यह हरदौल के प्रकोप के कारण ही हुआ है। तब (१८२८ ई०) से वहाँ के गाँव के मुखियाओं को यह आदेश दिया गया कि वे प्रत्येक गाँव में हरदौल का चबूतरा बनाकर उनकी पूजा का प्रबन्ध करें।

जहाँ हरदौल की पूजा का अभाव होता है अथवा उनका अनादर किया जाता है वहाँ हैजा का फैलना अवश्यम्भावी है। लोक में हैजा को दूर भगाने अथवा एक गाँव से दूसरे गाँव को 'प्रेषित' करने के अनेक उपाय प्रचलित हैं।

---

१ क्रूक पा० रि०

जिस गाँव में यह संक्रामक बीमारी फैलती है वहाँ के लोग किसी बकरे को बलि-पशु (scapegoat) बनाकर उसे माला-फूल पहिनाकर, तथा उसकी पूजा अर्चा करके दूसरे गाँव की सीमा में ले जाकर छोड़ देते है। ऐसा माना जाता है कि इस पशु के दूसरे गाँव में चले जाने पर हैजा की बीमारी भी उसके साथ ही चली जाती है। यह विधि-विधान कभी-कभी बड़ा ही संकट पूर्ण तथा खतरनाक सिद्ध होता है। और इस कारण दो गाँवों में दंगा भी हो जाता है।

(९) चटपटी माता

यह किसी विशेष रोग की देवता नहीं हैं। बल्कि किसी व्यक्ति की मनोकामना की पूर्ति शीघ्र-चटपट-ही कर देती हैं। इसीलिए इनका नाम 'चटपटी माता' पड़ गया है। काशी में इनका मन्दिर भेलूपुर के पास स्थित रवीन्द्रपुरी (न्यू कालोनी) मुहल्ले में स्थित पार्क के पश्चिम ओर बना हुआ है। यहाँ एक बुढ़िया पुजारिन बैठी रहती है जो भक्तों को फूल, माला देकर अपनी उदर-दरी की पूर्ति करती है।

(१०) गलसूआ माता

जब किसी बालक के गालों में किसी प्रकार से सूजन उत्पन्न हो जाती है तो उसे 'गलसुआ' का प्रकोप माना जाता है। अतः उनको प्रसन्न करने के लिए उस घर की बूढ़ी स्त्री आँगन में गोबर से चौका लगा कर गुड़ तथा कच्चा भिगोये हुए चना से उनकी पूजा करती है। पूजा के पश्चात् यह पदार्थ प्रसाद के रूप में घर के लोगों में वितरित कर दिया जाता है जिसे सिरनी बाँटना' कहा जाता है।

(११) पिलेग मइया

गाँवों में जब प्लेग की बीमारी फैलती है तब इसे 'पिलेग मइया' का प्रकाप माना जाता है। उपर्युक्त विधि से इनकी भी पूजा करके इन्हें शान्त करने का प्रयास किया जाता है।

(१२) खोंखी मइया

इसी प्रकार से जब कोई बालक कुकुर खाँसी (हूपिंग कफ) से पीडित होता है तब इसका कारण "खोंखी मइया" समझी जाती हैं जो खाँसी की

देवता हैं। इनका भी मंदिर नहीं पाया जाता है। इनकी पूजा करते समय मिट्टी का एक टुकड़ा इनका प्रतिनिधित्व करता है। कहने की आवश्यकता नहीं कि ये सभी देवी और देवता अपेक्षाकृत नये हैं और हिन्दू देव मण्डल (पैन्थियान) में क्रमशः प्रवेश प्राप्त करते जा रहे हैं।

(१३) ढेलहवा बाबा

यह एक साधारण देवता है जो राह चलने वाले पथिकों की रक्षा करता है। इस देवता का कोई मंदिर नहीं होता। राह में चलते हुए राही मिट्टी का ढेला-टुकड़ा-उठाकर किसी वृक्ष के पास फेंक देते है। इस प्रकार इस स्थान पर मिट्टी के ढेलों का समूह एकत्रित हो जाता है जो पर्वत के आकार का दिखाई पड़ने लगता है। ढेलों का यही समूह 'ढेलहवा बाबा' के नाम से प्रसिद्ध है।

प्रत्येक यात्री जो इस मार्ग से जाता है—वह इस बाबा को एक ढेला अर्थात् मिट्टी का टुकड़ा अर्पित करना अपना कर्त्तव्य समझता है। फलस्वरूप यह देवता उनकी रक्षा करता है। उत्तर प्रदेश के बलिया जिले में सुदिष्टपुरी गाँव के पास यह देवता विराजमान है।

(१४) डीह अथवा डिहवार

गाँवों में अनेक ऊँचे टीले दिखाई पड़ते हैं जो किसी पुराने घरों के जीर्ण-शीर्ण ध्वंसावशेष होते है। उन ऊँचे मिट्टी के टीलों को गाँवों में 'डीह' कहा जाता है। लोगों का ऐसा विश्वास है कि उन डीहों पर देवता का निवास होता है जिसे उस विशिष्ट स्थान (डीह) पर निवास करने के कारण 'डिहवार' कहा जाता है।

प्रायः निम्न जाति के लोग ऐसे डीह अथवा डिहवार की पूजा किया करते हैं। दुसाध नामक जाति के लोग इसी देवता की आराधना करके अपने रोगों को शान्त करते तथा व्याधियों का नाश करते हैं। इनके गीतों, जो 'पचरा' के नाम से प्रसिद्ध है, में इस देवता की स्तुति पाई जाती है। संभवतः डोम और चमार लोग भी इनकी पूजा करते हैं।

(१५) राहु पूजा

डोम और दुसाध जाति के लोग राहु को अपना देवता मानते हैं तथा इनकी पूजा करते हैं इस पूजा को अग्नि-पूजा भी कहा जा सकता है जिसमें

प्रधान कार्य भक्तों के द्वारा आग पर चलना है। यह प्रथा विदेशों में भी पाई जाती है जिसे 'फायर वाकिङ्ग" कहा जाता है।

ये लोग किसी स्थान पर विशेषकर नीची भूमि में आग का जलता हुआ अंगार फैला देते हैं। फिर जल से अपने पैरों को धोकर वे इस धधकते हुए अंगारों पर नंगे पाँव चलते हैं। परन्तु आश्चर्य यह है कि उनके पाँव बिल्कुल भी नहीं जलते। लोगों की ऐसी धारणा है यह राहु देवता की कृपा है जिससे किसी को कोई क्षति नहीं प्राप्त होती। विहार की नीच जातियों में राहु-पूजा का प्रचुर प्रचार है।

भारत से अत्यन्त दूर मारिशस देश में भी यह पूजा प्रचलित है जो 'सतराहु पूजा' के नाम से जानी जाती है।

(१६) सती-पूजा

जो स्त्री शत्रु के आक्रमण के अवसर पर अथवा किसी आततायी से अपने सतीत्व की रक्षा के लिए जौहर व्रत का पालन करती है अथवा जल समाधि लेकर अपने प्राणों का उत्सर्ग कर देती है उसे सती की संज्ञा दी जाती है। ऐसी स्त्री अपने आदर्श चरित्र तथा सतीत्व के कारण पूजनीय समझी जाती है। राजस्थान के इतिहास में ऐसे सैकड़ों उदाहरण भरे पड़े हुए हैं। पद्मिनी का जौहर तो इतिहास में सर्वत्र प्रसिद्ध है।

ऐसी आदर्श चरित्र वाली स्त्रियों की स्मृति की रक्षा के लिए अनेक मंदिर बने हुए हैं जिन्हें 'सतीबुर्ज' कहा जाता है। इन बुर्जों में कहीं तो सतियों की प्रतिमा स्थापित की गई है और कहीं उनके किसी प्रतीक की स्थापना पाई जाती है। राजस्थान मे इन सती बुर्जों की संख्या प्रचुर परिमाण में उपलब्ध होती है।

इन मंदिरों मे आकर भक्त लोग इन सतियों की पूजा करते हैं और अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करते हैं। सतियों के प्रति सम्मान तथा पूजा की यह भावना केवल राजस्थान में ही नहीं बल्कि अन्य प्रान्तों में भी पाई जाती है। उत्तर प्रदेश के बलिया जिले में "मालो सती", "जालो सती", आदि अनेक सतियों के पूजा स्थान स्थापित है जहाँ मिट्टी की बनी गोल पिण्डी इनका प्रतिनिधित्व करती है। ये स्थान प्राय: गाँव के बाहर किसी वृक्ष, विशेषकर नीम के नीचे पाये जाते हैं।

(४) परिच्छेद

दक्षिण भारत के ग्रामीण देवी और देवताओं की विशेषताएँ

उत्तरी भारत की ही भाँति दक्षिण भारत में अनेक ग्रामीण देवी और देवता उपलब्ध हैं जिनकी पूजा यहाँ की जनता बड़ी श्रद्धा से किया करती है। दक्षिण भारत में चार राज्यों की गणना की जाती है—(१) आन्ध्र प्रदेश (२) तमिलनाडू (३) कर्नाटक तथा (४) केरल। इन राज्यों में जिन लोक देवी-देवताओं की आराधना प्रचलित है उसका संक्षिप्त वर्णन यहाँ किया जाता है।

मद्रास के भूतपूर्व विशप हेनरी ह्वाइट हेड ने "दि विलेज गाड्स आफ साउथ इण्डिया" नामक अपने ग्रन्थ में इन राज्यों में प्रचलित ग्रामीण देवी और देवताओं का बड़ा ही प्रामाणिक तथा विस्तृत वर्णन प्रस्तुत किया है। इन्होंने इन देवताओं की प्रधान तथा सामान्य विशेषताओं का उल्लेख निम्न-लिखित रूप में किया है—

(१) स्त्री देवियों की प्रधानता।

(२) पशुओं की बलि प्रदान कर इनकी पूजा।

(३) पुजारी का ब्राह्मण जाति का सदस्य न होकर निम्न जाति का सदस्य होना।

(४) पौराणिक देवताओं की अपेक्षा इन ग्रामीण देवी और देवताओं की पूजा-पद्धति का विभिन्न रूप में होना तथा नवीन देवताओं की उत्पत्ति।

(१) स्त्री देवी और देवताओं की प्रधानता

दक्षिण भारत में पुरुष देवताओं (Male Gods) की अपेक्षा स्त्री-देवी और देवता (Female Goddesses) प्रचुर परिमाण मे पायी जाती हैं। ह्वाइट हेड ने अपनी उपर्युक्त पुस्तक में ऐसे छोटे बड़े एक सौ देवताओं तथा देवियों का वर्णन किया है। इन देवियों में से कुछ प्रसिद्ध तथा कुछ अप्रसिद्ध हैं।

सामान्य तथा दक्षिण भारत की देवियों के नाम के अन्त में अम्मा अथवा अम्मन् जुड़ा रहता है जो स्त्रीलिङ्ग वाची प्रत्यय है। जैसे मेरियम्मा, अंग-लम्मा, अरिकम्मा, हुलियम्मा, आदि। कहीं-कहीं अम्मन् प्रत्यय भी नाम के अन्त में दिखाई पड़ता है जैसे कलुमइअम्मन् आदि।

इन देवियों में कुछ तो मंगल करने वाली हैं और क्रुद्ध होने पर भक्तों का असंगल करने की भी शक्ति रखती हैं। इन देवियों का वर्णन अगले पृष्ठों मे प्रस्तुत किया जायेगा।

आर्यों के पौराणिक धर्म में केवल काली अथवा दुर्गा ही ऐसी स्त्री देवता हैं जिनकी पूजा का समधिक प्रचार है। बंगाल तथा आसाम के निवासी शक्ति पूजा के उपासक होने के कारण दुर्गा-पूजा उत्सव समधिक उत्साह के साथ मनाते है।

ह्वाइट हेड ने लिखा है कि आर्य जाति के देवताओं का संबंध पौरुष तथा पराक्रमी जाति से था।[1] अत: इनमें पुरुष (मेल) देवताओं की ही प्रधानता रही। जैसे राम, कृष्ण, शिव और विष्णु आदि जिनके पराक्रमपूर्ण कार्यों से भारतीय इतिहास भरा पड़ा है। परन्तु दक्षिण के देवताओ का संबंध प्रधान-तया कृषि कर्म तथा प्रकृति से था। अत: इनमें स्त्री देवताओं की ही प्रधानता पायी जाती हैं।

तमिलनाडु में स्त्री-देवताओं के गण अथवा सहचर के रूप में पुरुष अवश्य पाये जाते हैं परन्तु इनका कार्य मन्दिरों की रक्षा करना अथवा देवी के आदेशों का पालन करना है। अतएव इनका स्थान इन देवियों की अपेक्षा निश्चित रूप से गौड़ तथा अप्रधान हैं। तेलुगु प्रदेश में पोटु राजु (Potu-Raju) नामक देवता का भी यही स्थान है जो किसी देवी के संबंधी के रूप मे अंकित किया गया है। परन्तु इस पुरुष देवता (मेल गाड) का कोई मंदिर नहीं पाया जाता। कहने का आशय केवल इतना ही है कि दक्षिण भारत के ग्रामीण देवी और देवताओं में स्त्रियों की ही प्रधानता पायी जाती है।

(१) अनुच्छेद—विशेषताएँ

(१) दक्षिण भारत के देवी और देवताओं की पहिली विशेषता इनकी बहुलता है। ये देवियाँ इतनी अधिक हैं कि इनकी गणना करना भी कठिन है। ह्वाइट हेड ने अपनी पुस्तक "विलेज गाड्स आफ साउथ इण्डिया" में इनका विशेष रूप से वर्णन किया है जिससे पता चलता है कि इन देवताओ की संख्या कितनी अधिक है। दक्षिण भारत में कदाचित् ही ऐसा गाँव हो जहाँ कि ी देवी या देवता का कोई छोटा सा मन्दिर स्थापित न हो।

---

१. ह्वाइट हेड—वि० गा० सा० इ०, पृ० १६
(आ० यू० प्रे० १६२१)

इन देवियों में कुछ आधुनिक देवियों की भी सृष्टि की गई है जैसे प्लेगम्मा यह प्लेग की देवी हैं जिनका हिन्दू देवगण (Pantheon) में आगमन अभी थोड़े ही वर्षों पहिले हुआ है। कहने का आशय केवल यह है कि इन देवी और देवताओं की विपुलता ही इनकी पहिली विशेषता समझनी चाहिए।

(२) दक्षिण भारत के इन देवी-देवताओं की दूसरी विशेषता इन्हें पशु-बलि प्रदान करना है। इन पशुओं मे भैंसा, बकरा, सूअर और मुर्गा आदि है जिनकी बलि भक्त गण बड़ी श्रद्धा से चढ़ाते हैं। तमिलनाडु राज्य में अब इस प्रथा का धीरे-धीरे ह्रास हो रहा है जिसका प्रधान कारण हिन्दू धर्म का प्रभाव है। भक्त लोग अब जीवों का बलिदान करना अधार्मिक तथा अनुचित कृत्य मानने लगे हैं। इसीलिए अब 'एयङ्गर' नामक देवता को कोई भी पशु-बलि नहीं चढ़ाई जाती। अन्य देवता को ताड़ी और चुरुट आदि देकर प्रसन्न किया जाता है जिसे वे सहर्ष स्वीकार कर लेते हैं।

(३) तीसरी विशेषता यह है कि इन देवी और देवताओं के पुजारी ब्राह्मण नहीं होते। इसके ठीक विपरीत वे किसी नीच जाति के सदस्य होते है। परन्तु कहीं-कहीं ब्राह्मण पुजारी भी पूजा कराते हुए पाये जाते हैं। ह्वाइटहेड ने मारियम्मा (Mariamma) के एक मंदिर में ब्राह्मण पुजारी के होने की बात लिखी है जिसे उसने कर्नाटक (मैसूर) राज्य के बंगलोर नगर के पास देखा था। यहाँ एक ब्राह्मणी विधवा पुजारिन का कार्य कर रही थी। इन मन्दिरों में भी पशु-बलि दी जाती है परन्तु ब्राह्मण पुजारी का इस कार्य से कोई सम्बन्ध नहीं होता। इस बलि के चढ़ाने के कार्य को नीच जाति के लोग ही संपादित करते हैं।

इन अपवादस्वरूप उदाहरणों को छोड़कर यह निःसंकोच रूप से कहा जा सकता है कि दक्षिण भारत के ग्रामीण देवी-देवताओं के मन्दिरों में कहीं भी ब्राह्मण पुजारी नहीं पाया जाता।

(४) दक्षिण-भारत के ग्रामीण देवी और देवताओं की पूजा-पद्धति पौराणिक देवताओं से भिन्न पायी जाती है। पशु-बलि का उल्लेख इस संबंध मे अभी किया गया है। पौराणिक देवताओं में काली अथवा दुर्गा के मंदिर को छोड़कर कहीं भी पशु-बलि नही चढाई जाती है। परन्तु इन मंदिरों में पशुओं की बलि चढ़ाना एक आवश्यक धर्म माना जाता है।

(५) नये-नये देवताओं की सृष्टि अथवा उत्पत्ति का होना इनकी अन्य

विशेषता है। जिस प्रकार उत्तर भारत के ग्रामीण क्षेत्रों में खोखी मइया, गलसुवा मइया, चटपटी माता की उत्पत्ति हो गई है उसी प्रकार से दक्षिण भारत मे भी प्लेगअम्मा नामक एक देवी की सृष्टि हो गई है। इस देवी के नाम से ही पता चलता है कि इसकी उत्पत्ति अत्यन्त नवीन है। प्लेग का आविर्भाव इस देश में अपेक्षाकृत नया है। अतः इस रोग की अधिष्ठातृ देवी—प्लेग-अम्मा का इतिहास भी नया समझना चाहिए। परन्तु इसी अल्पकाल ७०-८० वर्षों के भीतर इसके मंदिरों का निर्माण हो गया है जहाँ इनकी विधिवत् पूजा की जाती है।

(५) परिच्छेद

दक्षिण भारत के प्रधान ग्रामीण देवी और देवता

जैसा कि पहिले लिखा जा चुका है कि दक्षिण भारत में ग्रामीण देवताओ की श्रेणी में पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियो की ही प्रधानता है। इन स्त्री देवियो मे "मारि-अम्मा" सबसे अधिक प्रसिद्ध तथा लोकप्रिय हैं। उत्तरी भारत की दुर्गा अथवा काली से कुछ अंशों में इनकी समानता की जा सकती है। रोगों की अधिष्ठातृ देवी होने के कारण शीतला माता से भी ये तुलनीय हैं।

पुरुष देवताओं में आयङ्कर अधिक विख्यात तथा लोक-प्रिय हैं। यद्यपि ये अपवाद रूप में ही है फिर भी इनके प्रति लोगो की श्रद्धा कुछ कम नहीं है। अगले पृष्ठों में इन्हीं देवियों और देवताओं का वर्णन संक्षिप्त रूप मे प्रस्तुत किया जाता है।

(१) मारि-अम्मा

यह दक्षिण भारत की अत्यन्त प्रसिद्ध देवी मानी जाती हैं। ये सात बहिने हैं जिनकी पूजा कर्नाटक राज्य में बड़ी श्रद्धा से की जाती है। ये सभी बहिने भगवान् शिव की स्त्रियाँ अथवा बहिनें मानी जाती हैं। यह उल्लेखनीय बात है कि इन सात बहिनों के मंदिरों में मारि-अम्मा की प्रतिमा नहीं पाई जाती क्योंकि यह देवी इन सबमें श्रेष्ठ मानी जाती है। ये बहिनें बड़ी ही दयालु तथा सहिष्णु हैं। परन्तु इसके ठीक विपरीत मारि-अम्मा असहिष्णु तथा सहज रूप से प्रसन्न होने वाली देवी के रूप में चित्रित की गई हैं।

मारिअम्मा की सातों बहिनें गाँव की अधिष्ठातृ देवियाँ मानी जाती हैं और गाँव में कोई भी रोग अथवा व्याधि उत्पन्न होता है तो उससे ग्रमीण

लोगों की रक्षा करती हैं। मारिअम्मा महान् देवी होने के कारण अपनी बहिनों से पृथक् रहती हैं। दक्षिण आरकाट जिले में कन्नी-अम्मा का मंदिर उपलब्ध होता है जो मारि-अम्मा का ही दूसरा नाम है। यह शीतला माता की भाँति चेचक रोग की अधिष्ठातृ देवी मानी जाती हैं। इस प्रकार मारि-अम्मा एक असहिष्णु तथा क्रोधी देवी के रूप में पायी जाती है।

(२) पिडारी

तमिलनाडु के तंजौर, त्रिचनापल्ली और कुड्डलोर आदि जिलो मे ग्रामीण देवताओं का नाम 'पिडारी' के नाम से प्रसिद्ध है। पिडारी गाँव का अधिष्ठातृ देवता माना जाता है जो भूत-दूतों और महामारी—विशेषकर हैजा से गाँव के निवासियों की रक्षा करता है। पिडारी किसी व्यक्तिगत देवता का नाम नहीं है बल्कि यह ग्रामीण देवताओं के समूह का वाचक है जिसमे मारि-अम्मा, काली, सेलि-अम्मा और अंगलम्मा की गणना की जाती है।

काली—यह जंगल तथा सुनसान स्थानों में रहने वाले भूत-दूतों तथा हिंसक जानवरों से ग्रामीणो की रक्षा करती है। कुछ भागों में यह चिडियो का शिकार करने वाले बहेलियों की विशिष्ट देवता मानी जाती है। परन्तु अनेक गाँवों में यह हैजा आदि रोगों से भी मानवों की रक्षा करती है। दक्षिण भारत की ग्राम देवता इस काली को उत्तर भारत की दुर्गा या काली, जिनकी पूजा शारदीय नवरात्र में बड़ी श्रद्धाभक्ति से की जाती है, से एक-रूपता करना या दोनों को ही समान समझ लेना भारी भ्रम है। दक्षिण भारत की यह काली एवं साधारण ग्राम देवता है जबकि उत्तर भारत की दुर्गा या काली पौराणिक देवी होने के कारण अत्यन्त प्रसिद्ध है।

(३) सप्त कन्निगैंस

दक्षिण भारत के देवताओं में सप्तकन्निगैंस का नाम प्रधान है। यह शब्द संस्कृत के 'सप्तकन्या' का अपभ्रंश रूप प्रतीत होता है जिसका अर्थ सात कन्या अर्थात् सात बहिनें होता है। इनको 'आकाश कन्निगैंस' भी कहा जाता है जिसका अभिप्राय 'स्वर्ग की कुमारियाँ' है। तालाब, वापी या तड़ाग की देवियाँ मानी जाती हैं। तालाब के तट बन्ध पर इन सात बहिनों की एक छोटे से पाषाण खण्ड पर उत्कीर्ण प्रतिमायें देखी जा सकती हैं। उत्तरी आरकाट नामक जिले में इन स्त्री देवियों को झगड़ालू के रूप में चित्रित किया गया है। लोगों

(५) पूजम्मा

पूजम्मा का अर्थ पूजा करने योग्य देवी है। यह देवी स्थानीय माडिगास (Madigas) नामक अन्त्यज लोगों की ग्राम-देवता हैं। परन्तु शूद्र लोग भी अपने घरों से रोगों को दूर करने के लिए इनकी पूजा किया करते हैं। जब उनकी मनौती पूरी हो जाती है तब ये लोग भैंसों की बलि इनकी प्रसन्नता के लिए चढ़ाते हैं।

(६) अन्नमा

यह कर्नाटक के बंगलोर नगर की प्रधान देवता है। यहाँ इनके मंदिर की स्थापना की गई है। इसी मंदिर में छः अन्य देवताओं की भी मूर्तियाँ स्थापित हैं जिनके नाम हैं :—

(१) चन्द्रेश्वरम्मा (२) मायेश्वरम्मा (३) मारम्मा—यह हैजा की देवता मानी जाती हैं (४) उदालम्मा (५) कोकलम्मा—यह खाँसी रोग की अधिष्ठातृ देवी मानी जाती है। और (६) मुखजम्मा—यह चेचक रोग की देवी मानी जाती है। उत्तर भारत में शीतला देवी इस रोग की देवता हैं जिनकी पूजा इस रोग के निवारण के लिए की जाती है।

(७) महेश्वरम्मा

इस शब्द का अर्थ महान् देवी होता है। इसे 'सवरम्मा' भी कहा जाता है जिसका आशय घोड़े पर चढ़ने वाली देवी होता है। इसी देवी की बहिन होदम्मा और भाई मुनेश्वर के नाम से प्रसिद्ध हैं जो इनकी पूजा में समान रूप से भागी माने जाते हैं।

(८) महादेव अम्मा

कर्नाटक राज्य के गाँवों में महादेव-अम्मा अर्थात् महान् देवी तथा हुलि-रम्मा, जो शेरों की अधिष्ठातृ देवी हैं, पायी जाती हैं। इनके अतिरिक्त इस राज्य में अनेक देवियाँ उपलब्ध होती हैं जो ग्राम देवता के रूप में ग्रामीण लोगों की रक्षा करती हैं तथा उन्हें संक्रामक रोगों से बचाती हैं।

(९) प्लेग-अम्मा

उत्तरी भारत की भाँति दक्षिण भारत में भी अनेक नवीन ग्रामीण देवताओं की सृष्टि हो गई है जो बड़े ही आदर तथा भक्ति से पूजित हैं। इनमें

प्लेगअम्मा का नाम सबसे अधिक प्रसिद्ध है। यह प्लेग की अधिष्ठातृ देवता मानी जाती हैं। गाँवों में जब कभी प्लेग की बीमारी फैलती है तब ग्रामीण लोग इसी देवी की पूजा करते हैं जिससे इस रोग की शान्ति हो जाती है। बंगलोर में इस देवी का मन्दिर पाया जाता है जहाँ इनकी पूजा की जाती है।

प्लेगअम्मा की तुलना, उत्तरी भारत की देवता 'पिलेग मइया' से की जा सकती है। जो प्लेग को नष्ट करने वाली मानी जाती हैं। इसके अतिरिक्त भारत में सैकड़ों ग्रामीण देवियाँ और देवता (स्त्री और पुरुष) उपलब्ध होते है जिनके मन्दिर आज भी विद्यमान हैं। ह्वाइट हेड ने इन देवी और देवताओं के स्वरूप, उनके मन्दिर तथा इनसे सम्बन्धित उत्सवों का बड़े ही विस्तार से प्रामाणिक विवरण प्रस्तुत किया है जिसका सविस्तार वर्णन यहाँ स्थानाभाव से नहीं किया जा सकता।[1]

(१०) पुरुष देवता-आयङ्गर

जिस प्रकार तमिलनाडु में स्त्री-देवियों में मारिअम्मा नितान्त विख्यात है उसी प्रकार से पुरुष देवताओं में आयङ्गर अत्यन्त प्रसिद्ध है। इस राज्य में ग्रामीण देवता प्रायः स्त्रियाँ ही पायी जाती हैं परन्तु केवल आयङ्गर ही एक अपवाद स्वरूप है जो पुरुष देवता के रूप मे प्रतिष्ठित तथा पूजित है। तमिल देश के प्रत्येक गाँव में इस पुरुष देवता के मन्दिर स्थापित हैं। ये घोड़े पर चढ़कर प्रत्येक रात्रि में गाँवों में पहरा देते हैं और इस प्रकार इन लोगों की रक्षा करते हैं। घोड़े पर चढ़े इस देवता का स्वरूप बड़ा भयंकर होता है जिससे भूत-प्रेत भी डर कर भाग जाते हैं।

इस देवता का एक विशिष्ट मन्दिर होता है। इनकी मूर्ति के दोनों ओर मिट्टी अथवा कंकरीट के बनी हुई घोड़ों की अनेक छोटी प्रतिमायें स्थापित रहती हैं। मन्दिर के परिसर में भी कहीं-कहीं। इन घोड़ों की मूर्तियाँ उपलब्ध होती हैं। भक्तगण मिट्टी की बनी घोड़ा की इन प्रतिमाओं को इस देवता के चढ़ने के लिए अर्पित करते है। ग्रामीण लोगों के द्वारा यह देवता उपकारी

---

१. इस अध्याय के लिखने में निम्नांकित पुस्तकों से बड़ी सहायता ली गई है। अतः लेखक इन ग्रंथ-कर्ताओं का आभारी है।

(क) ह्वाइट हेड—दि विलेज गाड्स आफ साउथ इण्डिया

(ख) डॉ० अग्रवाल—प्राचीन भारतीय लोक-धर्म

तथा रक्षक के रूप में माना जाता है। इस प्रकार मारिअम्मा देवी के समान यह देवता भी अत्यन्त लोकप्रिय तथा विख्यात है।

(११) कुट्टन दवर

तमिलनाडु के अनेक भागों में यह पुरुष देवता के रूप में पूजित है। परन्तु इनकी पूजा का विशेष प्रचार दक्षिण आरकाट जिले में पाया जाता है। ह्वाइट हेड नामक विद्वान् ने लिखा है कि "इस देवता के अनेक मंदिर इसने कुडुलोर के पास देखा था। इसका एक छोटा-सा मंदिर ईंटों से बना था जिसके प्रांगण में नारियल के पत्तों से छाये गये अनेक बाँस के बने घर थे। इस देवता की मूर्ति मुखौटा के समान थी जिसमें केवल सिर था और ऊपर को उठी हुई लम्बी-लम्बी मूँछें थी। यह मूर्ति के सिर पर एक वस्त्र था जिसे तमिल में "कुलम्" कहते हैं। इस तीन फीट ऊँची मूर्ति के नीचे एक छोटी-सी प्रतिमा स्थापित थी जो बड़ी मूर्ति का छोटा-सा रूप थी।"

इस मंदिर के पुजारी ने बतलाया कि यह कुट्टन दवर नामक देवता की मूर्ति है। इस देवता के संबंध में अनेक किम्वदन्तियाँ प्रसिद्ध हैं कुट्टू नामक राक्षस के मारने के कारण इनका यह नामकरण हुआ है। चैत्र के महीने में इनकी स्मृति में एक बहुत बड़ा उत्सव मनाया जाता है जब कि भक्तगण स्त्री वेश में अपने गले में 'तलिस' (Talis) पहिन कर इनके मंदिर में दर्शन करने के लिए जाते हैं। इस उत्सव में अब्राह्मण लोग अधिकतर भाग लेते हैं। परन्तु यह अभिनय करने वाले कलाकारों (अभिनेता) तथा नर्तकों के विशिष्ट देवता माने जाते है। तमिल भाषा में नर्तकों को 'कुट्टडी' (Kuttadis) कहते हैं। अतः जहाँ इनकी आबादी अधिक पाई जाती है वहाँ इनके मंदिर का होना अवश्यंभावी है। इस देवता की पूजा को आदर की दृष्टि से नहीं देखा जाता। उच्च वर्ग के लोग स्त्री का वेश धारण कर पूजा के लिए इनके मंदिर में जाना प्रायः पसन्द नहीं करते हैं। इसलिए पैदेयाची (Padaiyachi) जाति के लोग जो अब शिक्षित हो गये हैं। इस देवता की पूजा का क्रमशः परित्याग कर रहे है।

(१२) करुप्पन्ना

दूसरे पुरुष देवता करुप्पन्ना हैं जो आयन्नर की तुलना में अत्यन्त निम्न-कोटि के माने जाते हैं। वास्तव में यह ग्रामीण देवी के गण अथवा परिचारक के रूप मे ही स्वीकृत हैं। परन्तु कहीं-कही इनके मंदिर भी उपलब्ध होते है

जहाँ ये स्वतन्त्र रूप में प्रधान देवता के रूप में प्रतिष्ठित हैं। इन मंदिरों में विशेषकर परिहा (Pariahs) जो अन्त्यज माने जाते है प्रायः पूजा किया करते हैं।

(१३) राजा बयन (King father)

त्रिचनापल्ली जनपद में राजा बयन नामक देवता के मंदिर भी पाये जाते हैं। इस देवता का प्रतिनिधित्व वे चार या पाँच लकड़ी के बने नोकीले खूँटे करते हैं जो प्रायः पाँच-छः फीट ऊँचे होते हैं। इमली के पेड के नीचे पत्थर के बने प्लेटफार्म या चबूतरे पर 'चोख' भाले गाड़ दिये जाते हैं। कहीं-कहीं परिहा लोगों के मंदिरों में केवल पुरुष देवता ही स्थापित पाये जाते हैं। वहाँ ग्रामीण देवियों की कोई प्रतिमा उपलब्ध नहीं होती। इस प्रकार दक्षिण भारत में ग्रामीण देवता के रूप में पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियाँ ही अधिक पायी जाती हैं।

—o—

एकादश अध्याय

भूत-दूत सम्बन्धी लोक-विश्वास

संसार के सभी देशों में प्रेतात्माओं के सम्बन्ध में विश्वास पाया जाता है। भारत में यह विश्वास समधिक मात्रा में उपलब्ध है। इस देश में भी जो 'ट्राइबल्स' (जंगली तथा अशिक्षित) जातियाँ हैं उनमें इन विश्वासों का प्रचुर प्रचार है। किम्बहुना ये लोग ज्वर, सिरदर्द तथा जुकाम जैसी छोटी-छोटी बीमारियों का कारण भी किसी देवी या देवता का प्रकोप ही समझते हैं।

भारत में, विशेषकर, उत्तरी भारत में ये प्रेत योनियाँ अधिक संख्या में पायी जाती हैं। जैसे—भूत, प्रेत, पिशाच, ब्रह्म-राक्षस, भोकस, राकस, जिन, परी आदि। इन्हीं प्रेत योनियों में अटूट विश्वास के द्वारा अशिक्षित ग्रामीण जनों का जीवन परिचालित होता है। परन्तु यह बड़े ही आश्चर्य की बात है कि इन प्रेतात्माओं के स्वरूप (Nature) आकृति, क्रिया-कलाप तथा इन्हें प्रसन्न करने की विधि के संबंध में कोई ग्रन्थ हिन्दी भाषा में तो क्या संस्कृत में भी विद्यमान नहीं है। विभिन्न स्थानों पर प्रेतात्माओं के मंदिर अथवा 'चउरा' प्राप्त हो सकता है परन्तु उनके विषय में कुछ विशेष जानकारी प्राप्त नहीं होती। अतः इस अध्याय को तुलनात्मक दृष्टि से लिखने में बड़ा परिश्रम करना पड़ा है।

(१) भूत शब्द का अर्थ

संस्कृत में भूत शब्द का अर्थ प्राणि, जीव, बनाया गया अथवा निर्मित किया गया होता है। परन्तु इसका प्रयोग प्रायः प्राणी या जीवों के लिए किया जाता है। इसीलिए शिव को 'भूतेश्वर अथवा भूतपति' कहते है जिसका आशय समस्त जीवों का स्वामी है। भूतेश्वर के नाम से मथुरा में शिव का एक मंदिर पाया जाता है।

परन्तु ग्रामीण भाषा में भूत का अर्थ उस निकृष्ट अथवा दुष्ट आत्मा से समझा जाता है जो मनुष्यों को दुःख पहुँचाता है। चूंकि भूत का स्वरूप भयानक होता है, अतः किसी ऐसे प्राणी के लिए भी इसका प्रयोग किया जाता है जिसकी आकृति वीभत्स तथा भयानक हो। अतः भूत से तात्पर्य सदा घृणित तथा वीभत्स आत्मा से ग्रहण किया जाता है।

(२) भूत बनने का कारण

लोगों का ऐसा विश्वास है जिस व्यक्ति की मृत्यु किसी दुर्घटना, आत्म-हत्या या फाँसी की सजा के कारण होती है उसकी आत्मा भूत के रूप में परिवर्तित हो जाती है। इस प्रकार से मृत व्यक्ति का यदि सम्यक् रीति से श्राद्ध नहीं किया जाता तो वह आत्मा और भी भयंकर हो जाती है। ऐसा समझा जाता है कि जब तक उसके श्राद्ध का सम्यक् रीति से सम्पादन नहीं किया जाता तब तक उस मृत व्यक्ति की आत्मा भटकती रहती है और उसे शान्ति नहीं मिलती।

जिस व्यक्ति को पुत्र नहीं होता उसकी मृत आत्मा 'गयाल' के नाम प्रसिद्ध होती है। ऐसे व्यक्ति के श्राद्ध का, पुत्र के अभाव में सम्यक् सम्पादन न होने के कारण उसकी 'स्पिरिट' (आत्मा) अत्यधिक भयानक तथा प्रतिशोध करने वाली हो जाती है और प्रायः छोटे-छोटे बच्चों को सताती रहती है।

(३) भूतों के लक्षण अथवा पहिचान

भूतों के कुछ विशिष्ट लक्षण होते हैं जिसके द्वारा उन्हें शीघ्र ही पहिचाना जा सकता है। इनकी पहिचान प्रधानतया निम्नांकित है—

(क) भूत कभी जमीन पर नहीं बैठता। क्योंकि पृथ्वी को देवता समझा जाता है और देवता भूतों को अपने पास से भगा देता है। इसीलिए भूतों के विश्राम करने के लिए अछूत जाति (हरिजन) के मंदिरों के पास एक ऊँचे प्लेटफार्म पर चार-पाँच खूंटियाँ गाड दी जाती हैं अथवा ईंटें रख दी जाती हैं जिस पर वे विश्राम कर सकें। कहीं-कहीं मंदिरों के पास बाँस भी गाड़ दिया जाता है। ये भूत अपनी 'बलि' प्राप्त करने के लिए मंदिरों के पास मँडराते रहते हैं।

(ख) भूतों के पहिचानने का सबसे बड़ा उपाय यह है कि उनकी परछाँई नही होती। चलते समय जमीन पर उनका प्रतिबिम्ब नहीं पड़ता।

(ग) भूत किसी सुगन्धित वस्तु को सहन नहीं करता। भूत के आस-पास चाहे कोई भी गन्दी वस्तु पड़ी हो उससे उसे कोई परेशानी नहीं होती। परन्तु उसके पास यदि धूपबत्ती जलाई जाय अथवा किसी अन्य सुगन्धित पदार्थ को रखा जाय तो वह वहाँ से भाग जाता है। अतः सुगन्धित द्रव्य भूतों के भगाने का सबसे बड़ी अचूक दवा है।

(घ) भूत किसी शब्द या वाक्य का सदा नासिका से उच्चारण करता है। वह सदा सानुनासिक शब्दों को ही बोलता है। लोगों की ऐसी धारणा है कि कुछ भूतों का गला सुई के बराबर पतला तथा संकीर्ण होता है परन्तु वे कई किलो पानी एक साथ ही पी सकते हैं।

(ङ) भूतों का पैर चुड़ैल की ही भाँति आगे न होकर पीछे की ओर रहता है जिससे इन्हें सरलता से पहिचाना जा सकता है।

(च) इनके शरीर का रंग गेहुँआ होता है। परन्तु प्रायः इनका रंग काला तथा अत्यन्त भयानक होता है जिससे सभी व्यक्ति भयाक्रान्त हो जाते हैं।

(छ) भूतों की आकृति ताड़ वृक्ष के समान लम्बी, पतली, काली और अत्यन्त भयावनी होती है।

(४) भूतों की श्रेणियाँ अथवा प्रकार

अपने गुण और कर्म के अनुसार भूतों की अनेक श्रेणियाँ अथवा प्रकार होते है जिनमें प्रधानतया निम्नांकित हैं।

(१) प्रेत	(२) पिशाच	(३) वेताल
(४) राक्षस	(५) ब्रह्मराक्षस	(६) भोकस
(७) दानव	(८) दैत्य	(९) वीर
(१०) मसान	(११) जिन	(१२) चुड़ैल
(१३) सोला	(१४) अयरी	(१५) अछैरी
(१६) धूल	(१७) बधौत	(१८) डाकिनी

इन भूतों में से कुछ विशिष्ट तथा दुष्ट आत्माओं का वर्णन यहाँ समास रूप से प्रस्तुत किया जाता है।

भूत भगाना (Exorcism)

गाँवों में यदि कोई व्यक्ति बीमार हो जाता है और उसका रोग बहुत दिनों तक दवा करने पर भी नहीं छूटता, तब लोगों को यह विश्वास हो जाता है कि यह किसी भूत-प्रेत से "ग्रस्त" है। अतः उस भूत को भगाने के लिए काठ का एक पुतला बनाकर उसे रोगी का वस्त्र पहिना दिया जाता है। पुन उस पुतले को शव के रुप मे श्मशान घाट पर ले जाकर, उसको टुकड़ों में काट कर, जला दिया जाता है लोगों की ऐसी धारणा है कि ऐसा करने से बीमार का रोग दूर हो जाता है। हिमालय प्रदेश के "लाहौल स्पीति' जनपद में यह परम्परा आज भी प्रचलित है। वाराणसी के दैनिक समाचार पत्र "आज" के २८-९-१९८७ के अंक में ऐसे लोक-विश्वास का समाचार प्रकाशित हुआ है जो आज भी वहाँ प्रचलित है। इस समाचार को अविकल रूप से यहाँ दिया जा रहा है। इससे ज्ञात होता है कि ऐसी धारणा आज भी जनता में विद्यमान है।[1]

मौत को चकमा

नयी दिल्ली, २७ सितम्बर (भा०)। देश के कुछ इलाकों में अभी भी विवाह से पूर्व और विवाह के बाद पर-पति अथवा परस्त्री के बीच के यौन सम्बन्ध वर्जित नहीं है। ऐसे सम्बन्धों को पाप नहीं समझा जाता और न ही हिकारत की निगाह से देखा जाता है। ऐसा ही एक इलाका भारत-तिब्बत सीमा पर बसा हिमाचल प्रदेश का बर्फीला लाहौल स्पीति इलाका है जहाँ बड़े भाई की पत्नी अन्य सभी छोटे भाइयों की पत्नी होती है और संयुक्त परिवार की प्रथा का चलन आज भी बरकरार है। इतिहास के अध्येता डॉक्टर शिवचन्द्र बाजपेयी ने ये बातें अपनी प्रकाशित पुस्तक 'लाहौल स्पीति ए फारबिडेन लैंड इन द हिमालयाज' में लिखी है।

इस रिवाज का ब्यौरा देते हुए डाक्टर बाजपेयी ने लिखा है कि जब कोई बीमार आदमी 'टोना, टोटका अथवा दवा दारू' से ठीक नहीं होता तो फर्जी अंत्येष्टि आयोजित करके मौत को चकमा देने का नाटक रचा जाता है। इसके तहत एक आदमकद काठ का पुतला बनाया जाता है। रंग रोगन करके पुतले को बीमार आदमी का वस्त्र और आभूषण पहनाया जाता है।

---

१. डॉ० शिवचन्द्र बाजपेयी—"लाहौल स्पीति ए फारबिडेन लैण्ड इन द हिमालयाज"

फिर अर्थी का जुलूस निकाला जाता है बन्दूकों से गोलियाँ दागी जाती हैं और पटाखे छोड़े जाते हैं। इस तरह यह जुलूस श्मशान घाट पहुँचता है, जहाँ पुतले को कई हिस्सों में काटकर उसे जला दिया जाता है। वस्त्र और आभूषण पर लामा का अधिकार हो जाता है। लोगों का विश्वास है कि इस आयोजन से मरीज चंगा हो जायगा।

(२) प्रेत

'प्रेत' शब्द का अर्थ मृत अथवा वियुक्त व्यक्ति है। मृत्यु के पश्चात् तथा श्राद्ध कर्म के विधिवत् समाप्ति के पूर्व मृत व्यक्ति की आत्मा प्रेत योनि में विद्यमान् रहती है। इसकी आकृति मनुष्य के अँगूठे के बराबर होती है और यह अपने मूल निवास के चारों ओर चक्कर लगाती रहती है। श्राद्ध कर्म के समय "दशाह" के दिन तक मृतात्मा प्रेत योनि मे रहती है परन्तु सपिण्डीकरण के पश्चात् यह पितरों अथवा पितृगणों की श्रेणी में विराजने लगती हैं।

प्रेत शब्द का प्रयोग कभी-कभी उस व्यक्ति के मृत आत्मा के लिए भी किया जाता है जो विकलाङ्ग होता है। क्रुक के अनुसार जब तक किसी बालक का मुण्डन संस्कार नहीं हो जाता तब तक वह भूत की संज्ञा से जाना जाता है।

यदि प्रेत को किसी प्रकार की उत्तेजना प्रदान कर दी जाय तो वह अत्यन्त भयानक तथा अनिष्टकारी बन जाता है। परन्तु यह जीवित व्यक्तियों के प्रति प्रायः द्वेष नहीं रखता और न उन्हें किसी प्रकार की क्षति ही पहुँचाता है। बिहार राज्य के गया नगर में एक पहाड़ी है जो प्रेतशिला के नाम से प्रसिद्ध है। यहाँ लोगों के द्वारा प्रेतों की पूजा की जाती है। पटना के कुछ ब्राह्मण अपने को प्रेतिया कहते हैं क्योंकि वे इनकी पूजा करते है।[1]

(३) पिशाच

'पिशाच' शब्द का अर्थ मांस खाने वाला होता है। साधारणतया यह वह दुष्ट आत्मा है जो मनुष्य के दुर्गुणों के फलस्वरूप उत्पन्न होती है। मिथ्यावादी, व्यभिचारी, पागल तथा घोर अपराध कर्मों की आत्मा (स्पिरिट) पिशाच का रूप धारण कर लेती है। क्रुक ने लिखा है कि पिशाच को रोगों

---

१ बुकानन—"ईस्टर्न इण्डिया" भाग १ पृ० ६५ १६६

के निवारण करने की शक्ति भी प्राप्त होती है। कथासरित्सागर में वर्णित एक कथा के अनुसार मनुष्य प्रातःकाल उठकर बिना हाथ-मुँह धोये ही अपने हाथों में दो मुट्ठी चावल लेकर नजदीक के चौराहे पर जाकर उसे बिखेर दे और मुड़कर बिना पीछे देखे ही घर लौट आवे यह कार्य कब तक करता रहे जब तक पिशाच प्रकट होकर यह न कहे कि मैं तुम्हारे रोगों को नष्ट कर दूँगा।[१]

परन्तु ग्रामीण लोगों का यह दृढ़ विश्वास है कि पिशाच अत्यप्त क्रूरकर्मा जीव होता है जो मनुष्यों को अत्यन्त दुःख देता तथा सताता है। इसीलिए समाज में जो व्यक्ति क्रूरकर्मा तथा निर्दयी एवं अत्याचारी होता है उसे "नर पिशाच" कहा जाता है। अतः पिशाच को नीच तथा निर्दयी भूत की श्रेणी में रखा जाता है।

(४ + ५) राक्षस तथा ब्रह्मराक्षस

राक्षस शब्द का अर्थ हानि पहुँचाने वाला अथवा नाशकर्ता होता है। वह रात्रि में विचरण करता है, कब्रिस्तान के चारों ओर चक्कर लगाता है, यज्ञ को विध्वंस कर देता है और मनुष्यों के मांस को खाता है। इसीलिए इसे 'क्रव्याद' भी कहा जाता है। यह प्रायः मानव जाति से शत्रुता रखता है।

लोक-कथाओं में राक्षसों का वर्णन निम्न प्रकार किया गया पाया जाता है। इनकी एक सुन्दर कन्या होती है। जब कोई प्रेमी उस कन्या के पास उसके घर जाता है तब उसका पिता आ जाता है और "मनुष गन्ध" कह कर चिल्लाने लगता है। परन्तु अन्त में वह उस नायक की रक्षा करता है।

राक्षस का महत्त्व लोक-संस्कृति के क्षेत्र में अत्यन्त अधिक है। अपनी इच्छा के अनुसार वह विभिन्न रूपों को धारण कर सकता है। जब वह साँस लेता है तब प्रचण्ड हवा चलने लगती है। वह अपनी भुजाओं को अस्सी (८०) मील अर्थात् १२० किलोमीटर तक फैला सकता है। वह मनुष्यों को बहुत दूर से ही सूँघ सकता है और मनुष्य की गन्ध आ रही है यह बतला सकता है। यदि उसका सिर काट लिया जाय तो फिर नया सिर उत्पन्न हो जाता है। ऐसी प्रसिद्धि है कि राक्षस राज रावण ने शिव को अपने दस सिरों को काट कर उसकी पूजा में अर्पित कर दिया था परन्तु पुनः उसके सिर उत्पन्न हो गये अथवा जम गये।

---

१ सोमदेव क० स० सा० भाग १ पृ० २५६

राक्षस की पत्नी राक्षसी कही जाती है जो उसी के समान स्वभाव वाली है। लोक-कथाओं में यह किसी नगर को घेर लेती है और नगर निवासियों से प्रतिदिन एक व्यक्ति की बलि माँगती है। अन्य भूतों की भाँति राक्षस भी प्रकाश से डरते हैं अतः ग्रामीण लोग राक्षसों को भगाने के लिए रात में आग जलाया करते हैं।

राक्षसों का निवास प्रायः वृक्षों के ऊपर होता है। अतः जो व्यक्ति रात्रि के समय इनके निवास स्थान का अतिक्रमण करता है वह अजीर्णता, ज्वर, वमन आदि रोगों से शीघ्र ही पीड़ित दिखाई पड़ता है। राक्षसगण रात्रि में चलने वाले पथिको को गलत रास्ता बतला कर उन्हे पथभ्रष्ट कर देते हैं। ये बड़े ही लालची होते हैं और सर्वदा भोजन की खोज में रहते है। इसीलिए रात में भोजन करते समय जब दीपक बुझ जाता है और अन्धकार का साम्राज्य छा जाता है तब भोजन करने वाले अपनी थाली को दोनो हाथों से ढंक लेते हैं जिससे राक्षस उसे लेकर भाग न जायें। इसीलिए अन्धकार में बहुत से लोग भोजन नहीं करते। बंगाली स्त्रियाँ सोने के पहिले रात्रि में घर के प्रत्येक कक्ष मे दीपक लेकर जाती हैं जिससे प्रकाश के कारण राक्षस भाग जायँ।

लोक-कथाओं में राक्षसों के पास राज्य तथा अनन्त धन होने का वर्णन पाया जाता है जिसे वे उस व्यक्ति को देते हैं जो उनका बड़ा प्रिय होता है।

राक्षसों की अँगुलियों के नाखून बड़े ही विषैले माने जाते हैं जिनके केवल स्पर्श मात्र से मनुष्य बेहोश हो सकता है तथा उसकी मृत्यु भी संभव है। कभी-कभी ये बूढ़ी औरतों का रूप बनाकर लम्बे बाल रख लेते हैं जो किसी को अभिभूत करने का अनन्य साधन है। इनकी दुष्टता भयंकर होती है तथा किसी व्यक्ति को कष्ट पहुँचाने की शक्ति अनन्त है परन्तु ये बड़े ही मूर्ख होते है और अपनी मोहिनी शक्ति के रहस्य को दूसरों को सरलता से बतला देते है।

राक्षस मनुष्य के मांस का भक्षण करने वाला होता है। महाभारत मे वक नामक राक्षस का उल्लेख मिलता है जो एक चक्रापुरी में रहता था और प्रतिदिन एक मनुष्य की बलि लेता था। अन्त में भीम ने इसका नाश कर दिया।

राक्षस अपनी इच्छानुसार अपनी आकृति का विस्तार कर सकते हैं। भूतों की तरह ये ताड़ के समान अत्यन्त लम्बी और पतली आकृति धारण कर सकते हैं। ये निशाचरी वृत्ति के होते हैं। ये रात्रि में हवा में उड़ते हैं और वृक्षों पर अपनी आत्मा को रख देते हैं

लोगों का यह विश्वास है कि राक्षस बहुत बड़े शिल्पी तथा निर्माता होते हैं। ये विशाल प्रासादों तथा पुलों के निर्माण में भी सक्षम पाये जाते है। क्रुक ने मध्य प्रदेश में रामटेक नामक स्थान पर एक विशाल मंदिर का उल्लेख किया जो विशाल पाषाणखण्डों को काटकर बनाया गया है और इसमे भी चूना तथा सुर्खी से जोड़ाई नहीं की गई है। लोगों की धारणा है कि इसे हेमाद्रपन्त नामक राक्षस ने बनाया था। उत्तर प्रदेश के बुलन्दशहर जिले मे शिकारपुर नामक स्थान में बारह खम्भा का निर्माण किसी राक्षस की कृति मानी जाती है। इस प्रकार राक्षस निर्माण-कर्ता भी होते हैं।

(५) ब्रह्म राक्षस

जब कोई ब्राह्मण किसी दुर्घटना के कारण अकाल मृत्यु को प्राप्त हो जाता है तब वह ब्रह्म राक्षस कहलाता है। अन्य राक्षसों की अपेक्षा ब्राह्मण राक्षस बड़ा कठोर तथा निर्दयी होता है। क्रुक के उल्लेख के अनुसार मनसाराम ब्राह्मण, जिसने राजा तेजसिंह के अत्याचारों के कारण आत्महत्या कर ली थी, मृत्यु के पश्चात् ब्रह्म राक्षस बनकर उस राजा के वंशजों को बड़ा कष्ट देता है। वह सीतापुर जिले में वृक्ष पर निवास करता है। जब तक इस ब्राह्मण राक्षस को पूजा आदि से तृप्त नही कर लिया जाता है तब तक राजा के कुल में विवाहादि कोई मांगलिक कार्य नहीं किया जा सकता।[1] इसी प्रकार से पूरनमल नामक ब्रह्म राक्षस के विषय में भी ऐसी ही किम्वदन्ती है जो एटा जिले का निवासी था।[2]

(६) बैताल

संस्कृत के 'बैताल पंचविंशतिका' नामक ग्रन्थ में इनके प्रकार तथा कार्यों का विशेष वर्णन पाया जाता है। हिन्दी में इस ग्रन्थ का बैताल पचीसी के नाम से अनुवाद भी हो चुका है।

बैताल साधारणतया आक्रामक तथा अनिष्टकारी भूत नहीं होता। प्राय यह भ्रमणशील (Vagrant) होता है जो प्राय: उन व्यक्तियों के शरीर मे प्रवेश कर जाता है जब उनमें वास्तविक आत्मा का अभाव होता है। प्राय: करके बैताल किसी जीवित व्यक्ति की आत्मा (स्पिरिट) के रूप में प्रकट होता है जो पृथ्वी पर अपने निवास से सन्तुष्ट नहीं है। अत: वह अपना शरीर छोड़कर किसी मृतक के शव में प्रवेश कर जाता है।

---

१. क्रुक—पा० रि० फो० लो० इ०, भाग १. पृ० २५३

२. वही।

सोमदेव के सुप्रसिद्ध ग्रन्थ 'कथासरित्सागर' में बैतालों की अनेक कहानियाँ प्राप्त होती हैं जिसमें किसी बैताल के द्वारा राजा को अपनी पीठ पर बैठा कर आकाश में उड़ने तथा उसे समुद्र में फेंक देने का उल्लेख पाया जाता है। सामान्यतया बैताल अनिष्टकारी नहीं होता है परन्तु कुछ ऐसे भी हैं जो जनता को कष्ट पहुँचाते हैं। इन्हें "अगिया बैताल" कहा जाता है। इसीलिए समाज में जो व्यक्ति लोगों को कष्टदायक तथा अत्याचार करने वाला होता है उसे "अगिया बैताल" की उपाधि से विभूषित किया जाता है।

(७) बीर

यह शब्द संस्कृत के 'वीर' का अपभ्रंश रूप है जिसका अर्थ बहादुर या नायक होता है। मिर्जापुर जिले में 'खरवार वीर" नामक एक देवता का मंदिर है जो बैगा नामक जंगली जाति के अधिष्ठातृ देव माने जाते हैं। यदि बैगा लोग अपनी पूजा-अर्चा से इनको संतुष्ट नहीं करते तब निश्चय ही उन्हें तथा उनके पशुओं को भयंकर बीमारी से पीड़ित होना पड़ता है।

सुप्रसिद्ध ऐतिहासिक डॉ० वासुदेव शरण अग्रवाल का मत है कि बीर पूजा यक्ष पूजा का ही दूसरा रूप है। प्राचीन भारत में यक्षों की पूजा हुआ करती थी। ये बीर उन्हीं प्रचीन यक्षों के प्रतिनिधि है। यह बीर पूजा इतनी अधिक प्रचलित तथा लोकप्रिय थी कि वाराणसी में अनेक मुहल्ले इन्हीं के नाम से पाये जाते हैं। जैसे लहुरा बीर आदि। इस नगर में दैत्राबीर, डेडरिया बीर आदि अनेक बीरों के मंदिर आज भी पाये जाते हैं।

गाँवों में इन बीरों की पूजा आज भी प्रचलित है जहाँ इनको गोल मिट्टी के पिण्डों के रूप में स्थापित किया गया है। लोग बड़ी श्रद्धा से इनकी पूजा करते है और मनौती मानते हैं।[१]

(८) दैत्य

दैत्य भी बड़ा भयानक राक्षस माना जाता है। जन साधारण के द्वारा इसकी आकृति बड़ी ही भयंकर मानी जाती है और यह बड़ा ही नृशंस तथा क्रूर-कर्मा समझा जाता है। क्रुक ने लिखा है कि मिर्जापुर जिले में एक दैत्य वृक्ष पर निवास करता है। सामने से तो वह मनुष्य के आकार का

---

१. विशेष के लिए देखिये—
डॉ० अग्रवाल—वीर-वरह्म लेख जनपद पत्रिका, भाग—१, अंक—४

दिखाई पड़ता है परन्तु पीछे अर्थात् पृष्ठ भाग में वह अत्यन्त खोखला होता है और उसकी रीढ़ भी नहीं दिखाई पड़ती।

मध्य रात्रि में दैत्य वृक्ष के ऊपर अग्नि तथा धुआँ के पुंज के रूप में दिखाई पड़ता है। वह एक वृक्ष से कूद कर दूसरे वृक्ष पर भी चला जाता है जो थोड़ी दूरी पर स्थित होता है। मिर्जापुर जिले में दैत्वावीर के नाम से जाना जाता है। यह अपने अन्य साथियों के साथ पेड़ पर रहता है और रात्रि में अन्यत्र घूमते हुए अपने हाथ में टार्च लेकर नाचता है।

जन मानस में दैत्य की आकृति और कार्य दोनों ही भयानक तथा क्रूर के रूप में अंकित है। इसकी तुलना दानव से की जाती है जो अपनी भयंकरता के लिए कुप्रसिद्ध है।

(६) मसान

मसान शब्द संस्कृत के 'श्मशान' का अपभ्रंश रूप है जिसका अर्थ मुर्दों के जलाने का स्थान होता है। यह 'मसान' शब्द उन समस्त दुष्ट आत्माओं (इविल स्पिरिट्स) के लिए प्रयोग किया जाता है जो उस स्थान पर घूमते रहते तथा चक्कर लगाते फिरते हैं।

साधारणतया बच्चों के भूत (घोस्ट) को मसान कहा जाता है। यह प्रायः नीच जाति के लोगों का देवता माना जाता है। एक उल्लेख से ऐसा ज्ञात होता है कि यह भूत भालू के रूप में गाँवों तथा पर्वतों पर घूमता फिरता है।

मसान की आकृति अत्यन्त काली तथा भयंकर होती है। यह श्मशान की राख से निकल कर उन व्यक्तियों का पीछा करता है जो उस रास्ते से जाते हैं। कुछ लोग इसकी भयंकरता को देख कर पागल हो जाते हैं और कुछ मृत्यु को प्राप्त कर लेते हैं। मसान जंगलों में विभिन्न रूपों में पाया जाता है। कभी वह भैंस की आवाज करता है और कभी बकरा की बोली बोलता है। अन्य अवसर पर वह घुमन्ते साधु रूप धारण कर यात्रियों के साथ चलने लगता है। चोर जब किसी के घर में प्रवेश करता है तब वह घर के सदस्यों पर श्मशान की राख छिड़क देता जिससे वे बेहोश हो जाते हैं। इस प्रकार वह चोरी करने में पूर्णतया सफल हो जाता है। मसान का प्रभाव छोटे-छोटे बच्चों पर शीघ्र ही पड़ जाता है।

(१०) चुरैल

यह बड़ी ही भयंकर मानी जाती है। लिङ्ग की दृष्टि से यह स्त्री-लिङ्ग की कोटि में आती है। क्रुक के अनुसार इसका सम्बन्ध-चुहरा अर्थात् भंगी जाति है। चूँकि नीच जाति वालों के भूत बड़े भयंकर होते हैं, अतः चुड़ैल भी बड़ी भयावनी मानी जाती है।

जो स्त्री गर्भवती रूप में अथवा सन्तान की उत्पत्ति के ही दिन या अशुद्ध रहने की अवधि के भीतर ही मृत्यु को प्राप्त हो जाती है, उसका भूत चुड़ैल के रूप में उत्पन्न होता है। यह अपने परिवार के सदस्यों को ही विशेष रूप से हानि पहुँचाती है। वह अनन्त रूपों को धारण करने में समर्थ होती है। वह सामने से देखने में सुन्दर लगती है परन्तु पृष्ठ भाग में काली होती है। भूतों की भाँति इसका पैर भी पीछे की ओर होता है अर्थात् पैर की अँगुलियाँ पीछे की ओर और एड़ी सामने की ओर होती है।

चुड़ैल सुन्दर तथा तरुणी स्त्री का रूप धारण कर रात्रि में खूबसूरत जवान लड़कों को अपने प्रेम-पाश में फँसा लेती है। वे उन सुन्दर लड़कों को उठा कर अपने निवास स्थान पर ले जाती हैं। उन्हें खाने के लिए भोजन देती है। यदि वे खाने में समर्थ होते हैं तब वह उन्हें अपने पास तब तक रखती है जब तक वे बूढ़े न हो जायँ और अपनी जवानी तथा सुन्दरता को खो न बैठें।

क्रुक ने अपने एक चपरासी का उल्लेख किया है जो एक चुड़ैल के माया-जाल में फँसने से बच गया था।[1] यह चुड़ैल श्मशान घाट अथवा कब्रिस्तान के पास स्थित एक पीपल के पेड़ पर रहती थी। उस चपरासी ने उसके लक्षणों से उसे पहिचान लिया और किसी प्रकार से उसके जाल से निकल भागा।

भोजपुरी मातायें इसीलिए अपने सुन्दर, जवान तथा अविवाहित लड़के को खुले मैदान में सोने से मना करती हैं। उनका विश्वास है कि कहीं इसकी सुन्दरता के कारण कोई चुड़ैल इसे अपने प्रेम-पाश में न फँसा लें। इसीलिए मोहिनी तथा अपने माया-जाल में फँसाने वाली युवतियों को चुड़ैल कह कर उनकी भर्त्सना की जाती है।

चुड़ैल को भगाने के उपाय—चुड़ैल को भगाने के बहुत से उपाय प्रसिद्ध हैं। गर्भवती स्त्री के मरने पर उसकी लाश को जलाने के बजाय

---

१. क्रुक—पा० रि० फो० लो० ना० इ०—भाग-१, पृ० २७१

जमीन में गाड़ देनी चाहिए जिससे वह फिर चुड़ैल के रूप में उत्पन्न न हो सके। पर्वतीय प्रदेश में गर्भवती स्त्री के मरने के स्थान को साफ कर उसकी मिट्टी को भी खुरच देते हैं और उस जमीन पर तेलहन बो दिया जाता है। इस प्रकार से वह भग जाती है।

(११) परियाँ (Fairies)

परियाँ अतिमानवी (super natural) जीव हैं जो प्राय: अदृश्य रहती हैं। ये कभी सुखदायक तथा सहायक होती हैं, कभी दुष्ट तथा खतरनाक होती है और कभी शरारती तथा स्वेच्छाचारी का आचरण करती हैं।

परियाँ संसार के प्रत्येक भाग में पाई जाती है जहाँ इनकी प्रधान विशेषतायें सर्वत्र समान रूप से उपलब्ध होती हैं। यह आकृति में छोटी तथा कभी अतिशय लघु दिखाई पड़ती हैं। ये स्वेच्छया अपना रूप परिवर्तित कर अनेक रूपों को धारण करने में समर्थ हैं।

ये जमीन के नीचे अथवा पहाड़ की कन्दराओं मे निवास करती हैं। इनके शरीर का तथा बालों का रंग हरा होता है और ये हरा कपड़ा पहिनना पसंद करती हैं। कभी-कभी ये सफेद वस्त्र भी धारण करती हैं।

स्वभाव—परियों का स्वभाव बड़ा ही अच्छा होता है। ये कभी किसी को नुकसान नहीं पहुँचातीं। ये प्राय: बच्चों को चुराकर ले भागती हैं। परन्तु उस दशा में भी ये बच्चों को किसी प्रकार की शारीरिक क्षति नही पहुँचाती। परन्तु यदि इनके साथ बुरा व्यवहार किया जाय तब ये मनुष्यो का घर जलाकर तथा अन्न-सम्पदा को नष्ट करके बदला चुकाती हैं। खेलवाड़ तथा तमाशा करने में इन्हें आनन्द मिलता है। जैसे खेतों में गायों को दुहना, कपड़ों को गन्दा कर देना, भोजन को चुरा कर भाग जाना, दूध को दही के रूप में परिवर्तित कर देना इनके खेलवाड़ के कुछ नमूने या उदाहरण हैं। परन्तु ये कभी-कभी सहायता भी करती हैं। ये निर्धन मनुष्यों को भोजन तथा धन प्रदान करती हैं और बच्चों को खिलौना देती हैं।

ये परियाँ सामुदायिक रूप से जहाँ निवास करती हैं उस स्थान को परीस्तान तथा अंग्रेजी में फेयरीलैण्ड कहा जाता है। परियों की लोक-कथाओं में मनुष्यों के साथ इनका निम्न प्रकार से संबंध दिखलाया गया है—

(१) परियाँ मनुष्यों की सहायता करती हैं।
(२) ये मनुष्यों को नुकसान भी पहुँचाती हैं।
(३) ये मनुष्यों का अपहरण भी करती है।
(४) ये अपना रूप-परिवर्तन करने में समर्थ हैं।
(५) मनुष्य परीस्तान की यात्रा करते हैं।
(६) ये मनुष्यों से प्रेम कर उन्हें अपने प्रेम-जाल में फँसाने का प्रयास करती हैं।

परियाँ मनुष्यों की हर एक प्रकार से सहायता करती हैं। ये खेतों में पौधा काटने, जंगल से लकड़ी लाने आदि में सहायक सिद्ध होती हैं। फ्रांस की एक लोक-कथा से ज्ञात होता है कि किसी परी ने एक स्त्री को जेल से मुक्त किया जिसको उसके पति ने कैद खाने में डाल दिया था। परियाँ मनुष्यों को अपने निवास स्थान पर बुलाकर उनका बड़ा स्वागत-सत्कार करती है।

(१२) मर्ही

यह भी एक राक्षसी है जो बड़ी भयंकर तथा क्रूर मानी जाती है। यह प्राय स्त्रियों पर आक्रमण करती है। जिस स्त्री को मर्ही अभिभूत कर लेती है वह बीमार पड जाती है और कितनी भी दवा कराई जाय अच्छी नहीं होती। ओझा. सोखा के अनेक प्रयत्न करने पर भी वह नीरोग होती है। इसीलिये मर्ही को दुष्ट तथा क्रूर राक्षमी समझा जाता है।

(१३) अयरी (Airi)

अयरी पर्वतीय क्षेत्र में प्रसिद्ध है। जो लोग शिकार खेलते समय मृत्यु को प्राप्त हो जाते है, उनका भूत 'अयरी' के रूप में उत्पन्न होता है। अयरी के संगी-साथी वे परियाँ हैं जिनका पैर पीछे की ओर मुड़ा रहता है। इसके साथ कुत्ते होते हैं जिनके गले में घंटियाँ बंधी होती हैं। जो कोई इन कुत्तों का भूँकना सुनता है वह निश्चय ही आपत्ति मे पड़ जाता है।

एच० किन्सन ने लिखा है कि जो लोग अयरी को आमने-सामने देखते हैं वे उनकी आँखों से निकलने वाले प्रकाश से जल जाते हैं। इसका मन्दिर सूनसान स्थान में पाया जाता है। इसका प्रतीक केवल त्रिशूल तथा उसके आस-पास रखे गये पाषाण-खण्ड माने जाते हैं। वर्ष में एक बार इसकी पूजा की जाती है। उस समय आग Bonfire) जलाई जाती है जिसके चारों ओर लोग बैठते हैं। उसी समय ढोल बजाया जाता है। तब कुछ लोग अभिभूत

होकर उस अग्नि के सामने कूदने तथा चिल्लाने लगते हैं। कुछ उसमें कूद पड़ते हैं। जो लोग बिना जले ही उस आग में से निकल आते हैं वे ही सच्चे भक्त तथा "अभिभूत" माने जाते हैं। लोग इस देवता अथवा दानव को बकरा की बलि चढ़ाते हैं और पूजा में प्रयुक्त फल, मिष्ठान्न तथा दूध को प्रसाद के रूप में आपस में बाँट लेते हैं।[1]

(१४) जिल्लैया

यह भूतिनी बिहार में प्रसिद्ध है। यह रात्रि में किसी चिड़िया का रूप धारण कर लेती है और यह जिस व्यक्ति का नाम सुन लेती है उसके खून के चूसने में समर्थ होती है। इसीलिए बिहारी माताएँ रात में अपने बच्चों का नाम नहीं लेतीं। लोगों का यह विश्वास है कि यदि, गर्भवती स्त्री के सिर पर से यह उड़ जाय तो उसको कमजोर तथा निर्बल बच्चा पैदा होगा।

छोटा नागपुर के ओरॉव लोगों का यह विश्वास है कि चोरदेवन नाम की राक्षसी बिल्ली के रूप में रात में आती है और छोटे नवजात शिशुओं को नुकसान पहुँचाती है।

(१५) बूड़ा

बूड़ा जल में रहने वाला वह भूत है जो छोटे-छोटे बालकों को पकड़ कर पानी में डुबो देता है। यदि अकस्मात्, बिना कारण के किसी व्यक्ति की जल मे डूबकर अकाल मृत्यु हो जाती है तब ऐसा लोगों का विश्वास है कि इसे बूडा ने जल में डुबो कर मार डाला है। इसीलिये मातायें अपने छोटे बच्चो को किसी तालाब या पोखरा में अकेले स्नान करने जाने के लिए निषेध करती हैं। यह पानी में रहने वाला भूत (बूड़ा) प्रायः बालकों पर ही अधिक आक्रमण करता है।

स्मृतिकार मनु ने लिखा है कि जिस तालाब या जलाशय के विषय मे न जानते हो उसमें स्नान नहीं करना चाहिये—**नाऽविज्ञाते जलाशये**। इस कथन से मनु का आशय केवल यही ज्ञात होता है कि शायद उस तालाब में रहने वाले जीव-जन्तु अथवा भूत-प्रेत स्नान करने वाले व्यक्ति को नुकसान न पहुँचावें।

---

१. इसके विशेष वर्णन के लिए देखिये—
एच० ऐटकिन्सन—हिमालयन गजेटियर, भाग-२, पृ० ८२५

महाकवि श्रीहर्ष ने भी सम्भवतः इसी कारण किसी ह्रद (तालाब) में बड़े ही विचार करने के पश्चात् स्नान करने की राय दी है। वे लिखते हैं कि—

"ह्रदे गभीरे, ह्रदि चावगाढ़े,
शंसन्ति कार्यावतरं हि सन्तः।"

—(नै० च०)

ओझा तथा सोखा आदि

जब ग्रामीण जनता विभिन्न प्रकार की नीच योनियों, जैसे—भूत-प्रेत, राक्षस और पिशाच आदि से ग्रसित हो जाती है तब उनको नीरोग करने के लिए तंत्र-मंत्र के ज्ञाता व्यक्तियों को बुलाया जाता है जो 'ओझा' कहलाते हैं। इन्हें सोखा तथा 'सयाना' भी कहा जाता है।

ओझा उपाध्याय शब्द का अपभ्रंश रूप है जिसका अर्थ अध्यापक होता है। सोखा से आशय उस व्यक्ति से है जो रोगों को सोख लेता है अर्थात् उसे नष्ट कर दूर कर देता है। 'सयाना' का अर्थ चतुर अथवा चालाक होता है जो इस कार्य में अत्यन्त निपुण समझा जाता है।

जायसी ने इन लोगों का उल्लेख अपने महाकाव्य में इस प्रकार से किया है—

"जावत गुनी गारुरी आए।
ओझा बैद सयान बोलाए॥"[1]

अर्थात् पद्मावती के अलौकिक रूप-सौन्दर्य को सुन कर राजा रतसनेन के मूर्च्छित हो जाने पर ओझा, सोखा, वैद, सयाने तथा गारुड़ी आदि उन्हें नीरोग करने के लिए बुलाये गये।

(१) **ओझा**—जैसा कि ऊपर लिखा जा चुका है ओझा शब्द की व्युत्पत्ति उपाध्याय शब्द से मानी जाती है जिसका व्यवसाय अध्यापन करना है। परन्तु गाँवों में ओझा से तात्पर्य उस व्यक्ति से है जो अपने तन्त्र-मन्त्र और झाड़-फूंक के द्वारा प्रेत-बाधा से ग्रस्त व्यक्ति को नीरोग कर देता है। ओझा को तन्त्र-मन्त्र की विद्या में निपुण माना जाता है। इसका प्रधान पेशा "झाड़-फूंक" करना है। गाँवों

१. पद्मावत, १२०/२

में जब व्यक्ति प्रेत-बाधा से पीड़ित होता है तब गाँव का ओझा उसे नीरोग करने के लिए शीघ्र ही बुलाया जाता है।

(२) **सोखा**—क्रुक ने इसकी व्युत्पत्ति सूक्ष्म शब्द से मानी है परन्तु वास्तव में इसकी उत्पत्ति 'शोषक' से है जिसका अर्थ सोख लेने से है। चूंकि सोखा रोगी के रोग को सोख लेता है, उसे नष्ट कर देता है, अतः उसे सोखा कहा जाता है।

(३) **वैद**—गाँवों में जो व्यक्ति वैद्यक शास्त्र का विधिवत अध्ययन न करके अपने अधकचरे ज्ञान के बल पर ही लोगों की दवा करते-फिरते हैं, उन्हें वैद (वैद्य नहीं) कहा जाता है। अंग्रेजी में इन्हें 'मेडिसिन मैन' कहते हैं। ये प्रधानतया कान और दाँत की दवा करते हैं।

(४) **सयाना**—इस शब्द का अर्थ चतुर होता है। चूंकि ये झाड़-फूंक के कार्य में कुशल होते हैं अतः 'सयाना' के नाम से प्रसिद्ध हैं।

(५) **गुनी**—जो लोग तन्त्र-मन्त्र तथा झाड़-फूंक के गुन से सम्पन्न रहते हैं उन्हें गुनी कहा जाता है। जायसी ने जादू-टोना को जानने वाले व्यक्ति का उल्लेख गुनी के नाम से किया है।

(६) **गारुड़ी**—यह विष-वैद्य है। सर्प-दंश से पीड़ित व्यक्ति के विष को दूर करने के कारण यह गारुड़ी अथवा "विष-वैद्य" कहलाता है।

द्वादश अध्याय

मन्त्र-तन्त्र-यन्त्र सम्बन्धी लोक-विश्वास

ग्रामीण जनता का लोक-जीवन मन्त्र, तन्त्र और यन्त्रों के द्वारा परिचालित होता है। जो जातियाँ आधुनिक सभ्यता के चाकचिक्य तथा प्रकाश से जितनी दूर हैं उनमें तन्त्र-मन्त्र का प्रचार उतना ही अधिक पाया जाता है। गाँवों में इसे 'तन्तर-मन्तर' कहा जाता है जो तन्त्र और मन्त्र का अपभ्रंश रूप है।

मन्त्र का अर्थ रहस्य भी होता है। अतः मन्त्र रहस्यात्मक होता है, किसी देवी-देवता को प्रसन्न करने के लिए जिस शब्द-समुदाय का जप किया जाता है उसे मन्त्र कहते हैं। ये शब्द प्रायः निरर्थक होते हैं अर्थात् इनमें प्रत्येक अक्षर या शब्द का कोई अर्थ नहीं होता। परन्तु इन्हीं निरर्थक शब्दों मे ऐसी दैवी शक्ति निहित है जिससे सकल कामना की सिद्धि होती है।

शाक्त मत के उपासक यन्त्रों की सहायता से सफलता को प्राप्त करते हैं। यन्त्र त्रिकोणात्मक, चतुर्भुजात्मक अथवा वृत्ताकार 'डायग्राम' (चित्र) होते हैं जिनमें किसी मन्त्र को लिख कर उसकी पूजा की जाती है। मन्त्र मौखिक रूप में होते हैं परन्तु यन्त्र लिखित होते हैं। यही दोनों में अन्तर है। यन्त्र, दर्शन शास्त्र का क्रियात्मक स्वरूप है। दर्शन में सिद्धान्त का प्रतिपादन रहता है परन्तु यन्त्र में पूजा-आराधना की प्रक्रिया का वर्णन होता है। यही दोनों में अन्तर है।

(१) परिच्छेद

मन्त्र—सुप्रसिद्ध कोशकार वामन शिवराम आप्टे ने मन्त्र का प्रथम अथवा प्रधान अर्थ वैदिक सूक्त या प्रार्थनापरक वैदिक ऋचा दिया है। इस प्रकार वैदिक ऋचाओं को प्रधानतया मन्त्र कहा जाता है। परन्तु गौड़ तथा अप्रधानअर्थ गुप्त वार्ता, मन्त्रणा, परामर्श है। इसका तीसरा अर्थ गुप्त मन्त्रणा

या रहस्य है।[1] इससे स्पष्ट पता चलता है कि 'मन्त्र' शब्द में गोपनीयता की भावना किसी-न-किसी रूप में विद्यमान रहती है।

लोक में सामान्य जनता भी मन्त्र को परम पवित्र तथा अत्यन्त गोपनीय वस्तु समझती है। इसीलिए मन्त्र किसी दूसरे व्यक्ति को साधारणतया बताया नहीं जाता। यदि किसी व्यक्ति को इसे बतलाना ही है तो किसी अवसर पर इसका उद्‌घाटन किया जाता है।

वैदिक मन्त्रों का सस्वर उच्चारण किया जाता था और आज भी किया जाता है। इन मन्त्रों की विशेषता यह है कि इनका उच्चारण सस्वर तथा अत्यन्त शुद्ध हो। क्योंकि स्वरों के विपर्यय (गड़बड़ी) हो जाने से अर्थ के स्थान पर अनर्थ हो जाने की आशंका बनी रहती है इसीलिए पतंजलि ने इन मन्त्रों के शुद्ध उच्चारण पर बड़ा बल दिया है।[2]

मंत्र और यंत्र में अन्तर

मंत्र शब्द के साथ ही लोक में एक अन्य शब्द अत्यन्त प्रचलित है जिसे तंत्र कहते हैं। ग्रामीण जनता इस जोड़े शब्दों को 'जन्तर-मन्तर' के नाम से पुकारती है जो 'यंत्र-मंत्र' का अपभ्रंश रूप है। मंत्र वह शब्द है जिसका उच्चारण किया जाता है। यह उच्चारण सर्वथा शुद्ध तथा सस्वर होना चाहिए। परन्तु यंत्र उच्चरित न होकर सर्वथा लिखित होता है। डॉ० सत्येन्द्र ने इस विषय में लिखा है कि 'जंत्र या यंत्र' वह होता है जो लिखकर किया जाता है और लिखकर किसी प्रकार से जिसका संबंध शरीर से किया जाता है। यह जन्तर या यंत्र शरीर से लगकर (स्पर्श करते हुए) ही प्रभाव पैदा करता है। किन्तु जो केवल शब्द रूप में प्रभाव करने वाला हो वह 'मन्तर' या मंत्र है।[3] गाँवों में भूर्जपत्र अर्थात् 'भोज पत्र' पर लाल स्याही से किसी मंत्र को तांत्रिक या मांत्रिक लिख देता है। उसी को तावीज का रूप देकर बाँहों में बाँध दिया जाता है जो उस व्यक्ति के शरीर का सदा स्पर्श करता रहता है। इस प्रकार मंत्र और यंत्र में बहुत अन्तर माना जाता है।

---

१. आप्टे—संस्कृत हिन्दी कोश, पृ० ७७४

२. पतंजलि-महाभाष्य, आह्निक-१

३. डॉ० सत्येन्द्र—लोक साहित्य विज्ञान, पृ० ३६३

मंत्रों के विकास की प्रक्रिया

जैसा कि पहिले लिखा जा चुका है प्राचीन काल मे वैदिक ऋचाओं को ही मंत्र की संज्ञा दी जाती थी। लोक में मंत्रों की उद्भावना का संबंध शिव जी से माना जाता है। अतः देवताओं की वाणी को भी मंत्र के रूप में समझा जाने लगा। "एक विशिष्ट व्यक्तित्व मे संबद्ध होकर निरर्थक शब्द भी मंत्र का काम करने लगा। शिव परम सिद्ध हैं। अतः उनकी वाणी 'स्वयंसिद्ध' है फलतः मंत्र शब्द "सिद्ध मंत्र" हो गया। अब मंत्र अनुष्ठान का अंग नहीं रहा। परन्तु सिद्धि के लिए कुछ अनुष्ठान मंत्र के लिए भी, आवश्यक अंग हो गया। वैदिक भूमि त्याग कर मंत्रों ने सिद्धों की भूमि ग्रहण की। फिर नाथों से इनका सबंध हुआ।"[1]

लोक में मंत्र अब शुद्ध टोने के रूप में प्रयुक्त होता है। सर्व साधारण जनता का यह दृढ़ विश्वास है कि मंत्र के प्रयोग करने से कार्य की सिद्धि अवश्य होती है। व्रज प्रदेश में मंत्रों के प्रयोग के द्वारा किसी कार्य में सफलता को दिलाने वाले व्यक्ति को "स्याना" कहा जाता है जो 'सयाना' या चतुर का द्योतक है। भोजपुरी प्रदेश में यह कार्य ओझा करता है। अतः अब मंत्र साधारण जनता की सम्पत्ति है।

मंत्रों में प्रयुक्त शब्दों की निरर्थकता

यहाँ मंत्र शब्द से अभिप्राय वैदिक ऋचाओं से न होकर उन शब्द-समूहों से है जिनका प्रयोग किसी कार्य सिद्धि के लिए पण्डितों, पुरोहितों, स्यानों तथा 'ओझाओं' के द्वारा किया जाता है। इन मंत्रों मे प्रयुक्त अक्षरों अथवा शब्दों का कोई विशेष अर्थ नहीं होता। अथवा यों कहना चाहिए कि इनका कुछ भी अर्थ नही होता। परन्तु इन शब्दों में ऐसी दैवी शक्ति समाहित है कि इनके उच्चारण मात्र से ही एक अद्भुत ऊर्जा उत्पन्न होती है जो किसी कार्य को सम्पन्न करने में समर्थ होती है।

उदाहरण के लिए "ओऽम् ह्रीं, क्लीं चामुण्डायै विच्चै" इस मंत्र को लिया जा सकता है। जहाँ तक इस प्रस्तुत लेखक को ज्ञात है ह्रीं, क्लीं तथा 'विच्चै' शब्दो का कोई भी अर्थ नहीं है। ये निरर्थक शब्द-समूह हैं। परन्तु इन शब्दों मे ऐसी शक्ति, ऊर्जा तथा प्रभाव समाहित है, केन्द्रीभूत है जिससे वे किसी

---

१ डॉ० सत्येन्द्र—लो० सा० वि० पृ० २६६

भी कार्य को सिद्धि में समर्थ हैं। इस प्रकार निरर्थक शब्द-समूह होते हुए भी, मंत्रों की प्रभावोत्पादकता पर किसी प्रकार से भी सन्देह नहीं किया जा सकता। अतः मंत्रों का प्रभाव तथा उत्कृष्टता सर्वोपरि है।

मंत्रों की प्रभावोत्पादकता

भारतीय दर्शन में शब्द को ब्रह्म माना गया है। शब्द के अतिरिक्त 'अक्षर' को भी ब्रह्म कहा गया है। गीता में भगवान् श्री कृष्ण ने 'ओऽम्' को एकाक्षर ब्रह्म की संज्ञा प्रदान की है।[1] अतः शब्द की प्राप्ति ही ब्रह्म की प्राप्ति है। अतः मंत्रों में दैवी शक्ति विद्यमान है।

मंत्रों में विद्यमान इस दैवी शक्ति के द्वारा गाँवों में इनका उच्चारण कर भूत-दूत तथा प्रेत एवं पिशाच की बाधाओं को दूर किया जाता है। इन मंत्रों का जाप करने से मारण, मोहन और उच्चाटन आदि कार्यों की सिद्धि की जाती है। सर्प-दंश की पीड़ा को नष्ट किया जाता है तथा बिच्छू के डंक को भी समाप्त किया जा सकता है।

ग्रामीण क्षेत्रों में इन मंत्रों की प्रभावोत्पादकता पर लोगों का इतना अटूट विश्वास है कि यदि किसी को अपच भी हो जाता है तो इसके लिए भी मंत्र का प्रयोग किया जाता है। ततैया यदि काट ले तब भी मंत्र के द्वारा ही उसे ठीक करने का प्रयास करना पड़ता है। इस प्रकार मंत्रों के प्रभाव की सार्वभौमिकता सर्वत्र व्याप्त है।

लोक-व्यवहार में प्रयुक्त कुछ मंत्र

ग्रामीण जनता अपने दैनिक व्यवहार में मंत्रों का प्रयोग प्रचुर परिमाण में करती है। दूत-भूत को भगाना हो, चाहे सर्प-दंश के प्रभाव को नष्ट करना हो, बिच्छू के काटने की पीड़ा को दूर करना हो अथवा ततैया के काटने की, आग को 'बाँधना' हो, चाहे किसी व्यक्ति की दृष्टि को; गाँव के ओझा या सयाना सर्वत्र मंत्र का प्रयोग करता है। किम्बहुना, पेट के अन्न को पचाने के लिए भी मंत्रों की सहायता ली जाती है।

---

१. ओऽमित्येकाक्षरं ब्रह्म,
व्याहरन् मामनुस्मरन्। —गीता

यहाँ कुछ ऐसे मंत्रों को दिया जाता है जिनका प्रयोग विभिन्न कार्यों में किया जाता है।

(१) **चमत्कार दिखलाने वाला मंत्र**—लोगों का ऐसा विश्वास है कि निम्नांकित मंत्र को पढ़कर तेल लगाने से मोहन शक्ति प्राप्त होती है अर्थात् इसके द्वारा किसी व्यक्ति को अपने वश में किया जा सकता है। यह मंत्र इस प्रकार है—

"ई तिली तेल मदन तेल या तेल मोरा,
मस्तिष्क चढ़ि कारी छेरी
या बन मे आई
बंस की डार आई
नरसिंह की मोहिनी रही सभा में छाय
सबद साँचा पिंड काचा
फुरो मंत्र ईश्वरो बाचा।"

(२) **गर्भ-स्तम्भन का मंत्र**—इस निम्नांकित मंत्र को पढ़ने से ऐसा विश्वास है कि गर्भ का स्तम्भन हो जाता है।

"ॐ कील कीलं महाकील,
और देव का कीला बूंट,
नरसिंह देवा कीलान बूंट,
तो जिमी असमान की कील टूटै
सबद साँचा
पिण्ड काँचा
फुरो मंत्र ईस्वरो बाचा।"

(३) **प्रसूति होने का मंत्र**—'श्री मुक्ता पार विमुक्ता स्वमुक्ता श्रयेण रस्मय: मुक्ता सवभप्सअर्मा रापि हिमाचिर स्वहा। या मंत्र सूं जल बार ७ इस्त्री पिबावै तत्काल प्रसूती हाय।"

(४) बैन बाँधने का मंत्र[1]

"करई बेलि की तुमरी करए तेरे पात,
मारूँ मूँठि मसान की टूक-टूक है जात
मारूँ फूंक बजै नहिं पातो,
खेंचि के बन्द दै गुरु गोरख नाथ
भक्त मेरी शक्ति गुरु कूँ
फरो मंत्र ईसुर बाचा,
मेरी गुरु करूँ सबहु साँचा
आदेस गुरु कूँ।"

मंत्रों का वर्गीकरण

मंत्रों को साधारणतया दो श्रेणियों में विभक्त किया जा सकता है—(१) पारमार्थिक (२) लौकिक। पारमार्थिक मंत्र वे हैं जिनका उपयोग परमार्थ अर्थात् दूसरों की भलाई के लिए किया जाता है। इनमें लोक-कल्याण की भावना समाहित होती है। इनका संबंध घनिष्ठ रूप से धर्म से होता है। ये मंत्र संस्कृत भाषा में निर्मित होते हैं। इनका उपयोग संसार के कल्याण तथा विश्व में शान्ति-स्थापना के लिए किया जाता है। सहस्र चण्डी तथा लक्ष चण्डी पाठों तथा यज्ञों का यही उद्देश्य होता है। इन मंत्रों का प्रयोग कदाचित् ही कभी लोक-औषधि के रूप में किया जाता हो। यद्यपि कभी-कभी गायत्री मंत्र से जल को अभिमंत्रित करके भूत-दूत भगाने तथा शारीरिक रोगों को दूर करने में भी इसका व्यवहार होता है।

लौकिक मंत्र प्रायः हिन्दी भाषा में होता है अथवा वहाँ की क्षेत्रीय बोली में होता है जहाँ इसका प्रचार है। इन लौकिक मंत्रों का उपयोग सर्वदा लोक-चिकित्सा के निमित्त किया जाता है। भूतों को भगाने; सर्प तथा बिच्छू का दंश उतारने, महामारी को शान्त करने तथा अन्य रोगों के नष्ट करने में ही इनका प्रयोग सदा व्यवहार में लाया जाता है।

(५) भाला, चाकू और उस्तरा बाँधने का मंत्र

गाँवों में प्रायः जमीन के लिए झगड़ा हुआ करता है। कभी-कभी यह

१. इन मंत्रों को डॉ० सत्येन्द्र की पुस्तक, लो० सा० वि०, पृ० ४१२-१४ से लिया गया है।

झगड़ा प्रचण्ड रूप धारण कर लेता है और भाला, बर्छा और चाकू आदि हथियारों का लोग खुल कर प्रयोग करते हैं। ऐसे अवसरों पर इन घातक हथियारों के द्वारा उनके आक्रमण को विफल बनाने के लिए मंत्रों का प्रयोग किया जाता है। इन मंत्रों के प्रयोग से आक्रामक का हाथ आक्रमण करने के लिए उठता ही नहीं अथवा उसके हाथों से हथियार छूट कर जमीन पर गिर जाते हैं। इस प्रक्रिया को "भाला बाँधना" कहा जाता है। ऐसा ही एक मंत्र को यहाँ लिखा जाता है जिसका प्रयोग भाला, बर्छा, चाकू या उस्तरा किसी भी हथियार को 'बाँधने' अर्थात् निष्क्रिय बनाने में किया जाता है।

"धार धार अधर धार।
धार बाँधू सात बार।
अनी बाँधू इक्कीस बार।
कटै न चमार, फटै न चीर।
धार बाँधौ हनुमन्त वीर।
आदेश गुरु कूँ विद्या मोकूँ।
आनि वीर हनुमन्त की।"

(२) परिच्छेद

तंत्र

तंत्र शब्द की व्युत्पत्ति विस्तार के अर्थ में प्रयुक्त 'तनु—विस्तारे' धातु से 'ष्ट्रन्' प्रत्यय करने से सिद्ध होती है। अतः तंत्र शब्द का अर्थ हुआ वह शास्त्र जिसके द्वारा ज्ञान का विस्तार होता है। तंत्रों का दूसरा नाम 'आगम' है। आगम वह शास्त्र है जिसके द्वारा भोग और मोक्ष के उपाय बुद्धि में आते हैं। यह व्युत्पत्ति आगम और निगम के भेद को बतला रही है।

कर्म, उपासना और ज्ञान के स्वरूप को निगम अर्थात् वेद बतलाता है तथा उनके साधनभूत उपायों को आगम अर्थात् तंत्र शास्त्र सिखलाता है। इस प्रकार से आगम और निगम में स्पष्ट अन्तर प्रतीत होता है। इसीलिए गोस्वामी तुलसीदास ने रामायण को आगम और निगम इन दोनों का निचोड़ बतलाया है।[1]

तंत्रों को प्रधानतया तीन श्रेणियों में विभक्त किया जा सकता है :—

१ नाना पुराण-निगम-आगम सम्मतं यद् रामायणे निगदितं क्वचिदन्यतोऽपि।

(१) वैष्णव तंत्र, (२) शैव तंत्र तथा (३) शाक्त तंत्र। वैष्णव तंत्र वे हैं जिनका उपयोग वैष्णवो के द्वारा किया जाता है। इसी प्रकार शैव तंत्र शिव के भक्तों का प्रतिपाद्य विषय है। शक्ति अर्थात् दुर्गा अथवा किसी अन्य देवी के उपासक जिन तन्त्रों को प्रयोग में लाते है उन्हें शाक्त तंत्र कहा जाता है।

तन्त्र ग्रन्थों के अनुशीलन से स्पष्ट प्रतीत होता है कि तंत्र दो प्रकार के होते है—(१) वेदानुकूल-तन्त्र तथा (२) वेद बाह्य-तन्त्र। कतिपय तंत्रो के सिद्धान्त तथा आचार का मूल स्रोत वेद से ही प्रवाहित होता है। पांच रात्र तथा शैवागम के कतिपय सिद्धान्त वेद-मूलक अवश्य हैं परन्तु प्राचीन ग्रन्थो मे इन्हें वेद बाह्य ही माना गया है। शाक्तों के सप्त विध आचारो में से केवल एक ही आचार, जिसे 'वामाचार' कहा जाता है, की घृणित पूजा पद्धति के बल पर समस्त शाक्त आगम को लोग अवैदिक ठहराते है।

शाक्त मत में सात आचार होते हैं :—(१) वेदाचार, (२) वैष्णवाचार (३) शैवाचार, (४) दक्षिणाचार, (५) सिद्धान्ताचार, (६) कौलाचार तथा (७) वामाचार।[१] इस अन्तिम वामाचार का संबंध लोक-संस्कृति तथा लोक-विश्वास से पाया जाता है। अतः इसी वामाचार का वर्णन यहाँ संक्षेप रूप में प्रस्तुत किया जाता है। अन्य पाँच या छः आचारों का संबंध शाक्त दर्शन से है। लोक में उनका समधिक प्रचार नहीं है। अतः उनका वर्णन प्रसङ्गानुकूल न होने से उन्हे छोड़ दिया जाता है।

वामाचारियों की घृणित क्रिया पद्धति के द्वारा ही तंत्र शास्त्र के प्रति साधारण जनता में घृणा उत्पन्न हो गई है। तंत्र शास्त्र की विशेषता क्रिया है। अतः ये वामाचार मार्गी अपनी सिद्धि के सम्पादन के लिए निम्नांकित पाँच वस्तुओं का प्रयोग करते थे। (१) मद्य (२) मांस (३) मैथुन (४) मत्स्य और (५) मुद्रा।

इन पाँचों शब्दों का प्रत्येक अक्षर 'म' से प्रारम्भ होता है अतः इन्हें पंच मकार भी कहा जाता है। इन्हें 'पंच तत्त्व साधन' भी कहा गया है। लक्ष्मीधर के कथनानुसार आधार चक्र या योनि की प्रत्यक्ष रूप से पूजा करने वाले तांत्रिक 'कौल' तथा उसकी भावना करने वाले उपासक 'समय-मार्गी' के नाम से प्रसिद्ध थे। 'समय मार्ग' में अन्तर्याग अर्थात् आन्तरिक उपासना को महत्त्व दिया जाता है।

---

१. आचार्य बलदेव उपाध्याय—भारतीय दर्शन (पंचम संस्करण, पृ० ५४०-४५)

लक्ष्मीधर ने कौलों के दो सम्प्रदायों का उल्लेख किया है। (१) पूर्व कौल तथा (२) उत्तर कौल। पूर्व कौल वाले श्रीचक्र के भीतर स्थित योनि की पूजा करते है परन्तु 'उत्तर कौल' सम्प्रदाय के अनुयायी किसी सुन्दरी, तरुणी स्त्री के प्रत्यक्ष योनि की पूजा करते थे। ये उपर्युक्त पंच मकारों को स्पष्ट तथा स्वच्छन्द रूप से उपयोग में ले आते थे और इस प्रकार अपनी 'कौलाचारी' पूजा को सम्पन्न तथा परिपूर्ण समझते थे।

शाक्त तंत्र के प्रधान केन्द्र

शाक्त पूजा के प्रधान तीन केन्द्र माने जाते हैं—(१) कश्मीर (२) काँची तथा (३) कामाख्या। इनमे प्रथम दोनों स्थान श्री विद्या के प्रख्यात केन्द्र हैं। परन्तु असम राज्य में गुवाटी (गौहाटी) नगर के पास स्थित कामाख्या कौल सम्प्रदाय वालों का प्रधान तथा सर्व प्रचलित पीठ माना जाता था। आज भी इसकी ख्याति कुछ कम नहीं है।

ऐसी प्रसिद्धि है यहाँ सती का योनि अंग गिरा था। अतः इस मंदिर मे भगवती की योनि की पूजा का ही विधान है। ऐसा ज्ञात होता है कि इसी कारण वामाचारियों ने यहाँ सुन्दरी तथा तरुणी युवती की प्रत्यक्ष तथा साक्षात् योनि (भग) की पूजा करना प्रारम्भ कर दिया होगा।

कामाख्या भौगोलिक दृष्टि से भारत तथा तिब्बत, जिसे प्राचीन काल मे भोट कहते थे, दोनों से संबद्ध है। इसके फलस्वरूप यहाँ तिब्बती (या बौद्ध) तंत्रों का प्रभाव पड़ने से पूजा में उग्रता का आना स्वाभाविक ही था। कालान्तर में यहाँ तंत्र-मंत्र को जानने वाली स्त्रियों (डायनों) का इतना प्रभाव बढ गया कि ग्रामीण क्षेत्रों में यह प्रसिद्धि हो गई कि यहाँ की डाइनें पुरुषों को अपनी मंत्र शक्ति से भेड़ा और बकरा बना सकती हैं।

वामाचार सम्प्रदाय वालो का सिद्धान्त भले ही वैदिक हो तथा वे अपने सिद्धान्तों का मूल स्रोत वेदों को बतलाते हों परन्तु उनके आचार-व्यवहार तथा क्रियायें लोक में इतनी अनैतिक थी कि सर्व साधारण जनता में उनके प्रति घृणा की भावना उत्पन्न होने लगी। यह भावना अपनी उत्कर्ष सीमा तक इतनी पहुँच गई कि कौलों का नाम लेते ही जनता में जुगुप्सा तथा घृणा के भाव जागृत हो जाते थे। इन कौलों के सिद्धान्त तथा आचार में आकाश और पाताल का अन्तर था। इसीलिए इनके संबंध में यह श्लोक अत्यन्त प्रचलित हो गया कि

"अन्तः शाक्ताः, बहिः शैवाः;
सभा मध्ये च वैष्णवाः ।
नाना-रूप-धराः कौलाः,
विचरन्ति महीतले ॥"

मेरी ऐसी धारणा है कि इन कौलों तथा वामाचारियों ने ही जनता में 'अघोर मत' का प्रचार किया जिसके अनुयायी 'अघोरी' कहलाते हैं । जाति-पाँति का विचार न रखने तथा अखाद्य वस्तुओं जैसे—मांस, जूठा अन्न आदि को खाने के कारण ही ये जनता की जुगुप्सा, घृणा तथा उपेक्षा के पात्र हो गये । यह अच्छा ही हुआ कि सामान्य जनता में इस "अघोरी सम्प्रदाय" का विशेष प्रचार नहीं हो सका ।

(३) परिच्छेद

यन्त्र

कोशकार आप्टे के अनुसार यंत्र एक रहस्यमय, ज्योतिष का रेखाचित्र है जो ताबीज की भाँति प्रयुक्त किया जाता है । इस परिभाषा के अनुसार मंत्र और तंत्र से इसकी पृथकता स्पष्ट प्रतीत होती है । प्राचीन काल में शत्रु के नाश के लिए, किसी कार्य की सिद्धि के निमित्त अथवा रोगों के नाश के लिए यंत्रों का प्रयोग किया जाता था । इसके अतिरिक्त विभिन्न देवताओं को अपनी मंगल कामना की सिद्धि के लिए, वश में करने के लिए भी यंत्रों का व्यवहार होता था । अथर्ववेद में अनेक यंत्रों का वर्णन पाया जाता है जिनके द्वारा मारण, मोहन, वशीकरण के अतिरिक्त शत्रुओं का नाश भी किया जाता था ।

तंत्र शास्त्र की ही भाँति यंत्र का क्षेत्र भी अत्यन्त विस्तृत है । इस विषय का विस्तृत तथा प्रामाणिक वर्णन संस्कृत के अनेक ग्रन्थों में उपलब्ध होता है । यहाँ पर कुछ प्रधान यंत्रों का उल्लेख अत्यन्त संक्षिप्त रूप में किया जाता है । इनकी विशेष जानकारी के लिए संस्कृत के प्रामाणिक ग्रन्थों का अध्ययन करना चाहिए । अन्त में लोक में जिस प्रकार इन यंत्रों का व्यवहार होता है उसका समास रूप में वर्णन पर्याप्त होगा ।

संस्कृत साहित्य में यंत्रों के संबंध में प्रचुर परिमाण में वर्णन प्राप्त होता है । परन्तु यहाँ दो तीन अत्यन्त प्रसिद्ध यंत्रों की ही चर्चा की जाती है ।

(१) श्री यंत्र

यंत्र-शास्त्र में श्रीयंत्र उस महा शक्ति का प्रतीक है जो वैभव और सम्पदा की अधिष्ठात्री लक्ष्मी के रूप में विख्यात है । श्री यंत्र-साधना का मूलमंत्र है :—

क ए ल ह्रीं,
स क ह ह्रीं,
स क ल ह्रीं ॥"

की प्रतिमा (मूर्ति) की भाँति इस यंत्र की नियमित रूप से
ए।

' यंत्रम्' का एक चित्र दिया जाता है।
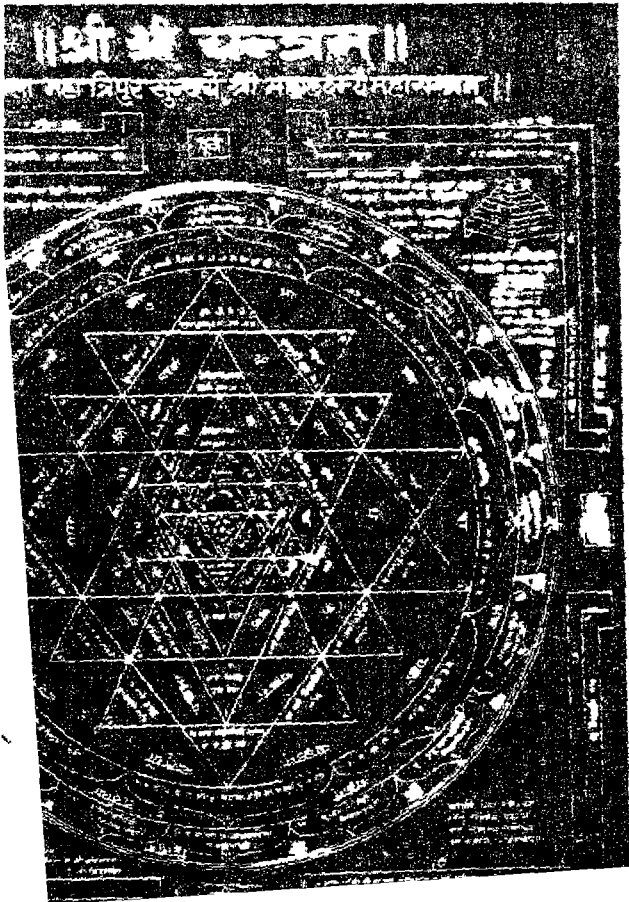
(२) "श्री बगलामुखी यंत्रम्"

बगलामुखी का यह यंत्र बड़ा ही प्रसिद्ध है जो अत्यन्त भयंकर विनाश के लिए रामबाण की तरह सफल माना जाता है। देवी बगलामुखी के इस यंत्र का प्रभाव विशेष रूप से शत्रु-दमन के कार्य में दृष्टिगत होता है। शत्रुकृत उपद्रव, मामला-मुकदमा आदि समस्याओं के निराकरण करने में उपर्युक्त यंत्र की सफलता असंदिग्ध मानी जाती है।

सर्वप्रथम किसी शुभ मुहूर्त में सोने, चाँदी अथवा ताँबे के पत्तर पर 'बगलामुखी' यंत्र की रचना करनी चाहिए। यंत्र के तैयार हो जाने पर उसकी प्राण-प्रतिष्ठा करने के पश्चात् उनकी प्रतिमा को स्थापित करे। इसके बाद निम्नांकित मन्त्र से देवी का ध्यान करना चाहिये।

"मध्ये सुधाब्धि-मणिमण्डप-रत्न वेद्यां,
सिंहासनोपरिगतां, परिपीतवर्णाम्।
पीताम्बरा भरण-माल्य-विभूषिताङ्गीम्,
देवीं भजामि धृत मुग्दर-वैरि-जिह्वाम्॥"

इस देवी की पूजा करते समय पीले वस्त्रों के धारण करने का विधान है। मन्त्र को जपते समय घी का दीपक जलाना चाहिए। बगलामुखी बड़ी ही भयंकर देवी मानी जाती हैं। अतः इनकी पूजा तथा मन्त्र का जप शत्रुओं के विनाश का अचूक उपाय है। अगले पृष्ठ पर बगलामुखी यंत्र का चित्र दिया जाता है।[1]

---

1. सौजन्य—"हिन्दुस्तान टाइम्स" साप्ताहिक, नवम्बर, सन् १९८६ ई०

ए कुबेर यन्त्र तथा पंच दशी आदि यन्त्र भी प्रसिद्ध हैं। इनउल्लेखों
है कि प्राचीन भारत में इन यन्त्रों की कितनी प्रधानता थी।
के नाश के लिए धन-धान्य की प्राप्ति तथा अपनी अभीष्ट
द्धि के लिए इन यंत्रो की पूजा तथा आराधना किया करते थे।

त्रिभुज

लोक-संस्कृति (फोकलोर) के प्रकाण्ड विद्वान् क्रुक ने लिखा है कि वह त्रिभुज जिसकी तीनो भुजायें बरावर हों एक विशेष रहस्यात्मक अर्थ से युक्त चिह्न है। ईसाइयों के मतानुसार तीन त्रिभुज जो आपस में एक दूसरे को काटते हैं और जिनकी भुजायें केवल पाँच हों—उन्हें सोलोमन का पेन्टेंगल (Pentangle of Solomon) कहा जाता है। यदि इस आकृति को किसी मनुष्य के शरीर पर बना दी जाय अथवा छाप दी जाय तो वह आकृति भूतों के भगाने का निश्चित साधन मानी जाती है।[1] इसी प्रकार से उत्तरी भारत में समबाहु त्रिभुज (Equilateral triangle) भी रहस्यात्मक यंत्र माना जाता है। छोटे बालकों को कुदृष्टि से बचाने के लिए जो छोटा-सा ताबीज उनके गले में लटकता रहता है उसकी भी आकृति इसी प्रकार की होती है। इस कार्य के लिए हीरा (Diamond) की आकृति वाले ताबीज भी इसी लिए प्रभावशाली माने जाते हैं कि उनका रूप दो समबाहु त्रिभुज के समान होता है।[2]

ताबीज

ताबीज को अंग्रेजी में एमुलेट (Amulet) कहा जाता है। इसकी परिभाषा बतलाते हुए क्रुक ने लिखा है कि ताबीज मृत मनुष्य अथवा पशु के शरीर का वह भाग है जिसके धारण करने से भूत-प्रेत का नाश अथवा उनकी प्रसन्नता को प्राप्त किया जा सकता है।[3] इसी विषय को और अधिक स्पष्ट करते हुए मेरियालीच ने इसकी सुन्दर परिभाषा निम्न प्रकार से विस्तार पूर्वक दी है। उनके अनुसार ताबीज वह पार्थिक पदार्थ है जो शरीर में पहिना जाता है अथवा घर में रख दिया जाता है जिससे इसके स्वामी की रक्षा निम्नांकित

---

१. क्रुक—पा० रि. फो. लो.—भाग २, पृ० ३६

२. क्रुक— वही पृ० ३६

३. An amulet is primarily a portion of dead man or animal, by which hostile spirits are coerced or their good offices secured.

क्रुक—पा० रि० फो० लो०—भाग २. पृ० ३८

आपदाओं से हो सके। जैसे—मृत्यु, जहाज का डूबना, बिजली गिरना; चोरों अथवा पशुओं के द्वारा आक्रमण, भूत-प्रेतों से रक्षा, डायनों तथा उनकी कुदृष्टि से बचाव आदि। इसके अतिरिक्त इनसे सौभाग्य, वैभव, शारीरिक शक्ति आदि की प्राप्ति; तथा युद्ध, शिकार तथा व्यापार में सफलता भी मिलती है। इसके द्वारा किसी के प्रेम-व्यापार में भी कार्य की सिद्धि मिलती है।[1]

ताबीज संसार के सभी देशों के मनुष्यों के द्वारा व्यवहार में लाया जाता है। यह अमेरिका के सभी निवासियों के लिए घोड़े की नाल, सौभाग्यशाली सिक्का, घड़ी की चेन, और सफेद चूहे (Rabbit) के पैरों के रूप में लोकप्रिय तथा प्रचलित है। ताबीज पुरुषों, स्त्रियों तथा बच्चों सभी के द्वारा व्यवहार में लाया जाता है। या तो इसे झोले में रख लेते हैं, अथवा पाकेट में रख कर ले जाते हैं या पहिनने के कपड़ों मे सी लेते हैं। इसके अतिरिक्त ये पालतू पशुओं, गृहों, हथियारों; उपजाऊ खेतों, भण्डार घर, खलिहान और अन्नागारों मे भी रख दिये जाते हैं। लोगों का विश्वास है कि ऐसा करने से इन वस्तुओं की रक्षा तथा वृद्धि होती है।[2]

ताबीज प्रायः अवरोधक (Preventive) होते हैं। अर्थात् इनके धारण करने से भूत-दूत तथा अन्य बुरी आत्मायें पास में फटकने नहीं पाती। मंगोल जाति के लोग इसका प्रयोग वर्षा तथा बिजली से रक्षा करने के लिए, यहूदी लोग गर्भपात रोकने के लिए, और इटली निवासी डायनों की कुदृष्टि से बचने के लिए करते हैं।[3]

---

1. An amulet is a material object, usually portable and durable, worn or carried or person placed in a house, or on or among one's possessions, to protect the owner from dangers such as death, ship wreck, lightning, attacks by thieves or animals, evil spirits, witch craft, or the evil eye; to aid him in acquiring luck, wealth physical strength, magical powers, and to bring success in hunting, trading, battle or love.

   मेरियालीच डि० मा० ली० फो०—भाग १

२. मेरियालीच—स्टैं० डि० फो० मा० ली०—भाग २

३. मेरियालीच—वही, भाग २

ताबीजों के भेद

ताबीज अनेक प्रकार की वस्तुओं से बनाये जाते हैं; जैसे पत्थर, किसी धातु का टुकड़ा, हड्डी, भूर्जपत्र पर लिखा गया मंत्र, विभूति, बाघ का नाखून और कोई अभिमंत्रित यंत्र। गाँवों में छोटे बच्चों को कुदृष्टि से बचाने के लिए 'राजाबरत' नामक पत्थर को चाँदी अथवा सोना में मढ़वा कर उनके गले में बाँधा जाता है। कभी-कभी बाघ के नाखूनों को भी सूत में बाँध कर गले से लटका दिया जाता है। अनेक त्रिभुजाकार अथवा आयताकार यंत्रों को मंत्रों से अभिमंत्रित करके, बच्चों के हाथ अथवा गले में धारण करने के लिए दिया जाता है।

भोजपत्र में लाल स्याही से मंत्रों को लिखकर उन्हें चाँदी अथवा सोने की डिबिया में रखकर उस व्यक्ति को पहिना दिया जाता है जो किसी रोग विशेष अथवा भूत-प्रेत की बाधा से पीड़ित होता है। सर्व साधारण जनता तांबे की छोटी नली में इन मंत्रों को स्थापित कर इनकी ताबीज बनाती है।

क्रुक ने विभिन्न यंत्रों को मंत्रों के द्वारा अभिकीलित करके ताबीज के रूप में धारण करने का उल्लेख किया है। इस विषय के विशेष विवरण के लिए क्रुक महोदय की पुस्तक पठनीय है।[1]

ताबीज धारण करने के प्रयोजन

ताबीज धारण करने के अनेक प्रयोजन होते हैं जिनमें से निम्नांकित प्रधान हैं—

(१) रोगों से रक्षा
(२) भूत-प्रेतों को भगाना
(३) सन्तान-पुत्र की प्राप्ति
(४) धन तथा वैभव को प्राप्त करना
(५) दुष्ट ग्रहों से निवृत्ति

ताबीज धारण करने के अनेक प्रयोजन होते हैं जिनमें सबसे प्रधान रोगों से अपनी रक्षा करना है। नवजात शिशु प्राय: बीमार हो जाते हैं। उन्हें कुदृष्टि

---

१. क्रुक—पा० रि० फो० लो०—भाग २, पृ० ३९ (तृतीय संस्करण नयी दिल्ली १९६८)

भी प्रायः जल्दी ही लग जाती है। अतः इन्हें रोगों से तथा कुदृष्टि से बचाने के लिए ताबीज अवश्य ही पहिनाई जाती है। सोने अथवा चाँदी में 'राजावरत' नामक पत्थर को पहिनाने का पहिले उल्लेख किया गया है। भूत-प्रेतों को भगाने के लिए भी ताबीज को लोग धारण करते हैं। प्रेत-बाधा से पीड़ित मनुष्य किसी ओझा अथवा 'सयाना' के पास जाते हैं और उनसे प्रेत-बाधा को दूर करने के लिए कोई यंत्र या ताबीज माँगते हैं। ओझा उन्हें कोई ताबीज बनाकर दे देता है और वे उसे अपने शरीर पर हाथ अथवा गले में धारण कर लेते हैं। संक्रामक रोगों तथा भूतों को भगाने के लिए दुर्गा सप्तशती का यह श्लोक प्रयोग किया जाता है।

"इत्थं यदा यदा बाधा; दानवोत्था भविष्यति।
तदा तदावतीर्या हं; करिस्यामि अरिसंक्षयम्॥"

ताबीज का एक प्रयोजन सन्तान-विशेषतः पुत्र को प्राप्ति करना भी है। हिन्दू समाज में पुत्र का प्रधान स्थान है। यह अपने माता-पिता के आशाओं का केन्द्र होने के साथ ही उनका समुचित उत्तराधिकारी भी माना जाता है। ऐसी दशा में ताबीज आदि अनेक उपायों से पुत्र की प्राप्ति आवश्यक मानी जाती है।

पुत्र के उत्पन्न होने पर उसकी सब प्रकार से रक्षा करना पिता का आवश्यक धर्म हो जाता है। मिर्जापुर जिले के कोरवा जाति के लोग अपने बच्चों के गले में 'सियार सिंघी' नामक जंगली पौधे की जड़ को बाँधते हैं जिससे उसकी प्रेतबाधा से रक्षा होती रहे। खरवार नामक दूसरी जाति के लोग रोग ग्रस्त होने पर बेल (श्री फल) की पत्तियों को धारण करते हैं। महाराष्ट्र के कोंकण प्रदेश में छोटे बच्चों के गले में कुदृष्टि से बचाने के लिए सुपारी की माला पहिनाई जाती है।

धन-धान्य तथा वैभव को प्राप्त करने के लिए भी लोग ताबीज का प्रयोग करते हैं। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए निम्नांकित मंत्र से अभिकीलित कर कुबेर यंत्र को धारण करना अधिक उपयोगी तथा प्रभावकारी सिद्ध होता है। कुबेर का मंत्र है :—

"ओऽम् यक्षाय कुबेराय वैश्रवणाय धन धान्याधि पतये,
धन-धान्य-समृद्धि में देहि, दापय स्वाहा"

इस प्रकार तावीज का विषय अनन्त तथा सार्वभौम है जो समस्त संसार में पाया जाता है।[1]

यन्त्रों के प्रकार

क्रुक ने यन्त्रों के विषय में लिखा है कि ये भी मन्त्रों की ही भाँति प्रभावशाली हैं। परन्तु यदि यन्त्र और मन्त्र दोनों का एक साथ ही मिलाकर प्रयोग किया जाय तो यह अचूक होता है[2] तथा इसके प्रभाव को कोई रोक नहीं सकता। यदि किसी षट् कोणात्मक अथवा अष्ट कोणात्मक यन्त्र में एक विशेष मन्त्र को लिख दिया जाय तो इसके प्रभाव से किसी शत्रु की मृत्यु हो सकती है अथवा समस्त सेना का नाश होना निश्चित है। परन्तु यदि यह मन्त्र किसी पशु के रुधिर, जो श्मशान-भूमि में बलि-पशु के रूप में मारा गया है—से लिखा जाय तो आकाश अथवा पाताल में इसकी अप्रतिम शक्ति तथा अवश्यंभावी प्रभावोत्पादकता को कोई भी व्यक्ति रोकने में समर्थ नहीं हो सकता।[3]

हाथ का छाप

यन्त्र अथवा रहस्य चिह्नों का दूसरा रूप हाथ का छाप है जिसमें पाँचों अँगुलियाँ अलग-अलग फैलाई गई हों। ऐसा चिह्न घर की बाहरी दीवालों पर तथा गृह के प्रधान द्वार के ऊपर बनाया जाता है। लोगों का ऐसा विश्वास है कि यह भूतों को भगाने में बड़ा ही प्रभावशाली सिद्ध होता है। ग्रामीण लोगों की यह धारणा है कि हाथ की पाँच अंगुलियों के कारण ऐसा होता है क्योंकि पाँच की संख्या अत्यन्त शुभ मानी जाती है।

---

१. मेरिया लीच—स्टैं० डि० फो० मा० ली०—भाग १, पृ० ५१

२. "Yantras or mystic diagrams are thought to be quite as effective in their operation as the Mantras or spells, and ofcourse, a combination of the two is held to be absolutely irresistible".

क्रुक—पा० रि० फो० लो०—भाग २, पृ० ३८

३ "No power in earth or heaven can resist the terrific potency of the charm".

—मोनियर विलियम्स— ब्राह्मनिजम एण्ड हिन्दुइज्म- पृ० २०३

महाराष्ट्र की एक जाति विशेष के लोग उस स्थान पर जहाँ किसी व्यक्ति की मृत्यु हुई हो वहाँ बालू की राशि बिखेर देते हैं। उस स्थान को वे किसी टोकरी से ढक देते हैं। दूसरे दिन यदि वहाँ हथेली (Palm) का चिह्न बना रहता है तब यह समझा जाता है कि मृतात्मा प्रसन्न है तथा परिवार की उन्नति तथा समृद्धि होगी। होशंगाबाद में तिलक-सिन्दूर नामक पर्वत को काट कर बनाये गये मन्दिर पर बड़ा भारी मेला लगता है। वहाँ लोग अपने स्वास्थ्य या पुत्र की मनौती मानते हैं और अपनी पाँचों अँगुलियों को लाल रंग में भिगोकर मन्दिर की दीवालों पर सीधी छाप लगाते हैं। जब उनकी कामना सिद्ध हो जाती है तब वहीं[1] पर हाथ को अधोमुख कर पुनः छाप लगाते हैं।

वृत्त

गोलाकार वृत्त (O) को भी यन्त्र का ही दूसरा स्वरूप समझना चाहिए। भोजपुरी प्रदेश में खलिहान में दँवरी के बाद अन्न की बड़ी राशि लगा कर, इसकी 'पिरामिड' की आकृति बनाकर वहाँ रख देते हैं। इसी राशि के चारों ओर अन्न के दानों से एक गोलाकार वृत्त (O) बना दिया जाता है। लोगों का ऐसा विश्वास है कि ऐसा वृत्त बना देने से किसी की कुदृष्टि इस पर नहीं लग सकती।

कुछ जातियों में यह प्रथा है कि दुलहा और दुलहिन जब विवाह के समय परिक्रमा करते हैं तब उस स्थान को वृत्ताकार रस्सियों से रक्षा के निमित्त घेर देते है।

यह परम्परा अत्यन्त प्राचीन ज्ञात होती है। रामायण से पता चलता है कि लक्ष्मण ने सीता के चारों ओर एक वृत्त खींच दिया था जिसका उल्लंघन करने वाले व्यक्ति की मृत्यु निश्चित थी। इसीलिए रावण ने सीता से उस वृत्त के बाहर आकर भिक्षा देने की प्रार्थना की थी आजकल भी लोगों में 'लक्ष्मण रेखा' अपनी अनुल्लंघनीयता के लिए प्रसिद्ध है। इस प्रकार वृत्त भी यन्त्र के रूप में प्रयोग में लाये जाते हैं।

ऐसा उल्लेख लोक-कथाओं में बहुशः प्राप्त होता है कि साधु-महात्मा लोग तपस्या करते समय अपने चारों ओर गोलाकार वृत्त बना देते थे और उसी के बीच में बैठकर अपनी साधना में तल्लीन हो जाते थे। कथा-

---

१ क्रूक—पा० रि० फो० लो० भाग २ पृ० ४०

सरित्सागर में ऐसे प्रसंग बहुशः प्राप्त होते हैं। महाकवि कालिदास ने कुमार-सम्भव महाकाव्य में पार्वती-तपश्चर्या के अवसर पर ऐसे ही एक वृत्त की ओर केवल संकेत-मात्र किया है।[1]

किसी सती स्त्री के पातिव्रत धर्म की परीक्षा लेते समय उसे इसी प्रकार के गोलाकार वृत्त के बीच में खड़ा कर दिया जाता था। कर्ज को न चुकाने वाले व्यक्ति को भी इसी वृत्त में स्थित होने के लिए बाधित किया जाता था। मार्कोपोलो ने इसका उल्लेख किया है।

उत्तरी भारत में यह गोलाकार वृत्त गुरुरू (Gururu) अथवा गौरुआ (Gaurua) के नाम से प्रसिद्ध है। गाँवों की जनता इसे 'गुडुरू' के रूप में जानती है। आज भी यदि किसी व्यक्ति अथवा वस्तु के चारों ओर यह गुडुरी या गुडुरू (गोला वृत्त) खींच दिया जाय तो आम जनता का यह विश्वास है कि उस व्यक्ति या वस्तु की कोई क्षति नहीं हो सकती।

(४) परिच्छेद

डायन-शास्त्र

(Witchcraft)

अंग्रेजी में इसको 'विचक्रैफ्ट' (Witchcraft) कहा जाता है। हिन्दी में इसके लिए कोई विशेष समीचीन तथा उपयुक्त शब्द न होने के कारण मैंने इसका "डायन-शास्त्र" नामकरण किया है। इस शब्द में उनके सिद्धान्त तथा क्रिया—इन दोनों का अन्तर्भाव हो जाता है। अतः इस दृष्टि से "विचक्रैफ्ट" के लिए "डायन-शास्त्र" शब्द ही सर्वाधिक समीचीन, उपयुक्त, उचित तथा उपयोगी ज्ञात होता है।

इस अध्याय में डायनों में विश्वास, उनका स्वरूप, उनके लक्षण, उनकी शिक्षा-दीक्षा, उनकी आकृति, उनका कर्म अथवा क्रियायें, उनकी परीक्षा (दिव्य अथवा आर्डियल) उनके निवास स्थल, डायनों के चिह्न, डायन करने के उपादान या साधन डायनों को अपने कुत्सित कर्म के लिए दण्ड-प्रदान करना, कुछ प्रसिद्ध डायनें तथा सर्व-साधारण जनता पर उनका व्यापक प्रभाव आदि

---

१. शुचौ चतुर्णां ज्वलतां हविर्भुजां,
शुचिस्मिता मध्यगता सुमध्यमा। —कुमार सम्भव, सर्ग ५/२०

विषयों का समास रूप में वर्णन किया जायेगा। संस्कृत तथा हिन्दी साहित्य में इस विषय से सम्बन्धित पुस्तकों का नितान्त अभाव है। अतः मधु-मक्षिका की भाँति अनेक पुष्पों से रस को ग्रहण कर, अनेक पुस्तकों का अध्ययन तथा मन्थन कर इस अध्याय को लिखने का प्रयास किया गया है।

डायन की परिभाषा

डायन की परिभाषा अनेक विद्वानों ने विभिन्न प्रकार से की है। क्रुक के मतानुसार डायन वह व्यक्ति है जो आधिभौतिक शक्तियों की सहायता के बिना ही अलौकिक कार्यों को करने में समर्थ होता है। यह कार्य वह अपनी दैवी शक्तियों के द्वारा सम्पन्न करता है जिनका वह अपने को स्वामी समझता है।[१] मेरियालीच का कथन है कि इस लौकिक संसार में जो व्यक्ति अलौकिक शक्तियों से सम्पन्न है उसे "डायन" कहते हैं। वह इन शक्तियों का उपयोग दुष्ट आत्माओं तथा भूत-प्रेत को भगाने में किया करता है। पहिले पुरुष तथा स्त्री दोनों ही डायन हो सकते थे परन्तु अब प्रायः स्त्रियों तक ही यह शब्द सीमित है।[२]

डायन में विश्वास का विकास

डायन स्त्रियों में विश्वास का प्रचार प्रायः नीच जातियों तथा अशिक्षित जनता में पाया जाता है। कालोनेल (कर्नल) डाल्टन ने लिखा है कि जुआङ्ग (guangs) जाति के लोगों में इस विश्वास का प्रचार नहीं है। परन्तु उनका यह कथन सत्य नहीं माना जा सकता। यह निश्चित है कि इससे अधिक शिक्षित तथा सभ्य कोल, खरवार और चेरो आदि जातियों में डायन मे विश्वास का प्रचार प्रचुर रूप में उपलब्ध होता है।

---

१. "A witch is one who possesses to work marvels, not through the aid of the supernatural beings, but by certain occult faculties which he considers himself to possess".
क्रुक—पा० रि० फो० लो०—भाग २, पृ० २५६

२. A person having supernatural powers in the natural world, especially to work evil usually by association with evil spirits or the devil.
मेरियालीच—डिक्शनरी—भाग २ पृ० ११७६

इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि जो जाति जितनी अधिक आधुनिक सभ्यता से दूर तथा अशिक्षित होगी उसमें यह विश्वास उतनी ही अधिक मात्रा में प्रचलित होगा। इसीलिए कोल, भील, सन्ताल तथा थारू जातियों में यह विश्वास बद्धमूल हो गया है।[1] यह विश्वास बनजारों तथा घुमन्तू जातियों में अधिक मिलता है। जो जातियाँ प्रकृति के जितनी ही अधिक सान्निध्य में रहती हैं—जैसे नट, कंजर, हाबुर तथा साँसिया आदि—उनमें इस विश्वास की अधिकता रहती है। अतः डायन-शास्त्र का जन्म असभ्यता की अवस्था में हुआ और अशिक्षित जनता में इसका विकास धीरे-धीरे होता गया।

डायनों के भेद

डायनें प्रायः दो प्रकार की होती है--(१) जिगर खोर तथा (२) आदम खोर। जिगर-खोर डायन वह है जो मनुष्य के जिगर अर्थात् यकृत को खा डालती है। यह बड़ी ही भयंकर होती है तथा अभिभूत व्यक्ति को अनेक प्रकार की पीड़ा तथा यातना प्रदान करती है। यह उसके खून को चूस लेती है, शरीर के मांस को खा डालती है तथा अँतड़ियों को नष्ट-भ्रष्ट कर देती है।

ये जिगर-खोर डायनें किसी सुन्दर स्थान से दैवी शक्ति को शीघ्र प्राप्त कर सकती है। यदि इनके गले में पत्थर बाँधकर इनको जलाशय में फेंक दिया जाय तो भी ये डूब नहीं सकतीं।

आदमखोर वे डायनें हैं जो मनुष्यों के जीवन का ही सर्वनाश कर देती हैं। अपने 'काली' क्रियाओं से वे मनुष्य को बीमार कर देती हैं जिससे धीरे-धीरे उसकी मृत्यु हो जाती है। ये भी भयंकर होती हैं परन्तु जिगर-खोर का दर्जा इनसे कहीं ऊँचा है क्योंकि वे अधिक नृशंस, कष्टदायक तथा यंत्रणा देने वाली होती हैं।

डायन की आकृति तथा स्वरूप

डायन अपनी अलौकिक शक्ति के द्वारा अनेक प्रकार का रूप धारण कर सकती हैं। वे कभी आपत्ति में फँसी हुई किसी बूढ़ी स्त्री का रूप धारण करती हैं तो कभी हिरन के रूप को, जिसके सींग सोने के बने रहते हैं। कभी वे रानी के रूप में दिखाई पड़ती हैं।

---

१ क्रुक पा० रि० फो० लो० भाग २ पृ० २६१

इनकी आकृति बड़ी ही वीभत्स, भयानक तथा डरावनी होती है। ये कालरात्रि की भाँति अपनी आकृति से वीभत्सता तथा घृणा पैदा करती हैं। इनकी आँखों में चमक नहीं होती तथा ये गड्ढे में धँसी हुई रहती हैं। इनकी नाक चपटी रहती है, इनकी भौंहें आपस में मिली रहती हैं। इनके गाल लम्बे तथा बड़े, दोनों होंठ अलग-अलग, दाँत ओंठ से बाहर निकले हुए गर्दन सुराही की तरह लम्बी और दोनों स्तन लौकी की भाँति लम्बे, ढीले और लटकते रहते हैं। इनका पेट नाद की तरह बड़ा तथा आगे निकला हुआ और दोनों पैर बड़े तथा फैले हुए होते हैं। इनकी आँखें लाल तथा बाल प्राय: बिखरे हुए होते है। कालिदास ने शकुन्तला के अलौकिक रूप-सौन्दर्य को ब्रह्मा की अपरा सृष्टि कहा है।[1] उसी प्रकार इसके ठीक विपरीत डायन की वीभत्स तथा भयानक आकृति को ब्रह्मा की निकृष्टतम सृष्टि कहा जा सकता है।[2]

डायन की अनन्त शक्ति

डायनों की शक्ति अनन्त होती है। वे संसार मे किसी भी वस्तु को सुविधा से प्राप्त कर सकती हैं। आकाश के अंतराल का भेदन, अद्वितीय दिव्य दृष्टि को प्राप्त करना, मृत व्यक्ति को जीवित कर देना, पानी में आग लगा देना, पाषाण जैसी कठोर वस्तु को मोम के रूप में परिवर्तित कर देना, प्रेमियों को वियुक्त तथा अलग कर देना, उनके बायें हाथ का खेल है। ये अपनी इच्छा के अनुसार ऋतुओं में परिवर्तन भी कर सकती है और आँधी अंधड़ तथा बवण्डर को पैदा करने की शक्ति रखती है। जिस व्यक्ति से वे घृणा करती हैं उसके पैर की लम्बाई को धूलि मे नाप कर उसे लँगड़ा बना सकती हैं।

---

१. चित्ते निवेश्य परिकल्पित सत्वयोगा,
रूपोच्चयेन मनसा विधिना कृता नु।
स्त्री रत्न सृष्टिरपरा प्रतिभाति सा मे;
धात: विभुत्वमनुचिन्त्य वपुश्च तस्या:॥
शाकुन्तल—अंक २, श्लोक ९

२. "She appears as if the creator had made a specimen of his skill in producing ugliness".
क्रुक पा० रि० फो० लो० भाग २ पृ० २६३

अनेक डायनें ज्वर के भूत को भी अपने वश में करने की शक्ति रखती हैं। ये किसी व्यक्ति के गले में रस्सी बाँध कर अपने मंत्रों के द्वारा उसे बन्दर बना सकती हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में आसाम के सुप्रसिद्ध कामाख्या देवी के मंदिर में स्थित, डायनों के विषय में यह लोक-विश्वास दृढ़ रूप से प्रचलित है कि ये मनुष्यों को अपनी अद्भुत मंत्र शक्ति के द्वारा भेड़ा और बकरा बना सकती हैं। इसीलिए लोक-गीतों में भोजपुरी प्रदेश की स्त्रियों के द्वारा अपने पति को "कवडू-कमच्छा" (कामाख्या)[1] न जाने का उल्लेख बार-बार पाया जाता है।

डायन करने की उपयुक्त समय

डायनें अपना कुत्सित कर्म सदा नहीं करती हैं। उसके लिए ऋतु तथा उचित समय निर्धारित किया गया है। उस समय इनके मंत्रों में विशेष शक्ति रहती है और वे समधिक प्रभावशाली होती हैं।

आश्विन मास के शुक्ल पक्ष में नवरात्र के नौ दिनों में जब कि दुर्गा की पूजा की जाती है तथा दिवाली का समय—दीपावली की काली रात—डायनों के लिए अपनी कुत्सित क्रियाओं को करने के लिए सुवर्ण अवसर होता है। इसके अतिरिक्त ये प्रति मास की चौदहवीं, पन्द्रहवीं तथा उन्नीसवीं तिथि को प्रचुर शक्ति प्राप्त कर अपना कुकर्म करती है।[2] यहाँ १४वीं तथा १५वीं तिथि से तात्पर्य चतुर्दशी और अमावस्या अथवा पूर्णिमा समझना चाहिए।

क्रुक ने लिखा है आयरलैण्ड की डायनें नवम्बर ईभ (Eve) अर्थात् नवम्बर प्रारंभ होने के पहिले दिन अपने स्थान से हट जाती हैं। उस रात्रि को जो भी व्यक्ति मिल जाता है वह उनका शिकार हो जाता है।[3] परन्तु डायनों को किसी समय विशेष में नहीं बाँधा जा सकता। ये सदा तथा सर्वथा अपने मत्रों का प्रयोग कर किसी भी व्यक्ति को अपनी इच्छानुसार कष्ट दे सकती है।

---

१. क्रुक—पा० रि० फो० लो०, भाग-२, पृ० २६७.

२. क्रुक—वही ,, ,, पृ० २६७.

३ डॉ० उपाध्याय भो० लो० गी० भाग-१

डायनों के कुत्सित क्रिया-कलाप

डायनों के द्वारा किये जाने वाले बुरे कर्म या कुकर्म इतने अधिक हैं जिनका वर्णन करना कठिन है। ग्रामीण जनता में ऐसा विश्वास दृढ़ मूल हो गया है कि डायनों की दृष्टि दूषित होती है। यदि वे किसी भी बालक को खाता हुआ देख लें तो उनकी दूषित दृष्टि के कारण उसे शीघ्र ही वमन तथा विरेचन (कै और दस्त) होने लगता है। अतः मातायें अपने छोटे बच्चों को इन डायनो की कुदृष्टि से बचाती हैं तथा उन्हें इनके सामने कभी भी आने नहीं देती हैं। यदि ये बच्चों को 'गरोड़ कर' अर्थात् अपनी दृष्टि गड़ा कर देख लें तो वे अपनी माता का दूध पीना छोड़ देते हैं अथवा पीने पर कै करने लगते है।

डायनें रोगी व्यक्ति के शरीर के भीतरी तत्वों—जैसे अँतड़ी, रुधिर और मांस को भी बाहर निकाल कर ला सकती है, यह विश्वास सर्वत्र फैला हुआ है। अंग्रेजी के महाकवि शेक्सपियर ने अपने 'मैकबेथ' नामक नाटक में तीन डायनों का वर्णन किया है जो मनुष्यों के शरीर से खून चूसने मे भी समर्थ हैं।

जनरल स्लीमैन ने ऐसी एक घटना का उल्लेख किया है। इसने किसी बूढ़ी ग्वालिन से बिना उसे पैसा चुकाये ही दूध ले लिया था। उसके पेट मे शीघ्र ही भयानक दर्द पैदा हो गया जिसे वह बुढ़िया की कुदृष्टि बतलाता था। जब बुढ़िया से इसका कारण पूछा गया तब उसने अपनी कुदृष्टि की बात को छिपाते हुए कहा कि मेरे घर के देवताओं ने उसे ऐसा कष्ट दिया होगा।

कोई दूसरी डायन किसी व्यक्ति से ईख खरीदने का सौदा करने लगी। परन्तु बेंचने वाला उस दाम पर राजी नहीं था। अतः दोनों ने ईख के एक-एक छोर को पकड़ कर आपस में खींचना शुरू कर दिया। एक सिपाही ने आकर बीच में से ईख को काट दिया परन्तु आश्चर्य है कि उसमें से खून की धारा निकल कर पृथ्वी पर गिरने लगी। पता चला कि यह वह खून है जिसे यह डायन उस विक्रेता के शरीर से अपने मंत्रों से खींच रही थी।[1]

किसी आदमी ने एक गोंड़ जाति की बुढ़िया से एक मुर्गा खरीदा। उसने जब उसे मार कर खाया तब उसके पेट में भयानक पीड़ा उत्पन्न हो गयी। उसके पेट में वह मुर्गा बोलने लगा जिसकी आवाज लोगों को स्पष्ट सुनाई पड़ती थी। अनेक वैद्यो तथा डाक्टरों की दवा करने पर भी वह आदमी मर गया। निश्चय ही यह उस डायन बुढ़िया का कुकर्म था।[2]

---

१. स्लीमैन—रैम्बुल्स एण्ड रिकलेशन्स, भाग १, पृ० ८८ और आगे भी

२ क्रुक—पा० रि० फो० लो० भाग २ पृ० २६९

इन सत्य घटनाओं का यहाँ उल्लेख करने का आशय डायनों की अपार शक्ति तथा भयानक कुकर्मों को बतलाना है।

डायनों की शिक्षा-दीक्षा

डायन—शास्त्र कोई ऐसा सरल शास्त्र नहीं है जो अत्यन्त सरलता से सीखा जा सके। यह भी षट् शास्त्रों की भाँति एक गहन शास्त्र है जिसका ज्ञान सम्यक् अध्ययन तथा ट्रेनिंग (दीक्षा) से ही प्राप्त किया जा सकता है। अतः डायनों की भी ट्रेनिंग विधिवत होती है और उन्हें भी अपने गुरु अथवा गुरु की स्त्री—गुरुवानी—से शिक्षा लेनी होती है।

बंगाल की अगरिया जाति में ऐसी वृद्ध स्त्रियाँ विद्यमान हैं जो इस शास्त्र की आचार्या (Professors of witchcraft) मानी जाती हैं। ये युवती लड़कियों को इस शास्त्र की गुप्त रूप से शिक्षा देती हैं। ये जवान लड़कियाँ इस शिक्षा को प्राप्त करने के लिए अत्यन्त आतुर दिखाई पड़ती हैं। इनकी शिक्षा-दीक्षा तब तक पूर्ण नहीं समझी जाती जब तक कि इनकी शक्ति से कोई जंगल जल कर भस्म नहीं हो जाता।[1]

बम्बई में जब कोई आचार्या स्त्री अपने काले जादू (डायन-क्रिया) की शिक्षा किसी कुमारी कन्या को देना चाहती है तब उससे किसी सुअवसर की प्रतीक्षा करने के लिए कहती है। यह सुअवसर किसी गर्भिणी स्त्री की मृत्यु समझा जाता है। जब उस स्त्री का शव श्मशान को ले जाया जाता है, तब यह एक छोटा टीन का बाक्स अपने हाथ में लेकर उस शव यात्रा में जाने वाले व्यक्तियों के पिछले पैर की धूलि को लेकर उसमें रखती जाती है। दूसरे दिन उस भस्मीभूत शव के थोड़े से राख को लेकर वह घर चली आती है। तीसरे दिन उस राख के बाक्स को लेकर वह श्मशान जाती है और द्वितीया अथवा ग्रहण के दिन धूप-दीप जलाकर गुरु से शिक्षित मंत्र का वह जप करती है। मंत्र के जप करने से "हडल" (Hadal) नामक शक्ति उसके वश में हो जाता है और उसकी सहायता से वह किसी व्यक्ति का नाश कर सकती है। पुरुष भी इसी प्रकार से इस शास्त्र में दीक्षित होते हैं।[2] परन्तु इस कार्य में प्रधानता प्रायः स्त्रियों की ही होती है।

---

१. डाल्टन—डि० ए० आफ बंगाल, पृ० ३२३

२. वही।

इस प्रकार से ट्रेनिंग ले लेने पर डायनों की शक्ति बहुत बढ़ जाती है। ये डायनें किसी व्यक्ति के शरीर को क्रास चिह्न (+) से अंकित कर व्रण बना सकती हैं। ये घाव समस्त शरीर में अनायास उत्पन्न हो जाते हैं। दूसरा उपद्रव दुधारू गायों के दूध को सूखा कर देना है अथवा दूध को रुधिर मे बदल देना है। ये गर्भपात भी करा सकती हैं। दूसरों के खेत में भेड़िया, गीदड़ और चूहों आदि को भेजकर उसकी खेती नष्ट कर देती हैं।

डायनों की परीक्षा अथवा दिव्य

डायन अपने कार्य में निपुण है, इसने अपने कुत्सित कर्मों के करने मे सिद्धि प्राप्त कर ली है—इसकी परीक्षा भी ली जाती है जिसे दिव्य कहा जा सकता है। इस परीक्षा के कई प्रकार होते हैं—जैसे गर्म तथा धधकते हुए कोयले पर चलना, गर्म लोहे के हल पर पैर रखना आदि। कर्नल टाड ने लिखा है कि जालिम सिंह डायनों की परीक्षा पानी में तैरा कर लिया करता था।[1]

यदि डायन निर्दोष होती थी तब तो वह जलाशय में डूब जाती थी अन्यथा वह तैर कर पार कर जाती थी। जालिम सिंह—जो राजस्थान का एक प्रसिद्ध राजा था—कहा करता था कि तप्त लोहे के छड़ को उनके हाथो पर रखना डायनों के लिए बहुत थोड़ी सजा है। इसीलिए वह इन्हें किसी नदी या जलाशय में फेंक देता था। इनकी परीक्षा की एक दूसरी विधि इनके सिर पर लाल मिर्चा को रख देना था। यदि इससे इनका दम घुटने लगे तब तो ये निर्दोष साबित होती थीं अन्यथा इनका अपराध प्रमाणित हो जाता था। जलते हुए कड़ाही के तेल में खड़ा करके किसी सती स्त्री के सतीत्व की परीक्षा के समान ही इनका भी परीक्षण हुआ करता था।

फोर्ब्स (Forbes) ने सन्ताल जाति की डायनों के सम्बन्ध में अनेक दिव्यों (ordeals) का वर्णन किया है जिनमें से एक इस प्रकार है।

रात्रि में दीपक जलाकर पत्तियों के बने दोनों में पानी भर दिया जाता था। फिर इस जल में धीरे-धीरे सरसों का तेल गिराया जाता था। इसके साथ गाँव की समस्त डायनों के नाम का उच्चारण किया जाता था। इस प्रक्रिया के

1. टाड—एनाल्स भाग-२ पृ० १०६

समय जिस किसी स्त्री का प्रतिबिम्ब दिखाई पड़ता था वही डायन मानी जाती थी।[1]

मध्य प्रदेश के बिलासपुर जिले में दिव्य की यह प्रथा प्रचलित थी कि गाँव का कोई ओझा या सयाना कोई दीपक जला देता था। तब गाँव भर की जितनी डायनें थी उनका वह नाम लेता था, वह दीपक की लौ के इधर-उधर फिरने से डायन का पता लगा लेता था। अन्त में उसे मृत्यु दण्ड दिया जाता था।[2] इसी प्रदेश के बस्तर जिले में जहाँ आज भी जन-जातियाँ अधिक संख्या में रहती हैं डायनों के दिव्य के लिए अनेक प्रथायें प्रचलित थीं जिनका क्रुक ने विस्तार के साथ उल्लेख किया है।[3]

डायनों के मन्त्र

सर्व साधारण जनता का यह विश्वास है कि डायन जब तक अपने कुत्सित कर्म करना छोड़ नहीं देती है, तब तक उसकी मृत्यु नहीं हो सकती। अतः वृद्धावस्था में डायनें किसी ऐसे योग्य शिष्या को खोजती रहती है जिसे वे अपने ज्ञान को दे सकें अथवा सिखा सकें।

डायनों की यह परम्परा है कि वे अपने मन्त्रों का उल्टा जाप करती हैं अर्थात् पहिले अन्तिम शब्द का उच्चारण करके उसके पश्चात् पहिले आये हुए शब्दों को जपती हैं। इङ्गलैण्ड में भी यह प्रथा पाई जाती है जिसका उल्लेख महाकवि शेक्सपियर ने अपने नाटक—"मच एडो एबाउट नथिंग"—में किया है।[4] लोक-कथाओं में भी यह विश्वास प्रचलित पाया जाता है। कथासरित्सागर में भी भीम भट्ट जब गंगा माता से प्रार्थना करता है तब वह कहती है कि "तुम इस मन्त्र को मुझसे प्राप्त करो जो आगे से और पीछे

---

१. फोर्ब्स—ओरियण्टल मेम्वायर्स, भाग-२, पृ० ३४७

२ सेन्ट्रल प्राविन्सेज गजेटियर—पृ० ११०

३ क्रुक - पा० रि० फो० लो०, भाग-२; पृ० २७१-७३

४. (क) He who'd read her aright must-say her.
Backwards like.
a witch's prayer.

(ख) I never yet saw man,
How wise how noble rearly featured
But she would spell him back ward.

से (उल्टा) पढ़ा जाता है।" यदि कोई व्यक्ति इस मंत्र को उल्टा पढ़ता या जपता है तो वह अपनी इच्छानुसार विभिन्न रूपों को धारण कर सकता है।[1]

डायनों के कर्म करने के उपादान

डायनें किन-किन साधनों से अपने कुत्सित कर्म का विधान करती हैं; इस विषय पर थोड़ा विचार करना आवश्यक है। यों तो इन डायनों के उपादान अनन्त हैं परन्तु निम्नांकित तीन प्रधान साधनों के द्वारा ये अपने कार्य में सफलता पाती हैं। (१) बाल (२) नाखून के टुकड़े तथा (३) मूर्ति अथवा प्रतिकृति। किसी व्यक्ति के सिर के बालों, नाखूनों के टुकड़ों, अथवा रुधिर को प्राप्त कर यह कुकर्म किया जाता है। शेक्सपियर ने अपने नाटक "कामेडी आफ एरर्स" में इसका उल्लेख किया है।[2] आयरलैण्ड में नाखून के टुकड़ो का उपयोग अनेक मन्त्रों में किया जाता है। वहाँ के लोगों का यह विश्वास है कि बाल को ऐसे स्थान पर नहीं फेकना चाहिये जहाँ चिड़ियायें उसे लेकर अपना घोंसला बना सकें। ऐसा होने पर उस मनुष्य के सिर में सदा पीडा (दर्द) बनी रहती है। इसीलिए मुण्डन-संस्कार के अवसर पर बालकों के बाल गंगा नदी अथवा किसी जलाशय में प्रवाहित कर दिये जाते हैं जिससे उन्हे प्राप्त कर डायन न कर सके।[3]

प्रतिमूर्ति के द्वारा डायन का कुर्म करना

डायनें जिस व्यक्ति को क्षति पहुँचाना चाहती हैं, जिसका नाश करने के लिए निश्चय कर लेती हैं, उस व्यक्ति की मोम, आटा अथवा मिटटी की प्रतिमूर्ति बना कर स्थापित कर देती हैं और मन्त्रों के द्वारा उस प्रतिमा को प्रभावित कर अपने कार्य की सिद्धि करती हैं।

अथर्ववेद में प्रतिमाओं का निर्माण कर उसमें कील चुभोकर किसी व्यक्ति को प्रभावित अथवा पीड़ित करने के अनेक उदाहरण प्राप्त होते है।

---

१. सोमदेव—कथा-सरित्सागर, भाग-२; पृ० २२१ (रानी का संस्करण)

२. "Some devils ask for the parings of one's nail,
A rush, a hair, a drop of blood, a pin,
A Nut, a cherry stone."

३. क्रुक—पा० रि० फो० लो०, भाग-२, पृ० २७७-८० (तृतीय संस्करण, १८६८ ई०)

पद्म-भूषण आचार्य बलदेव उपाध्याय ने इसका विस्तारपूर्वक वर्णन करते हुए लिखा है कि [1] "इसी प्रकार से अपने पति को वश में करने वाली वधू इसी वशीकरण-क्रिया का आश्रय लेती है। वह अपने प्रिय की मूर्ति बनाकर अपने सामने रखती है और उसके सिर पर गर्म (तप्त) बाणों से आघात करती है। इसके साथ ही वह अथर्ववेद के दो सूक्तों का पाठ करती है जिसका सारांश यह है कि हे देवता गण! काम को इसके पास भेजिए जिससे वह मेरे प्रेम से उद्विग्न हो जाय।" अथर्ववेद का मन्त्र इस प्रकार है।[2]

"उन्मादयत मरुत, उदन्तरिक्ष मादय।
अग्न उन्मादय, त्वमसौ मामनुशोचतु॥

हे देवता लोग! इसे मेरे प्रेम से पागल बना डालिये। हे वायु, हे अग्नि देव! आप इसे मेरे प्रेम में पागल बना दीजिए। वह मेरे प्रेम में लिप्त हो जाय। इन उल्लेखों से ज्ञात होता है कि उस अतीत काल में, अथर्ववेद के समय में भी प्रतिमा बना कर जादू करने की प्रथा प्रचलित थी।

बंगाल में भी यह प्रथा प्रचलित थी। कोई व्यक्ति शव में प्रयुक्त होने वाले बाँसों को लेकर उससे तीर तथा धनुष बनाता था। फिर वह अपने शत्रु की मिट्टी की प्रतिमा बना कर उसे इस अभिमन्त्रित बाणों से छेदता था। इस प्रक्रिया से जिस व्यक्ति की वह प्रतिमा होती थी उसकी छाती में भीषण दर्द पैदा हो जाता था। कथासरित्सागर में भी इस प्रकार की घटनाओं का उल्लेख पाया जाता है।

पद-चिह्नों के द्वारा भी जादू करने के अनेक उदाहरण पाये जाते है। संसार में सर्वत्र यह विश्वास प्रचलित है कि किसी व्यक्ति के पद-चिह्नों को क्षति पहुँचाने से उसके पैरों को क्षति पहुँचती है। विदेशों में यह विश्वास दृढ मूल है कि किसी के पद-चिह्नों में काँटा चुभाने से वह लँगड़ा हो जाता है। क्रुक ने ऐसे अनेक उदाहरण अपनी पुस्तक में प्रस्तुत किये हैं। [3] उत्तरी भारत में भी यह विश्वास पाया जाता है। यदि किसी के पैर में दर्द होता है तो वह उसे किसी डायन की जादू का ही "करतब" समझता है।

---

१. आचार्य बलदेव उपाध्याय—भा० सा० अ०, पृ० ३६।

२. अथर्ववेद—६।१३०।४

३. क्रुक—पा० रि० फो० लो०, भाग-२, पृ० २८०

डायनों के लिए दण्ड विधान

डायनों को उनके कुत्सित कर्म के लिए कठोर दण्ड देने का भी वर्णन पाया जाता है। आज से लगभग एक सौ वर्षों पूर्व उड़ीसा के सम्भलपुर जिले मे छः व्यक्तियों की मृत्यु इसी दण्ड-विधान के फलस्वरूप हुई थी। लोगों का यह विश्वास है कि हैजा आदि बीमारियों का प्रकोप डायनों के जादू के कारण ही होता है। अतः उन्हें एरण्ड के डण्डे से मारा जाय तो यह महामारी शान्त हो सकती है। ऐसी दशा में लोग उस व्यक्ति को इतना मारते थे कि कभी-कभी उसकी मृत्यु भी हो जाती थी। कभी-कभी इन डायनों को धोबी के नाद का गन्दा जल पिलाया जाता था जिससे उनकी जादू करने की कला नष्ट हो जाय। मध्य भारत (अब मध्य प्रदेश) में यह प्रथा प्रचलित थी कि डायन को भिश्ती के मशक का पानी पीने के लिए बाधित किया जाता था जिससे वह जातिच्युत होकर अपनी कला को खो बैठे। कभी-कभी उसकी नाक काट कर उसकी करतूत का फल उसे चखाया जाता था।

मध्य प्रदेश के बस्तर जनपद में जिस व्यक्ति पर डायन होने का सन्देह होता था उसके बालों को उस्तरे से मुड़वा देते थे, उसके अगले दाँत तोड दिये जाते थे जिससे वह मन्त्रों का उच्चारण न कर सके। जनता उसे पीटकर, उसका भुर्ता बना देती थी। उसे अनेक यन्त्रणा देती थी। यदि वह उच्च जाति का व्यक्ति होता था तो उसके मुँह में सूअर का मांस ठूँस दिया जाता था। स्त्रियों को भी इसी प्रकार का दण्ड दिया जाता था।

भील जाति के लोगों में जादू करने के लिए आशंकित व्यक्ति को पकड कर उसका सिर नीचे और पैर ऊपर कर पेड़ से लटका देते थे। लाल मिर्च को पीसकर डायनों की आँखों में डाल देते थे। कभी-कभी उन्हें पूजा के निमित्त मारे गये बकरे का खून पीने के लिए बाधित किया जाता था। कभी-कभी उनके बालों को काट कर जमीन में गाड़ दिया जाता था।

मृत्यु दण्ड—मध्यकाल में यूरोपीय देशों में भी डायनों का प्रभाव पाया जाता था। परन्तु जो इस कुत्सित कर्म के करने में पकड ली जाती थी, अथवा जिनका अपराध प्रमाणित हो जाता था उन्हें सीधे मृत्यु-दण्ड दिया जाता था। मौरिस बाउसन (Maurice Bouisson) ने अपने सुप्रसिद्ध ग्रन्थ 'मैजिक' में ऐसी अनेक घटनाओं का प्रमाण सहित विस्तृत वर्णन किया है, जिनमें डायनों को उनके अपराध के लिए मृत्यु-दण्ड न्यायाधीश के द्वारा दिया

गया था। इस विषय के प्रामाणिक, विशद तथा विस्तृत ज्ञान के लिए इस ग्रन्थ का अध्ययन आवश्यक है।[1]

प्रसिद्ध डायन : लोना चमारिन

डायनों की सिरताज, अपनी कला में अलौकिक प्रवीणता तथा सिद्धि को प्राप्त लोना चमारिन नामक सुप्रसिद्ध डायन का थोड़ा परिचय दिये बिना इस अध्याय को अपूर्ण ही समझना चाहिए। मध्यकाल में लोना चमारिन की बड़ी प्रसिद्धि थी। इसकी ख्याति उत्तरी भारत में सर्वत्र व्याप्त थी। लोना चमार जाति में उत्पन्न हुई थी। अतः वह लोना चमारिन के नाम से प्रसिद्ध है। जायसी ने इसकी ख्याति का उल्लेख अपने महाकाव्य 'पद्मावत' में किया है।

लोना चमारिन का जादू इतना प्रभावशाली था कि वह किसी भी व्यक्ति को अपने तंत्र-मंत्र के प्रभाव से वशीभूत कर लेती थी। मध्यकाल में इस लोना की इतनी प्रसिद्धि थी कि तंत्र-मंत्र में दीक्षित होने के लिए अनेक व्यक्ति काम रूप जाते थे और वहाँ लोना की शिष्यता स्वीकार कर उससे दीक्षा लेते थे। क्रुक ने इसके विषय में लिखा है कि उत्तर-पश्चिम प्रदेश (वर्तमान उत्तरप्रदेश) के पूर्वी जिलों में लोना चमारिन डायन के रूप में अत्यन्त प्रसिद्ध थी। धन्वन्तरि से उसने अपनी अलौकिक जादू की शक्ति को प्राप्त किया था। वह अपने जादू के प्रभाव से धान के पौधों को उगाने में समर्थ थी। वह नग्न होकर अपने मंत्रों के द्वारा अभूतपूर्व कार्य किया करती थी। इसका गुरु इस्माइल जोगी था जिससे उसने मंत्रों को सीखा था।[2]

(५) परिच्छेद

कुदृष्टि (Evil eye)

कुदृष्टि उस बुरी अथवा कुत्सित दृष्टि को कहते हैं जो किसी वस्तु अथवा व्यक्ति पर पड़ने से उसमें विकार या विकृति उत्पन्न कर देती है। इसे साधा-

१. मौरिस बाउसन—मैजिक—इट्स राइट्स एण्ड हिस्ट्री (राइडर एण्ड कम्पनी, लण्डन १९६०)

२. क्रुक—पा० रि० फो० लो०, भाग-२, पृ० २८५.

ण्ण जनता की बोल-चाल की भाषा में 'नजर लगना' तथा अंग्रेजी में 'इविल आई' (evil eye) कहा जाता है। किसी वस्तु से यहाँ तात्पर्य खाद्यान्न, मिष्ठान्न, पक्वान्न, तथा पेय पदार्थों—दूध, घी, मधु एवं फलों से है। व्यक्ति से आशय उन छोटे-छोटे बच्चों से है जिन्हें बहुत जल्दी ही किसी डायन की नजर लग जाती है। यदि बच्चे अपनी माँ का दूध पीना नहीं चाहते अथवा दूध पी लेने पर वमन कर देते हैं तब यह समझा जाता है कि किसी डायन की नजर लग गई है। इसी प्रकार कोई मिठाई अथवा पकवान खाकर कोई व्यक्ति पचा नहीं पाता, अथवा उसे दस्त होने लगती है तब यह आशंका होने लगती है कि इसे किसी की कुदृष्टि लग गई है।

कुदृष्टि अथवा नज़र लगने की परम्परा अत्यन्त प्राचीन काल से चली आ रही है। वेदों में, विशेष कर अथर्ववेद में इसका वर्णन बड़े विस्तार से पाया जाता है। डॉ० गोण्डा ने अपने एक विद्वत्तापूर्ण लेख में इस विषय पर बड़ी गम्भीरता से विचार किया है[1] जिसका उल्लेख करना यहाँ कुछ अप्रासंगिक नहीं होगा।

कुदृष्टि युक्त होने का कारण

किसी व्यक्ति की दृष्टि दूषित क्यों हो जाती है, उसकी आँखों में 'नजर लगाने' की बुरी शक्ति कहाँ से पैदा होती है इस पर विचार करते हुए क्रुक ने लिखा कि किसी गर्भवती स्त्री की 'दोहद' संबंधी इच्छाओं—अर्थात् सुन्दर तथा सुस्वादु पदार्थों को खाने की इच्छा-पूर्ति जब नहीं होती तब ऐसी परिस्थिति में जो सन्तान पैदा होती है उसकी दृष्टि कुदृष्टि से युक्त हो जाती है। ऐसा मनुष्य यदि किसी को भोजन करते हुए देख लेता है तो वह उसकी नजर लग जाने के कारण वमन करने लगता है।

कुदृष्टि का दूसरा तथा व्यापक कारण लालच है।[2] जैसे यदि कोई काना अथवा एकाक्ष है तो वह निश्चय ही उस व्यक्ति से द्वेष करने लगता है जिसकी आँखें सुन्दर तथा बड़ी-बड़ी होती हैं। जो वस्तु यदि किसी के पास नहीं होती

---

१ गोण्डा—आई एण्ड गेज़ इन दि वेदाज़।

२. The real fact seems to be that in most cases the evil eye is the result of covetousness.

क्रुक—पा० रि० फो० लो०, भाग-२, पृ० ३.

वह उसे पाने की चेष्टा करता है। परन्तु यदि उसे किसी प्रकार से प्राप्त नहीं कर सकता तब उससे द्वेष, विद्वेष अथवा डाह करने लगता है। यही द्वेष की प्रवृत्ति, अथवा ईर्ष्या की भावना कुदृष्टि को जन्म देती है।

कुदृष्टि से बचने के विविध उपाय

सुन्दर तथा स्वस्थ्य शरीर, मनोरम एवं आकर्षक आकृति, प्रसन्न वदन और सुडौल एवं रमणीय शरीर के विभिन्न अंगों को देखकर नजर लगना स्वाभाविक है। इसी प्रकार से स्वादिष्ट मिष्ठान्न; मधुर पेय पदार्थ, नरम पक्वान्न; तथा मनोरम वेशभूषा को देखकर नजर लगने की अधिक संभावना रहती है। बच्चों को नजर बहुत जल्दी ही लग जाती है। अतः कुदृष्टि से बचाने के लिए अनेक उपाय किये जाते हैं।

(१) काली वस्तुएँ कुदृष्टि की अवरोधक समझी जाती हैं। अतः मातायें अपने बच्चों को बुरी नजर से बचाने के लिए उनकी आँखो मे काजल लगा देती हैं। इसके अतिरिक्त उनके ललाट पर काजल का काला टीका लगा दिया जाता है। इतना ही नहीं बल्कि वे अपने बच्चों के हाथों और पैरों मे काला 'फुदेना' (सूत) बाँध देती हैं जिससे इन्हें किसी प्रकार की नजर न लग सके। स्त्रियाँ जब गर्भवती होती हैं तब वे अपने शरीर पर काला वस्त्र धारण कर लेती हैं। इस कारण उन्हें प्रसव की क्रिया में विशेष कष्ट नही उठाना पड़ता।

(२) कुत्सित नामकरण

कुछ लोग बुरी आत्माओं (evil spirit) तथा बुरी नजर (evil eye) से बचाने के लिए अपने बच्चों का नामकरण बुरी तथा कुत्सित वस्तुओं से सबद्ध कर देते हैं। गाँवों में यदि किसी व्यक्ति का बच्चा अल्पावस्था मे ही किसी रोग से मर जाता है तो ऐसा समझा जाता है कि कुदृष्टि अथवा भूत-दूतों के प्रभाव के कारण ऐसा हुआ है। अतः अपने दूसरे बच्चे का नाम किसी गर्हित वस्तु के ऊपर रख देते हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में घसीटन, खदेरू, चिरकुट (चिथड़ा) कुड़िया, दुःखित, फतिंगवा, झिंगुरा, भिखारी, गरीबन, और फकेरू आदि नाम जो पुरुषों के पाये जाते हैं उसका कारण यही है। इसी प्रकार से लड़कियों के भी अँधरी, बहिरी, तिनकुड़िया, धुरिया, मछिया और छुछुनरी आदि नामकरण का मुख्य हेतु यही है।

(३) सस्ते दाम पर बेंचना

यदि किसी व्यक्ति के कई बच्चे बाल्यावस्था में ही मर जाते हैं तो आगे होने वाली सन्तान को 'मराछ' कहते है। यह सन्तति भी भूत-दूतों के प्रभाव से अकाल मे ही काल-कवलित न हो जाय, इससे बचाने के लिए उसे किसी नीच जाति की स्त्री के हाथों तीन कौड़ी तथा पाँच कौड़ी में बेंच देते है। ऐसे लड़कों का नाम तीन कौड़ी तिवारी; पंच कौड़ी प्रसाद अथवा छकौडी राय रखा जाता है। ऐसे नामकरण का कारण यही कुदृष्टि हुआ करती है।

(४) दो नामों का रखना

जंगली जातियों का यह दृढ़ विश्वास है कि नाम मनुष्य के शरीर का एक अंग होता है। अतः किसी व्यक्ति का नाम ज्ञात हो तो उसको डायन-क्रिया के द्वारा क्षति पहुँचाई जा सकती है। इसीलिए भारत में बच्चों के दो नाम रखे जाते हैं—(१) पुकार नाम (२) राशि नाम। पुकार नाम का प्रयोग सर्व साधारण लोग उसे बुलाने अथवा पुकारने के लिए किया करते है। परन्तु राशि नाम अत्यन्त गोपनीय रखा जाता है और केवल विवाह आदि शुभ अवसरों पर ही उसका उपयोग किया जाता है। राशि नाम की गोपनीयता का कारण यही समझा जाता है कि कोई इस नाम को जान कर कोई प्रेत-बाधा उत्पन्न न कर दे।

(५) लिङ्ग परिवर्तन

भारतीय लोक-कथाओं में लिङ्ग परिवर्तन की घटनायें पाई जाती है जिसमे कोई व्यक्ति स्त्री का रूप धारण कर लेता है। बहुत से लोग अपने पुत्र को किसी पुत्री की वेशभूषा पहिना कर उसे पालते-पोसते हैं। उनका ऐसा विश्वास है कि ऐसा करने से कुदृष्टि तथा भूत-दूतों से उस सन्तति की रक्षा होती है। क्रुक ने लिङ्ग परिवर्तन के अनेक उदाहरण अपनी पुस्तक मे दिये हैं जिससे ज्ञात होता है कि यह परम्परा भारत में प्रचलित होने के साथ ही यूरोप में भी प्राप्त थी।[1]

(६) विकलाङ्गता

यदि कोई मनुष्य विकलाङ्ग होता है अर्थात् उसके शरीर में किसी अंग

---

१ क्रुक—पा० रि० फो० लो० भाग २ पृ० ६७

का अभाव है—जैसे हाथ और पैर का कट जाना, अङ्गुलियों का न होना—तब उस व्यक्ति पर भी कुदृष्टि का कोई प्रभाव नहीं पड़ता। अतः विकलाङ्गता कुदृष्टि का अवरोधक है।

इसके ठीक विपरीत जो व्यक्ति सुन्दर सुडौल तथा गौर वर्ण के है उन पर कुदृष्टि का प्रभाव अधिक शीघ्रता से पड़ता है। इसीलिए दुबले-पतले व्यक्ति अपने हाथ में काली पट्टी अथवा गर्दन मे नीला धागा बाँधे रहते हैं। काशी (वाराणसी) में काल भैरव के मन्दिर में मातायें अपने दुबले-पतले, क्षीणकाय छोटे बच्चों के गले में भैरव जी का "काला गण्डा" (माला) पहिना देती हैं जिससे इन पर कुदृष्टि का कोई प्रभाव न पड़ सके।

(७) आग, कोयला आदि

ये वस्तुएँ भी कुदृष्टि की अवरोधक हैं। ग्वाला अथवा हलवाइयों के यहाँ यदि दूध का बर्तन लोगो की दृष्टि-पथ में होता है तो वे उसमें एक कोयला डाल देते हैं जिससे उसमें किसी की कुदृष्टि न लग सके। स्काटलैण्ड की मातायें भी अपने छोटे बच्चों के स्नान के जल में कोयले का टुकड़ा डाल देती हैं।[1] इसी प्रकार, से स्काटलैण्ड में यह प्रथा प्रचलित थी कि परियों के दुष्प्रभाव से बचाने के लिए वहाँ के लोग शराब के मटकों मे जलता हुआ कोयला डाल देते हैं। गाँवों में खेतों पर मजदूरी करने वाले 'बनिहारो' के लिए जब पका-पकाया भोजन उनकी स्त्रियाँ ले जाती हैं तब उसमे अंगार का एक टुकड़ा रख देती हैं जो कुदृष्टि का अवरोधक है।

ग्रामीण स्त्रियाँ रसोई बनाते समय चावल तथा दाल बनाने के पूर्व उसके दो चार दानों को आग मे डाल देती है। उसका भी अभिप्राय कुदृष्टि से भोजन को बचाना होता है। रामानुजी वैष्णव ब्राह्मण दृष्टि दैत्य को भयंकर रूप से आस्थापूर्वक मानते हैं। उनका यह विश्वास है कि यदि बनाये गये भोजन को कोई अपनी आँखों से देख भी लेता है तो वह भोजन जूठा हो जाता है। अतः वे अपने घर में भी दूसरों की दृष्टि अथवा कुदृष्टि से रक्षार्थ उस पकाये गये अन्न को पर्दा के भीतर बैठ कर ही खाते हैं। यद्यपि यह कार्य बड़ा ही हास्यास्पद ज्ञात होता है फिर भी वे ऐसा ही आचरण करते है।

भोजन के पहिले भगवान् के नाम का उच्चारण करने का भी यही

---

१ ग्रेकोट फोकलोर आफ नार्थ ईस्ट स्काटलैण्ड पृ० ७

आशय है। कुछ पंडित लोग अन्न ग्रहण के पूर्व निम्नांकित श्लोक को पढ़कर जिसमे अन्न को [1] अर्पित किया गया रहता है भोजन करते हैं।

नोट—जिन विद्वानों को शुभ दृष्टि, अशुभ या कुदृष्टि आदि विषयों के सम्बन्ध में विस्तृत तथा प्रामाणिक ज्ञान प्राप्ति की अभिलाषा हो उन्हे संस्कृत के सुप्रसिद्ध डच विद्वान् डॉ० जे० गोण्डा का गम्भीर तथा विद्वत्ता पूर्ण लेख "आई एण्ड गेज इन दि वेद" (Eye and gaze in the Veda) का अवश्यमेव अध्ययन करना चाहिए। डॉ० गोण्डा ने इस लेख मे अक्षि (आँख) तथा ईक्षण शक्ति अथवा दृष्टि (आँख) तथा अनिमेष दृष्टि (गेज) या टकटकी लगा कर देखना के सम्बन्ध में बड़ा ही तलस्पर्शी विवेचन प्रस्तुत किया है। कोई देवता जैसे शिव त्रिनेत्र अथवा इन्द्र सहस्राक्ष (एक हजार आँखों वाले) क्यों कहलाते हैं? इसका रहस्य क्या है? इनकी ईक्षण-शक्ति की क्या विशेषता है? इन विषयों का बड़ा ही पाण्डित्यपूर्ण विवेचन किया है। यद्यपि इनका प्रस्तुत अध्ययन विशेषतया वेदों से ही संबंधित है, फिर भी डॉ० गोण्डा ने कुदृष्टि पर भी प्रकाश डाला है तथा इस सम्बन्ध मे सन्दर्भ ग्रन्थों का भी उल्लेख किया है। इसलिए लोक-संस्कृति के अनुसन्धित्सुओं तथा विद्वानों के लिए यह ग्रंथ समान रूप से उपयोगी है।[2]

जादू, टोना और टोटका

जादू के भेद—डायन स्त्रियाँ जिन मन्त्रों तथा उपचारों के द्वारा अपना दूषित प्रभाव दूसरे लोगों के ऊपर जमाती हैं उसे जादू कहा जाता है। अँग्रेजी मे इसे मैजिक (magic) कहा जाता है। वेदों में इसे "यातु विद्या" का नाम दिया गया है।

जादू या मैजिक दो प्रकार का होता है:

(१) होमियोपैथिक जादू (Homeopathic Magic),

(२) कन्टेजियस जादू (Contagious Magic),

१. "त्वदीयं वस्तु गोविन्द, तुभ्यमेव समर्पये।
गृहाण सन्मुखो भूत्वा, प्रसीद परमेश्वर ॥"

२. (क) डॉ० जे० गोण्डा—आई एण्ड गेज इन दि वेद (नार्थ हालैण्ड पब्लिशिंग कम्पनी, एमस्टर्डम, लण्डन–१९६९)

(ख) क्रुक—पा० रि० फो० लो०, भाग-२, पृ० १–११

पहिला है सादृश्यमूलक जादू जो सादृश्य के आधार पर आश्रित है। अर्थात् सदृश कारण होने पर सदृश कार्य की उत्पत्ति होती है। दूसरे शब्दो मे कार्य अपने कारण के अनुरूप ही होता है। उदाहरण के लिए शत्रु का नाश करने के प्रसंग में वृक्ष की एक शाखा काट दी जाती है। यहाँ वृक्ष शत्रु का प्रतिनिधि है और उसकी शाखा को तोड़ने का अर्थ होता है उस शत्रु शरीर के अंगों का छिन्न-भिन्न अर्थात् नष्ट कर देना। अथर्ववेद में इनके अनेक उदाहरण है।

दूसरे प्रकार के जादू का नाम है 'कान्टेजियस मैजिक' अर्थात् संसर्गाश्रित यातु (जादू)। यह जादू संसर्ग के सिद्धान्तो पर अवलम्बित है। यदि एक पदार्थ दूसरे पदार्थ के साथ संसर्ग रखता है, तो वह उस संसर्ग (साथ) के विच्छिन्न हो जाने पर उस पदार्थ से दूर हो जायेगा। उदाहरणार्थ—शत्रु-को मारने के लिए उसके पैर से मुद्रित धूलि को आग में जलाते हैं। शत्रु के दूर चले जाने के कारण उस धूलि से अब उसका कोई सम्बन्ध नहीं है तथापि वह धूलि आग में जलाई जाती है और ऐसी भावना की जाती है कि शत्रु अग्नि में जल कर भस्म हो गया। अथर्ववेद में इस प्रक्रिया मे प्रयुक्त होने वाला मन्त्र निम्नांकित है।[1]

"आ दधामि ते पदं, समिद्धे जातवेदसि।
अग्निः शरीरं वे वेष्ट् वसुं वागपि गच्छतु॥"

जादू में प्रक्रिया पक्ष है तथा शब्द (मन्त्र) पक्ष दोनों ही सम्पूर्ण महत्त्व रखते हैं। जादू की क्रिया की जाती है और इसके साथ ही साथ कतिपय मन्त्रों का भी उच्चारण किया जाता है। मन्त्रों की पुनरावृत्ति या शब्दों के किंचित् परिवर्तन के साथ आवृत्ति करना भी जादू-टोना की सिद्धि में उप-कारक माना जाता है। जादू में एक ही वाक्य या वाक्यों का बारम्बार उच्चारण करना श्रोताओं के ऊपर अपना विचित्र प्रभाव डालता है। इस प्रकार अथर्ववेद में यातु विद्या (जादू, टोना, टोटका) का अक्षय तथा अनन्त भण्डार पाया जाता है।

---

1. अथर्ववेद—२/१२/८

त्रयोदश अध्याय

वनस्पति-जगत् सम्बन्धी लोक-विश्वास

वनस्पति जगत् से मानव का संबंध उतना ही प्राचीन है जितनी उसकी सृष्टि। सभ्यता के आदि काल से ही वृक्ष, लतायें, पुष्प, घास आदि मानव के सहचर रहे हैं। आदिम काल में मनुष्य पेड़ों के नीचे अथवा लताओं के झुर-मुट में रहा करता था। इनसे प्राप्त फलों से अपनी क्षुधा की तृप्ति किया करता था तथा इनकी लकड़ी को जलाकर शीत से अपनी रक्षा करता था। उस आदि मानव की लज्जा को ढकने के लिए ये वृक्ष अपने छिलको के रूप मे उसे वस्त्र प्रदान करते थे। अत: आदिम मानव की प्राथमिक आवश्यकताओं—आवास, भोजन, वस्त्र--की पूर्ति इन्ही वृक्षो के द्वारा हुआ करता थी। इन्ही कारणो से उसने वृक्षों को देवता के रूप में पूजना प्रारम्भ कर दिया हो तो इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है। पूर्वी अफ्रीका के लोगों का यह विश्वास है कि प्रत्येक वृक्ष—विशेष कर नारियल—में जीव होता है। चूंकि नारियल से उनको भोजन तथा जीवनी शक्ति प्राप्ति होती है अत: वे उसे काटना माता की हत्या के समान पातक मानते है।[1] यूरोप के अन्य देशो मे भी इस प्रकार की प्रथाएँ प्राप्त हैं जिनसे ज्ञात होता है ये लोग वृक्षों को कितना पवित्र मानते हैं तथा उनके लिए इनकी शाखाओं या पत्तियों को भी हानि पहुंचाना अत्यन्त निषिद्ध है।[2]

भारत में वैदिक काल से ही वृक्षों तथा लताओं के प्रति सम्मान प्रदान करने की भावना उपलब्ध होती है। वैदिक आर्य सोमरस पान करने के बड़े ही अभ्यासी थे। यह रस सोम नामक लता को पीसकर निकाला जाता था। सोम रस को पीने से उनको जीवनी शक्ति तथा बल प्राप्त होता था। अत:

१, जेम्स फ्रेजर—गोल्डन बाऊ, भाग १, पृ० १४८।

२. वही, पृ० १५० (संक्षिप्त संस्करण)।

ऋग्वेद में सोम की बड़ी प्रशंसा की गई है और देवता के रूप में इसकी प्रतिष्ठा पायी जाती है। सोम की स्तुति में अनेक सूक्त कहे गये हैं।

हमारे ऋषि-मुनि जंगलों में आश्रम बनाकर रहा करते थे। वृक्षों से उत्पन्न फल ही उनका मुख्य आहार था। इनकी छाल उनके वस्त्र का काम देती थी और इनकी लकड़ी दैनिक अग्निहोत्र में प्रयुक्त होती थी। पुष्प और धूप उनकी पूजा की सामग्री थे। इस प्रकार ये वृक्ष उनके एकान्त जीवन के सहचर ही नहीं थे बल्कि दैनिक जीवन की आवश्यकताओं की पूर्ति करने वाले भी थे। यही कारण है कि पुराण काल तक आते-आते वृक्षों की देवता रूप में प्रतिष्ठा ही नहीं मिलती बल्कि इनकी पूजा का बड़ा माहात्म्य भी उपलब्ध होता है।

भगवान् श्रीकृष्ण ने गीता में स्वयं अपने को वृक्षों में 'अश्वत्थ:' (पीपल) कहा है। अतः वृक्षों के प्रति साधारण जनता में पूज्य बुद्धि का होना स्वाभाविक ही है। धीरे-धीरे लोगों में इन वृक्षों, लताओं तथा पुष्पों के प्रति अनेक विश्वास प्रचलित हो गये और उन्होंने रूढ़ियों का रूप धारण कर लिया। विशेष वृक्षों की पूजा पुत्र देने वाली, धन-धान्य प्रदान करने वाली अथवा मनोभिलाषा की पूर्तिकारक मानी जाने लगी।

इस लेख में वनस्पति जगत् सम्बन्धी, साधारण लोक-विश्वास को संक्षिप्त रूप में प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है। वर्णन की सुविधा के लिए वनस्पति जगत् को निम्नांकित पाँच भागों में विभक्त किया गया है—

(१) वृक्ष (२) पौधा (३) घास (४) पुष्प (५) शाक।

शास्त्रों तथा पुराणों में विभिन्न वृक्षों का जो माहात्म्य वर्णन किया गया है, उसे प्रस्तुत करना लेखक का उद्देश्य नहीं है; बल्कि अशिक्षित एवं साधारण जनता में इन वृक्षों तथा पौधों के सम्बन्ध में जो लोक-विश्वास प्रचलित हैं, केवल उन्हीं का उल्लेख किया गया है। ये विश्वास केवल इसी देश में है ऐसा समझना भूल होगा। संसार की सभ्य कही जाने वाली जातियों में भी ये विश्वास आज भी मिलते हैं। इस विषय का तुलनात्मक अध्ययन बड़ा ही रोचक है; परन्तु स्थानाभाव से यहाँ यह सम्भव नहीं है।

(क) वृक्ष

(१) पीपल

पीपल परम पवित्र वृक्ष माना जाता है इसका कारण सम्भवतः यह है

कि इसके ऊपर ब्रह्मा का निवास रहता है। ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश का निवास इस वृक्ष पर है, ऐसा भी कुछ लोग कहते हैं। भगवान् श्रीकृष्ण ने गीता में 'अश्वत्थ: सर्ववृक्षाणाम्' ऐसा कहकर सब वृक्षों में अपने को पीपल माना है।[१] कुछ लोग श्रीकृष्ण के पिता वसुदेव का निवास इस वृक्ष पर स्वीकार करते हैं। इस प्रकार अनेक देवताओं का निवास-स्थान होने के कारण इस वृक्ष का परम पवित्र माना जाना स्वाभाविक है। अनेक प्राचीन मन्दिरों के ऊपर यह वृक्ष उगता हुआ दिखाई पड़ता है, जहाँ इसकी जड़ें उस मन्दिर की दीवाल में घुसकर अपनी स्थिति बना लेती हैं। मन्दिर के पास पीपल के पेड को लगाने की प्रथा भी है। इसलिए देवी-देवताओं के मन्दिरों से संबंधित होने के कारण भी यह पवित्र माना जाता है।

यह वृक्ष बहुत बड़ा और विशाल होता है तथा इसकी आयु भी बहुत अधिक होती है। इसकी जड़ें दूर तक जमीन में चली जाती हैं। इसकी पत्तियाँ हवा के तनिक भी चलने से डोलने लगती हैं। महाकवि तुलसीदास ने मन के डोलने या चलायमान होने की उपमा पीपल के पत्ते से दी है।[२] इस प्रकार यह अंग्रेजी वृक्ष अस्पेन (Aspen) के समान है, जिसकी पत्तियाँ लज्जा के कारण इसलिए हिलती रहती हैं कि उसकी लकड़ी से 'क्रास' बनाया गया था।[३]

भगवान् श्रीकृष्ण ने गीता में इस वृक्ष को संसार का रूपक माना है और इसे 'अव्यय' अर्थात् कभी न नष्ट होने वाला बतलाया है।[४] संस्कृत साहित्य में अनेक स्थानों में इस वृक्ष का सादर उल्लेख पाया जाता है। इन कारणों से भी इसका महत्त्व बहुत अधिक है।

इस वृक्ष की इसी महत्ता तथा पवित्रता के कारण भोजपुरी प्रदेश में इसकी लकड़ी का जलाया जाना निषिद्ध है। यों तो भोजपुरी जनता किसी भी हरे वृक्ष को काटना बुरा मानती है, परन्तु पीपल के वृक्ष को तो कभी भी नहीं काटते है, क्योंकि लोगों की ऐसी धारणा है कि इस वृक्ष के काटने से, इस पर

---

१. गीता—१०/२६

२. रामचरितमानस—'पीपर पात सरिस मन डोला'।

३. क्रुक—पा० रि०, भाग २, पृ० ९८।

४. ऊर्ध्वमूलमधःशाखमश्वत्थं प्राहुरव्ययम्।
छन्दांसि यस्य पर्णानि यस्तं वेद स वेदवित्। गीता १५/१

निवास करने वाले देवताओं को कष्ट होने के कारण, काटने वाले को पाप लगता है। इसीलिए कोई भी हिन्दू अपने हाथ से इस वृक्ष को नहीं काटता।[1]

भोजपुरी प्रदेश में सोमवती अमावस्या के दिन स्त्रियाँ स्नान करके, वासुदेव के रूप में इस वृक्ष की पूजा करती हैं। वे इसकी जड़ में जल चढ़ाती हैं, चन्दन, रोरी और फूल से इसकी पूजा करती हैं तथा १०८ बार इसकी प्रदक्षिणा या परिक्रमा करती हैं। प्रत्येक प्रदक्षिणा की समाप्ति पर वे एक किसमिस, बतासा, लड्डू अथवा चना रखती जाती हैं। यह सम्भवतः प्रदक्षिणा को १०८ बार गिनने के लिए किया जाता है। अन्त में ये वस्तुएँ प्रसाद रूप में बाँट दी जाती हैं अथवा भिक्षुकों को दे दी जाती हैं। कोई बूढ़ी स्त्री राजा निकुञ्जली और उनकी पतिपरायणा स्त्री सत्यवती की कथा भी सुनाती है जिसने इस वृक्ष के प्रति अपनी भक्ति के द्वारा अपने पति को जीत लिया था। इसीलिए इस वृक्ष की पूजा दाम्पत्य-प्रेम को बढ़ाने वाली मानी जाती है। लोगों का विश्वास है कि इसकी पूजा सन्तान भी देने वाली है।

राजपूताने में विधवापन से रक्षा करने के लिए स्त्रियाँ वैशाख शुक्ल चतुर्दशी को इसकी पूजा करती हैं।[2] वहाँ यज्ञोपवीत, विवाह तथा किसी भवन के शिलान्यास के अवसर पर भी इस वृक्ष की पूजा की जाती है। पुत्र की प्राप्ति के लिए इसकी छाया में शपथ ग्रहण किया जाता है। कुछ लोगों का विश्वास है कि रविवार के दिन इस वृक्ष पर लक्ष्मी का निवास होता है तथा अन्य दिनों में दरिद्रता और दुःख का। इसलिए रविवार के दिन इस वृक्ष की विशेष रूप से पूजा की जाती है। किसी मृत व्यक्ति का पुत्र दिवंगत पिता

---

१. सहारनपुर जिले के मेरे एक मित्र ने मुझे यह बतलाया कि उनके खेत में एक पीपल का पेड़ था, जिसकी छाया पड़ने के कारण उस खेत की पैदावार नष्ट हो जाती थी। उस वृक्ष को काटने के लिए उन्होंने अपने हिन्दू नौकर से कहा। परन्तु उसने इस काम के लिए स्पष्ट मना कर दिया। कोई भी हिन्दू 'लकड़हारा' इस काम के लिए तैयार नहीं हुआ। अन्त में परेशान होकर उन्होंने एक मुसलमान से उस वृक्ष को काटने को कहा। तब उसने उस वृक्ष को काट डाला। इसका तात्कालिक दुष्परिणाम क्या हुआ, यह तो नहीं मालूम, परन्तु कुछ वर्षों के पश्चात् मेरे मित्र की एक लड़की मर गई।

२. कैम्पबेल—नोट्स, पृ० २३८।

की आत्मा की शान्ति के लिए इसकी जड़ में ३६० घड़े जल डालता है। रविवार के दिन जल से अर्घ्य देकर इसकी पाँच बार प्रदक्षिणा की जाती है। धनी लोग चाँदी या सोने की पीपल की प्रतिमा बनाकर उसकी पूजा तथा प्रदक्षिणा करते हैं। कुछ लोग दूध से अथवा दूध मिश्रित जल से इसको अर्घ्य देते हैं। स्त्रियाँ इसकी प्रदक्षिणा करते समय इसके तने में सूत लपेटती जाती हैं। संभवतः यह सूत यज्ञोपवीत का प्रतीक है, जिसे इस पवित्र वृक्ष को अर्पित करना उचित समझा जाता है।

भोजपुरी प्रदेश में किसी व्यक्ति की मृत्यु के पश्चात् दिवंगत आत्मा को जल प्रदान करने के लिए तथा उसकी शान्ति के लिए, इस वृक्ष की शाखा मे जल से भरा एक छोटा घड़ा लटकाने की प्रथा है, जिसे 'घण्ट' कहते है। सम्भवतः यह 'घट' शब्द का अपभ्रंश है। 'दाह' देने वाला व्यक्ति प्रातः तथा सन्ध्याकाल इस घण्ट में जल डालता है तथा पीपल को भी अर्घ्य देता है। गाँवों में इस वृक्ष के नीचे 'ग्राम देवता' का मन्दिर बनाया जाता है अथवा मन्दिर के प्रतीक रूप में कुछ अनगढ़ पत्थर एकत्रित कर रख दिये जाते हैं।

यों तो इस वृक्ष को काटकर किसी उपयोग में लाना निषिद्ध है, परन्तु अग्नि को उत्पन्न करने के लिए प्रयोग में आने वाली 'अरणी' और यज्ञीय कर्म मे प्रयुक्त होने वाला 'स्रुवा', होम में घी डालने का पात्र, पवित्रता के कारण इसी पीपल के वृक्ष की लकड़ी से बनाये जाते हैं। इस वृक्ष की पूजा केवल भारतवर्ष में ही नहीं पाई जाती बल्कि अफ्रीका, न्यूजीलैण्ड, आस्ट्रेलिया, सुमात्रा तथा जावा आदि देशों में भी इसकी पूजा का प्रचार है।[1]

(२) बरगद

बरगद का वृक्ष अपनी विशालता के लिए प्रसिद्ध है। इसकी आयु बहुत बड़ी होती है। यह विस्तार में अपना सानी नहीं रखता। इसकी छाया बहुत घनी होती है, जिसके नीचे हजारों आदमी आराम से रह सकते हैं। इसकी शाखाओं से जड़ें फूटकर नीचे की ओर लटकती हैं, जिनको 'बरोहि' कहते है। ये जड़ें जमीन के नीचे घुस जाती हैं और एक स्वतन्त्र वृक्ष का रूप धारण कर लेती हैं, जिससे इस वृक्ष का विस्तार दिन पर दिन अधिक होता जाता है।

---

१. विशेष के लिए देखिए—वेक—सरपेण्ट वरशिप, पृ० १८।

बरगद को संस्कृत में वटवृक्ष या 'न्यग्रोध' कहते हैं। संस्कृत साहित्य में इस वृक्ष का उल्लेख प्रचुरता से पाया जाता है। ऐतरेय ब्राह्मण में किसी राजा को सोमरस का पीना छोड़कर इस वृक्ष के दूध को पीने का आदेश किया गया है।[1] वाल्मीकि रामायण तथा उत्तररामचरित में प्रयाग में स्थित अक्षयवट का उल्लेख पाया जाता है, जिसकी सुशीतल छाया में राम, लक्ष्मण और सीता ने विश्राम किया था। एक कथा के अनुसार एक बार मार्कण्डेय ऋषि ने नारायण भगवान् से अपनी प्रलय लीला दिखलाने को कहा। भगवान् ने उनकी प्रार्थना स्वीकार कर समस्त संसार को जलमग्न कर दिया। केवल एक अक्षयवट ही जल में निमग्न होने से बचा रहा। इसकी शाखा की पत्ती पर बाल रूप में भगवान् विराजते रहे, जिन्होंने भयभीत मार्कण्डेय ऋषि को प्रलय की बाढ़ में डूबने से बचाया। प्रलय की बेला में वट के पत्ते पर सोकर क्रीडा करने वाले भगवान् कृष्ण का वर्णन नीचे के श्लोक में बड़ी सुन्दर रीति से किया गया है—

> "हस्तारविन्देन मुखारविन्दे,
> पादारविन्दं विनिवेशयन्तम्।
> वटस्य पत्रस्य पुटे शयानं,
> बालं मुकुन्दं मनसा स्मरामि॥"

सुप्रसिद्ध चीनी यात्री ह्वेनसांग ने प्रयाग के अक्षयवट का उल्लेख अपने यात्रा-विवरण में किया है।[2] गया में बोधि (वट) वृक्ष के नीचे भगवान् बुद्ध को 'बुद्धत्व' की प्राप्ति हुई थी। ऐसा कहा जाता है कि लंका का सुप्रसिद्ध बोधिवृक्ष इसी वृक्ष की सन्तान है। बम्बई प्रान्त में जेठ मास की अमावस्या को स्त्रियाँ सावित्री के उपलक्ष्य में वट की पूजा करती हैं। यह प्रसिद्धि है कि सावित्री के पति सत्यवान् जब इस वृक्ष को काट रहे थे तब उनकी कुल्हाडी की चोट से सावित्री की मृत्यु हो गई।[3] सम्भवतः इसीलिए वट की पूजा इस प्रान्त में की जाती है।

भोजपुरी प्रदेश में इस वृक्ष को बहुत पवित्र मानते हैं। इस वृक्ष की शाखाओं को काटना अत्यन्त निषिद्ध समझा जाता है। बलिया जिले के मधुवनी गाँव में एक बहुत बड़ा बरगद का पेड़ है, जिसकी विस्तृत शाखाओं से स्टेशन

---

१. हाग—ऐतरेय ब्राह्मण २, पृ० ४८६।
२. कनिंघम—आर्क्योलाजिकल रिपोर्ट, भाग १, पृ० ५।
३. कैम्पबेल—नोटस, पृ० २३८।

को जाने वाली सड़क का रास्ता रुक गया है। परन्तु इसकी शाखाओं को काटना निषिद्ध मान कर वह सड़क ही छोड़ दी गई है और उसके पास दूसरा रास्ता बनाया गया है। बरगद की पत्तियों का 'पत्तल' बनाया जाता है, जिसमें भोजन करना पवित्र माना जाता है। अनेक बीमारियों में इसके दूध का उपयोग होता है।

(३) गूलर

गूलर को संस्कृत भाषा में 'उदुम्बर' कहते हैं। इस वृक्ष की पत्तियों को तोड़ने से उनके डण्ठल से दूध निकलता है, जो बहुत गुणकारी माना जाता है। संभवतः इसीलिए इसको 'हेमदुग्धा' भी कहते हैं। इसका दूध मूर्च्छा तथा अन्य बीमारियों में लाभदायक होता है। यह गर्भपात को रोकता है तथा माता के दूध को बढ़ाता है[1]। इसके दूध की इन्हीं विशेषताओं के कारण इसे 'क्षीर वृक्ष' भी कहते हैं। प्राचीन परम्परा के अनुसार विवश्वत् (विवश्वान्) का आसन, जिसकी पूजा सोमयज्ञ के अन्त में की जाती है, गूलर की लकड़ी का बना हुआ बताया जाता है। सोम देवता जिस सिंहासन पर बैठते हैं वह भी इसी का बना हुआ होता है। मनु ने लिखा है कि वैश्य जाति के ब्रह्मचारी को यज्ञोपवीत संस्कार के अवसर पर गूलर के पेड़ का दण्ड धारण करना चाहिए। ऐसी प्रसिद्धि है कि दीवाली की रात्रि को देवतागण इस वृक्ष पर एकत्रित होते हैं और इसके सारे फूल तोड़ ले जाते हैं, इसलिए गूलर का फूल कभी देखने में नहीं आता। जिस व्यक्ति का दर्शन प्रायः नहीं होता उसके संबंध में यह कहा जाता है कि 'वह गूलर का फूल' हो गया है।

भोजपुरी प्रदेश में लोगों का यह विश्वास है यदि गूलर के फूल को (जो प्रायः दिखाई नहीं पड़ता) किसी भोज्य पदार्थ या द्रव्य की राशि में रख दें तो फिर उसमें से जितना भी खर्च किया जाय वह कभी कम नहीं हो सकता। इसलिए जो वस्तु खर्च करने पर भी नहीं घटती उसके संबंध में यह कहा जाता है उसमें गूलर का फूल रख दिया गया है। घर के समीप गूलर के वृक्ष को 'लगाना' बुरा माना है, क्योंकि लोगों का यह विश्वास है कि इससे उस घर के पुत्रों की मृत्यु हो जाती है। कुछ लोगों का यह भी विश्वास है कि इस वृक्ष की छाया पूर्वसंचित पुण्य को नष्ट कर देती है। इसीलिए धार्मिक व्यक्ति

---

१. कैम्पबेल—नोटस, पृ० २३७।

इसकी छाया से बचकर चलते हैं।[1] इस वृक्ष का फल मीठा होता है जिसे गरीब आदमी चुन-चुन कर खाते हैं। यह वृक्ष बड़ा मनहूस माना जाता है। अतः भोजपुरी मातायें अपने उद्दण्ड पुत्रों को गूलर के पेड़ के नीचे बैठ कर रोने तथा इसके फल, जिसको 'गोदा' कहते हैं, को बीन-बीन कर खाने का शाप देती हैं।

(४) सेमर

सेमर को संस्कृत में 'शाल्मली' वृक्ष कहते हैं। पंचतंत्र में गोदावरी नदी के किनारे एक विशाल शाल्मली वृक्ष का उल्लेख पाया जाता है, जिसकी शाखाओं पर अनेक दिशाओं से आकर पक्षीगण निवास करते थे।[2] यह वृक्ष बहुत ही लम्बा तथा मोटा होता है। बहुत संभव है कि इसकी विशालता के कारण ही इसको सम्मान दिया गया हो। इसका फूल लाल-लाल होता है, जिसमें गन्ध तनिक भी नहीं होती। संस्कृत के किसी कवि ने उच्चकुल में उत्पन्न होने वाले परन्तु विद्याहीन पुरुषों की उपमा इस वृक्ष के गन्धहीन फूलों से दी है।[3] इस वृक्ष के फल को 'ढेढ़ा' कहते हैं, जिसमें से रूई निकलती है। इसकी रूई का प्रयोग तकिया बनाने में किया जाता है। जंगली जातियाँ इसके रेशे का उपयोग करती हैं।

इस वृक्ष के नाम पर शाल्मली नामक नरक का उल्लेख पाया जाता है

---

१. कुछ वर्षों की बात है कि काशी के पंचगङ्गा घाट पर बेनीमाधव जी के मन्दिर के पास एक गूलर का पेड़ था। इन पंक्तियों के लेखक की पूजनीया माता श्रीमती मूर्तिदेवी जी जब पंचगङ्गा घाट पर गंगा स्नान के लिए जाती थीं तब इस वृक्ष की छाया से बचकर चलती थीं, जिससे उनका पूर्वसंचित पुण्य नष्ट न हो जाय। कुछ दिनों के बाद उन्होंने इस रास्ते से जाना ही छोड़ दिया और अपनी वृद्धावस्था में भी एक लम्बे चक्करदार रास्ते को तय कर गङ्गा स्नान करने जाया करती थीं। इसका कारण पूछने पर उन्होंने यह बतलाया कि इस वृक्ष की छाया लगने से मेरा सब पुण्य नष्ट हो जाता है। धार्मिक लोगों द्वारा प्रार्थना करने पर अब यह वृक्ष काट दिया गया है।

२. "अस्ति गोदावरीतीरे विशालो शाल्मलीतरुः।"

३. "रूपयौवनसम्पन्ना; विशालकुलसम्भवाः।
विद्याहीनाः न शोभन्ते, निर्गन्धा इव किंशुकाः॥"

जिसमें जाने वाले पापी आदमियों को इस वृक्ष के काँटों से, जिन्हें 'कूट शाल्मली' कहते हैं, दण्ड दिया जाता है। इसकी लकड़ी बहुत हल्की होती है। अत: इससे पालकी बनाई जाती है जिसमें बैठकर दुलहा विवाह करने के लिए जाता है। कोल तथा द्रविड़ जातियों में विवाह के मण्डप का स्तम्भ सेमर की लकड़ी का बनाया जाता है जिसके चारों ओर वर-वधू प्रदक्षिणा करते हैं। उत्तर प्रदेश के 'बँमफोर' जाति के लोग विवाह मण्डप में गूलर तथा सेमर की लकड़ी का स्तम्भ स्थापित करते हैं।

(५) नीम

नीम के पेड़ को संस्कृत में 'निम्ब' कहते हैं। यह वृक्ष बहुत ही पवित्र समझा जाता है, क्योंकि शीतला देवी का यह निवास स्थान माना जाता है। शीतला चेचक की देवी है; अत: इस रोग में नीम के वृक्ष का उपयोग अनेक प्रकार से किया जाता है। चेचक को बंगाल में 'बसन्त रोग' कहते हैं, क्योंकि यह प्रधानतया वसन्त ऋतु में ही होता है। अत: चैत्रमास में नवरात्र के समय इस वृक्ष की विशेष रूप से पूजा की जाती है। यह क्रम आषाढ़ मास के शुक्ल-पक्ष तक चलता रहता है। स्त्रियाँ इस ऋतु में स्नान करके, नवीन वस्त्र धारण कर, अक्षत, चन्दन, पुष्प आदि से इसकी पूजा करती हैं और इसकी जड़ के पास सुगन्धित द्रव्य जलाती हैं।

नीम का वृक्ष बड़ा विशाल होता है। इसकी छाया बड़ी शीतल होती है। इसके फल को 'निमकौड़ी' कहते हैं। पक जाने पर इसका फल जमीन पर स्वत: गिरने लगता है। गरीब आदमी 'निमकौड़ी' को इकट्ठा करके इसका तेल निकालते हैं, जो दीपक जलाने के काम में लाया जाता है। बुखार मे इसके तेल की मालिश रोगी के तलवे में की जाती है, जिससे ज्वर कम हो जाता है। इसके फूल को वसन्त ऋतु में धनी लोग घी मे तल कर खाते हैं, जो रक्त-शोधक अर्थात् खून को साफ करने वाला है। इसके वृक्ष की पत्तियाँ तथा छिलके अनेक रोगों में प्रयोग में लाये जाते हैं, जिसका विस्तृत वर्णन अन्यत्र किया जायेगा। नीम का गोंद खाने के काम में लाया जाता है। वैद्यक शास्त्र में इस वृक्ष की बड़ी प्रशंसा की गई है तथा यह बड़ा ही उपयोगी पेड़ माना गया है। हिन्दू लोग नित्य प्रात:काल इस वृक्ष की टहनी की 'दातौन' करते है, जो दाँतों को साफ तथा मजबूत करती है।

जैसा कि पहिले लिखा जा चुका है नीम वृक्ष शीतला देवी का निवास-

स्थान माना जाता है। लोगों का विश्वास है कि शीतला माता इस पर रहती हैं और भक्त के द्वारा आवाहन करने पर यहाँ से उसकी रक्षा के लिए जाती है। एक भोजपुरी गीत में शीतला माता का इस वृक्ष पर झूला डालकर झूलने का उल्लेख पाया जाता है। उस वृक्ष पर झूला झूलते समय शीतला देवी को प्यास लग जाती है, वह अपनी भक्तिन से पीने के लिए पानी माँगती हैं। तब भक्तिन कहती हैं—ए माता ! मैं आपको पानी कैसे पिलाऊँ ? मेरी गोदी में चेचक के रोग से पीड़ित बालक पड़ा हुआ है। यह गीत इस प्रकार है[1]—

"नीमिया की डाढ़ी मइया नावेली हिलोरवा,
कि झुली झुली ना, मइया गावेली गीत।
कि झुली झुली ना ॥टेक०॥
झुलत झुलत मइया का लगली पियसिया,
कि चलि भइली ना, मलहोरिया आवास।
सूतलु बाड़ू कि जागलि ए मालिन,
उठि के मोहि के पनिया पिआव।
कइसे मैं पनिया पियावों ए सीतली मइया,
मोरा गोदी लड़िका तोहार।"

नीम की पत्तियों का उपयोग चेचक की बीमारी में विशेष रूप से किया जाता है। माली अथवा घर की स्त्रियाँ इसकी टहनी से रोगी के लिए पंखा करती हैं, क्योंकि ऐसा विश्वास किया जाता है कि इसकी हवा से रोगी का दुःख शीघ्र ही दूर हो जाता है। कुछ लोग नीम की पत्तियों पर रोगी को सुलाते भी हैं। इसके फूल को रोगी की चारपाई के ऊपर बिखेर दिया जाता है, क्योंकि उसकी सुगन्ध रोगी के लिए हितकर मानी जाती है। कुछ लोग प्रातःकाल नीम के वृक्षों के नीचे टहलते हैं और उसकी हवा को स्वास्थ्यप्रद मानते हैं।

नीम वृक्ष का सम्बन्ध सर्प से भी है। लोगों का ऐसा विश्वास है कि यदि कोई मनुष्य बारह वर्ष तक नीम की लकड़ी से पकाये गये भोजन को करता रहे, सदैव नीम की दातौन करे तथा अन्य प्रकार से भी नीम का ही उपयोग करता रहे तो उसके शरीर पर साँप के काटने का कोई भी प्रभाव नहीं पड़ सकता प्रत्युत इसके ठीक विपरीत ऐसे मनुष्य को काटने वाला सर्प स्वयं ही

१. उपाध्याय— भोजपुरी लोकगीत, भाग १, पृ० २६६-७०।

मर जायेगा। यह विश्वास केवल इसी देश में नहीं है, बल्कि यूरोप में भी पाया जाता है। समस्त उत्तरी यूरोप में एश (नीम) वृक्ष की पत्तियों और लकड़ी को सर्पदंश से रक्षा करने वाला माना जाता है।[१] कार्नवाल में लोगों का विश्वास है कि 'एश' वृक्ष के पास किसी भी प्रकार का सर्प नहीं आ सकता और इसकी शाखा को अपने पास रखने से किसी भी व्यक्ति के पास सर्प आने की हिम्मत नहीं कर सकता।[२]

भोजपुरी प्रदेश में साँप के द्वारा काटे गये व्यक्ति को नीम की पत्तियाँ खिलाई जाती हैं। यदि इसकी पत्तियाँ खाने में उसे कड़वी लगती हैं तो यह समझा जाता है कि सर्प के काटने का प्रभाव नहीं हुआ है; परन्तु यदि वे कड़वी न लगें तो यह दृढ़ विश्वास हो जाता है कि सर्प के काटने का प्रभाव इस व्यक्ति पर प्रचुर परिमाण में हो गया है। इस बात की जाँच करने के लिए ऐसे व्यक्ति को कभी-कभी नीम का फल (निबौरी) भी खिलाया जाता है।

नीम की पत्तियों का प्रयोग भूत भगाने के लिए भी किया जाता है। जब किसी व्यक्ति को 'भूत' लग जाता है तब उस भूत को भगाने के लिए नीम की पत्तियों को जला कर उसका धुआँ देते हैं। उस धुएँ के लगने से भूत भाग जाता है। स्त्रियों के सूतिका गृह में जलने वाली अँगीठी, जिसे 'पासँघि' कहते हैं, में इसी नीम वृक्ष की लकड़ी जलाई जाती है, जिससे कोई भूत या प्रेतात्मा घर में घुसकर नव-जात शिशु को दुःख न दे। इसी प्रकार से अन्य अवसरों पर भी भूत भगाने के काम में इसकी पत्तियों तथा लकड़ी का उपयोग किया जाता है।

समस्त उत्तरी भारत में किसी व्यक्ति की मृत्यु से उत्पन्न स्पर्श-दोष को दूर करने के लिए इसकी पत्तियों को काम में लाया जाता है तथा श्मशान से लौटकर आने वाले लोगों के पीछे लगने वाली प्रेतात्मा को दूर भगाने के लिए भी यह एक उपयुक्त साधन है। इसलिए वे लोग नीम की पत्तियों को चबाते हैं तथा इसकी टहनी से उनके ऊपर जल छिड़का जाता है। बम्बई राज्य में भूतों के ऊपर नीम की पत्तियों का इतना अधिक प्रभाव माना जाता है कि जब किसी स्त्री को बच्चा पैदा होता है तब सूतिकागृह के द्वार पर नीम तथा गोमूत्र को किसी बर्तन में रख देते हैं, जिससे कोई बुरी आत्मा (भूत-प्रेत) कमरे के

---

१. 'फोकलोर', भाग ३, पृ० ८८।

२. हण्ट—पापुलर रोमान्सेज, पृ० ४२०।

भीतर घुसकर नवजात शिशु और उसकी माता को कष्ट न दे। महाराष्ट्र के चितपावन ब्राह्मणों में यह प्रथा है कि सूतिकागृह के द्वार पर गोमूत्र में नीम की एक टहनी डाल कर रख दी जाती है। यदि कोई व्यक्ति घर के भीतर घुसना चाहे तो यह आवश्यक है कि वह अपने पैर पर नीम की टहनी से गोमूत्र को थोड़ा छिड़क ले। लोगों का विश्वास है कि इससे बुरी आत्मायें भीतर नहीं घुसने पातीं।

पूना के ब्राह्मणों में यह प्रथा है कि बच्चा के पैदा होने पर घर के सामने तथा पीछे वाले द्वारों पर नीम की पत्तियों को टाँग देते हैं। अहमदनगर में यदि किसी व्यक्ति को साँप काट खाता है तो उसे भैरव के मन्दिर में ले जाते हैं और वहाँ उसे नीम की पत्ती में मिर्च मिला कर खाने को दिया जाता है तथा इसकी पत्तियों से उसको 'झाड़ते' हैं। कच्छ के कनफटी योगी अपने कानों को छिदवाते हैं। उस छेद में वे नीम की ही लकड़ी डालते हैं और नीम का तेल लगाकर अपने कान के घाव को ठीक करते हैं।[1]

जंगली जातियों में भी इस वृक्ष की पूजा का प्रचार है। मद्रास राज्य की जोगी नामक जंगली जाति इस वृक्ष की पूजा करती है और इस वृक्ष का प्रतीक कुत्तों के शरीर पर बनाती है।[2] बनजारे लोग इस वृक्ष के द्वारा अपनी स्त्रियों के सतीत्व की परीक्षा करते हैं। पति जमीन पर नीम की शाखा को फेंक कर कहता है—'यदि तुम सच्ची तथा सती स्त्री हो तो इस नीम की शाखा को उठा लो।[3] उत्तर प्रदेश की डोम नामक जाति नीम वृक्ष को काली का निवास-स्थान मानती है। कुरमी नामक जाति के लोग काली भवानी का निवास इस पर मानते हैं। इस वृक्ष के नीचे देवी की प्रतिमा को स्थापित करके वे इस वृक्ष की पूजा करते हैं।[4]

इस प्रकार नीम का वृक्ष अपनी उपयोगिता तथा शीतला एवं काली देवी का निवास स्थान होने के कारण पवित्र माना जाता है।

(६) बेल

बेल के वृक्ष को भोजपुरी प्रदेश में 'सिरीफल' कहते हैं, जो संस्कृत के 'श्रीफल' शब्द का अपभ्रंश है। संस्कृत में इसे 'बिल्व' वृक्ष कहते हैं तथा इसका

१. कैम्पबेल-नोट्स, पृ० २३४।
२. मुल्लले-नोट्स आन मद्रास क्रिमिनल ट्राइब्स, पृ० २०।
३. क्रुक पा० लि०, पृ० १०५।
४. पंजाब नोट्स एण्ड क्वेरीज, भाग ३, पृ० ३८।

पत्ता बिल्वपत्र कहा जाता है, जिसका भोजपुरी नाम 'बेलपत्तर' है। इस वृक्ष में काँटे होते हैं। इसका फल, जिसे 'सिरीफल' कहते हैं, गोल तथा कड़ा होता है। जिसकी तासीर बहुत ठंडी होती है। इस वृक्ष के प्रत्येक वृन्त में तीन पत्तियाँ होती है।

यह वृक्ष बड़ा पवित्र माना जाता है। इसकी पत्तियाँ भगवान् शिव के लिङ्ग पर चढ़ाई जाती हैं। लोगों का ऐसा विश्वास है कि इन पत्तियों को शिव के ऊपर चढ़ाने से हलाहल (विष) के पान करने से उत्पन्न भगवान् शिव की गर्मी शान्त होती है। जिन पत्तियों में किसी कीड़े के द्वारा चिह्न बना रहता है अथवा जो पत्तियाँ क्षत-विक्षत होती हैं उन्हें शिव के ऊपर नहीं चढ़ाया जाता। बहुत से लोग बेल की पत्तियों पर, चन्दन को पीसकर उसके द्वारा इसकी डण्ठल से 'राम राम' लिखकर शिवजी पर चढ़ाते हैं। ऐसा करना अनन्त पुण्य को देने वाला समझा जाता है। शिव का इस वृक्ष से विशेष संबंध है इसलिए उन्हें 'बिल्वदण्ड' भी कहा जाता है। इसका फल भी शिवजी की पूजा में प्रयुक्त होता है। संभवतः इसके फल को 'श्रीफल' इसीलिए कहते हैं कि यह लक्ष्मी के दूध से उत्पन्न हुआ माना जाता है।[1]

इस वृक्ष की लकड़ी पवित्र होने के कारण मृत व्यक्ति को जलाने के काम में लाई जाती है। यज्ञीय कर्म में होम करने के लिए भी इसकी लकड़ी का प्रयोग किया जाता है। यज्ञीय यूप, वह स्तम्भ जिसमें बाँधकर किसी पशु की बलि दी जाती है, का निर्माण इसी बेल के वृक्ष की लकड़ी से किया जाता है। इस वृक्ष के पवित्र होने के कारण इसे घर में जलाने के काम में लाना अत्यन्त निषिद्ध है। इस वृक्ष के नीचे शौचादि कर्म करना मना है। इसकी पत्तियों का उपयोग अनेक प्रकार की औषधियों के बनाने में किया जाता है, जिसका वर्णन अन्यत्र किया जायेगा।

भोजपुरी प्रदेश में अपनी मनोकामना की सिद्धि के लिए स्त्रियाँ बेल वृक्ष का आलिङ्गन करती हैं, जिसे 'अँकवारि' देना कहते हैं। पार्थिव पूजा, (मिट्टी के द्वारा शिव लिङ्ग को बनाना) में भी बेलपत्र का उपयोग किया जाता है। शिव के भक्त अपनी शिखा में बेल की पत्ती को बाँधते हैं, क्योंकि वह पवित्र होती है।

---

१ क्रुक पा० लि०।

(७) बाँस

अपनी अनेक प्रकार की उपयोगिता के कारण बाँस भी पवित्र माना जाता है। सम्भवतः इसकी पवित्रता का दूसरा कारण भगवान् श्रीकृष्ण के साथ इसका सम्बन्ध है। कृष्ण जी सदा हरे बाँस की बनी हुई बाँसुरी को बजाया करते थे[1], जिसे सुन कर गोपियाँ विह्वल हो जाती थी। जंगली जातियाँ बाँस के दो टुकड़ों को आपस में रगड़ कर आग पैदा करती हैं। इसीलिए वे इसे पवित्र मानती हैं।

संस्कृत में बाँस को 'वंश' कहा जाता है। बाँस एक ही स्थान पर बहुत अधिक संख्या में उत्पन्न होते हैं, जिन्हें भोजपुरी में 'बँसवारि' कहते हैं। यह संस्कृत के 'वंशावली' शब्द, जिसका अर्थ बाँसों का समुदाय है, का अपभ्रंश है। नये उगते हुए बाँस को 'कोपड़' कहते हैं जो कोंपल का अपभ्रंश है। इसके छिलके को 'सुपुली' कहते हैं जो भाड़ झोंकने के काम में लाया जाता है। होली की पूर्व रात्रि को 'संवत् जलाने' के अवसर पर लड़के इसके छिलके लाठी में बाँध कर, उसमें आग लगाकर चारों ओर घुमाते हैं, जिसे 'लुकाठी भाँजना' कहते हैं। बाँस की शाखाओं को 'कोइनि' कहा जाता है, जिससे छबड़ी (टोकरी) 'बीनी' जाती है।

भोजपुरी प्रदेश में विवाह के मंगलमय अवसर पर मण्डप बनाने के लिए लम्बे-लम्बे हरे बाँस काटकर गाड़े जाते है, जिनकी संख्या कहीं सात और कहीं नौ होती है। इसे 'माँड़ो' कहते हैं, जो 'मण्डप' शब्द का अपभ्रंश है। जहाँ बाँस उपलब्ध नहीं होता वहाँ उसकी शाखा (कोइनि) से ही काम चलाया जाता है। भोजपुरी प्रदेश में बिना बाँस के विवाह के मण्डप को बनाना असम्भव समझा जाता है। जब कोई व्यक्ति मर जाता है तब उसे श्मशान में ले जाने के लिए जो शय्या, जिसे रन्थी या अरथी कहते हैं, तैयार की जाती है; वह हरे बाँस की ही बनाई जाती है। एक भोजपुरी गीत में कच्चे अर्थात हरे बाँस की डोली (रन्थी) बनाकर उस पर मृत व्यक्ति को सुलाकर ले जाने का उल्लेख पाया जाता है[2]—

"मोरे नइहरवा से नातवा छोड़वले जाला पियवा।
काँचे काँचे बँसवा के डोलिया बनवले,

---

१. "हरित बाँस की बाँसुरी, इन्द्रधनुष रंग होति।" —बिहारी सतसई।
२. उपाध्याय—भो० ग्रा० गी०, भाग १, पृ० ४५, (प्रस्तावना)।

ताहि पर काया के सुतवले जाला पियवा।
चारि कहार मिलि डोलिया उठवले,
आगे आगे रहिया देखवले जाला पियवा।''

यज्ञोपवीत संस्कार में ब्रह्मचारी के लिए जो 'दण्ड' तैयार किया जाता है उसमें पलाश की शाखा के साथ-साथ 'कोइनि' भी होती है। इन दोनों वृक्षों की शाखाओं को एक साथ बाँधकर ब्रह्मचारी उसकी 'काँवरि' बनाता है और उसे अपने कन्धे पर 'भिक्षा माँगते' समय धारण करता है।

श्राद्ध के अवसर पर जो चारपाई, जिसे भोजपुरी में 'खटिया' कहते हैं, महाब्राह्मण को दी जाती है वह हरे बाँस की ही बनाई जाती है। यद्यपि धनी लोग शाल वृक्ष की बनी हुई चारपाई भी देते हैं, परन्तु बाँस की ही चारपाई का अधिक महत्त्व समझा जाता है और साधारणतया लोग इसी चारपाई को दान में देते हैं।

जब किसी व्यक्ति को 'लंघन' (पैर का दर्द) रोग हो जाता है तब रोगी और उसके परिवार का कोई दूसरा व्यक्ति बाँस की हरी दो 'कोइनियों' को अपने कमर के दोनों ओर, हाथ से पकड़ कर खड़ा हो जाता है। रोग दूर करने वाला 'ओझा' मन्त्र पढ़ता जाता है और बीच-बीच में 'जुट' 'जुट' कहता जाता है। जैसे-जैसे ये दोनों 'कोइनि' एक दूसरे के नजदीक आने लगते हैं अथवा 'जुटने' लगती हैं वैसे-वैसे उस रोगी का रोग भी दूर होने लगता है। यदि किसी कारण से ये 'कोइनि' आपस में न जुटीं तो रोगी का रोग दूर नहीं होता।

बाँस का वृक्ष पवित्र होने के साथ ही प्रेतात्माओं को भगाने वाला भी समझा जाता है। 'दाही' अर्थात् मृत व्यक्ति का दाह-संस्कार करने वाला जिस दण्ड' को धारण करता है वह 'कोइनि' का बना हुआ होता है। उस दण्ड में लोहा भी बाँध दिया जाता है। लोगों का ऐसा विश्वास है कि इस दण्ड को धारण करने से मृत व्यक्ति की प्रेतात्मा उस 'दाही' के पास नहीं आती और उसे परेशान नहीं करती। यह कहना यहाँ अप्रासंगिक न होगा कि बाँस की पवित्रता उसके कच्चे या हरे होने में ही है। सूखे बाँस का उपयोग किसी भी पवित्र काम में नहीं किया जाता है।

बाँस में दुष्ट आत्माओं (Evil spirits) को भगाने का जो गुण है वह अन्य प्रान्तों या राज्यों में भी पाया जाता है। गुजरात में तुरी नामक जाति

के लोग सूतिकागृह में बाँस के दो टुकड़ों को इसलिए रख देते हैं जिससे दुष्ट आत्मायें उसमें प्रवेश न कर सकें।[1]

भोजपुरी प्रदेश में वर जब अपनी वधू के साथ विवाह करके घर लौटता है तब गृह के प्रधान द्वार से लेकर शयन-गृह तक जाने के लिए वर और वधू जमीन पर पैर नहीं रखते, बल्कि उन्हें हरे बाँस की बनी हुई छबड़ी (दौरा) मे पैर रखकर चलना पड़ता है, जिसे भोजपुरी में 'दौरा मे डेग डालना' कहते हैं। बाँस अधिक सन्तानोत्पत्ति का प्रतीक माना जाता है। अतः वर-वधू का बाँस की बनी छबड़ी में पैर रखकर चलना उनके लिए शुभ-सूचक माना जाता है। यह प्रथा अन्य प्रान्तों में भी पाई जाती है। गुजरात की महार और माँग नामक जातियाँ नव-विवाहित-दम्पति को बाँस की बनी टोकरी में खड़ी करती हैं। पूना के प्रभू लोग विवाह के अवसर पर वर, वधू और अतिथि लोगों के सिर पर बाँस की टोकरी को रखते हैं। बंगाल के मुदासी जाति के लोग विवाहित स्त्री-पुरुष को बाँस के बने स्तम्भ के चारों ओर घुमाते हैं। बिरहोर लोग फटे बाँस के रूप मे अपने देवता की पूजा करते हैं। आसाम राज्य की कछारी और गारो नामक जातियाँ जमीन में बाँस को गाड़ कर उसकी पूजा करती हैं। राजमहल पहाड़ी के लोग पताका से युक्त तीन बाँसों की 'चौदे गुसाईं' के रूप में पूजा करते हैं।[2] उत्तरी भारत की नीची जातियों के मन्दिरों में पताका से युक्त बाँस के स्तम्भ देवताओं के निवास-स्थान माने जाते हैं। भोजपुरी प्रदेश में लोगों का ऐसा विश्वास है कि 'चुरइल' (चुड़ैल) का आवास-स्थान 'बँसवारि' है।

८. आँवला

आँवला भी एक पवित्र वृक्ष माना जाता है। कार्तिक मास में इस वृक्ष की विशेष रूप से पूजा की जाती है। स्त्रियाँ प्रतिदिन स्नान करके अक्षत, चन्दन, रोरी, फूल और नैवेद्य से इसकी पूजा करती हैं और इसकी जड़ में अर्घ्य दान करती हैं। पुत्र की प्राप्ति के लिए इस वृक्ष की पूजा का विधान है। यों तो पूरे कार्तिक महीने भर इसकी पूजा करने का नियम है परन्तु कार्तिक शुक्ल नवमी, जिसे 'अक्षय नवमी' कहते हैं, के दिन इसकी पूजा का विशेष महत्त्व है। इस दिन इस वृक्ष के नीचे ब्राह्मणों को भोजन कराना बड़ा ही

---

१. कैम्पवेल नोट्स—पृ० २३६।

२. क्रुक—पा० रि, भाग २, पृ० ११३ (संशोधित संस्करण)।

"जब आमवा में लागे ला सरिसई हो रामा।
तब पियवा करे ला लरिकई हो रामा।"

आम के फल के भेद अनन्त होते हैं। इन भेदों का नामकरण उनकी आकृति, स्वाद तथा स्वरूप पर निर्भर होता है। उदाहरण के लिए कुछ आमों के नाम उनके वर्गीकरण के साथ इस प्रकार हैं—

(१) करियवा	(२) सिन्धोरिया	—	स्वरूप के आधार पर।
(३) लमकोइया	(४) गोलियवा	—	आकृति के आधार पर।
(५) चेफुअवा	(६) तेलहवा	—	स्वाद के आधार पर।
(७) करुअइना और	(८) खटहवा		

आम के फल के रस को निचोड कर कपड़े के ऊपर फैला कर कड़ी धूप मे सुखाया जाता है। इस प्रकार आम के रस की जो मोटी तह (पट्टी) तैयार होती है उसे 'अमावट' कहते हैं। आम की पत्तियों को 'पल्लो' कहा जाता है, जो संस्कृत शब्द पल्लव का अपभ्रंश है। बनारसी बोली में आम के 'पल्लो' को 'टल्लो' कहते हैं। आम की गुठली को फोड़ कर और उसकी गिरी (गुद्दे) को निकाल कर, आटे में मिलाकर उसकी रोटियाँ पकाई जाती हैं, जिसे नीच जाति के लोग खाते हैं। आम की गुठली अनुकूल जलवायु तथा मिट्टी पाकर पौधे के रूप में जब उगने लगती है तब उसे 'मोला' कहते हैं। भोजपुरी प्रदेश मे छोटे-छोटे बच्चे इसी मोल को रगड़ कर मुँह से बजाते हैं, जिससे बड़ी सुन्दर आवाज निकलती है। यह बाल-क्रीड़ा का उत्तम साधन है।

जैसा कि पहले लिखा जा चुका है आम का वृक्ष बड़ा पवित्र माना जाता है। यज्ञ में हवन के कार्य में इसकी लकड़ी का उपयोग किया जाता है। यज्ञोपवीत तथा विवाह में इसकी हरी लकड़ी का 'पीढ़ा' बनाया जाता है। विवाह में वर इसी पीढ़े पर बैठ कर वैवाहिक विधि-विधानों को सम्पन्न करता है। यज्ञोपवीत में ब्रह्मचारी को इसी पीढ़े पर बैठाकर स्नान कराया जाता है। इसी वृक्ष की हरी लकड़ी से एक पटरी बनाई जाती है, जिसे 'पाटी' कहते हैं। ब्रह्मचारी सर्वप्रथम इसी 'पाटी' पर अक्षरारम्भ करता है और 'श्रीगणेशाय नमः' लिखना सीखता है। ब्रह्मचारी की खड़ाऊँ भी आम की ही होती है।

विवाह में मण्डप के बीच में जो 'हरिस' गाड़ी जाती है वह भी इसी आम की लकड़ी की बनी होती है। इसी शुभ अवसर पर वर और कन्या को जिस 'जुआठि' पर खड़ा करा कर स्नान कराया जाता है वह भी इसी लकड़ी की बनाई जाती है। पण्डित लोग आम की 'चौकी' (तख्ते) पर पूजा करना शुभ

मानते हैं। श्राद्ध के अवसर पर जो चारपाई दान रूप में महाब्राह्मण को दी जाती है उसका 'पाया' (पैर) प्रायः आम की लकड़ी का बना हुआ होता है। मृत व्यक्ति को आम की लकड़ी से जलाना पवित्र माना जाता है। पीपल के समान आम की लकड़ी भी पवित्र मानी जाती है; अतः समस्त शुभ कार्यों में इसका प्रयोग किया जाता है।

विवाह के अवसर पर आम की पत्तियों से 'तोरण' बनाया जाता है और उसे घर के प्रधान द्वार, बरामदे तथा मण्डप में माला के रूप में टाँगा जाता है। मण्डप में जो 'माँड़ो' गाड़ा जाता है उसमें प्रत्येक बाँस के ऊपरी सिरे पर आम की पत्तियाँ बाँधी जाती हैं। सत्यनारायण की कथा, यज्ञोपवीत, विवाह तथा अन्य किसी भी शुभ अवसर पर, कलश स्थापन के समय जल से भरे मिट्टी के घड़े में आम का पल्लव डाला जाता है, जो इसकी पवित्रता का सूचक है। आचमन करते समय आम के 'पल्लो' का उपयोग आचमनी के रूप में किया जाता है तथा हवन करते समय यज्ञ-कुण्ड में घी की आहुति डालने के लिए इसका प्रयोग 'स्रुवा' के रूप में करते हैं। 'माता दाई' (देवी) की पूजा में भी आम की पत्तियाँ काम में लाई जाती हैं। विवाह आदि के अवसर पर गणेश की गोबर की प्रतिमा की स्थापना पल्लव पर ही की जाती है। सच तो यह है कि प्रत्येक मांगलिक कार्य में आम की पत्तियों का होना अत्यन्त आवश्यक है। मंगलकार्य की समाप्ति पर आम की पत्तियों को बटोर कर किसी नदी में प्रवाहित कर देते हैं। परन्तु जहाँ नदी नहीं होती वहाँ उसे किसी 'बँसवारि' की जड़ में फेंक देते हैं।

बहुत से लोग आम की टहनी की दातौन करना शुभ मानते हैं। स्त्रियाँ व्रत की समाप्ति के दूसरे दिन अर्थात् पारण के दिन किसी फलवाले वृक्ष—जैसे आम और अमरूद—की दातौन करना पवित्र मानती हैं और वे प्रायः इस दिन आम की ही दातौन करती हैं। परन्तु रविवार और मंगलवार को इस वृक्ष की दातौन करना निषिद्ध है। भाद्र मास के शुक्ल पक्ष की पंचमी को 'ऋषि पंचमी' कहते हैं। इस दिन स्त्रियाँ 'चिचिड़ी' नामक पौधे की दातौन करती हैं। परन्तु जहाँ यह पौधा उपलब्ध नहीं होता वहाँ आम के पल्लव की ही दातौन की जाती है। विवाह के शुभ अवसर पर वर की माता आम के पाँच पल्लवों की जड़ को बारी-बारी से अपने दाँत से काटती है और इसके पश्चात् अपने भाई के द्वारा दिये गये जल को मुँह में अञ्जली (आजुँरि) लगाकर पीती है। इस विधि को 'इमली घोटाना' कहते हैं। यद्यपि इस विधि

में 'इमली' की पत्तियों को निगलने का संकेत है। परन्तु वास्तव में वे आम की ही पत्तियों की जड़ को अपने दाँतों से काटती हैं।

पवित्र होने के कारण आम के हरे वृक्ष को काटना निषिद्ध माना जाता है। रात हो जाने पर आम की पत्तियों को तोड़ना मना है, क्योंकि लोगों का ऐसा विश्वास है कि इससे वृक्ष की आत्मा को कष्ट होता है।

(१०) महुआ

महुआ को संस्कृत में 'मधूक' कहते हैं। इसका फूल पीला तथा गोल होता है, जो देखने में बड़ा ही सुन्दर मालूम होता है। इसकी माला बहुत मनोरम तथा कोमल होती है। "मधूकमाला सविशेषमृद्वी" लिखकर संस्कृत के किसी कवि ने इसकी कोमलता एवं मधुरता की ओर संकेत किया है। प्राचीन काल में स्वयम्वरों में जिस फूल की माला वर को चुनने के लिए प्रयोग में लाई जाती थी, वह सम्भवतः महुए की ही बनती थी। बहुत सम्भव है कि इस वृक्ष को यह गौरव इसके फूल की सुन्दरता के कारण मिला हो।

महुआ का वृक्ष बड़ा विशाल होता है। इसके फूल, फल, छाल और लकड़ी सभी का उपयोग होता है। अपनी उपयोगिता और सुन्दरता के कारण ही इस वृक्ष की इतनी महत्ता है। महुआ वृक्ष का फूल—जिसे 'महुआ' ही कहते हैं—ग्रीष्म ऋतु में जमीन पर 'चूता' है। रात में जो महुआ चूकर जमीन पर गिरता है, उसे प्रातःकाल 'बीन' कर इकट्ठा करते हैं और धूप में फैलाकर सुखा लेते हैं। गरीब लोग महुए को भाड़ में भूनकर खाते हैं। यह जानवरों को भी खिलाया जाता है। लोगों का ऐसा विश्वास है कि गाय और भैंस को महुए खिलाने से उनके दूध में वृद्धि होती है और वे बलशाली होती हैं। महुआ को पानी में भिगोकर, उसे सिल पर पीस कर, आटे में मिलाकर उसकी रोटी बनाई जाती है, जिसे 'महुअर' कहते हैं। यदि पीसे हुए महुए में गुड़ मिला दिया जाय तो वह मदिरा के समान अपवित्र समझा जाता है।[1]

---

१. इस सम्बन्ध में एक पण्डितानी जी की कथा बड़ी मनोरंजक है। एक दिन किसी पण्डित ने अपनी स्त्री से 'महुअर' बनाने के लिए कहा। पण्डिताइन ने सोचा यदि महुए में थोड़ा गुड़ डाल दिया जाय तो वह और भी मीठा हो जायगा और उसकी 'महुअरि' बड़ी स्वादिष्ट होगी। यह सोचकर उसने महुए के साथ गुड़ पीसकर 'महुअरि' बनाया और पण्डित जी को खाने को दिया। पण्डित जी को महुअरि बड़ी मीठी लगी

नीची जाति के लोग महुए को सड़ाकर उसकी 'शराब' बनाते हैं, जिसे 'ठर्रा' कहते हैं। इसलिए आबकारी विभाग के लिए इस वृक्ष का बड़ा महत्त्व है।

महुए के फल को 'कोयतां' कहते हैं, जो बरसात के दिनों में फलता है। इसकी गिरी (गुद्दा) से तेल निकाला जाता है, जिसे 'कोइना' या 'कोयतां' का तेल कहते हैं। गरीब लोग इसके तेल को जलाते हैं तथा इसमें पकवान पकाकर खाते हैं।

लोक-कथाओं में 'महुए के चूने' का उल्लेख अनेक स्थानों पर पाया जाता है। एक कथा के अनुसार कोई सर्प किसी महुए के वृक्ष के नीचे रात को जा रहा था। इतने ही में उसके शरीर पर महुआ चू-चू कर गिरने लगा। इस पर उसने वृक्ष से पूछा कि तुम महुओं को पट-पट मेरे सिर पर गिराकर उसे क्यों फोड़ रहे हो? इस पर वृक्ष ने उत्तर दिया कि तुम कुसमय अर्थात् रात्रि में क्यों जा रहे हो?—

"टाप टिपोरी कपार काहे फोरी। राति बिराती कुजून काहे चली॥"

महुए की पत्तियों से 'पत्तल' तैयार किया जाता है, परन्तु इसमें भोजन करना अशुद्ध समझा जाता है। विशेषकर पण्डित लोग महुए के पत्तल में कभी भोजन नही करते।

मध्य भारत में महुआ का वृक्ष बड़े सम्मान की दृष्टि से देखा जाता है। बिहार के कुरमी, लोहार, मुण्डा और सन्ताल जाति के लोग विवाह में इस वृक्ष की पूजा करते हैं। द्रविड़ जाति के लोग, विशेषकर भुइया, इस वृक्ष की शाखा को विवाह के समय वर और वधू के हाथों पर स्थापित करते है। ये लोग पुरोहित के द्वारा जमीन में लगाये गये इस वृक्ष की टहनी के चारो ओर प्रदक्षिणा करते हैं। गोण्ड लोगों में यह एक अलौकिक प्रथा है कि वे मृत युवक पुरुषों के शव को गाड़ने के पहिले महुआ के वृक्ष में रस्सी में बाँध कर टाँग देते हैं।[1]

और उन्होंने अपनी स्त्री की भर पेट प्रशंसा की। पण्डित जी ने पंडिताइन से पूछा कि तुम्हारी 'महुअरि' इतनी मीठी और स्वादिष्ट कैसे बनी है? इस पर पंडिताइन ने कहा कि मैंने इसमें गुड़ भी डाला है। पंडित यह सुन कर अपनी स्त्री पर बहुत क्रोधित हुए और उससे कहा कि 'अरी मूर्खा! क्या तू यह नहीं जानती कि महुआ और गुड़ मिला देने से शराब बन जाती है।'

१ डाल्टन—डिस्क्रिप्टिव एटनोलाजी आफ बेङ्गाल, पृ० १५८।

भोजपुरी प्रदेश में महुआ का वृक्ष अशुद्ध माना जाता है। इसीलिए किसी मांगलिक कार्य में इसकी लकड़ी का प्रयोग नहीं किया जाता। इस वृक्ष के नीचे घूमना तथा रहना मना है क्योंकि इसका प्रभाव बड़ा मादक होता है।

(११) पलास

पलास शब्द संस्कृत के 'पलाश' का अपभ्रंश रूप है। इसका शाब्दिक अर्थ 'मांस को खाने वाला' होता है जिसकी ओर पण्डित अयोध्या सिंह उपाध्याय ने 'प्रिय-प्रवास' में संकेत किया है। पलाश का वृक्ष बड़ा पवित्र माना जाता है। सम्भवतः इसका कारण यह है कि इसका प्रयोग यज्ञीय अग्नि को उत्पन्न करने में किया जाता है। इसका फूल लाल-लाल होता है, जो वसन्त ऋतु मे फूलता है। इसके फूल से गुलाबी रंग तैयार किया जाता है, जो होली खेलने के काम में प्रयुक्त होता है। इसकी जुड़ी हुई तीन पत्तियाँ ब्रह्मा, विष्णु और शिव अथवा जन्म, जीवन और मरण की प्रतीक हैं। इसकी पत्तियों से पत्तल बनाई जाती हैं, जिनमें भोज के अवसर पर भोजन किया जाता है। जिन लोगों को महुए की पत्तल में भोजन करने में आपत्ति होती है वे भी पलाश के पत्तल में सहर्ष भोजन ग्रहण करते हैं।

मृत व्यक्ति को पलाश की लकड़ी से जलाना पवित्र माना जाता है। यज्ञीय कर्म में हवन के अवसर पर पलाश की लकड़ी जलाकर उसमें 'होम' किया जाता है। यूप अर्थात् यज्ञीय स्तम्भ भी इसी की लकड़ी का बनता है। यज्ञोपवीत के अवसर पर ब्रह्मचारी जिस 'दण्ड' को धारण करता है वह पलाश की लकड़ी का ही बना होता है। कालिदास ने कुमारसम्भव में ब्रह्मचारी का वेश धारण करने वाले शिव द्वारा पलाश का दण्ड धारण कराया है।[१] मनु ने लिखा है कि ब्राह्मण ब्रह्मचारी को यज्ञोपवीत के अवसर पर पलाश दण्ड धारण करना चाहिए। प्राचीन काल से यह वैदिक प्रथा थी कि जब गायों को उनके बछड़ों से अलग करना होता था तब उन्हें पलाश के डण्डे से मार कर भगाते थे। भोजपुरी लोकगीतों में अपने पुत्र के यज्ञोपवीत संस्कार के लिए उसका पिता व्याकुल होकर पलाश के दण्ड को जंगल में जाकर काटता हुआ दिखलाया गया है।[२]

---

१. "अथाजिनाषाढधरः प्रगल्भवाक्, ज्वलन्निव वीर्यमयेन तेजसा।"

—कु० सं० ५।

२. उपाध्याय—भो० ग्रा० गी०, भाग १, पृ० १०८।

अनेक दृष्टियों से यह वृक्ष विलायती रोवेन (Rowan) वृक्ष के समान है। यार्कशायर के लोग इस वृक्ष की लकड़ी के कोडे बना कर रखते थे। उन लोगों का विश्वास था कि इससे उनके घोड़ों को स्थिरता प्राप्त होती है, जो किसी डायन के जादू के द्वारा चंचल कर दिये जाते हैं। स्काटलैंड के कुछ भागों में ग्वालिनें इस वृक्ष की टहनी को अपने पास उन भूतों को भगाने के लिए रखती हैं जो कभी-कभी गायों के भीतर घुस जाते हैं। जर्मनी में लोगों का ऐसा विश्वास है कि यदि इस वृक्ष के डण्डे से गाय को मारा जाय तो वह अधिक दूध देने लगती है।[1]

(१२) नारियल

नारियल के वृक्ष को संस्कृत में 'नारिकेल' कहते हैं। इस वृक्ष का फल बड़ा पवित्र माना जाता है। यह सन्तानोत्पत्ति का प्रतीक है। अतः भक्त लोग मन्दिरों में देवताओं पर इसे चढ़ाते हैं। सन्तान की कामना करने वाली स्त्रियों को पुजारी या पुरोहित प्रसाद रूप में नारियल का फल देते हैं। नारियल की पवित्रता का कारण संभवतः मनुष्य के सिर के समान उसकी आकृति का होना है। इसीलिए प्राचीन काल में जहाँ नर-बलि का विधान था वहाँ अब नारियल की बलि चढ़ाकर ही संतोष किया जाता है। ऐसा करने में उतना ही पुण्य समझा जाता है जितना नर-बलि देने में। प्रत्येक यज्ञीय होम में नारियल की आहुति देना पवित्र समझा जाता है। प्राचीन काल में ब्राह्मण लोग राजाओं से भेंट करते समय उन्हें नारियल और यज्ञोपवीत समर्पित करते थे।

नारियल के भीतरी भाग को गरी कहते हैं, जो खाने के काम में आती है। इस गरी के भीतर जो जल होता है वह 'डाभ' कहा जाता है। बंगाल में कच्चे नारियल के 'डाभ' को पीने की बड़ी प्रथा है, जो बड़ा स्वादिष्ट और मीठा होता है। नारियल के छिलके की रस्सी बनाई जाती है तथा गद्दे बनाने के काम में भी लाया जाता है।

उत्तरी भारत में नारियल के वृक्ष का उतना आदर नहीं है जितना उसकी जन्मभूमि दक्षिणी भारत में है। गुजरात और कनारा में यह गृह-देवता का प्रतीक समझा जाता है और कुल-देवता के रूप में इसकी पूजा की जाती है। महाराष्ट्र प्रान्त के कोंकण प्रदेश के कुनबी जाति के लोग अपने प्रत्येक मृत संबंधी के लिए एक नारियल रखते हैं और इसकी पूजा करते हैं। ये लोग

---

१. क्रुक—पा० रि०, भाग २, पृ० ११३।

धान काटने के पहिले एक नारियल को फोड़ते हैं और उसे खेत काटने वालों में बाँट देते हैं। प्रभु जाति के लोग जहाँ तीन रास्ते मिलते हैं वहाँ वर के सिर के चारों ओर नारियल को घुमाते हैं और उसे टुकड़े-टुकड़े कर फेंक देते हैं। उनका विश्वास है कि इससे भूतों का बुरा प्रभाव वर के ऊपर नहीं पड़ने पाता।[1] भोजपुरी प्रदेश में तिलक के अवसर पर वर के हाथों में रुपया और सुपारी के साथ नारियल भी दिया जाता है। धनी लोग असली नारियल के अतिरिक्त चाँदी या सोने का बना नारियल भी वर को अर्पित करते हैं।

संन्यासी लोगों को जल-समाधि देने के पूर्व उनके सिर को नारियल से फोड़ा जाता है, जिससे उनके प्राण 'ब्रह्मरन्ध्र' के द्वारा निकल सकें। पश्चिमी भारत में, वर्षा के अन्त में, समुद्र को शान्त रखने के लिए उसमें नारियल फेंके जाते हैं।[2]

(१३) चन्दन

चन्दन का वृक्ष बहुत कम पाया जाता है। संस्कृत के किसी कवि ने 'चन्दनं न वने-वने' लिख कर इसकी दुर्लभता की ओर संकेत किया है। ऐसी प्रसिद्धि है कि चन्दन के वृक्ष में सदा साँप लिपटे रहते हैं। यह वृक्ष शीतल होता है। संभवत: इसीलिये साँप इसे अपना निवास-स्थान बनाये रहते हैं। परन्तु सर्पों के निवास से उनके विष का प्रभाव इस पर तनिक भी नहीं पड़ता। रहीम ने अपने एक दोहे में इस तथ्य की ओर संकेत किया है।[3] लोगों का ऐसा विश्वास है कि चन्दन वृक्ष की वायु जिन वृक्षों में लगती है वे भी चन्दन के रूप में परिणत हो जाते हैं अथवा वे भी चन्दन के समान सुगन्धित हो जाते हैं। संस्कृत के एक कवि ने चन्दन वृक्ष की प्रशंसा करते हुए उसके इस अलौकिक गुण का उल्लेख किया है।[4]

दक्षिण भारत में मलय पर्वत पर चन्दन के वृक्षों की स्थिति मानी जाती है। उन चन्दन के वृक्षों को स्पर्श कर चलने वाली वायु को 'मलयानिल' कहते

---

१. क्रुक—पा० रि०, भाग २, पृ० १०६।

२. वही—पृ० १०६।

३. "जो रहीम उत्तम प्रकृति, का करि सकत कुसंग।
चन्दन विष व्यापत नहीं, लिपटे रहत भुजंग॥"

४. "किं तेन हेमगिरिणा रजताद्रिणा वा, यत्र स्थितास्तु तरवः तरवस्तु एव।
निम्बकुटजाः अपि चन्दनाः स्युः॥"

हैं, जो शीतल, मन्द और सुगन्ध होती है। आजकल मैसूर राज्य में चन्दन के पेड़ प्रचुरता से पाये जाते हैं, जो स्टेट की सम्पत्ति (स्टेट मोनोपोली) समझे जाते हैं।

चन्दन की लकड़ी परम पवित्र मानी जाती है, जिसका कारण इसकी सुगन्धि और शीतलता है। वैष्णव लोग चन्दन को घिसकर अपने ललाट पर तिलक लगाते हैं, जो उनके सम्प्रदाय का एक विशेष चिह्न है। भक्त लोग तथा धार्मिक पुरुष मन्दिरों में 'धूप' जलाते हैं, जो चन्दन की लकड़ी को छोटे-छोटे टुकड़ों में काट कर बनाया जाता है। देवता के सामने 'धूप' देना बड़ा पुण्यकारक समझा जाता है। कुछ लोग तुलसी के पौधे के पास तथा अपने घर में 'धूप' जलाते हैं, जिससे घर का दूषित वातावरण नष्ट हो जाता है। हवन करते समय धूप में यव और तिल मिला कर उसकी आहुति दी जाती है।

धनी लोग मृत व्यक्ति के शव को जलाने के लिए केवल चन्दन की लकड़ी की चिता सजाते हैं, जो बहुत पवित्र समझी जाती है। जो लोग निर्धन हैं वे चिता में चन्दन का एक या दो टुकड़ा जलाकर उसकी पवित्रता की रक्षा करते हैं। केवल 'चन्दन की चिता' पर जलने का सौभाग्य बिरले भाग्यवानों को ही प्राप्त होता है। चन्दन की लकड़ी परम पुनीत एवं पवित्र है और यह अपनी पवित्रता में अद्वितीय है। बम्बई राज्य में पारसी लोग सन्ध्याकाल में प्रतिदिन चन्दन की लकड़ी के टुकड़ों को अपने घरों में जलाते हैं, जिसकी सुगन्ध से उनका विश्वास है कि दुष्ट आत्मायें भग जाती हैं, चन्दन का चूरा घरों में सुगन्धि के लिए भी जलाया जाता है।

(१४) भूर्ज

भूर्ज वृक्ष भी बहुत पवित्र माना जाता है। इसके छिलके को 'भोजपत्र' कहते हैं, जो तन्त्र-मन्त्र लिखने के लिए प्रयुक्त होता है। लोगों का ऐसा विश्वास है कि इस वृक्ष में दुष्ट आत्माओं को दूर करने की शक्ति होती है। भोजपत्र पर लाल चन्दन की स्याही से मन्त्र लिखा जाता है और उसको सोने या ताँबे में मढ़ाकर ताबीज बनाकर रोगी के गले या बाँह में पहिना दिया जाता है। इससे रोगी का रोग दूर हो जाता है। अनेक रहस्य-मन्त्रों तथा यन्त्रों के बनाने में भी भोजपत्र का उपयोग किया जाता है। प्राचीन भारत में जब कागज का अभाव था तब इसी वृक्ष की छाल पर पुस्तकें लिखी जाती थीं। भोजपत्र पर लिखी गई पुस्तकें पवित्र मानी जाती हैं।

(१५) इमली

इमली का वृक्ष बड़ा विशाल होता है। इसकी पत्तियाँ बहुत छोटी होती हैं। इसका फल लम्बा-लम्बा होता है, जिसको 'फहुआ' कहते हैं। ऐसी प्रसिद्धि है कि इमली का वृक्ष तीस वर्ष के बाद फल देता है, जैसा कि इस कहावत से स्पष्ट लक्षित होता है :—

"पाँचे आम पचीसे महुआ।
तीस बरिस पर इमली के 'फहुआ'॥"

अर्थात् आम का वृक्ष पाँच वर्ष पर, महुआ पचीस वर्ष के बाद और इमली का वृक्ष तीस वर्ष के पश्चात् फल देता है। इमली के बीज को 'चियाँ' कहते हैं, जो अनेक रोगों में औषधि के रूप मे प्रयुक्त होता है।

इमली के पेड़ पर चुड़ैल तथा भूतों का आवास माना जाता है। उत्तर प्रदेश के बलिया जिले के बैरिया नामक गाँव के पूर्व की ओर एक इमली का सुप्रसिद्ध वृक्ष है जिस पर एक दुःसाध (एक जाति विशेष) की प्रेतात्मा भूत के रूप में निवास करती है।

बिहार की ओराँव नामक जाति के लोग इमली के वृक्ष की पूजा करते हैं। वे अपने मृतकों को इस वृक्ष की छाया में गाड़ते हैं।[1] द्रविड़ जातियों में 'इमली घोंटने' की प्रथा है जब वर की माता पत्थर पर इमली के बीज को पीसती या रगड़ती है। भोजपुरी प्रदेश में भी 'इमली घोंटने' की प्रथा है। परन्तु इस प्रथा का सम्बन्ध इमली से बिल्कुल नहीं है। इमली के वृक्ष को पवित्र नहीं माना जाता, अतएव किसी शुभ कार्य में इसकी लकड़ी का उपयोग नहीं होता।

(१६) अनार

अनार को संस्कृत में 'दाड़िम' कहते हैं। इसका फल बड़ा सुन्दर एवं स्वादिष्ट होता है। इसके सेवन से शरीर में रक्त की प्रचुर वृद्धि होती है। अनार के अनेक भेद होते हैं, जिनमे 'बेदाना' बड़ा प्रसिद्ध है। यह फल विशेषतया प्रचुर रूप से काबुल में पैदा होता है। अतएव 'काबुली अनार' श्रेष्ठता में अपना सानी नहीं रखता। काबुल जैसे प्रदेश में अनार और अंगूर जैसे सुन्दर फलों को पैदा करने वाले भगवान् से चिढ़कर किसी भक्त ने कितनी मार्मिक उक्ति कही है—

---

१. डाल्टन —डिस्क्रिप्टिव एथ्नोलोजी, पृ० १८६।

"काबुल में मेवा करी, ब्रज में टेंटी फूल।
कहीं कहीं गोविन्द की, गई सिटल्ली भूल॥"

लोगों का ऐसा विश्वास है कि अनार वृक्ष के नीचे धुआँ करने से इसका फल शीघ्र ही पक जाता है। महाकवि श्रीहर्ष ने नैषधीय चरित के प्रथम सर्ग मे इस तथ्य का उल्लेख किया है। बम्बई के पारसी लोग इस वृक्ष का बड़ा सम्मान करते हैं। इसकी शाखायें पवित्र झाडू के काम में और इसके बीज प्रेतात्माओं को भगाने के काम मे लाये जाते हैं। मरते हुए व्यक्ति के मुख मे इस फल के रस को निचोड़ कर देते हैं।[१] उत्तरी भारत में इस वृक्ष को अपने घर में लगाना अमंगलकारी समझा जाता है, क्योंकि यह बड़ा ईर्ष्यालु होता है तथा अपने समान किसी को सुन्दर नहीं समझता।

(१७) खैर

खैर के वृक्ष को संस्कृत में 'खदिर' कहते हैं। इस वृक्ष का महत्त्व संभवतः इस कारण है कि इसकी लकड़ी का उपयोग पवित्र यज्ञीय अग्नि को उत्पन्न करने में किया जाता है। इस वृक्ष की लकड़ी बड़ी सख्त होती है। अतएव अग्नि मन्थन के समय अरणी—यह लकड़ी जिसे घुमा कर आग पैदा की जाती है—का निचला भाग इसी लकड़ी का बनाया जाता है। यूप अर्थात् यज्ञीय स्तम्भ, जिसमें बाँधकर पशुओं की बलि दी जाती है, प्रायः इसी लकड़ी का बना होता है। रामायण में वर्णित सुप्रसिद्ध अश्वमेध यज्ञ मे इक्कीस (२१) यूप स्थापित किये गये थे, जिनमें छः विल्व (बेल) वृक्ष, छः खदिर (खैर) वृक्ष, छः पलाश वृक्ष और एक-एक उदुम्बर (गूलर), श्लेष्मातक तथा देवदारु वृक्ष की लकड़ी से बनाये गये थे। विशाप हेबर ने लिखा है[२] कि मुझे लोगों ने बतलाया कि खैर का वृक्ष रात को सोता है और दिन में जागता है। इस वृक्ष पर जादू का प्रभाव बिल्कुल नहीं पड़ता। यदि इसकी छोटी टहनी पगड़ी में रख ली जाय अथवा चारपाई से लटका दी जाय तो न तो उस व्यक्ति पर किसी की नजर लग सकती है और न किसी जादू का ही प्रभाव उसके ऊपर पड़ सकता है।

खैर के वृक्ष से कत्था तैयार होता है, जिसे लोग पान में लगाकर खाते है। चूँकि खैर का वृक्ष रात को सोता रहता है अतः बहुत-से धार्मिक हिन्दू

१. नार्थ इण्डियन नोट्स एण्ड क्वेरीज—भाग १, पृ० २०७।
२. नरेटिव—भाग १, पृ० २८७।

रात को पान नहीं खाते, क्योंकि कत्था उसका एक अंग होता है। कत्थे का प्रयोग दवा के रूप में भी किया जाता है।

(१८) बबूल

यह वृक्ष, जिसे बबूल या 'कीकर' भी कहते हैं, भोजपुरी प्रदेश में प्रचुरता से पाया जाता है। इसमें फूल तथा फल भी लगते हैं; परन्तु उनका कुछ भी उपयोग नहीं होता। इसीलिए एक कवि ने सारहीन जीवन की उपमा बबूल के वृक्ष से दी है। इस वृक्ष को अशुद्ध या अपवित्र माना जाता है। अतएव इसकी लकड़ी का उपयोग किसी पवित्र कार्य में नहीं किया जाता। इस वृक्ष पर चुड़ैल का निवास बतलाया जाता है। इसकी पत्तियों को, जो बहुत छोटी-छोटी होती हैं, 'बबुरी' कहते हैं। इसका उपयोग दवा के रूप में होता है।

क्रुक ने लिखा है कि कुछ मुसलमानों ने लाहौर में एक मन्दिर के समीप स्थित बबूल के वृक्ष को काटने का प्रयत्न किया; परन्तु उसमें से खून की लाल-लाल बूँदें गिरने लगीं जिससे डर कर उन्होंने इसे काटना छोड़ दिया।[१] यदि बबूल के वृक्ष की जड़ में लगातार तेरह दिन तक पानी दिया जाय तो उस पर रहने वाली प्रेतात्मा को अपने वश में किया जा सकता है। क्रुक ने सहारनपुर जिले की एक सच्ची घटना का उल्लेख किया है। किसी मृत व्यक्ति को उसके सम्बन्धी श्मशान ले गये। परन्तु उसकी चिता में ज्योंही आग लगाई गई त्योंही वह उठ बैठा। वह व्यक्ति आज तक जीवित है।[२] लोगों का ऐसा विश्वास है कि उसने बबूल के वृक्ष पर रहने वाली प्रेतात्मा को अपने वश में किया था। महाकवि तुलसीदास जी की जीवनी में भी एक ऐसी ही घटना का उल्लेख है।[३] गोस्वामी जी शौच के लिए सदा बाहर मैदान में जाया करते थे, जहाँ एक बबूल का वृक्ष था। वे शौच से बचे हुए जल को नित्यप्रति उस वृक्ष की जड़ में डाल दिया करते थे। एक दिन उस वृक्ष पर रहने वाली प्रेतात्मा ने तुलसीदास जी से प्रसन्न होकर कुछ वर माँगने को कहा; परन्तु सन्त तुलसी को किसी पार्थिव वस्तु की आवश्यकता ही न थी।

---

१. क्रुक—पा० रि०, भाग २, पृ० ११४-१५।

२. वही—पा० रि०, भाग २, पृ० ११४-१५।

३. श्यामसुन्दर दास—गोस्वामी तुलसीदास।

बबूल की लकड़ी अपवित्र होने के कारण शव को जलाने के काम मे नहीं लाई जाती। परन्तु यदि कोई मनुष्य शव को इसकी लकड़ी से जलाये तो मृत व्यक्ति की प्रेतात्मा को कभी शान्ति नहीं मिलती। बबूल की लकडी की बनी हुई चारपाई पर सोने वाला व्यक्ति अनेक बुरे-बुरे स्वप्नों को देखता है, ऐसा लोगों का विश्वास है। क्रुक ने लिखा है कि उसके एक बूढ़े नौकर ने उसको बबूल की चारपाई पर न सोने के लिए गम्भीर चेतावनी दी थी। उसका कहना था कि ऐसी चारपाई पर पादरी ही सो सकते हैं, जो अपने पेशे की बदौलत प्रेतात्माओं के आक्रमण से सुरक्षित हैं।[1]

लोगों की ऐसी धारणा है कि यदि बबूल के फल को किन्हीं दो व्यक्तियो के घर में फेंक दिया जाय तो उनमें आपस में झगड़ा लग जाता है। इसीलिए जो लोग किन्हीं दो व्यक्तियों में झगड़ा लगाना चाहते हैं वे उनके घर की छतो पर इस वृक्ष के फल को फेंक देते है। इस वृक्ष की छाल (त्वचा) का उपयोग दवा के रूप में किया जाता है। इससे गोंद भी निकलता है, जिसे बहुत-से लोग घी में भून कर खाते हैं। इसके गोंद को खाना बल-वर्धक समझा जाता है।

(१९) ताड़

भोजपुरी प्रदेश में यह वृक्ष अधिकता से पाया जाता है। यह बहुत लम्बा होता है जिसमें शाखायें नहीं होतीं। इस वृक्ष के केवल सिरे पर लम्बी-लम्बी पत्तियाँ होती हैं। भोजपुरी में इस वृक्ष को 'तरकुल' कहते हैं जो 'ताड-कुल' का अपभ्रंश जान पड़ता है। इसका फल 'सिरीफल' के समान गोल तथा बड़ा होता है। इसके फल में रस बहुत होता है जो इसके रेशो में लिपटा रहता है। अतः लड़के इसके फल में लकड़ी डालकर उसे 'पेर' कर रस निकालते हैं और उसे खाते हैं। इसकी डण्ठल को काटने से एक सफेद मादक द्रव पदार्थ निकलता है जिसे 'ताड़ी' कहते हैं। बिहार के आरा जिले में ताड़ वृक्षों के पास बहुत से 'ताड़ीखाने' मिलते हैं जहाँ 'ताडी' बेची जाती है। भोजपुरी प्रदेश की नीची जातियाँ 'ताड़ी' को बडे शौक से पीती हैं, जिसका प्रभाव शराब की भाँति उन्मादक होता है। ताड की लम्बी-लम्बी पत्तियों से पंखा बनाया जाता है जिसकी हवा बडी शीतल होती है। ताड़ का वृक्ष अपवित्र माना जाता है। इसकी लकड़ी किसी

---

१ क्रुक—पा० रि०, भाग २, पृ० ११५।

काम में नहीं आती, परन्तु कहीं-कहीं इसके लम्बे तने से नदी-नाला पार करने के लिए पुल का काम लिया जाता है।

ऐसा विश्वास है कि यदि ताड़ का फल चारपाई के ऊपर रख दिया जाय तो उसमें खटमल पैदा हो जाते हैं। अतः स्त्रियाँ इसके फल को घर में चारपाई पर नहीं रखने देतीं। लोक-कथाओं में ताड़ वृक्ष का उल्लेख अनेक स्थानों में पाया जाता है। एक बार कोई गीदड, जिसे भोजपुरी में 'सियार' कहते हैं, ग्रीष्म ऋतु की प्रचण्ड धूप से संतप्त होकर छाया के लिए ताड़ वृक्ष के नीचे गया। अभी वह कुछ ही क्षण वहाँ विश्राम करने पाया था कि इतने ही में ताड़ का एक बड़ा फल उसके सिर पर आ गिरा जिसकी चोट से उसकी खोपडी फट गई। वह यह कहते हुए वहाँ से भगा कि 'फेरु-फेरु सियार अब तरकुल तर अइहें' अर्थात् गीदड़ अब फिर इस ताड़ वृक्ष के नीचे नहीं आयेगा। यदि कभी कोई विश्वासपात्र व्यक्ति धोखा देता है तो भोजपुरी में इस कहावत का प्रयोग किया जाता है।

ताड़ का वृक्ष बहुत लम्बा और काला होता है, अतः भूतों की लम्बाई की उपमा इस वृक्ष से दी जाती है। भूतों का उपमान होने के कारण इस वृक्ष पर उनका निवास बतलाया जाता है। प्रचण्ड हवा के झोंकों के कारण इसकी पत्तियों की रगड से 'हड़' 'हड़' की आवाज उत्पन्न होती है जो बड़ी भयानक समझी जाती है। स्त्रियाँ इस आवाज का कारण इस वृक्ष पर भूतों का निवास बतलाती हैं।

आँख में अञ्जनहारी—जिसे भोजपुरी में 'अँखीजनी' कहते है—होने पर दाहिने हाथ की कनिष्ठ अँगुली से 'अँखीजनी' को रगड़ते हैं और फिर इसी अँगुली से ताड़ वृक्ष को 'रिगाते' हैं अर्थात् इस अँगुली को टेढ़ी करके हिलाते है तथा इस वृक्ष की ओर संकेत करते हैं। ऐसा करने से अँजनहारी शीघ्र ही सूख जाती है।

(२०) कदम्ब

इस वृक्ष को भोजपुरी में 'कदम' कहते हैं, जो संस्कृत 'कदम्ब' का अपभ्रंश है। यह वृक्ष बड़ा पवित्र माना जाता है। इसका कारण भगवान् श्रीकृष्ण की क्रीडाओं के साथ इसका सम्बन्ध है। श्रीकृष्ण मथुरा में यमुना के किनारे स्थित कदम्ब के वृक्ष के नीचे बैठकर अपनी मोहिनी मुरली बजाया करते थे। गोपियों का चीर-हरण कर वे जिस वृक्ष पर चढ़कर छिपे बैठे थे वह सम्भवतः

कदम्ब का ही वृक्ष था। इसलिए संस्कृत साहित्य में इस वृक्ष का उल्लेख प्रचुरता से पाया जाता है।

इसका फूल पीला होता है, जो देखने में बड़ा सुन्दर मालूम होता है। इसका वृक्ष बड़ा विशाल होता है, छाया बड़ी शीतल होती है। लोगों का विश्वास है कि भगवान् श्रीकृष्ण इस पर निवास करते हैं। इसीलिए इसकी पूजा कार्तिक मास के अतिरिक्त भाद्र मास में भी होती है, जिसमें श्रीकृष्ण पैदा हुए थे।

लोक-गीतों में कदम्ब वृक्ष का उल्लेख अनेक बार हुआ है। एक लोक-गीत में यमुना के किनारे कदम्ब वृक्ष के नीचे श्रीकृष्ण द्वारा मुरली बजाने का वर्णन हुआ है। गीत इस प्रकार है—

'जमुना के तीरवा कदम गँछिया।
ताहि तर मुरली बजावेला मोहन रसिया।।'

एक-दूसरे गीत में राधा का इस वृक्ष पर झूला लगा कर झूलने का उल्लेख किया गया है।

"झूला झूले कदम्ब की डारी।
झूले राधा प्यारा ना।।"

इसी प्रकार से लोक-कथाओं में भी इस वृक्ष का उल्लेख पाया जाता है।

(२१) बेर

इस वृक्ष के फल को संस्कृत में 'बदरी फल' और भोजपुरी में 'बइरि' कहते हैं। यह खाने में स्वादिष्ट होता है। यह वृक्ष अपवित्र माना जाता है; अतः इसकी लकड़ी का उपयोग किसी पवित्र कार्य में नहीं किया जाता है। बेर के पेड़ को लगाना बुरा समझा जाता है क्योंकि जहाँ इसका पेड़ होता है वहाँ आपस में झगड़ा होने की आशंका सदा बनी रहती है। इसीलिए जिसके द्वार पर यह वृक्ष उगता है वह इसे काट कर फेंक देता है।[1]

---

१. उत्तर प्रदेश के बलिया जिले के सोनवर्सा नामक गाँव में इन पंक्तियों के लेखक के द्वार पर एक बेर का पेड़ था, जिसके कारण पड़ोसियों से बड़ा झगड़ा हुआ करता था। एक दिन क्रोध में आकर उसके बड़े भाई ने इस वृक्ष को काट दिया। तब से पड़ोसियों के साथ जो झगड़ा होता था वह शान्त हो गया।

आँख में अंजनहारी होने पर बेर वृक्ष की सात पत्तियों को तोड़ा जाता है। एक पत्ती के ऊपर एक रखकर, इन सभी पत्तियों को किसी काँटे से छेद-कर तथा इन्हें सूत में बाँधकर घर में लटका दिया जाता है। लोगों का विश्वास है कि जैसे-जैसे ये पत्तियाँ सूखती जाती हैं वैसे-वैसे अंजनहारी भी सूखती जाती है। इसके फल (बइरि) को देवता के ऊपर चढ़ाया जाता है। भगवान् राम ने शबरी के जूठे बेर खाये थे। सम्भवतः इसीलिए देवताओं को यह फल बड़ा प्रिय है। महाशिवरात्रि के दिन शिव की मूर्ति के ऊपर प्रचुर परिमाण में बेर चढ़ाये जाते हैं। देवोत्थानी एकादशी के दिन बेर से देवता की पूजा कर इस फल को खाना महत्त्वपूर्ण समझा जाता है। सत्यनारायण की कथा में बेर का फल भक्तों को प्रसाद रूप में दिया जाता है। इस प्रकार यह फल सभी मांगलिक अवसरों पर उपयोग में लाया जाता है।

(२२) कटहल

भोजपुरी प्रदेश में यह वृक्ष बड़ा प्रसिद्ध है। इसका फल सब फलों में बड़ा होता है। कभी-कभी इसका एक फल वजन में चार पाँच पसेरी (बडी) से भी बड़ा होता है। अन्य फल वृक्षों की शाखाओं में लगते हैं परन्तु यह फल इस वृक्ष की शाखाओं के अतिरिक्त इसकी जड़ और तने में भी लगता है तथा प्रचुर परिमाण में पैदा होता है। इसके छोटे फल को 'लेढ़ा' कहते हैं जो प्रायः सूख कर आप ही आप नष्ट हो जाता है। इसीलिए भोजपुरी प्रदेश में निष्क्रिय, आलसी तथा अवारे लड़कों को 'लेढ़ा' कहा जाता है। 'लेढ़ा' जब बड़ा हो जाता है तब उसे 'कटहल' कहते हैं। कटहल जब पक जाता है तब उसके भीतर के फल को 'कोआ' कहते हैं जो खाने में बड़ा स्वादिष्ट होता है। 'कोआ' को अधिक खा लेने से पेट में दर्द होने की आशंका रहती है। अतएव 'कोआ' खा लेने के पश्चात् थोड़ा घी पीना आवश्यक माना जाता है। घी कोआ के दोष का नाश करने में ''एण्टीडोट'' समझा जाता है।

कटहल की पत्तियों की पत्तल बनायी जाती है, जिसमें लोग श्राद्ध के समय भोजन करते हैं। श्राद्ध के अवसर पर इसकी पत्तियों का 'दोना' (पुट) बनाया जाता है, जिसमें मृत व्यक्ति के लिए पिण्ड रखा जाता है। श्राद्ध के समय अनेक विधि-विधानों को संपादित करने के लिए कटहल की ही पत्तियों का उपयोग किया जाता है। विवाह करने के लिए जाने वाले वर की पालकी प्रायः इसी वृक्ष की लकड़ी से बनाई जाती है। इसकी लकड़ी का रंग पीला

और वजन हल्का होता है। इसीलिए यह लकड़ी पालकी बनाने के लिए उपयुक्त समझी जाती है।

(ख) पौधा

(२३) तुलसी

तुलसी का पौधा परम पवित्र माना जाता है। विष्णु की पूजा से इनका घनिष्ठ सम्बन्ध है। अपनी उपयोगिता के कारण भी यह पौधा पूजनीय तथा पवित्र समझा जाता है। शायद ही ऐसा कोई हिन्दू घर होगा जिसमें इस पौधे की पूजा न की जाती हो। सन् १८६१ की जनसंख्या गणना मे उत्तर प्रदेश में, जिसे उन दिनों में उत्तर-पश्चिमी प्रान्त कहते थे, तुलसी के पूजकों या भक्तों की संख्या ग्यारह हजार थी।[1] परन्तु सत्य तो यह है कि प्रत्येक हिन्दू तुलसी का पूजक है। तुलसी की पूजा माता के रूप में की जाती है। इसीलिए इन्हें 'तुलसी माता' भी कहते हैं।

संस्कृत में तुलसी को 'हरिप्रिया' कहते हैं, जिसका अर्थ विष्णु की प्रेमिका है। इसे 'भूतघ्नी' भी कहा जाता है जिसका अर्थ भूतों को नष्ट करने वाला होता है। लोगों का ऐसा विश्वास है कि जहाँ तुलसी का पौधा होता है वहाँ भूत नहीं आते। इस प्रकार तुलसी का 'भूतघ्नी' नाम सार्थक है। तुलसी के सम्बन्ध में बहुत-सी पौराणिक कहानियाँ प्रसिद्ध हैं जिनमें से एक इस प्रकार है—

एक बार भगवान् विष्णु वृन्दा, जो जालन्धर की स्त्री थी, की अलौकिक सुन्दरता को देखकर उस पर मोहित हो गये। उनको इस मोह से छुड़ाने के लिए देवताओं ने लक्ष्मी, गौरी और स्वधा से प्रार्थना की। इनमें से प्रत्येक ने देवताओं को एक बीज उस स्थान पर बोने के लिए दिया जहाँ पर विष्णु मोहित हुए थे। देवताओं ने उन बीजों को उस स्थान पर बो दिया और उससे धात्री, मालती और तुलसी की उत्पत्ति हुई। इन्होंने स्त्री रूप धारण कर विष्णु को अपने सौन्दर्य से आकर्षित कर लिया और इस प्रकार उन्हें वृन्दा के जाल से बचाया।[2] सम्भवतः इसीलिए तुलसी का नाम 'हरिप्रिया' पड़ गया।

यों तो तुलसी की पूजा बारहों महीने की जाती है परन्तु कार्तिक मास में इनकी पूजा का विशेष माहात्म्य है। स्त्रियाँ घर में तुलसी के पौधे को लगाती

१. क्रुक—पा० रि० भाग २, पृ० ११० ।
२. विल्सन—'वर्क्स', भाग ३, पृ० ६८ ।

हैं और उनकी पूजा अक्षत, रोरी, पुष्प और नैवेद्य चढ़ा कर करती हैं। स्त्रियाँ प्रातःकाल तथा सन्ध्या को इस पौधे के पास घी का दीपक जलाकर तुलसी की आरती करती हैं। वे गंगाजल से इस पौधे को अर्घ्य देती हैं, परन्तु जहाँ गंगाजल नहीं मिल सकता वहाँ कूप के शुद्ध जल से ही यह काम लिया जाता है। तुलसी जी पर निम्नलिखित मन्त्र को पढ़कर जल चढ़ाया जाता है।

"करिया तुलसी साँवर बान।
तुलसी लाँईं, सदा फल पाँईं।
पाँच पदारथ सोना पाँईं।
तुलसी महरानी एहि जग माहीं।
जनम जनम के पाप कटित करीं।
तुलसी महरानी नमोनमः।"

तुलसी जी की पूजा करने का मन्त्र यह है—

"घट में तुलसी मुख में राम।
जब भजौ तब सीता-राम॥"

रविवार और मंगलवार को तुलसी की पत्तियों को तोड़ना निषिद्ध है। इस दिन इसकी पत्तियों की आवश्यकता होती है तो इसके पौधे को जड़ से हिला देते हैं जिससे इसकी पुरानी, पीली पत्तियाँ स्वतः गिर जाती हैं, परन्तु इन्हें तोड़ते नहीं। इसकी पत्ती को गर्म जल में डाल कर उबालना मना है; क्योंकि लोगों का विश्वास है कि इससे तुलसी माता की आत्मा को कष्ट पहुँचता है। भक्त लोग भोजन में तुलसी की पत्ती डाल कर उसे भगवान् को 'भोग' लगाते हैं। भोज के अवसर पर भोजन के भण्डार में तुलसी की पत्तियाँ डाल दी जाती हैं। लोगों की दृढ़ धारणा है कि ऐसा करने से कितने भी आदमियों को खिलाया जाय परन्तु भाण्डार में कमी नहीं होती[1]। तुलसी की पत्तियों को पूजा में विष्णु भगवान् के ऊपर चढ़ाते हैं। शालिग्राम की प्रतिमा

---

१. इन पंक्तियों के लेखक के पूजनीय पिता जी का तुलसी में अटूट-विश्वास था। विवाह के अवसर पर वे भोजन-भंडार में तुलसी की पत्तियों को डाल देते थे और कहते थे कि अब बरातियों को खिलाओ। इसके बाद बरातियों को खिलाया जाता था, परन्तु आज तक कभी भी भोजन-भंडार में कमी नहीं हुई।

की पूजा तुलसी की पत्तियों के बिना नहीं हो सकती। लोगों का ऐसा विश्वास है कि यदि शालिग्राम पर इसकी पत्तियों को न चढ़ाया जाय तो उनका सिर दर्द करने लगता है। कार्तिक मास के शुक्लपक्ष की देवोत्थान एकादशी के दिन विष्णु की पूजा तुलसी के दलों से की जाती है। इस दिन विष्णु की प्रतिमा पर तुलसी की पत्तियाँ प्रचुर मात्रा में चढाई जाती हैं। इसी दिन तुलसी जी का विवाह विष्णु से सम्पादित होता है, जिसमें विवाह-सम्बन्धी विधिविधानों को पूर्णरूप से किया जाता है। धनी लोग इस विवाह में प्रचुर धन खर्च करते हैं।

मरते हुए व्यक्ति के मुख में तुलसी दल और गङ्गा जल डाला जाता है। लोगों का यह विश्वास है कि ऐसा करने से मृत आत्मा को सद्गति प्राप्त होती है। इसकी पत्तियाँ अनेक रोगों में दवा के काम में लाई जाती हैं। इसके पौधे मे मच्छरों को नष्ट करने का गुण विद्यमान है। अत: जहाँ यह पौधा लगाया जाता है वहाँ मच्छर नहीं रहते।

तुलसी के पौधे के सूख जाने पर उसे किसी नदी अथवा पवित्र स्थान मे फेंक दिया जाता है। इसके सूखे पौधे की डालों से माला बनाई जाती है जो 'तुलसी की माला' के नाम से प्रसिद्ध है। यह माला बड़ी पवित्र समझी जाती है। साधु लोग, विशेषकर वैरागी, इसे अपने गले में धारण करते हैं। ये लोग इस माला की केवल एक बड़ी मनिका को गले में बाँधते है जिसे 'कण्ठी' कहते हैं। 'कण्ठी' धारण करना वैरागियों के लिए अत्यन्त आवश्यक है, क्योंकि यह उनके सम्प्रदाय का एक विशेष चिह्न है। भक्त लोग भी अपने गले मे तुलसी की माला को पहनते हैं और इस माला से 'राम नाम' का जप करते हैं। कुछ लोग परदेश को जाते समय तुलसी के पौधे को घर में लगा जाते है। उनके प्रेमीगण, विशेषकर कर उनकी स्त्रियाँ, परदेश में उनके सुखी अथवा दुःखी होने की सूचना इसी वृक्ष से प्राप्त करती हैं। अर्थात् जब तक तुलसी का पौधा हरा-भरा रहता है तब तक यह समझा जाता है कि वह व्यक्ति सुखी है, परन्तु जब यह सूखने लगता है तब उसके प्रेमीगण उसके दु:ख की आशंका से विह्वल हो उठते हैं। इस प्रकार यह पौधा प्रियगण के सु:ख-दु:ख का सूचक है।

लोक-गीतों में तुलसी का उल्लेख अनेक बार किया गया है। कुछ गीत तुलसी जी के संबंध में ही लिखे गये, जिन्हें 'तुलसी माता के गीत' कहते हैं। एक भोजपुरी लोकगीत में विष्णु या नारायण के साथ तुलसी के विवाह का

उल्लेख पाया जाता है, जिसमें विष्णु की स्त्री लक्ष्मी सपत्नी द्वेष के कारण तुलसी को भला-बुरा कहती हैं और उनसे झगड़ा करने पर उतारू हो जाती हैं। वह गीत इस प्रकार है—

"कहवाँहि तुलसी के नइहर कहवाँहि सासुर ए राम।
कहवहि तुलसी जनमली, त के जरी रोपेला ए राम।
बिरिदावने तुलसी के नइहर, गोकुला हवे सासुर ए राम।
मथुरा में तुलसी जनमली, मलहोरिया जरी रोपेला ए राम।
मग्वि मैं तुलसी के लट धइ, कानों में लसारबि ए राम।
हमरा बालमु सँग सोवेली, त निरखा नमक देली ए राम।
काहे तुहु मग्बु हो लट धइ, कानों में लसरबू ए राम।
आरे होइ जाइबि तुलसी के मनिया, त जपिहें नारायन ए राम।
आरे होइ जाइबि तुलसी के पतिया, त ठाकुर सिर चढ़बि ए राम।"[1]

लोक-कथाओं में भी तुलसी का उल्लेख पाया जाता है। भोजपुरी प्रदेश में किसी व्यक्ति को 'किरिया खिलाते' (शपथ देते) समय उसके हाथ में तुलसी और गङ्गा जल दिया जाता है। यह समझा जाता है कि ऐसा करने से वह झूठ नहीं बोल सकता।

भारत के प्रायः सभी राज्यों में तुलसी की पूजा समान रूप से की जाती है। जिस प्रकार वृक्षों में पीपल परम पवित्र माना जाता है उसी प्रकार तुलसी का पौधा सभी पौधों में अत्यन्त पावन समझा जाता है।

(२४) केला

केला को संस्कृत में 'कदली' कहते हैं। भोजपुरी में यह 'केरा' के नाम से प्रसिद्ध है। केला का वृक्ष बड़ा सुन्दर होता है। विशेषकर इसका तना बड़ा कोमल और मनोरम होता है। संस्कृत के कवियों ने स्त्रियों के पैर के उपमान के रूप में इसका उल्लेख अपने काव्य-ग्रन्थों में किया है[2]। केला का वृक्ष बड़ा पवित्र माना जाता है। कुछ लोग इसकी पूजा भी करते हैं, जो विशेषतया कार्तिक मास में की जाती है। केले की पत्तियों का प्रयोग भोजन-पात्र के रूप में होता है। व्रत की पारणा के अवसर पर इसकी पत्तियों पर भोजन करना

१. उपाध्याय—भो० ग्रा० गी०, भाग २, पृ० ५५।

२. "कदली कदली करभः करभः, करिराजकरः करिराजकरः।
भुवन त्रितयेऽपि बिभर्ति तुलामिदमूरुयुगं न चमूरुदृशः" ॥

पवित्र समझा जाता है। विवाह के समय तथा अन्य मांगलिक अवसरों पर केले के वृक्षों से 'फाटक' (द्वार) सजाया जाता है जो शुभ है। विवाह का मण्डप भी केले की पत्तियों से सुशोभित किया जाता है तथा 'माँड़ो' के मध्य में केले की एक शाखा को गाड़ देते हैं जिसके चारों ओर वर और वधू परिक्रमा करते हैं।

उत्तर प्रदेश के नैनीताल में नन्दाष्टमी के दिन नन्दादेवी की मूर्ति केले के स्तम्भ (तना) से बनाई जाती है जिसकी पूजा पहाड़ी लोग बड़ी श्रद्धा से करते हैं। मद्रास राज्य में यदि किसी स्त्री को बच्चा समय से पहिले पैदा हो जाता है तो उस बच्चे को केले के पत्ते पर सुलाते हैं और उसे तेल लगाते हैं। केले की पत्ती प्रतिदिन इस बच्चे को सुलाने के लिए नयी लायी जाती है और यह प्रक्रिया उतने दिनों तक जारी रहती है, जितने दिन पहिले बच्चा पैदा हुआ होता है।[1] बंगाल में दुर्गा की प्रतिमा के अभिषेक के अवसर पर केले के वृक्ष को काट कर लाया जाता है। स्त्री के समान इसको वस्त्रों से विभूषित करते हैं और इसके पश्चात् इसकी पूजा की जाती है[2]।

केले का फल पवित्र होता है। इसे देवताओं के ऊपर उनकी पूजा के अवसर पर चढ़ाया जाता है। सत्यनारायण की कथा में 'प्रसाद' के रूप में इस फल को भक्तों में बाँटा जाता है। विवाह के मण्डप को सजाने के लिए केले के फल को उसमें टाँगते हैं। केले के एक फूल में हजारों फलियाँ एक साथ लगती हैं। अतएव यह बहु सन्तानोत्पत्ति का प्रतीक समझा जाता है। कार्तिक के शुक्लपक्ष की षष्ठी के दिन—जिसे छठी माता का व्रत कहा जाता है—स्त्रियाँ केले की 'घवरि' को लेकर पानी में तब तक खड़ी रहती हैं जब तक सूर्योदय नहीं हो जाता। वे सूर्य के निकलने पर ही अर्घ्य देती हैं। यह व्रत पुत्रोत्पत्ति के लिए किया जाता है। संभवतः इसीलिए केले के फल की प्रधानता इस पूजा में होती है। केले की पत्तियों तथा इसके फल का उपयोग दवा के रूप में किया जाता है।

लोक-कथाओं में केले का उल्लेख अनेक बार हुआ है। किसी व्यक्ति ने एक नौकर को रखा और उससे कहा कि तुम्हें किसी वृक्ष की केवल एक पत्ती पर जितना भोजन परोसा जा सकता है उतना ही खाने को मिलेगा। चतुर

---

१. क्रुक—पा० रि०, भाग २, पृ० १०८।

२. वार्ड—हिन्दूज, भाग २, पृ० १३; कैम्पबेल के 'नोट्स,' पृ० २२९ में उद्धृत।

नौकर ने केले के पत्ते को लाकर रख दिया और अन्त में उसके मालिक को मूर्ख बनकर उसे प्रचुर परिमाण में भोजन देना पड़ा। लोक-गीतों में भी केले का वर्णन पाया जाता है, जहाँ पैरों की उपमा इसके 'तने' से दी गई है।[1]

(ग) घास

(२५) कुश

भोजपुरी में इसे 'कुस' कहते हैं। यह अधिकतर नदियों के किनारे प्रचुर मात्रा में आपसे आप पैदा होता है। वर्ष के एक मास में एकादशी के दिन इसे उखाड़ कर रखने का बड़ा माहात्म्य है। इसलिए इस एकादशी का नाम ही 'कुशोत्पाटनी एकादशी' पड़ गया है। पण्डित, पुरोहित एवं पण्डा लोग वर्ष में केवल इसी दिन कुश को उखाड़ते हैं और सालभर तक इसी कुश का उपयोग करते हैं। कुशोत्पाटनी एकादशी के दिन कुश को 'ओ३म् फट् स्वाहा' 'ओ३म् फट् स्वाहा' मन्त्र पढ़कर उखाड़ा जाता है।

कुश की पवित्रता के कारण इसका उपयोग सभी मांगलिक कार्यों में किया जाता है। विवाह में वेदी के ऊपर कुश बिछाया जाता है, जिस पर पूजन का कार्य होता है। नवग्रह की पूजा में इसका उपयोग है। यज्ञोपवीत में ब्रह्मचारी की शिखा को तीन भागों में विभक्त कर प्रत्येक में कुश बाँधा जाता है और इसके पश्चात् ब्रह्मचारी का मुण्डन किया जाता है। सत्यनारायण की कथा में कुश की 'पवित्री' अपने दाहिने हाथ की अनामिका अँगुली में पहनकर यजमान गणेश की प्रतिमा की पूजा करता है। पूजा के सभी अवसरों पर कुश की 'पवित्री' यजमान के द्वारा पहनी जाती है तथा कुश के टुकड़ों से प्रतिमा पर जल छिड़का जाता है। पूजा में कुश की बनी आसनी पर बैठने का विधान है। गीता में श्रीकृष्ण ने कुश के 'आसन' पर बैठ कर योगी को समाधि लगाने का आदेश दिया है।

> शुचौ देशे प्रतिष्ठाप्य स्थिरमासनमात्मनः।
> नात्युच्छ्रितं नातिनीचं चैलाजिनकुशोत्तरम्॥ गीता ६।१७

सन्ध्या करते समय बाएँ हाथ में—कुश का दण्ड (मोटक) और दाहिने हाथ में 'पवित्री' पहिनी जाती है। सूर्य को अर्घ्य देते हुए जल में कुश डाल कर उन्हें जल देते हैं। दान देते समय दाहिने हाथ में कुश और जल लिया जाता

---

१. उपाध्याय—भो० ग्रा० गी०, भाग १, पृ० २६ (प्रस्तावना भाग)।

है। शपथ लेते समय भी इसे हाथ में लेकर ही 'कसम खाते' हैं। संभवतः कोई भी ऐसा मांगलिक कार्य नहीं जिसमें कुश का उपयोग आवश्यक न हो।

किसी व्यक्ति की मृत्यु के पश्चात् श्राद्ध के अवसर पर पिण्ड दान के लिए जो वेदी बनाई जाती है उसपर कुश बिछाते हैं। पिण्ड के ऊपर भी कुश रखा जाता है। किसी बड़े पिण्ड को अनेक भागों में बाँटते समय उसे कुश से ही काट कर विभाजित करते हैं। मृत व्यक्ति को जलाञ्जलि देते समय कुश और तिल का उपयोग किया जाता है। प्रेतात्मा के लिए जो 'घण्ट' बाँधा जाता है उस घण्ट में सुपारी और अक्षत के साथ कुश भी डाला जाता है। आश्विन मास मे पितृपक्ष के अवसर पर पितरों को जलाञ्जलि या तिलाञ्जलि देते समय इसका प्रयोग विशेष रूप से होता है। यदि कोई मनुष्य परदेश में मर जाता है और उसका अग्नि संस्कार नहीं हो पाता तो कुश से उसकी प्रतिमा बनाई जाती है जो 'कुश पुत्तिका' के नाम से प्रसिद्ध है। मृत व्यक्ति के परिवार वाले उनके असली शव के अभाव में इसी 'कुश पुत्तिका' का अग्नि संस्कार करते है और उसके पश्चात् श्राद्ध के सभी विधि विधानों को सम्पादित करते हैं। इस 'कुश पुत्तिका' का संबंध राम के पुत्र और लव के छोटे भाई कुश के जन्म की कथा से संबंधित जान पड़ता है। किसी व्यक्ति को उसकी मृत्यु के पहिले जो 'भूमिशय्या', जिसे 'भुइं सेज' कहते हैं, दी जाती है वह प्रायः कुश के 'आसनी' की होती है। दूध फट न जाय इसलिए उसमें कुश डाल दिया जाता है।

कुश में भूत को भगाने की शक्ति समझी जाती है। इसलिए जिस व्यक्ति को भूत लगा रहता है उसके भूत को भगाने के लिए ओझा लोग मन्त्र पढ़ कर कुश से उसे 'झाड़ते' हैं। साधू लोग कुश की बनी हुई मोटी मेखला या करधनी पहिनते हैं, जिससे बुरी आत्मायें उनके पास न आने पावें। धार्मिक प्रवृत्ति के कुछ लोग इसी आशय से अपनी शिखा में कुश और बेलपत्र को बाँधते हैं।

(२६) मूँज

मूँज को संस्कृत में 'मुञ्ज' कहते हैं। यह एक बहुत लम्बी घास है जो प्राय नदियों के किनारे प्रचुर मात्रा में पैदा होती है। जहाँ मूँज ही मूँज उगी रहती है उस विस्तृत मैदानी क्षेत्र को भोजपुरी में 'मुँजवानि' कहते हैं। संस्कृत में करधनी का दूसरा नाम 'मौञ्जी' है जो मूँज की घास से बनाई जाती है। महाकवि कालिदास ने तपश्चर्या में लगी हुई पार्वती द्वारा 'मौञ्जी' मेखला

धारण करने का उल्लेख किया है। मूँज बहुत पवित्र समझी जाती है। इसीलिए यज्ञोपवीत में ब्रह्मचारी मूँज की बनी मेखला, जिसे डण्डा कहते हैं, पहनता है। लोक-गीतों में ब्रह्मचारी के द्वारा इसकी मेखला को पहिनने का उल्लेख पाया जाता है।[1] उदाहरण के लिए यह गीत देखिए—

> "आरे बइठे कवन बाबा कवन जाँघा जोरी।
> आरे तहँवा कवन बरुआ रोदना पसारे रे॥
> माई हमरो जनेउवा रे कवन विधि होइहें।
> आरे पहिले परिहें मूँज के डाँड़ा,
> तब परिहे बरुआ रतन जनेउवा रे॥"

साधु लोग, विशेषकर वैरागी, मूँज की मोटी करधनी अपनी कमर मे पहनते हैं। कुछ मूँज का बना लँगोट भी लगाते हैं।

मूँज को पानी में भिगोकर और उसे मूँगरी से पीटकर उससे रस्सी बनाई जाती है। इसकी पतली रस्सी को 'बाधी' और मोटी रस्सी को 'बाध' कहते हैं। मांगलिक कार्यों में सभी जगह इसी 'बाधी' का उपयोग किया जाता है। माँडो के प्रत्येक बाँस के सिरे पर आम का पल्लव इसी 'बाधी' से बाँधा जाता है। विवाह के मण्डप को 'छाते' समय बाँधने का काम इसी से किया जाता है। इस अवसर पर विवाह के मण्डप में तथा द्वार पर लगाने के लिए जो तोरण तैयार किया जाता है वह इसी की रस्सी का बनाया जाता है। विवाह-मण्डप के मध्य में स्थापित स्तम्भ, जिसे 'हरिस' कहते हैं, में आम की पत्तियाँ इसी से बाँधी जाती हैं। गंगा की पूजा के समय जिस रस्सी से गंगा को 'ओहारते' हैं वह मूँज (बाधी) की ही बनी होती है।

'बाध' का उपयोग चारपाई बुनने में किया जाता है। श्राद्ध के अवसर पर जो चारपाई महाब्राह्मणों को दान में दी जाती है वह प्रायः 'बाध' से ही बुनी हुई होती है। 'पतलो', जिससे विवाह का मण्डप 'छाया' जाता है, मूँज की घास का ही एक प्रकार है। मूँज का उपयोग झाड़ू तथा चूना पोतने की 'कूँची' बनाने में भी किया जाता है। मूँज के भीतरी भाग को 'सींक' कहते हैं। भोजपुरी प्रदेश में बसने वाली नीची जातियाँ, विशेषकर 'नेटुआ' जाति के लोग, इसी सींक की झोपड़ी बनाते हैं, जिसे 'सिरकी' कहते हैं। स्त्रियाँ इस सींक का उपयोग 'डाली' और 'मोन्हा' आदि बनाकर घर-गृहस्थी के सामान

1. उपाध्याय—भो० ग्रा० गी०, भाग 1, पृ० 109।

को रखने में करती हैं, जिसे वे अपनी पुत्रियों के विवाह में 'बउरँडत' के अवसर पर उसकी ससुराल को भेजती हैं।

(२७) दूब

दूब को भोजपुरी में 'दूबि' और संस्कृत में 'दूर्वा' कहते हैं। मांगलिक कार्यों में इसका उपयोग निश्चित रूप से किया जाता है। किसी शुभ कार्य के प्रारम्भ में गणेश की पूजा के समय उनकी प्रतिमा पर दूब चढ़ाई जाती है। कुश के अभाव में देवताओं का आसन इसी घास से बनाया जाता है। उत्तर प्रदेश के नैनीताल जिले में शिव की प्रतिमा पर दूब चढ़ाई जाती है। विवाह करने के लिए जाने वाले वर की धोती में दूब, अक्षत, हल्दी और रुपया बाँधा जाता है जो शुभ माना जाता है। इसी प्रकार विवाह के पश्चात् ससुराल जाने वाली वधू के 'खोंइछा' में चावल, हल्दी और दूब बाँध दी जाती है।

दूब सदा हरी रहती है। ऐसा कहा जाता है कि भगवान् विष्णु ने अमृत का घड़ा एक स्थान पर रख दिया था। कौवे ने आकर उसे पी लिया और उसका कुछ अंश जमीन पर गिरा दिया जो दूब पर पड़ गया। इसलिए यह कभी नष्ट नहीं होती और सभी ऋतुओं में हरी-भरी बनी रहती है। नानक ने इस विषय का उल्लेख अपने एक दोहे में किया है।[१] इसीलिए दूब स्त्रियों के सौभाग्य का प्रतीक मानी जाती है। कुएँ पर उगी हुई दूब अधिक पवित्र समझी जाती है। बम्बई राज्य के प्रभु जाति के लोग गर्भवती स्त्रियों के बायें नाक में इसका रस निचोड़ कर डालते हैं और उत्तरप्रदेश के कनौजिया ब्राह्मण पति भी स्त्रियों के युवावस्था प्राप्त होने पर ऐसा ही करते हैं।[२]

(२८) भँगरिया

इसे संस्कृत में 'भृङ्गराज' कहते हैं। भँगरिया इसी शब्द का अपभ्रंश है। इसके रस तथा तेल में बालों को बढ़ाने की शक्ति समझी जाती है। इसीलिए धनी तथा शौकीन लोग अपने बालों में 'भृङ्गराज तेल' लगाते हैं। श्राद्ध के अवसर पर प्रेतात्मा के सिर के बालों को बढ़ाने के लिए 'पिण्डे' पर भँगरिया का टुकड़ा चढ़ाया जाता है। स्त्रियाँ अपने हाथ में गोदना गोदाने के पश्चात् उसे और अधिक काला करने के लिए इस पौधे का रस निचोड़कर लगाती हैं।

---

१ नानक नन्हा ह्वै रहो, ज्यों नन्हीं सी दूब।
आन घास सूखि जात हैं, दूब खूब की खूब॥

२. कैम्पबेल—'नोट्स', पृ० ६२।

गोदना गोदने के लिए जो काला द्रव पदार्थ तैयार किया जाता है वह भंगरिया की पत्तियों को निचोड़कर और उसमें 'कजली' मिलाकर बनाया जाता है। छोटे-छोटे बालक अपनी काठ की पटरी को काली करने के लिए इसका रस उस पर मलते हैं।

(घ) शाक

(२६) कोंहड़ा

कोंहड़ा को संस्कृत में 'कूष्माण्ड' कहते हैं। यह काशीफल के नाम से भी प्रसिद्ध है। इसका फल बहुत बड़ा होता है, जो शाक बनाने के काम में आता है इसका फूल पकौड़ी बनाने में प्रयुक्त होता है। इसकी पत्तियों का भी उपयोग शाक के रूप में किया जाता है। कोंहड़ा के छोटे फल को 'बतिया' कहा जाता है। लोगों का ऐसा विश्वास है कि अँगुली दिखाने से इसकी 'बतिया' नष्ट हो जाती है। गोस्वामी तुलसीदास ने रामायण में इस तथ्य की ओर संकेत करते हुए लिखा है कि—

> "इहाँ कुम्हण बतिया कोऊ नाहीं,
> जो तर्जनी देखि मरि जाहीं।।"

जब अँगुली (तर्जनी) दिखाने से कोहड़ा की 'बतिया' मुरझाने लगती है तब उसको फिर से हरा-भरा बनाने के लिए रविवार और मंगलवार को, सोने के गहने को पानी से धोकर, उस जल को इस पौधे की जड़ में डालते हैं।

कोंहड़ा पुत्र का प्रतीक माना जाता है, अतः पुत्रवती स्त्रियाँ इसका शाक बनाने के लिए इसे नहीं फोड़ती है। जब कोई पुरुष इसको पहिले फोड़ता है तभी वे इसे शाक के लिए 'चीरती' हैं। रविवार और मंगलवार को इसका बनाना निषिद्ध है। यदि किसी कारण से शाक बनाया भी जाता है तो पुत्र-वती स्त्रियाँ उसमें नमक नहीं डालतीं। उनका विश्वास है कि ऐसा करने से विष्णु भगवान् को कष्ट होता है। कोंहड़े का अधिक संख्या में फलना अपश-कुन माना जाता है।

(३०) सतपुतिया

यह संस्कृत शब्द 'सप्तपुत्रिका' का अपभ्रंश है। यह सदा 'घवदि' (समूह) मे फलता है। स्त्रियों का ऐसा विश्वास है कि इसके शाक को खाने से सात पुत्रों की उत्पत्ति होती है। इसीलिए आश्विन मास के कृष्ण पक्ष की सप्तमी के

दिन स्त्रियाँ जिउतिया (जीवित्पुत्रिका) व्रत के अवसर पर निश्चित रूप से इस शाक को खाती हैं। यह व्रत पुत्रोत्पत्ति तथा उसकी रक्षा के लिए किया जाता है। अतः 'जिउतिया' व्रत के अवसर पर 'सतपुतिया' की तरकारी खाना अत्यन्त आवश्यक है।

(३१) करमी

भादों मास के शुक्लपक्ष की पंचमी को 'ऋषि पञ्चमी' नामक व्रत किया जाता है। इस दिन हल से जोत कर पैदा किया गया अन्न खाना निषिद्ध है। इस व्रत में 'तीना' का चावल और करमी का शाक खाना बड़ा पुण्यदायक समझा जाता है। करमी का शाक जल में पैदा होता है। सम्भवतः इसीलिए यह अन्य शाकों से अधिक पवित्र माना जाता है। ऋषि पञ्चमी (के दिन) के अतिरिक्त दूसरे दिन इस शाक का खाना निषिद्ध है, क्योंकि ऐसा करने से पुण्य कर्म नष्ट हो जाते हैं। परन्तु इस शाक के साथ चने की दाल या चावल मिला कर बनाया जाय तो उसे खाने में कुछ भी दोष नहीं लगता।

(३२) लौकी

यह 'लौका' भी कहा जाता है। शहरी लोग इसे 'कद्दू' कहते हैं। जो 'लौकी' कड़वी या 'तीती' होती है उसे 'तितलौकी' कहते हैं। इसके सम्बन्ध में हिन्दी में एक कहावत भी प्रचलित है कि 'एक तो तितलौकी दूसरे नीम चढ़ी'।

भोजपुरी प्रदेश में लौका प्रचुर परिमाण में उत्पन्न होता है। ठट्टर बाँध कर इसकी बेल को उस पर चढ़ा देते हैं। इसकी बेल को कीड़े न खा जायँ अतएव इसकी पत्तियों पर घर के चूल्हे की राख अथवा कुम्हार के 'आवँ' की राख छिड़की जाती है। लौकी की बेल अधिक फल देने वाली हो सके इसके लिए मछली को पानी में धोकर उस जल को इस बेल की जड़ में डालते हैं। लोगों का ऐसा विश्वास है कि ऐसा करने से लौकी में फल लगते हैं। इसके फल में किसी की नजर न लग जाय, अतः मिट्टी की बनी 'हाँड़ी' को काली करके उसमें अँगुली से चूने का सफेद चिह्न बना देते हैं। ऐसा करने से इसके फल को किसी प्रकार की क्षति नहीं पहुँचती और वह लोगों की बुरी नजरों के लगने से बच जाता है। कातिक शुक्ल षष्ठी के दिन लौकी का शाक खाने का विशेष महत्त्व है। इसके छिलके को लाँघना मना है, क्योंकि इससे पैर में 'उकवत' नामक रोग होता है। परन्तु इसके छिलके पर थूक दिया जाय तो

यह दोष जाता रहता है।[1]

(३३) नेनुआँ

इसको 'घेवड़ा' भी कहते हैं। यह लम्बा तथा बड़ा होता है। आश्विन मास के कृष्ण पक्ष में पितृपक्ष के दिनों में इस शाक का खाना निषिद्ध है। जो लोग अपने पितरों को इस पक्ष में तिलांजलि देते हैं वे इसे बिल्कुल नहीं खाते। इसीलिए काशी में यह शाक इन दिनों में बड़ा सस्ता बिकता है, परन्तु जिन लोगों के पिता जीवित हैं वे इस शाक को पितृपक्ष मे भी खा सकते हैं।

(ङ) फूल

(३४) केवड़ा

केवड़े का फूल बहुत बड़ा एवं लम्बा होता है। इसकी भीनी-भीनी सुगन्ध मन को मस्त करने वाली होती है। लोगों का ऐसा विश्वास है कि केवड़े के वृक्ष तथा फूल के पास साँप रहता है। इसीलिए कोई केवड़े को अपने दरवाजे पर नहीं लगाता। इसके फूल को घर में रखने से वहाँ साँपों के आने की आशंका रहती है।

(३५) अड़हुल

इसका फूल बड़ा लाल होता है। यह पुष्प देवी को बहुत प्रिय है। अतः उनकी पूजा करते समय इसे उनकी प्रतिमा पर चढ़ाते हैं। सूर्य की पूजा भी अड़हुल के फूल से की जाती है। सूर्य को अर्घ्य देते समय लोटे के जल में इस फूल को डाल देते हैं और उसी से सूर्य को जल दिया जाता है। इस फूल के पौधे पर देवी का निवास बतलाया जाता है। अतः स्त्रियाँ अपने छोटे बच्चों को गर्मियों की दोपहरी में इसके पौधों के पास नहीं जाने देतीं। तान्त्रिक पूजा म इस फूल का विशेष रूप से उपयोग किया जाता है। अड़हुल के फूल से डायिन स्त्रियाँ टोना-टोटका भी करती हैं। इस फूल में टोना करके किसी चौरास्ते पर फेंक देती हैं। यदि कोई व्यक्ति इस फूल को लाँघता है तो उसे वह भूत लग जाता है। अतः चतुर स्त्रियाँ अपने बच्चों को चौरास्ते पर पड़े हुए अड़हुल के फूल को कदापि न लाँघने की शिक्षा देती हैं। इसका उपयोग दवा के रूप में भी होता है।

---

१. इन पंक्तियों के लेखक की पूजनीया माता अपने बच्चों को लौकी के छिलके को कदापि नहीं लाँघने देती थी। लौकी को छीलने के पश्चात् वे तुरन्त उसके छिलके को बाहर फेंक देती थीं।

(३६) धतूरा

इसको संस्कृत में 'धत्तूर' कहते हैं। संस्कृत तथा हिन्दी कवियों ने 'कनक' के नाम से इसका उल्लेख अपनी कविता में किया है।[1] इसका फूल लम्बा तथा सफेद होता है। यह पुष्प भगवान् शिव को बहुत प्रिय है, अतः उनकी पूजा में धतूरे के फूल और फल का विशेष रूप से उपयोग किया जाता है तथा उनकी प्रतिमा पर चढ़ाया जाता है।

(३७) कमल

इसका फूल परम पवित्र समझा जाता है। इसकी पत्तियों को 'पुरइनि' कहते हैं, जिनका उपयोग भोजन करने के लिए 'पत्तल' के रूप में किया जाता है। इसके भीतरी भाग को 'कवलगट्टा' कहते हैं, जिसे बच्चे खाते हैं। इसका 'डण्ठल' 'भसीड़' कहा जाता है जो शाक के रूप में खाया जाता है। सरस्वती कमल के आसन पर विराजती हैं, इसीलिए यह पवित्र माना जाता है। इसे शिव की प्रतिमा पर चढ़ाते हैं। संस्कृत साहित्य में इस पुष्प की बड़ी प्रशंसा की गई है। यह कोमलता और सुन्दरता का उपमान माना जाता है। यह दिन में खिलता है और रात्रि में संकुचित हो जाता है।

(३८) कनइला

इस फूल को संस्कृत में 'कर्णिकार' कहते हैं। इसका रंग पीला होता है, अतः यह 'पीत पुष्पी' भी कहा जाता है। भोजपुरी प्रदेश में यह पुष्प प्रचुरता से पाया जाता है। प्रायः सभी देवताओं की पूजा में इस फूल का उपयोग किया जाता है। लोगों का विश्वास है कि इसका फल विषैला होता है। अतः मातायें अपने बच्चों को इसका फल नहीं खाने देतीं। इसकी माला माता देवी को पहिनाई जाती है। मृत व्यक्ति की 'रथी' पर इस फूल को बिखेरा जाता है।

(३९) सूर्यमुखी

इस फूल के विषय में यह प्रसिद्धि है कि यह सदा सूर्य की ओर मुख किये रहता है। इसीलिए इसका नाम 'सूर्यमुखी' पड़ गया है। प्रातःकाल यह सूर्य

---

१. कनक कनक तें सौगुनी, मादकता अधिकाय।
वह खाये बौरात है, यह पाये बऊराय॥

की ओर अर्थात् पूर्व दिशा में मुँह किये हुए विकसित होता और जैसे-जैसे सूर्य अस्ताचल की ओर पश्चिम में घूमता जाता है वैसे-वैसे यह भी घूमता है। इसका फूल सफेद या पीला होता है। इसकी आकृति बड़ी और गोल होती है। इस फूल का कोई विशेष उपयोग नहीं होता। अगस्त्य का फूल सफेद और छोटा होता है। कहा जाता है कि जहाँ इस फूल का वृक्ष होता है वहाँ भूत नहीं आते। इसीलिए गृहस्थ लोग अपने दरवाजों पर इसके वृक्ष को लगाते हैं।

(४०) प्याज

इसे भोजपुरी में 'पियाजु' कहते हैं। धार्मिक प्रवृत्ति के लोग इसे खाना अशुद्ध मानते हैं। कुछ लोग इसे रसोईघर मे ले जाना भी पाप समझते हैं। प्याज में एक प्रकार की दुर्गन्ध निकलती है। इसीलिए सम्भवतः इसका खाना निषिद्ध है। इसका दूसरा कारण प्याज का तामसिक (पदार्थ) होना है। गर्मी के दिनों में लू से बचने के लिए बच्चे अपने पाकेट में प्याज रख कर चलते हैं। स्त्रियों का विश्वास है कि इससे बच्चों को लू नहीं लगती। गाँवों में प्लेग तथा हैजा के फैलने पर घर का मालिक मकान के प्रधान द्वार पर प्याज को रस्सी से बाँध कर 'लटका' देता है। लोगों की ऐसी धारणा है कि प्याज को द्वार पर लटकाने से रोग बढ़ने नहीं पाता। इसके रस का प्रयोग अनेक प्रकार की दवाओं को बनाने में किया जाता है।

लहसुन को भी, तामसिक भोजन होने के कारण, बहुत से लोग नहीं खाते। परन्तु इसका भी प्रयोग अनेक दवाओं के बनाने में होता है। लहसुन की आकृति प्रायः कुत्ते के नाखून की तरह होती है। इसी कारण से पण्डित लोग इसे नहीं खाते।

चतुर्दश अध्याय

उपसंहार

(१) लोक विश्वास की विशालता

लोक विश्वास का क्षेत्र अत्यन्त विशाल है। सुप्रसिद्ध ज्योतिष के आचार्य वाराहमिहिर ने इनका विभाजन निम्नांकित तीन वर्गों में किया है जो अत्यन्त समीचीन है।

(१) दिव्य (२) अन्तरिक्ष (३) भौम। इनका विशद तथा विस्तृत वर्णन पिछले पृष्ठों में किया जा चुका है। यहाँ केवल इतना ही कहना पर्याप्त है लोक विश्वास की सीमा में आने से संसार में कोई वस्तु बची नहीं है।

स्वर्ग में निवास करने वाली अप्सराओं मेनका और रम्भा आदि के साथ ही इन्द्र के नन्दन वन में उत्पन्न होने वाले कल्प वृक्ष और मनोवांछित फल देने वाली कामधेनु भी इस क्षेत्र के भीतर आती हैं। ब्रह्मा, विष्णु और महेश की आकृति शरीर के विभिन्न अवयव, इनके आयु और वाहनों की भी चर्चा लोक विश्वास के अन्तर्गत है।

आकाश अथवा अन्तरिक्ष में स्थित सूर्य मण्डल, नवग्रह और सत्ताइस नक्षत्रों के सम्बन्ध में ही अनेक लोक विश्वास जनता मे प्रचलित हैं। इसके अतिरिक्त आकाश में तेजी से चमकने वाली बिजली; जोरों से, प्रचण्ड वेग से चलने वाला प्रभंजन, अनन्त आकाश में गड़गड़ शब्द करती हुई आदिम मानवों को डराने वाली घनघोर घन-घटा, सतरंगी इन्द्र धनुष, सूर्य और चन्द्रमा के नियत कालीन उपराग, इनके मण्डलों के चारों ओर दिखाई पड़ने वाला परिवेष भी सर्वसाधारण जनता के मन में अनेक विश्वासों को उत्पन्न करता है।

पृथ्वी पर तो लोक विश्वासों का अटूट तथा विस्तृत साम्राज्य दिखाई पड़ता है। इस धरा-धाम पर उपलब्ध सृष्टि को दो भागों में विभक्त किया जा सकता है—

(१) चर और (२) अचर। अचर की कोटि में नदी और पर्वतों की गणना की जा सकती है। हिमालय, विन्ध्याचल, नीलगिरि और सह्याद्रि तथा क्रौंच पर्वत के सम्बन्ध में अनेक किम्वदन्तियाँ प्रसिद्ध हैं। चर जगत् अथवा जीव जगत् को भी दो वर्गों में विभक्त किया गया है—

(१) वनस्पति जगत् (२) पशु-पक्षी जगत् । वनस्पति जगत् के अन्तर्गत पेड़-पौधे, पुष्प, शाक तथा घास की गणना की जाती है । इसी प्रकार से पशु-जगत् के भीतर गाय, बैल, भैंस, घोड़ा आदि पालतू पशुओं तथा सिंह, व्याघ्र, भेड़िया, चीता आदि हिंसक पशुओं का वर्णन किया गया है । पक्षियों मे पालतू तथा जंगली पक्षियों का अन्तर्भाव किया गया है जिनके अन्तर्गत कौआ, तोता, मैना और गौरैया से लेकर वन वहीं (जंगल में रहने वाला मोर) और गीध आदि परिगणित हैं । इन सभी पशुओं, पक्षियों, वृक्षों, लताओं, शाकों आदि के सम्बन्ध मे अनेक लोक विश्वास प्रचलित है जिनका उल्लेख यथा स्थान किया गया है ।

किम्बहुना मनुष्य के शरीर में जितने अवयव हैं, जैसे सिर, ललाट, आँख, कान, बाहु और पैर आदि---इनके सम्बन्ध मे भी जनता मे अनेक मान्यतायें प्रचलित हैं । ग्रामीण लोग किसी शुभ तथा मंगलकारी दिन को ही यात्रा किया करते हैं । अतः दिन, मास, काल, वर्ष आदि के सम्बन्ध मे भी शकुनो की कुछ कमी नही है । स्त्रियाँ अपने दैनिक कार्यों--जैसे मुँह धोना, स्नान करना, माथ-मीसना आदि को भी किसी शुभ मुहूर्त में ही करती हैं । जीवन के विभिन्न संस्कार शुभ मुहूर्त के बिना सम्पादित हो ही नहीं सकते । मेरे कहने का अभिप्राय केवल यही है कि इस भूमण्डल में कोई भी ऐसी वस्तु नही है जिसके सम्बन्ध में कोई शकुन अथवा विश्वास प्रचलित न हो । यह समस्त सृष्टि ही लोक-विश्वासों की शृंखला में जकड़ी हुई है और संसार की कोई भी वस्तु इससे अछूती नहीं है ।

(२) सार्वभौमिकता

लोक-विश्वासों का साम्राज्य संसार में सर्वत्र दृष्टिगोचर होता है । इस जगत् में ऐसा कोई देश नहीं है जहाँ लोक विश्वास न पाया जाता हो । संसार के सभ्य, अर्ध सभ्य तथा असभ्य—सभी लोगो में लोक विश्वासों के प्रति आस्था किसी न किसी रूप में पायी जाती है । यथार्थ तो यह है कि जो जाति जितनी ही अधिक अपनी आदिम अवस्था मे विद्यमान है उनमें लोक विश्वासों की सत्ता उतनी ही अधिक उपलब्ध होती है । टेलर नामक विद्वान् ने अपनी 'प्रिमिटिव कल्चर' नामक पुस्तक में संसार की विभिन्न आदिम जातियों का तुलनात्मक अध्ययन कर उनकी सभ्यता संस्कृति, रहन-सहन तथा लोक-विश्वासों पर प्रचुर प्रकाश डाला है । इस ग्रन्थ के अध्ययन

करने से पता चलता है संसार कीसभी जातियों में अन्धपरम्परायें व्याप्त हैं और अधिकांश लोगों का जीवन इन्हीं परम्पराओं से परिचालित होता है।

पिछले अध्यायों में तुलनात्मक अध्ययन कर यह दिखलाने का प्रयास किया गया है पशु-पक्षी तथा मनुष्य संबंधी जो लोक-विश्वास भारत में प्रचलित हैं प्राय: उसी के समान विश्वास यूरोप के विभिन्न देशों – इगलैंड, जर्मनी, फ्रांस में भी पाये जाते हैं। उदाहरण के लिए दिन सम्बन्धी विश्वासों को लिया जा सकता है। इस देश में विभिन्न दिनों में यात्रा करना शुभ अथवा अशुभ माना जाता है। उसी प्रकार इंग्लैंड में विभिन्न दिनों को उत्पन्न होने वाले बच्चों का रूप, आकृति और भाग्य भिन्न-भिन्न होता है। पशु और पक्षियों के संबंध में भी लोक-विश्वास संसार के सभी देशों में प्रचुर मात्रा में उपलब्ध —होते हैं। उदाहरणार्थ बच्चों की 'मौसी' और घर की पालतू बिल्ली को लिया जा सकता है। इस क्षुद्रजीव के संबंध में अनन्त मान्यतायें हैं। अपने देश मे चितकाबर (चित्र कर्बुरित) बिल्ली की हत्या करना पाप माना जाता है। रात में इसका रोना अशुभ है। इग्लैंड में यदि कोई बिल्ली रात को बोलती है तो इससे वर्षा के आगमन का ज्ञान होता है। इसीलिए अंग्रेजी साहित्य में यह सूक्ति प्रचलित हो गई है कि :—

It is raiaining Cats and dogs.

जापान तथा अमेरिका में भी इस प्रकार के विश्वासों की कुछ कम नहीं है। कहने का सारांश केवल इतना ही है कि लोक-विश्वास की सत्ता सार्वभौम है। इसकी अपील सार्वजनीन है। इसकी स्थिति समस्त संसार में समान रूप से उपलब्ध होती है।

(३) प्राचीनता

लोक विश्वास की प्राचीनता हमारे देश में अत्यन्त प्राचीनकाल से चली आ रही है। वैदिक साहित्य के प्रारम्भिक युग से लेकर अन्तिम युग तक शकुनों में विश्वास उपलब्ध होता है। संसार के सबसे प्राचीन ग्रन्थ ऋग्वेद में पक्षियों के शुभ बोलने के लिए प्रार्थना की गई है। अथर्ववेद में कपोत से दूर रहने की विनती की गई है। पुराणों के सुप्रसिद्ध उद्-घाटनकर्ता पार्जीटर ने लिखा है कि पुराण भारतीय लोक संस्कृति (फोकलोर) के विश्वकोष हैं[1] तथा इनमें लोक विश्वास की अनन्त सामग्री भरी पड़ी

१. पार्जीटर—एन्शेण्ट इण्डियन हिस्टारिकल ट्रेडीशन।

है। इसी प्रकार से पद्मभूषण आचार्य बलदेव उपाध्याय ने अथर्ववेद को यातु विद्या, मारण, मोहन और उच्चाटन आदि क्रियाओं का महाकोष प्रतिपादित किया है।[1]

संहिता के बाद ब्राह्मण, और आरण्यकों के युग में भी लोक विश्वास अपने पूर्ण वैभव के साथ प्रकाशमान रहा है। लौकिक संस्कृत के काव्यों तथा नाटकों में लोक-विश्वास तथा शकुन प्रचुर परिमाण में उपलब्ध होते हैं जिनका प्रामाणिक तथा विस्तृत वर्णन डा० शर्मा ने अपनी पुस्तक में किया है।[2]

ग्रीस यूरोप का सबसे प्राचीन तथा सभ्य देश माना जाता है। वहाँ एथीना तथा वीनस क्रमशः सरस्वती तथा लक्ष्मी की देवियाँ मानी जाती हैं। वहाँ के चर्चों में कुमारी युवतियाँ अनेक व्रतों का पालन करते हुए निवास करती थीं जिन्हें वर्जिन मेरी कहा जाता था। ये भविष्यवाणियाँ किया करती थीं जो 'ओरेकल' (Oracle) के नाम से प्रसिद्ध था। जनता का विश्वास था कि ये भविष्यवाणियाँ सत्य होती हैं अतः अनेक मनुष्य अपने भविष्य को जानने के लिए वहाँ जाया करते थे। सुप्रसिद्ध मानव-विज्ञान शास्त्री (एन्थ्रोपोलाजिस्ट) डा० फ्रेजर ने अपनी पुस्तक 'गोल्डेन बाऊ' में 'टेम्पुल आफ डेल्फी' का बड़ा ही विशद वर्णन किया है जहाँ ये भविष्यवाणियाँ हुआ करती थीं।

इटली में 'होली रोमन इम्पायर' के पहिले तथा बाद में भी ऐसी घटनाओं की कमी नहीं थी। लोगों की यह मान्यता थी कि उनके धार्मिक गुरु पोप के पास सोने और लोहे की बनी हुई दो चाभियाँ हैं जिनके द्वारा वह पुण्यात्माओं के लिए स्वर्ग का और पापियों के लिए नरक द्वार खोला करता है। लोग तत्कालीन राजाओं को ईश्वर की विभूति मानते थे और उसकी आज्ञाओं को भगवान् का आदेश समझ कर सिर पर धारण करते थे। बेबिलोनिया, क्रीट तथा अन्य प्राचीन देशों में भी लोक विश्वास की अविच्छिन्न परम्परा प्राप्त होती है।

(४) महत्ता तथा उपयोगिता

विज्ञान के इस आधुनिक युग में भी लोक विश्वासों का अपना अलग महत्व है। इनकी सबसे बड़ी महत्ता इस बात में है कि किसी देश की लोक संस्कृति को वास्तविक रूप में जानने के लिए उस देश के लोक विश्वासों का अध्ययन अत्यन्त आवश्यक है। विशेषतया आदिम

१. आचार्य बलदेव उपाध्याय—भारतीय साहित्य का अनुशीलन।

२. डॉ० दीपचन्द शर्मा—संस्कृत काव्यों में शकुन।

मानव की सभ्यता और संस्कृति, उसके लोक-विश्वासों तथा अन्य परम्पराओं पर ही आश्रित है। लोक विश्वास वे अमोघ, अचूक और अजस्र स्रोत हैं जिनके द्वारा आदिम मानव के इतिहास को निश्चित रूप से जाना जा सकता है। इस प्रकार लोक विश्वास वह उत्स-भूमि है जहाँ से लोक संस्कृति की मंदाकिनी अपनी मन्द परन्तु सतत गति से बहती हुई आज अनेक शताब्दियों से चली आ रही है और जिसका अजस्र स्रोत आज भी सूखा नहीं है।

लोक-विश्वासों के द्वारा प्राचीन इतिहास की अनेक टूटी हुई शृंखलाओं को भी जोड़ा जा सकता है। जिन जातियों में शकुनों के संबंध में एक समान विश्वास दृष्टिगोचर होते हैं, बहुत संभव है कि वे जातियाँ एक ही मूल जाति की विभिन्न शाखायें हों अथवा उन्होंने किसी अतीत काल में एक दूसरे को प्रभावित किया हो। अतः संसार के विभिन्न देशों तथा समाजों में प्रचलित लोक-विश्वास के उद्गम तथा विकास के सूक्ष्म अध्ययन से इस दिशा में विशेष ज्ञान की उपलब्धि की संभावना है।

सुविख्यात विद्वान् शार्पर नोल्सन ने समस्त लोकविश्वासों तथा अन्ध-परम्पराओं के सहानुभूतिपूर्ण अध्ययन से मानसिक विज्ञान (Mental Science) के क्षेत्र में कुछ नवीन उद्भावनाओं की ओर संकेत किया है। इस विद्वान् के कथनानुसार प्रचलित अन्ध-विश्वासों के प्रति हमारा दृष्टिकोण निन्दा और उदासीनता का नहीं होना चाहिये। इसके विपरीत हमारी दृष्टि सहानुभूति पूर्ण अध्ययन, शोध तथा अनुसन्धान की ओर होनी चाहिए जिससे हम किसी ज्ञान अथवा विज्ञान का पता लगा सकें। इस दिशा में पर्याप्त वैज्ञानिक तथा मनोवैज्ञानिक आधारभूत सामग्री विद्यमान है। जिस प्रकार फलित ज्योतिष के अध्ययन से गणित ज्योतिष का एवं रस-विद्या के अध्ययन से रसायन शास्त्र का उद्गम तथा विकास हुआ है, उसी प्रकार किसी दिन लोक विश्वास तथा अन्ध-परम्पराओं के अनुशीलन से मानसिक विज्ञान अथवा मस्तिष्क ज्ञान संबंधी किसी नवीन ज्ञान की प्राप्ति हो सकती है।[1] इस प्रकार

१. डॉ० दीपचन्द शर्मा—संस्कृत काव्यों में शकुन (मेरठ)।

का विशिष्ट ज्ञान निःसन्देह अन्य विज्ञानों की भाँति मानव जाति के लिए हितकारी, लाभकारी तथा अत्यन्त उपयोगी सिद्ध हो सकता है।[1]

अमरता

लोक विश्वास अजर और अमर हैं। ये अनादि काल से चले आ रहे हैं और इनकी अजस्त्र तथा बेगवती धारा अनन्त काल तक प्रवाहित होती रहेगी। सृष्टि के आदिम युग में जब मानव ने चेतना प्राप्त की थी उसी अतीत काल में लोक-विश्वासों का जन्म हुआ था तथा अन्ध-परम्पराओं ने अंकुरित होना प्रारम्भ किया था। तब से लेकर आज के एटामिक युग तक शतशः शताब्दियाँ व्यतीत हो चुकीं, परन्तु लोक-विश्वास की मंदाकिनी अपनी मंद गति से ही सही अविरल गति से बहती चली आ रही है और बहती चली जायेगी। आदिम युग मे जिस प्रकार आदिम मानव का जीवन लोक-विश्वास के ताने-बाने से बुना हुआ था, उसी प्रकार आधुनिक युग में आज का सभ्य मनुष्य भी लोक विश्वास में अखण्ड आस्था रखता है।

हमारे देश में ही लोक-विश्वासो का एक छत्र साम्राज्य छाया हुआ है ऐसी बात नही समझनी चाहिए बल्कि इंग्लैण्ड, जर्मनी, फ्रांस, जापान और अमेरिका जैसे सभ्य देशों में भी अन्धपरम्पराओं की परम्परा प्रचलित है। डॉ० रिचर्ड

---

1. "Reviewing the whole subject, without prejudice, it seems to me that the right attitude of the mind towards the superstitions that are still operative, is not of mere condemnation, or lofty indifference. It should be one of sympathetic inquiry; for the psychological and scientific data available are of the highest interest; And just as astronomy arose out of astrology, and Chemistry out of alchemy, so from the occult world, we may some day attain developments in mental science equally distinctive and equally useful in the service of the mankind." T. Sharper Knowlson—The origin of popular superstitions and customs. P. 12. (London T. Werner Laurie Ltd. 1930).

डारसन ने अपने ग्रन्थ 'अमेरिकन फोकलोर' में 'माडर्न फोकलोर' नामक अध्याय में अमेरिका जैसे उन्नतिशील तथा सभ्य देश में प्रचलित लोक विश्वासों का बड़ा ही सुन्दर वर्णन किया है जिससे पता चलता है कि आज भी यह परम्परा जीवित है तथा फल-फूल रही है। इन विश्वासों की अमरता के विषय में डॉ० डारसन की अटूट आस्था है कि ये कभी भी नष्ट नहीं हो सकते। ये सदा अजर और अमर हैं।

अन्त में लोक विश्वास तथा अन्ध-परम्पराओं की अमरता में दृढ़-विश्वास रखते हुए इस लेखक की भी यही विनम्र सम्मति है कि ये सदा अमर बने रहेंगे। इनका कभी नाश नहीं हो सकता ।। समाप्तम् ।। जय लोक-विश्वास ।।

कार्तिकस्याऽसिते पक्षे; अमायां रविवासरे।
समाप्तिम गयत् ग्रन्थः; "लोक-विश्वास" नामकः ।।१।।
नवम्बरस्य मासस्य; द्वितीया-तारिका-तिथौ।
'षडशीतिमिते वर्षे; ग्रन्थोऽयं रचितो मया ।।२।।
पादयोः नमनं कृत्वा; शारदा-विश्वनाथयोः।
प्रार्थना कृष्णदेवस्य; भारते भातु भारती ।।३।।

डारसन ने अपने ग्रन्थ 'अमेरिकन फोकलोर' में 'माडर्न फोकलोर' नामक अध्याय में अमेरिका जैसे उन्नतिशील तथा सभ्य देश में प्रचलित लोक विश्वासों का बड़ा ही सुन्दर वर्णन किया है जिससे पता चलता है कि आज भी यह परम्परा जीवित है तथा फल-फूल रही है। इन विश्वासों की अमरता के विषय में डॉ० डारसन की अटूट आस्था है कि ये कभी भी नष्ट नहीं हो सकते। ये सदा अजर और अमर हैं।

अन्त में लोक विश्वास तथा अन्ध-परम्पराओं की अमरता में दृढ़-विश्वास रखते हुए इस लेखक की भी यही विनम्र सम्मति है कि ये सदा अमर बने रहेंगे। इनका कभी नाश नहीं हो सकता ।। समाप्तम् ।। जय लोक-विश्वास ।।

कार्तिकस्याऽसिते पक्षे; अमायां रविवासरे।
समाप्तिम गयत् ग्रन्थः; "लोक-विश्वास" नामकः ।।१।।
नवम्वरस्य मासस्य; द्वितीया-तारिका-तिथौ।
'षडशीतिमिते वर्षे; ग्रन्थोऽयं रचितो मया ।।२।।
पादयोः नमनं कृत्वा; शारदा-विश्वनाथयोः।
प्रार्थना कृष्णदेवस्य; भारते भातु भारती ।।३।।

५. ऐतरेय आरण्यक

६. पारस्कर गृह्य-सूत्र

७. आश्वलायन गृह्य सूत्र

८. पुराण—पद्म पुराण आदि

९. वसन्त राज शकुन

१०. समुद्र तिलक—दुर्लभराज

११. मुहुर्त्त चिन्तामणि

१२. नरपति जिन चर्या स्वरोदय—नरहरि

१३. वृहद् संहिता—वराह मिहिर

१४. षड्विंश ब्राह्मण

१५. रघुवंश } कालिदास
१६. शकुन्तला } कालिदास
१७. मेघदूत } कालिदास

१८. नैषधीय चरितम्

१९. रामायण

२०. महाभारत

२१. कौसीतकी गृह्यसूत्र

२२. चरक संहिता

(ख) हिन्दी

१. डॉ० दीपचन्द शर्मा—संस्कृत काव्यों में शकुन (साहित्य भण्डार, मेरठ १९६६ ई०)

२. डॉ० वीणा द्विवेदी—पद्मावत का सांस्कृतिक अध्ययन (अप्रकाशित थीसिस)

३. डॉ० रविशंकर उपाध्याय—भोजपुरी लोकगीतों का सांस्कृतिक अध्ययन। (लोक संस्कृति शोध संस्थान, वाराणसी १९८४)

४. डॉ० प्रियम्वदा गुप्त (अप्रकाशित थीसिस)

५. डॉ० विद्याविन्दु सिंह—अवधी लोक गीतों का विवेचनात्मक अध्ययन (इलाहाबाद)

६. डॉ० सत्या गुप्त—खड़ी बोली लोक साहित्य (हिन्दुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद)

७. डॉ० सरोजिनी रोहतगी—अवधी का लोक साहित्य (दिल्ली)

८. डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय—लोक संस्कृति की रूपरेखा (लोकभारती प्रकाशन, सिविल लाइन्स, इलाहाबाद, १९८७ ई०)

९. पद्म-भूषण आचार्य बलदेव उपाध्याय—

(क) वैदिक साहित्य और संस्कृति

(ख) भारतीय साहित्य का अनुशीलन, १९८६

(ग) संस्कृत साहित्य का इतिहास

ये सभी पुस्तकें शारदा-मंदिर, वाराणसी से प्रकाशित हैं।

१०. डॉ० गौरी शंकर मिश्र—अवधी पहेलियों का सांस्कृतिक अध्ययन (अप्रकाशित थीसिस)

११ डॉ० अग्रवाल (वा० श०)—प्राचीन भारतीय लोक धर्म

(ग) अंग्रेजी

१. क्रुक–(विलियम)—पापुलर रिलिजन एण्ड फोकलोर आफ नार्दन इण्डिया, भा० १-२ (मुन्शीराम मनोहर लाल, नई सड़क, दिल्ली, तृतीय संस्करण दो भागों में, १९६८)

२. नोलसन (टी० शार्पर)—दि ओरिजिन आफ पापुलर सुपरस्टिशनस एण्ड कस्टम्स (टी० वरनेर लौरी लिमि०, लण्डन, १९३०)

३. हेस्टिंग्स (जेम्स)—इन्साइक्लोपीडिया आफ रिलिजन एण्ड एथिक्स भाग १-१२ (टी० एण्ड टी० क्लार्क, न्यूयार्क १९११ ई०)

४ **फ्रेजर** (जेम्स, जी०)—दि गोल्डेन बाऊ भाग १-१२ (मैकमिलन एण्ड कं०, लण्डन, तृतीय संस्करण, १६१६)

५. **लोवी** (राबर्ट एच०)—प्रिमिटिव रिलिजन (पीटर ओवन लिमि० लण्डन, १६६०)

६ **पाल रेडिन**—प्रिमिटिव रिलिजन (डोवर पब्लिकेशन्स, न्यूयार्क, १६५७)

७. **टायलर** (ई० बी०)—प्रिमिटिव कल्चर, भाग १ (जान मरे, लण्डन, १६०३ ई०)

८ **मेरिया लीच**—दि स्टैंडर्ड डिक्शनरी आफ फोकलोर माइथोलाजी एण्ड लीजेण्ड्स (फंक एण्ड वैगनल्स, न्यूयार्क—दो भागों में, १६५० ई०)

६. **सुमनेर** (डब्लू० जी०)—फोकवेज (डोवर पब्लिकेशन्स इन०, न्यूयार्क, १६०६)

१०. **सोफिया बर्न**—दि हैण्डबुक आफ फोकलोर (फोकलोर सोसाइटी, लण्डन, १६१४)

११. **डायर** (थिसेलटन)—इंग्लिश फोकलोर (लण्डन)

१२. **बोआज** (फ्रेंज)—दि माइण्ड आफ प्रिमिटिव मैन (मैकमिलन कम्पनी, न्यूयार्क, सन् १६३८)

१३. **एन्थोवेन**—फोकलोर नोट्स भाग १ (ब्रिटिश इण्डियन प्रेस, बम्बई, १६१५)

१४. **एन्थोवेन**—ओमेन्स एण्ड सुपरस्टिशन्स आफ सदर्न इण्डिया (टी० फिशर अन विन लण्डन, १६१२)

१५. **रेडफोर्ड** (एम० ए०)—इन्साइक्लोपीडिया आफ सुपरस्टिशन्स (रायडर एण्ड कम्पनी, फ्लीट स्ट्रीट, लण्डन, १६४७ ई०)

१६. इन्साइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका—भाग १, (लण्डन)

१७. इन्साइक्लोपीडिया अमेरिकाना, (अमेरिकाना कारपोरेशन, न्यूयार्क, १६४७)

१८. **विनिक** (चार्ल्स)—दि डिक्शनरी आफ एन्थ्रोपोलाजी (फिलोसोफिकल लाइब्रेरी, न्यूयार्क)

१९. पोर्टियस (एलेक्जेण्डर)— फारेस्ट फोकलोर (जार्ज एलेन एण्ड अनविन, लण्डन १९२८)

२०. गुबरनेटिस — बोटेनिकल माइथोलाजी

२१. ,,, ,,,— जुओलाजिकल माइथोलाजी

२२. लोवी (आर० एच०)— एन इन्ट्रोडक्शन टु कल्चरल एन्थ्रोपोलाजी

२३. डोनाल्डसन (बी० ए०)— दि वाइल्ड रयू (The Wild Rue)

२४. फ्रेजर (जेम्स० जी०)— मैजिक एण्ड रिलिजन (वैट्स एण्ड कम्पनी, लण्डन, १९४५ ई०)

२५. डेविडसन (एडमण्ड)—दि रिलिजन आफ मैनकाइण्ड (एबिनोडोन प्रेस, न्यूयार्क, १९२१ ई०)

२६. ड्रोवर (इ० एस०)—दि बुक आफ जोडियेक (रायल एशियाटिक सोसाइटी, लण्डन, १९४९)

२७. डोनेल (एम० सी०)— ड्रीम्स एण्ड देअर ट्रू मीनिंग

२८. स्डोवस (लूशियन)— इन्साइक्लोपीडिया आफ एस्ट्रोनोमी (बैचवर्थ प्रेस, लण्डन, ५९)

२९. लाबशर (Laubscher)— सेक्स, कस्टम्स एण्ड साइकोपाथोलोजी (जार्ज रुटलेज एण्ड सन्स, लण्डन, १९३७ ई०)

३०. रिभर्स (डब्लू० एच० आर०)— दि टोडाज (मैकमिलन एण्ड कम्पनी, लण्डन, १९०६)

३१. बाउसन मारिस (Bouisson Maurice)—मैजिक—इट्स राइट्स एण्ड हिस्ट्री (राइडर एण्ड कम्पनी, लण्डन, १९६०)

३२. गोण्डा (जे०) आइ एण्ड गेज इन दि वेदाज—(नार्थ हालैण्ड पब्लिशिंग कम्पनी, एमस्टर्डम, १९६९ ई०)

३३. अग्रवाल (वासुदेव शरण)— एन्शेण्ट इण्डियन फोक कल्ट्स

३४. क्रेपी (ए० एच०)—दि साइन्स आफ फोकलोर (बारनेस एण्ड नोबुल इन का०, न्यूयार्क, १९२९ ई०)

३५. छन्दा चक्रवर्ती—कामन लाइफ, दि ऋग्वेद एण्ड अथर्ववेद (पुन्थी पुस्तक, कलकत्ता, १९७७)

३६. शिवशेखर मिश्र—मानसोल्लास एक सांस्कृतिक अध्ययन (चौखम्भा विद्या भवन, वाराणसी, १९६६ ई०)

३७. आर्म स्ट्रॉग (ए०)—दि फोकलोर आफ बर्ड्स (कोलिन्स, सेण्ट जेम्स प्लेस, लण्डन, १९५८)

३८. फ्रायड (सिगमण्ड)—टोटेम एण्ड टैबू (नार्टन एण्ड कम्पनी, न्यूयार्क, १९६२)

३९. वेदर—लोर

४०. कैम्पबेल (जे० एम०)—नोट्स आन दि स्पिरिट बेसिस आफ बिलीफ एण्ड कस्टम (बम्बई, १८८५ ई०)

४१. कानवे (एम० डी०)—डेमोनोलाजी एण्ड डेमन लोर, भाग १, २, (लण्डन, १८७९)

४२. कनिंघम (ए०)—आक्योलाजिकल सर्वे रिपोर्ट्स—अनेक भाग (कलकत्ता)

४३. डाल्टन (इ० टी०)—डिस्क्रिप्टिव एथ्नोलाजी आफ बंगाल, (कलकत्ता १८७२)

४४. डायर (टी० एफ० टी०)—पापुलर कस्टम्स (लण्डन, १८७६)

४५. डायर (टी० एफ० टी०)—फोकलोर आफ शेक्सपियर, (लण्डन, १८८३ ई०)

४६. फरेट (जे० ए०)—प्रिमिटिव मैनर्स एण्ड कस्टम्स (लण्डन, १८७९)

४७. फर्गुसन (जे०)—ट्री एण्ड सरपैण्ट वरशिप (लण्डन, १८६८ ई०)

४८. फोगल—इण्डियन सरपेण्ट लोर (लण्डन)

४९. एमर (Aymar Brandt)—ट्रेजरी आफ स्नेक लोर (न्यूयार्क, १९५३)

५०. शंकर सेन गुप्त—रेन इन इण्डियन लाइफ एण्ड लोर (ब्रिटिश इण्डियन स्ट्रीट, कलकत्ता)

५१. फ्रेजर (जेम्स जी०)—टोटेमिज़म लण्डन (१८८७ ई०)

५२. ग्रेगोर (रे० डब्लू०)—नोट्स आन दि फोकलोर आफ दि नार्थ ईस्ट आफ स्काटलैंड (फोकलोर सोसाइटी, ८१)

५३. ग्रियर्सन (जी०)—बिहार पीजेण्ट लाइफ (कलकत्ता, १८८५ ई०)

५४. ग्रिम—ट्यूटानिक माइथोलाजी, (अनु०) जे० एस० सेलेब्रास द्वारा (लण्डन, १८८०)

५५. हार्ट लैण्ड—(ई० एस०)—दि साइन्स आफ फेयरी टेल्स (लण्डन, १८६१ ई०)

५६. हिस लोप (रेभ० एस०)—पेपर्स रिलेटिंग टु दि एबोरिजिनल ट्राइब्स आफ सी० पी० (नागपुर १८८७)

५७. इबाट्सन (डी० सी० जे०)—पंजाब इथ्नोग्राफी (कलकत्ता १८८३)

५८. जोन्स (डब्लू०)—फिंगर-रिंग-लोर (लण्डन, १८७७ ई०)

५६. लायल (ए० सी०)—एशियाटिक स्टडीज (लण्डन, १८८२ ई०)

६०. नार्थ इण्डियन नोट्स एण्ड क्वेरीज (पत्रिका) (इलाहाबाद, सन् १८८० से ८५ तक)

६१. पंजाब नोट्स एण्ड क्वेरीज (पत्रिका), भाग १-४, (इलाहाबाद १८८३-८७)

६२. ओल्ढम (डब्लू) "मेम्वायर्स आफ दि गाजीपुर डिस्ट्रिक्ट," दो भाग, इलाहाबाद।

६३. रिजले (एच० एच०)—ट्राइब्स १८७०-७६ एण्ड कास्ट्स आफ बंगाल (कलकत्ता, १८६१)

६४. स्लीमैन (डब्लू० एच०)—रैम्बुल एण्ड रिकलेक्शन्स आफ एन इण्डियन आफिशल, (लण्डन, १८६३)

६५. टाड (जे०)—एनाल्स एण्ड एन्टीक्वीरीज् आफ राजस्थान, दो भाग (कलकत्ता, १८८४ ई०)

(२) अनुक्रमणिका

आ

इ

ई

घ

भ

म

य